खड़ीबोली

विकास के आरंभिक चरण

उषा माथुर

रिसर्च साइंटिस्ट 'ए'
(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

संस्करण प्रथम : १९९०

मूल्य : १२०/-

प्रकाशक : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

मुद्रक : एकेडमी प्रेस, ६०२, दारागंज, इलाहाबाद

प्रेरणा-स्रोत—

डॉक्टर श्यामनारायण माथुर

डॉक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी

पद्मविभूषण श्रीमती महादेवी वर्मा

की स्मृति में—

प्रकाशकीय

खड़ीबोली मूलत: पश्चिमी हिन्दी की बोली है, पर आज मध्यदेश की अपभ्रंश परम्परा में वह शौरसेनी तथा अर्ध-मागधी दोनों का उत्तराधिकार ग्रहण किये हुए पूर्वी हिन्दी को भी आत्मसात् किये हुए कदाचित वही ऐतिहासिक उत्तरदायित्व वहन कर रही है जो मध्यकाल में महाराष्ट्री प्राकृत को प्राप्त था। ब्रजभाषा का गौरवपूर्ण प्रतिनिधित्व आज जो हिन्दी कर रही है, वह सात प्रान्तों की राजभाषा ही नहीं समस्त देश की संविधान-सम्मत राजभाषा है जिसे स्वातंत्र्य संघर्ष के युग में राष्ट्रभाषा का पद भी मिला था। हिन्दी की प्रकृति और उसका विकास हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों के सम्पर्क से उत्तरोत्तर समृद्ध हो रहा है। स्वाभाविक है कि 'हरिऔध' की 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तक ही हमारी दृष्टि न जाय, वरन् भारतेन्दु और अयोध्याप्रसाद खत्री के प्रयत्नों का आकलन किया जाय जिनके द्वारा खड़ीबोली को साहित्यिक संस्कार प्रदान किये गये। 'ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली' जैसे शोधकार्य प्रतिष्ठा-द्वन्द्व की विविधपक्षीय असाधारणता प्रकट करते हैं। मध्यदेश का भाषादर्श षड्भाषापरक रहा है, इसीलिए यहाँ यह संभव हुआ कि ब्रजभाषा का स्थानान्तर खड़ीबोली के द्वारा हो गया। किसी भी भारतीय भाषा में ऐसा घटित नहीं हुआ। आधुनिकता और गद्य की प्रधानता मुख्य आधार बने। 'पद्य की पदवी' 'गद्य की गद्दी' बन गयी। द्विवेदी जी की प्रेरणा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त में इस प्रकार फलित हुई :

तो अब आजा अरी खड़ी बोली तू आजा।
कड़ी क्यों न हो नहीं पड़ी बोली तू आजा ॥

'आधुनिक हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में श्रद्धेय श्रीनारायण चतुर्वेदी ने और बहुत कुछ कहा है जो मननीय है। 'नयी कविता' के संयुक्तांक ५-६ में

मैंने 'खड़ीबोली की एक नयी भंगिमा' पर दृष्टिपात किया है। डॉ० माताबदल जायसवाल ने 'कबीर के पूर्व खड़ीबोली का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन' १९७६ में इलाहाबाद से ही संपन्न किया जिसका शोध-निष्कर्ष यह था कि कबीर की भाषा का प्रधान आधार खड़ीबोली ही था। इंशा अल्ला खाँ तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी का योगदान ऐतिहासिक और राजनैतिक दोनों प्रकार से स्मरणीय है। और भी अनेक संदर्भ हैं जिन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

इस व्यापक पृष्ठभूमि में डॉ० उषा माथुर का भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय से यू० जी० सी० के अनुदान को सार्थक करता यह शोधकार्य खड़ीबोली के विकास के आरंभिक चरणों की गतिविधि का सूक्ष्म परिचय अवश्य स्वागत योग्य होगा। उनके प्ररणा-स्रोतों में प्रसिद्ध भाषाविद् सुनीतिकुमार चटर्जी तथा सरस्वती रूपा श्रीमती महादेवी वर्मा भी आती हैं। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा तथा डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया तो उनके परीक्षक ही थे। लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति तथा हिन्दी विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० हरिकृष्ण अवस्थी के शोध-निर्देशन में ही ऐसा प्रामाणिक, स्तरीय और कठिन कार्य सम्पन्न हो सका। डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने पर्याप्त सहायता की है। उषा जी की ग्रहणशीलता, दृढ़ता और पुरुषोचित साहस विशेष सराहनीय हैं। देश के विभिन्न पुस्तकालयों तक जाकर उन्होंने अपने दायित्व का निर्वाह किया, तभी यह उपलब्धि हो सकी। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा यदि जीवित होते तो उन्हें इसके प्रकाशन से विशेष प्रसन्नता होती। हिन्दुस्तानी एकेडेमी इसी भाव से इसका प्रकाशन कर रही है। भाषा के संदर्भ में उसका अपना दृष्टिकोण भी रहा है। मुझे विश्वास है कि विज्ञ पाठक इसका स्वागत करेंगे।

जगदीश गुप्त

सचिव एवं कोषाध्यक्ष

आभार

कई बार किसी विषय पर चिंतन-मनन करते समय एकाएक नए-नए प्रश्न उभर कर सामने आते जाते हैं जिनके उत्तर और समाधान पुनः नई जिज्ञासाओं को जन्म देते चलते हैं। इस प्रकार नए-नए विषयों पर चिंतन, मनन और अनुशीलन का सिलसिला पुनः आरम्भ हो जाता है। प्रश्न और उनके उत्तर पुनः प्रश्न और जिज्ञासाओं के निराकरण नए-नए विषयों का सोच उत्पन्न करते चलते हैं। इस प्रकार शोध का चक्र निरन्तर चलता रहता है, वह कभी थमता नहीं। पी-एच० डी० उपाधि के संदर्भ में 'भारतेन्दु की खड़ीबोली का भाषा-विश्लेषण' विषय पर कार्य करते समय अनायास ही प्रश्न उठा कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिसे "हिन्दी नई चाल में ढली १८७३" (हरिश्चंद्री हिन्दी) कहा, उस हिन्दी की पुरानी चाल कौन-सी थी। इसी पुरानी चाल को जानने की अदम्य इच्छा, उत्कट अभिलाषा और आन्तरिक प्रेरणा से उत्पन्न जिज्ञासाओं के समाधान के रूप में 'भारतेन्दु पूर्व खड़ीबोली का भाषा-विश्लेषण' शीर्षक उभरकर सामने आया जिसे लखनऊ विश्वविद्यालय ने अनुमोदित कर डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की। प्रस्तुत पुस्तक इसी का परिवर्धित रूप है। इस अंतराल में विविध रूपों में मिलने वाली नई-नई सामग्री और भाषा-विश्लेषण की नई-नई दृष्टियों का समावेश इसमें कर लिया गया है जिससे मूल स्थापनाओं को बल मिला है और निष्कर्षों को विश्वास के साथ कसौटी पर कसा जा सका है।

इसके लिए सर्वप्रथम धन्यवाद पाने का अधिकार लखनऊ विश्वविद्यालय को है। डी० लिट्० के शोध-निर्देशक आदरणीय प्रोफेसर हरिकृष्ण अवस्थी तथा परीक्षक-द्वय आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा और डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया के प्रति हृदय से आभार है जिन्होंने अपनी परीक्षक-आख्याओं में इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करने के सुझाव दिए। आचार्य शर्मा ने विषय की प्रशंसा

"नानुपेक्षितमुच्यते" कहकर की और डॉक्टर भाटिया ने सर्वनामों के विशिष्ट वर्गीकरण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। आचार्य शर्मा ने लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने की अभिलाषा व्यक्त की थी। परन्तु लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रकाशित न करवा कर भाषा और साहित्यिक गतिविधियों से जुड़ी सर्व-प्रतिष्ठित संस्था हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित करवाने का निश्चय किया। यहाँ से प्रकाशित करवाने की सम्मति देने और इसे स्वीकृति प्रदान करने के लिए एकेडमी के सचिव डॉक्टर जगदीश गुप्त के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते संकोच होता है। उनका स्नेहसिक्त अनुग्रह तथा प्रोत्साहन सतत् प्रेरणा का स्रोत रहा है। उनके उपकार का प्रतिकार करने का साहस भी नहीं होता। इसे प्रकाशित करने के लिए अनुमोदित कर उत्तर प्रदेश सरकार ने भी उत्साहवर्धन किया, इसके लिए उसका विशेष आभार है।

पुस्तक के लिए मूलभूत सामग्री एकत्र करते समय लखनऊ विश्वविद्यालय ने समय-समय पर यात्रा-अनुदान देकर तथा उत्तर प्रदेश सरकार ने टंकण-अनुदान देकर उपकृत किया जिससे आर्थिक व्यवधान आड़े नहीं आ सका है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ने सीनियर रिसर्च फेलोशिप हेतु चयन कर मनोबल क्षीण न होने दिया। इससे आत्मविश्वास बना रहा और भारत और भारतेतर देशों में छिटके हुए पुस्तकालयों, संग्रहालयों, अभिलेखागारों, पुरातत्त्व-विभागों, शोध-संस्थानों, मंदिरों और व्यक्तिगत संग्रहों से आधारभूत भाषिक नमूनों का संकलन और संचयन सुविधापूर्वक किया जा सका। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में मारिशस सरकार के निमंत्रण पर सीनियर रिसर्च फेलो के नाते हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करने का जो सुयोग विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और उत्तर प्रदेश सरकार के संयुक्त सहयोग से प्राप्त हुआ, उससे खड़ीबोली के प्रसार-क्षेत्र को निकट से जानने-समझने का अवसर मिला। इससे शोध के निष्कर्षों को भली-भाँति परखा जा सका है। आरंभिक खड़ीबोली के भिन्न-भिन्न अवशेष, जो भारत के पूर्वी और पश्चिमी अंचलों में आज तक सुरक्षित मिलते हैं, वे सब मारिशस में भारतीय मूल के वंशजों के सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में बोले और समझे जा रहे हैं। इस यात्रा के दौरान मोका-स्थित महात्मा गांधी संस्थान के विशाल पुस्तकालय की पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के समृद्ध संकलन के अवलोकन करने का अवसर मिला। क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर में रिसर्च एसोशिएट (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) के पद पर

कार्य करते हुए कानपुर विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि रूप में नई दिल्ली में हुए तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में सम्मिलित होने पर एक बार पुनः हिन्दी के विस्तृत क्षितिज का अवलोकन कर उससे हुए अनुभवों का लाभ पुस्तक में भी आवश्यक स्थलों पर उठा लिया गया है। सम्प्रति, रिसर्च साइंटिस्ट "ए" (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) के पद पर कार्य करते समय विभिन्न संगोष्ठियों में भाग लेने से होने वाले अनुभवों को भी इसमें भी जोड़ लिया गया है। इस प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य स्रोतों के संयुक्त सहयोगों से यह अध्ययन-अनुशीलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सका है।

इस क्रम में उन सभी संस्थाओं, अधिकारियों, भाषाविदों एवं प्रतिष्ठित विद्वानों के प्रति हृदय से साधुवाद है जिन्होंने खड़ीबोली की आरंभिक साहित्यिक और उपसाहित्यिक आधारभूत रचनाओं से लेकर संदर्भ ग्रंथों और विविध पाठ्य सामग्री सुलभ करवाने में अपना अथक सहयोग दिया और अपने बहुमूल्य सुझावों और व्यावहारिक सूचनाओं/ज्ञान से लाभान्वित होने का अवसर दिया। इनमें मल्ल राजाओं के पत्रों के संदर्भ में पुरातत्त्व विभाग, सिंह दरबार, काठमांडू, नेपाल के डाइरेक्टर जनरल श्री जनकलाल शर्मा, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के अधिकारियों में श्री चन्द्रप्रकाश माथुर, श्री एन० एन० चारी, श्री कृष्णलाल अरोड़ा और श्री ओमप्रकाश भुगड़ा के नाम उल्लेखनीय हैं जिनके सहयोग से पन्ना दरबार के राजकीय पत्र, एजेंसियों और फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेंट की दुर्लभ कार्यवाहियाँ सुलभ हो सकीं। अभिलेखों के विशाल सागर से खड़ीबोली के अभिलेख खोज निकालने से लेकर उन्हें सुपाठ्य बनाने जैसे जटिल कार्यों को सुगम बनाने में यहाँ के निदेशक से लेकर अन्य सभी कर्मचारियों ने जो सहयोग दिया, उससे धैर्य और साहस टूटने न पाया। श्री चन्द्रप्रकाश माथुर ने समकालीन ऐतिहासिक परिवेश और ईस्ट इंडिया कम्पनी कालीन शासनतंत्र से जुड़ी घटनाओं से अवगत करवा कर इतिहास-ज्ञान को पुष्ट किया जिससे शासकीय और अदालती कार्यवाहियों के वर्ण्य-विषय, भाषा और लिपि को समझना-पढ़ना सहज हो गया। श्री ओमप्रकाश भुगड़ा जी ने देहली-स्थित विभिन्न पुस्तकालयों में बिखरी पड़ी प्राचीन हिन्दी की रचनाओं की सूचना देने, उनकी प्रतिलिपि करने और उर्दू ग्रंथों को सुपाठ्य करने से लेकर उनकी जीरॉक्स प्रतियाँ और माइक्रोफिल्में बनवाने और सुलभ करवाने में शक्ति भर सहयोग

दिया। इससे सामग्री-संचयन अल्पावधि में पूरा हो सका। इस क्रम में राज्य अभिलेखागार, लखनऊ के उपनिदेशक श्री राजेन्द्र बहादुर श्रीवास्तव साधुवाद के पात्र हैं जिनसे शेरशाह सूरी की सनद, प्राचीन कोश एवं हस्तलेख और पुस्तकें सुलभ हुईं और माइक्रोफिल्म रीडर के उपयोग की अनुमति मिली। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली ने 'रिसालातीरंदाजी' और 'राजनीतिशास्त्र' की हस्तलिपि सुलभ करवाई। राज्य संग्रहालय, लखनऊ और राज्य संग्रहालय, मथुरा के हस्तलेख-संग्रह और पुस्तकालयों का भरपूर उपयोग करने के लिए तत्कालीन निदेशक डॉक्टर रमेशचन्द्र शर्मा सम्प्रति निदेशक भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता का स्नेहपूर्ण सहयोग बराबर मिलता रहा। यहाँ प्रतिमाह होने वाले शैक्षिक व्याख्यानों का लाभ भी पुस्तक लिखते समय अप्रत्यक्ष रूप से मिलता रहा है। हिन्दी भाषा और साहित्य विषयक सामग्री के लिए भारत के प्राचीन-तम ठिकानों में एशियाटिक सोसाइटी; कलकत्ता से 'नासिकेतोपाख्यान' की प्राचीन हस्तलिपि प्राप्त हुई। परन्तु खेद है, अनेक प्राचीन पुस्तकें डॉक्टर महादेव साहा के पास से वापस न लौटने के कारण सुलभ न हो सकीं। कलकत्ता के अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकालयों से तत्कालीन समाचार-पत्रों की प्रतियों तथा ब्रजभाषा और खड़ीबोली की दुर्लभ पुस्तकों और हस्तलेखों के अवलोकन का और उपयोग करने का पूरा अवसर मिला। इनमें नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता का योगदान अविस्मरणीय है। यहाँ के हिंदी प्रभाग के तत्कालीन प्रभारी श्री कृष्णाचार्य जी तथा श्री अविनाशीलाल श्रीवास्तव ने आधारभूत साहित्य के संचयन और संदर्भ-ग्रंथों को हस्तगत कराने में भरपूर सहायता की। ऐसा ही तत्परतापूर्ण सहयोग एवं आवश्यक सुविधाएँ कारमाइ-केल लाइब्रेरी, वाराणसी, काशी विश्वविद्यालय एवं नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से भी प्राप्त हुईं। इसके लिए श्री सुधाकर पाण्डेय, श्री रत्नाकर पाण्डेय एवं श्रीनाथ सिंह के नामों के उल्लेख के बिना धन्यवाद-ज्ञापन का कर्तव्य अधूरा रह जायगा। भारतेंदु-कालीन साहित्य भारतेंदु हरिश्चन्द्र जी के पौत्र श्री ब्रजरत्नदास जी के संग्रह से उनके पुत्र डॉक्टर ब्रजेन्द्रकिशोर अग्रवाल से प्राप्त हुआ। इसके अभाव में इस कालखण्ड का साहित्य शृंखलाबद्ध रूप से जुट न पाता और भाषा के स्वरूप का चित्र अधूरा रह जाता। हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भारती भवन, प्रयाग तथा केन्द्रीय पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय का सहयोग भी आवश्यक संदर्भ-ग्रंथों के हेतु मिलता रहा है। गुरुमुखी लिपि में खड़ीबोली की रचनाओं तथा पंडों की बहियों की सूचना

डॉक्टर जयभगवान गोयल के अनुग्रह से प्राप्त हुई। आधारभूत सामग्री प्रदान करने के संदर्भ में लखनऊ विश्वविद्यालय के टैगोर पुस्तकालय, अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी, लखनऊ तथा वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन के पुस्तकालयों तथा संरक्षकों का सहयोग निरन्तर प्राप्त हुआ। भाषा-संबंधी ग्रंथ और पत्रिकाएँ उक्त पुस्तकालयों के अतिरिक्त भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, दिल्ली साक्षरता निकेतन, लखनऊ, गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ, क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर, पी० पी० एन० कालेज, कानपुरके पुस्तकालयों से भी मिलीं। इसके साथ इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन, इंग्लैण्ड के पुस्तकाध्यक्ष के प्रति भी साधुवाद है जिन्होंने आरंभिक खड़ीबोली की दुर्लभ रचनाओं एवं व्याकरण ग्रंथों की माइक्रोफिल्में तत्परता से उपलब्ध करवाकर प्रतिनिधि शैलियों की बानगी देखने का अवसर दिया जिससे विविध भाषिक नमूनों को चुना जा सका है।

भाषा-विश्लेषण-संबंधी परामर्शों के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर धर्मदत्त शर्मा ने समय-समय पर संगोष्ठियों और कांफ्रेंसों में भाषाविज्ञान-संबंधी शोधपत्र प्रस्तुत करने से लेकर पुस्तक की समाप्ति तक विविध रूपों में सम्मतियाँ और सुझाव देकर उपकृत किया। डॉक्टर बालगोविन्द मिश्र, निदेशक, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से समाज-भाषाविज्ञान-संबंधी मूलभूत सिद्धान्तों को समझने का अवसर उनके साथ कार्य करते समय मिलता रहा। डॉक्टर रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल, भूतपूर्व निदेशक, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा, डॉक्टर सरयूप्रसाद अग्रवाल, भूतपूर्व अध्यक्ष, भाषाविज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, डॉक्टर केसरीनारायण शुक्ल, भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग तथा डीन कला संकाय एवं डॉक्टर शिवशेखर मिश्र भूतपूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के सद्परामर्शों से प्रस्तुत अनुशीलन को सार्थक बनाने का प्रयास किया है। आरंभिक खड़ीबोली के कतिपय विशिष्ट शब्दों और ग्राम्य अंचलों में आज प्रचलित उनके प्रयोगों के संदर्भ में आवश्यक जानकारी साक्षरता निकेतन, लखनऊ के पुस्तकालय सहायक श्री रामसुमेर पाल से मिलती रही।

आरंभिक खड़ीबोली के भौगोलिक और सामाजिक प्रसार-क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय और सामाजिक वैविध्य वर्तनी, शब्द-रचना और

अर्थ के स्तर पर ढूँढ़ कर पुस्तक के कलेवर को बहुआयामों से उपयोगी बनाने का प्रयास बहुभाषाविद् डॉक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी के सुझावों के अनुसार किया गया है। उनका पृथक् से उल्लेख करने में गौरव का अनुभव होता है प्रबंध लिखे जाने के दौरान उन्होंने कलकत्ता-स्थित अपने आवास पर अध्ययन-कक्ष में घंटों बैठकें करके खड़ीबोली, उर्दू और दक्खिनी संबंधी अपने अभिमतों से अवगत होने का अवसर दिया तथा देश-विदेशों की यात्राओं से मिले उपहारों को दिखाया। इसी मध्य उनके यात्रायी एवं पारिवारिक संस्मरणों से परिचित होने एवं लाभान्वित होने का अवसर भी मिला। उन्होंने तीस हजार पुस्तकों के निजी संग्रह से समय-समय पर पुस्तकें भी उपलब्ध करवाईं और आगे भी कई अछूते एवं महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों, विषयों एवं दुर्लभ ग्रंथों पर कार्य करने का सुझाव दिया। किसी विषय के आलेख को तीन बार पढ़ना और तीसरी बार में उसे अंतिम आकार देने का उनका सुझाव सफलता का सूत्र बन गया है। इसी प्रकार पुस्तक की भूमिका और पुष्पिका से पुस्तक के संदर्भ में संपूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेने का उपदेश उनका ही दिया हुआ है। उन्होंने कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् की निम्नलिखित पंक्तियों—

'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्।
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्॥'

के साम्य पर अपनी निर्मित निम्नलिखित पंक्तियाँ सुनाईं :

'पुराणमित्येव न साधुसर्वम्
नवीनम् इत्येव न साधुसर्वम्।'

इनकी प्रतिध्वनि आज भी ज्ञान के क्षितिज को विस्तृत कर कार्य करने की सतत् प्रेरणा देती है। निरंतर कार्य में जुटे रहने के लिए उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी सुनाईं जो सफलता का सूत्र बन गई हैं :

चरैवेति, चरैवेति
नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम्।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा॥
चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेयाणां यो न तन्द्रयते चरन्॥
चरैवेति, चरैवेति।

All the best शब्दों से व्यक्त किए गए उनके अमोघ आशीर्वाद को अंत में आज पुस्तक रूप में प्रतिफलित देखकर परम संतोष का अनुभव होता है।

पुस्तक का शीर्षक Early Phases of Khari Boli उनका दिया हुआ है। इसका हिंदी रूपांतर "खड़ीबोली : विकास के आरंभिक चरण" डॉक्टर राजाराम महरोत्रा, प्रो-वाइस-चांसलर, नार्थ ईस्टर्न हिल यूनीवर्सिटी, आइजल, मिजोरम ने किया है। इन सभी विद्वानों के ऋण से उऋण होने की इच्छा नहीं होती। प्रेरक व्यक्तित्वों में डॉक्टर एस० के० दास गुप्त, भूतपूर्व संयुक्त सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति भी आभार व्यक्त करते हर्ष होता है।

पुस्तक रूप में प्रकाशित होने से पूर्व इसके अनेक अंशों को अपनी शोध पत्रिकाओं के विविध अंकों में प्रकाशित कर जिन्होंने इसके निष्कर्षों का सर्वाधिकार (Copy Right) प्रदान किया। इस संदर्भ में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के संपादक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के भूतपूर्व संपादक श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली की भूतपूर्व संपादक डाक्टर तारा तिक्कू के प्रति साधुवाद है।

इस प्रकार सद्परामर्शों एवं सहयोगों से निकाले गये और तर्क की कसौटी पर कसे गए इस अनुशीलन के निष्कर्ष खड़ीबोली के संदर्भ में स्थापित कतिपय भ्रमपूर्ण स्थापनाओं का निराकरण कर ज्ञान के क्षितिज को विकसित करेंगे तथा परिमाण और गुण, दोनों दृष्टियों में अधिक से अधिक और अच्छी से अच्छी प्रतिक्रियाओं को भी प्रतिफलित करेंगे, ऐसी आशा है। यथार्थ उद्देश्य तो अध्ययन को पूर्ण बनाने का रहा है, परन्तु मानवीय प्रयास अपूर्ण रहने के लिए बाध्य होते हैं। इसलिए विनम्र क्षमायाचना सहित रचनात्मक सुझावों का स्वागत है।

हर निवास

—उषा माथुर

४७ पानदरीबा, चारबाग,
लखनऊ, (उत्तर प्रदेश) २२६०१९

□

भूमिका

प्रस्तुत शोधकार्य के अन्तर्गत 'खड़ीबोली' शब्द का प्रयोग आधुनिक साहित्यिक हिन्दी के लिए किया गया है। इस अर्थ में इसका सर्वप्रथम प्रयोग डॉक्टर बार्थविक गिलक्राइस्ट कृत Oriental Linguist के परिचय में और इसके पश्चात् लल्लूलाल कवि कृत प्रेमसागर की भूमिका में मिलता है। जहाँ इसका प्रयोग अवधी और ब्रजभाषा आदि बोलियों से भेद दिखाने के लिए किया गया है। 'खड़ीबोली' शब्द का एक अन्य प्रयोग मेरठ और बिजनौर जिलों के आस-पास बोली जाने वाली गाँव की बोली के लिए भी मिलता है। प्रस्तुत स्थल पर इसका यह भाषाशास्त्रीय अर्थ न लेकर साहित्यिक अर्थ लिया गया है जिसके लिए गिलक्राइस्ट से पूर्व हिन्दवी, हिन्दुई आदि शब्द प्रचलित थे।

साहित्यिक अर्थ में प्रयुक्त खड़ीबोली के विकास के आरंभिक चरणों को शब्द-प्रयोगों के अनुपात के आधार पर निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित कर देखा-परखा जा सकता है। प्रथम है, आठवीं शती से लेकर चौदहवीं शती तक का समय। इस समय अपभ्रंश के साथ खड़ीबोली की आकारांत प्रकृति वाले रूप छिटपुट रूप से व्यवहृत हो रहे थे। दूसरा है, पंद्रहवीं शती से लेकर १७वीं शती तक का समय। इस समय ब्रजभाषा आदि भाषाओं के पदों के साथ-साथ खड़ीबोली में भी कुछ पंक्तियाँ लिखी जाने लगीं। इसी अनुपात में खड़ीबोली का प्रयोग ब्रजभाषा गद्य के साथ भी होता रहा। इस समय इसकी दक्खिनी शाखा में अनेक पद्य और गद्य रचनाएँ तैयार हुईं। तीसरा है, १८वीं शती और उसके पश्चात् का समय। इस समय ब्रजभाषा आदि भाषाओं से पृथक् हो खड़ीबोली ने अपना स्वरूप निखारना आरंभ कर दिया। क्रमशः १९वीं शती आते-आते इसकी स्वतंत्र पहचान बन गई जिसका परिमार्जन और परिष्कार आगे चलकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने किया। इस समय से अनेक साहित्यिक विधाओं और उपसाहित्यिक विषयों पर खड़ीबोली में गद्य, पद्य रचनाएँ लिखी जाने लगीं।

इसी विकास-काल को राजनैतिक सत्ताओं के आधार पर निम्नलिखित चार-पाँच भागों में विभाजित कर देखा जा सकता है। प्रथम है, पूर्व मुस्लिम काल। इस समय विभिन्न प्रदेशों के व्यापारियों के माध्यम से खड़ीबोली का विकास और प्रसार हुआ। दूसरा है, मुस्लिम काल। इस समय शासकों की अध्ययन-प्रवृत्ति के प्रभाव से खड़ीबोली को प्रश्रय मिला और अनेक लेखकों ने स्वतंत्र रूप से साहित्य लिखा जिनमें दक्खिन के साहित्यकारों की प्रमुख भूमिका थी। अमीर खुसरो इसी अवधि के प्रमुख कवि हुए। तीसरा है, मुग़ल काल और मराठा काल। इस समय शासकों की अध्ययन के प्रति अभिरुचि और शौक भाषा और साहित्य की समृद्धि में सहायक हुआ। चौथा है, ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन-काल। इस समय से खड़ीबोली के सन्दर्भ में किंचित् परिवर्तित दृष्टिकोण मिलने लगते हैं। इन विदेशी शासकों ने अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने और आय में वृद्धि करने के साथ-साथ प्रशासनिक कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने के उद्देश्य से भारत और उसके निवासियों के आचार-विचार, भाषा-साहित्य और संस्कृति को जानने-समझने के लिए आवश्यकता अनुभव की थी। उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज जैसी अनेक संस्थाओं की स्थापना की और भारत की सभी प्रमुख प्रचलित भाषाओं के साथ खड़ीबोली के अध्ययन और अनुशीलन पर बल दिया, क्योंकि यही भाषा उन्हें सर्वप्रचलित और बोधगम्य प्रतीत हुई थी। इसके लिए उन्होंने साहित्यिक और उपसाहित्यिक विषयों की अनेक पुस्तकें तैयार कीं और कुछ अन्य विद्वानों से तैयार करवाईं जिसके लिए लेखकों को प्रोत्साहन भी दिए गए। मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत, ब्रजभाषा और अंग्रेजी भाषाओं की रचनाओं से रूपांतर और अनुवाद करवाये जो तत्कालीन स्कूलों, कालेजों और मिशनरी सोसाइटियों से प्रकाशित हुए। ये स्कूलों में पाठ्य पुस्तकों के रूप में अनुमोदित हुईं। इस समय शासन से पृथक् रहकर कुछ लेखकों ने अनेक रचनाएँ लिखीं जिनमें इंशा अल्ला खाँ और नजीर अकराबादी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों विधाओं में खड़ीबोली की पर्याप्त रचनाएँ तैयार हुईं। इनमें पौराणिक, आध्यात्मिक और काल्पनिक प्रसंगों पर आधारित उपाख्यान, नीति और उपदेशपरक लघुकथाएँ, कहानियाँ, पद और गीत भी थे और समाज सापेक्ष विषयों पर लिखित मौलिक शोध-निबंध भी, जिन्हें थीसिस और वाद कहा गया। गुरु-शिष्य संवाद की प्रणाली पर लिखित गद्य और टीकाएँ भी तैयार हुईं। इस समय सूचनात्मक और विवेचनात्मक साहित्य

की अनेक रचनाएँ तैयार हुईं जिनमें कोश, व्याकरण ग्रंथ, इतिहास, भूगोल, गणित, ज्योतिष, शकुन, धर्म, दर्शन, भाषा-शिक्षा, नैतिक शिक्षा, स्त्रीशिक्षा और समाजसुधार, सैन्यशिक्षा, कोकशास्त्र, पाकशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, विधि, प्राकृतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, वैद्यक, चिकित्सा, धनुर्वेद, पाठशाला-व्यवस्था, ठगविद्या जैसे पच्चीस-तीस विषयों की रचनाएँ हैं। अधिकांश सामाजिक तथा वैज्ञानिक विषयों की रचनाएँ हैं जो स्कूली पाठ्यक्रम को उद्देश्य बनाकर लिखी गई हैं। यह भारतीय और विदेशी विचारों और सिद्धान्तों पर आधारित हैं। इनमें विषय का विश्लेषण और गहराई दोनों का समावेश है। यह गुरु-शिष्य संवाद-प्रणाली पर लिखित हैं। इनसे हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों की पाठ्य पुस्तकें लिखी जानी प्रारंभ हुईं तथा हिन्दी माध्यम में वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य प्रारम्भ हुआ। इनके लिखने वालों में अधिकांशतः अध्यापक थे। कदाचित् इसमें परीक्षा भी ली जाती रही हो और हिन्दी भाषा और साहित्य को परीक्षाओं का माध्यम भी बनाया गया हो।

इस समय साहित्य के अतिरिक्त अदालती कार्यवाहियों, राजकीय पत्र-व्यवहार और दैनिक प्रयोग में फारसी और प्रादेशिक भाषाओं के साथ खड़ीबोली का व्यवहार होने लगा था। पत्र-व्यवहार में प्रादेशिक भाषाओं के साथ खड़ीबोली का प्रयोग १६वीं शती से होना आरंभ हो गया था। इस समय धार्मिक स्थलों के पंडों की बहियों तक में खड़ीबोली का प्रवेश हो गया था।

देवनागरी में मुद्रण की व्यवस्था हो जाने से हिन्दी समाचार-पत्रों का प्रकाशन भी इसी कालावधि से आरंभ हुआ। १८१८ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से प्रकाशित बँगला के दिग्दर्शन समाचार-पत्र का हिन्दी अनुवाद, १८२६ ईसवीं में उदंत मार्तण्ड, १८२९ ईसवी में बंगदूत, १८३४ ईसवी में प्रजामित्र, १८४५ ईसवी में बनारस अखबार, १८४६ ईसवी में मार्तण्ड, १८४६ में कालदीपक भास्कर, १८५० ईसवी में सुधाकर और १८५०-५१ ईसवी में साम्यदण्ड मार्तण्ड समाचार-पत्र प्रकाशित हुए।

इस प्रकार खड़ीबोली का विकास और प्रसार साहित्य-क्षेत्र, स्कूली शिक्षा अदालती और प्रशासनिक कार्यवाहियों से लेकर धार्मिक स्थलों एवं समाचार पत्रों तक था जिसमें प्रमुख भूमिका साहित्यकारों और अध्यापकों से लेकर राजा-महाराजाओं, वकीलों, चपरासियों और पंडों एवं पत्रकारों की थी। उल्लेखनीय है कि इसकी एक शाखा १८३५ ईसवी से भारतीय बंधकों

के साथ मारिशस आदि देशों में फैली जो अपनी वाचिक परम्परा में आज तक व्यवहृत होती आ रही है और इसके परिष्कृत स्वरूप में वहाँ साहित्य-सृजन भी हो रहा है।

पाँचवाँ काल अँग्रेजी शासन का है। इस समय तक देश मे राष्ट्रीय जन-जागरण की लहर सर्वत्र व्याप्त हो चली थी। इसे केन्द्र बनाकर खड़ीबोली को अपनाया गया और ब्रजभाषा के समानान्तर इसमें साहित्य लिखा गया। इसके अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके मंडल के साहित्यकार थे। इन्होंने ब्रज-भाषा के साथ-साथ खड़ीबोली को अपनाया और साहित्यिक विधाओं का विकास किया। इस प्रकार भारत में स्वतंत्रता से पूर्व खड़ीबोली सदैव विदेशी सत्ताओं के मध्य भिन्न-भिन्न अनुपात में प्रयुक्त होती रही। कभी वह मुस्लिम संरक्षण में रही, तो कभी मुगल, मराठों, ईसाई मिशनरियों और अंग्रेज शासकों के सद्उद्योगों से विकसित हो प्रसार पाती रही जिसमें जनसाधारण से लेकर साहित्यकारों और समाज-सुधारकों तक का योगदान था।

प्रस्तुत शोधकार्य का संबंध खड़ीबोली के विकास-क्रम के चौथे चरण से है जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन का ह्रासकाल कहा जा सकता है। इस समय देश में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक नवजागरण की लहर व्याप्त हो रही थी। देश का संपूर्ण इतिहास करवटें ले रहा था जिससे भाषा के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन आया। ब्रजभाषा आदि के साथ-साथ खड़ीबोली का प्रयोग विविध विषयों में होने लगा। उसका दायरा व्यापक होता गया। भाषा और साहित्य के सन्दर्भ में इसे आधुनिक काल या प्रस्तावना काल कहा जा सकता है, क्योंकि अतीत की उपलब्धियाँ भाषा के परवर्ती स्वरूप के निर्माण में सहायक होती हैं। उसकी प्रगति और विकास-क्रम को भली-भाँति जानने के लिए उसकी अतीत की गति को समझना आवश्यक होता है। खड़ीबोली का वर्तमान स्वरूप इसी अवधि से परिवर्तित होना आरम्भ हुआ। इसलिए इस शोध-अध्ययन को १९वीं शती के आरम्भिक पचास वर्षों (१८०० ई० से १८५० ई० पर्यन्त) की खड़ीबोली के स्वरूप-विश्लेषण तक सीमित रखा है। इसका विश्लेषण भाषावैज्ञानिक मापदण्डों के आधार पर करने का प्रयास रहा है। इसमें भाषाविज्ञान की वर्णनात्मक पद्धति को आधार बनाया गया है। परन्तु आवश्यक स्थलों पर उपयोगिता की दृष्टि से ऐतिहासिक पद्धति, तुलनात्मक पद्धति और समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन की पद्धतियाँ भी छू ली गई हैं।

यह अध्ययन उक्त कालावधि के अन्तर्गत लिखित साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों विषयों की हस्तलिखित और मुद्रित रचनाओं पर आधारित है जिनमें साहित्य और विज्ञान से लेकर अदालती, प्रशासनिक, पारिवारिक और धार्मिक स्थलों तक की भाषा आ गई है। अध्ययन मौलिक और प्रामाणिक चयित नमूनों पर आधारित है। इसमें लेखक, लेखन-समय, प्रकाशन-काल और प्रकाशन-स्थान, वर्ण्य विषय के साथ-साथ इतिहास की कसौटी पर खरे उतरने वाले साहित्य को आधार बनाकर नमूने एकत्र किये गये हैं। हस्तलेखों की प्रामाणिकता कागज, स्याही, कलम, आकार-प्रकार आदि के आधार पर आँकी गई है। इसी प्रकार मुद्रित रचनाओं में भी पाठ की प्रामाणिकता और मौलिकता को सर्वप्रथम ध्यान में रखा गया है। इनकी परीक्षा करने पर पता चलता है कि प्राचीन रचनाओं के बहुत से आधुनिक और नवीन संस्करण भाषा के प्रारंभिक स्वरूप से बहुत दूर चले गये हैं। ऐसी स्थिति में उन अनेक रचनाओं को छोड़ देना पड़ा है जिन्हें आरंभिक खड़ीबोली के रचना-स्तम्भों में गिना जाता रहा है। सदासुखलाल-कृत 'सुखसागर' इसी प्रकार की रचना है। अनेक रचनाओं के शीर्षक पृष्ठ न मिलने के कारण विवरण ठीक-ठीक नहीं मिलते। इसलिए इन रचनाओं को भी छोड़ देना पड़ा है, क्योंकि कभी-कभी रचना के लेखन-काल और प्रकाशन-काल में कई वर्षों का अंतराल हो जाया करता है। इसलिए कुछ रचनाओं के प्रकाशन-काल को, तो कुछ में भाषा, लिपि और लेखन-शैली को आधार बनाया है। कुछ रचनाओं का भाषा-साम्य तत्कालीन प्रामाणिक अन्य रचनाओं से मिलाया है। इससे प्रामाणिकता का सन्देह दूर हो गया है। 'गाँवों के पाठशालों और चटशालों का सन्देश-पत्र' ऐसी ही एक रचना है। यह हस्तलिखित मिलती है। इसके अतिरिक्त नासिकेतोपाख्यान, रामचरित्र, रिसाला-तीरंदाजी, राजनीतिशास्त्र के भी हस्तलेख मिलते हैं। इनके साथ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से प्रकाशित सदल मिश्र ग्रंथावली में संकलित नासिकेतोपाख्यान और रामचरित्र से भी उदाहरण लेने पड़े हैं क्योंकि सम-सामयिक भाषा से तुलना कर देखने पर मुद्रित पाठों में यही पाठ सबसे अधिक मौलिक और प्रामाणिक प्रतीत हुए। मुद्रित रचनाएँ देवनागरी और रोमन दोनों लिपियों में मिलती हैं। इस समय इन दोनों लिपियों में लिखी खड़ीबोली आगरा से लेकर पूर्व में कलकत्ता तक पढ़ी, समझी जा रही थी। उसके पढ़ने-पढ़ाने वाले चाहे विदेशी शासक रहे हों, या भारतीय नागरिक, खड़ीबोली सभी के लिए बोधगम्य थी। वह सम्पूर्ण राष्ट्र में स्वीकृत थी। इस समय तक खड़ी-बोली के संदर्भ में न भाषा-संबंधी कोई प्रश्न उठा था और न लिपि-संबंधी

कोई विवाद। एक भाषा के लिए दो या अधिक लिपियाँ शासन के द्वारा मान्य थीं। वास्तव में इन विदेशी शासकों का मुख्य उद्देश्य भारत और भारतीयों की भाषा, विद्या और कला का ज्ञान खड़ीबोली के माध्यम से प्राप्त कर उन पर अपना शासन करना और राज्य का विस्तार करना था, न कि भाषा या लिपि संबंधी व्यर्थ के विवादों में पड़ना। इसलिए इस अवधि का खड़ीबोली साहित्य न केवल देवनागरी और रोमन लिपियों में, वरन् गुरुमुखी लिपि तक में लिखा मिलता है। रोमन और गुरुमुखी लिपि में खड़ीबोली लिखकर इन भाषाभाषियों ने अपनी लिपि के माध्यम से अपनी पहचान को नष्ट नहीं होने दिया। इस आधार पर भारत में रहते हुए भी विदेशी शासकों ने अपने को अजनबी अनुभव नहीं किया। यही स्थिति गुरुमुखी लिपि के प्रयोक्ताओं की भी रही।

इस अध्ययन में रोमन लिपि के उदाहरणों को रोमन लिपि में रहने दिया है, ताकि मूलपाठ यथावत् बना रहे और प्राचीन लेखन-शैली की झलक मिलती रहे। उल्लेखनीय है कि रोमन लिपि में उन सभी चिह्नों और संकेतों को अंकित किया गया है जो तत्कालीन उच्चारण का प्रतिनिधित्व करते हैं। रोमन लिपि में लिखी होने पर भी भाषा की परम्परा और इसके व्यक्तित्व में कोई अंतर नहीं आया है। इस समय रचनाओं के शीर्षक रोमन और देवनागरी दोनों लिपियों में मिलते हैं। इन्हें भी ज्यों का त्यों उद्धृत किया है। इस समय तक पुस्तकों में भूमिका लिखने की शैली विकसित नहीं हुई थी। भूमिका का कार्य पुस्तकों के शीर्षक से तथा मुखपृष्ठ पर लिखे विवरणों से पूरा हुआ समझ लिया जाता था। शीर्षक इस प्रकार से दिये जाते थे कि वे भूमिका का कार्य भी संपादित कर दें। इसलिए रचनाओं के शीर्षक जैसे मूलपाठ में मिले, वैसे ही रखे गए हैं। (विस्तार के लिए देखें प्रथम अनुभाजन)।

प्रस्तुत कालखण्ड की भाषा के कुछ नमूने भित्तिलेखों, स्तम्भों और सिक्कों आदि पर मिलते हैं। परन्तु यहाँ केवल कागजों पर लिखित निजी पत्र, सरकारी और अदालती दस्तावेजों और पण्डों की बहियों को सम्मिलित किया है। भले ही वह किसी शिलालेख, सिक्के या ताम्रपत्र की प्रतिलिपि क्यों न हों, खड़ीबोली के विकास में इनके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। यद्यपि कागजों पर लिखित खड़ीबोली के दस्तावेजों के प्राचीनतम उदाहरण शेरशाह सूरी (१५४० ईसवी) के शासन-काल तक के मिलते हैं। इसके पश्चात् महाराजा छत्रसाल के शासन-काल के अनेक पत्र मिलते हैं। परन्तु इस काल-परिधि

में न आने के कारण इन्हें नहीं लिया जा सका है। यहाँ १८०० ईसवी से १८५० ईसवी के मध्य लिखित अभिलेख लिये गए हैं जिनमें बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, सेंट्रल इंडिया और राजपूताना एजेंसियों और फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेंट के अभिलेखों के साथ-साथ नेपाल के मल्ल राजाओं के शासन-काल से जुड़े अभिलेख आते हैं। बुन्देलखंड एजेंसी के प्राचीनतम नमूने १८०८ ईसवी तक के मिलते हैं। इस प्रकार बघेलखण्ड एजेंसी के १८१२ ईसवी तक के सेंट्रल इंडिया एजेंसी के प्राचीनतम रिकार्ड १८०६ ईसवी के परवर्ती कालखंड से लिए गए हैं। राजपूताना एजेंसी के नमूने १८२४ ईसवी के पश्चात् के लिए हैं। इस प्रकार सभी एजेंसियों के लगभग बीस-पचीस वर्षों के दस्तावेज इस अध्ययन में सम्मिलित किए हैं। इनका क्रम एजेंसियों के स्थापना-काल के अनुरूप रखा है। एजेंसियों के अभिलेख हस्तलिखित मिलते हैं। ये अभिलेख १८०५ ई० और उससे पहले के भी मिल जाते हैं, परन्तु कुछ तो इस मध्ययन-सीमा में न आने के कारण नहीं लिए गए, तो कुछ दीमकों और कीड़ों के के द्वारा इस बुरी तरह विक्षत कर दिए गए हैं कि उनके अक्षरों को जोड़-जोड़ कर पढ़ना और अर्थ निकालना संभव नहीं। कुछ अभिलेखों के केवल हाशिए बच रहे हैं तो कुछ में एक पंक्ति साबत नहीं बची है। फिर इनमें एक वर्ण भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखा होने के कारण इन्हें पढ़ना सहज नहीं रह गया है। इनमें कैथी, मौड़ी, महाजनी, देवनागरी, बँगला, मैथिली आदि लिपियों का सम्मिश्रण मिलता है। विराम चिह्नों के अभाव में एक पंक्ति का अंत और दूसरी पंक्ति का आरंभ तुरन्त पकड़ में नहीं आता। अभिलेख और लिपि विशेषज्ञों को भी ये सहज बोधगम्य नहीं होते। कदाचित् कई लिपियों का मिश्रण इनकी बोधगम्यता में बाधक रहा है। इनके प्रचार करने वाले रियासतों से जुड़े राजा-महाराजाओं को लेकर, मुंशी और उनके चपरासी तक रहे हैं। इनको पढ़ने-समझने वाले अब कम होते जा रहे हैं। इन्हें सुपाठ्य बनाने से पूर्व समसामयिक इतिहास, साहित्य, संस्कृति और भाषाज्ञान के साथ लिपियों से परिचय प्राप्त करना पड़ा है। इन वैतरणियों को पार करने के पश्चात् इन्हें पढ़ना-समझना संभव हुआ। उल्लेखनीय है कि अतीत के पृष्ठों को खोलने वाले ये पत्र मूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए हैं। इन्हें ढूँढ़ने और समुद्र से मोती निकालने के क्रम में साम्य है। राष्ट्रीय अभिलेखागार के संग्रह से इन्हें ढूँढ़ते समय अभिलेखागार के अधिकारियों को यहाँ तक कहना पड़ा कि हमारे सभी कर्मचारी आपकी स्लिप ढूँढ़ने में लगे हैं। पिछले बीस-पच्चीस वर्षों से किसी ने

इन्हें हाथ नहीं लगाया, अब आपने निकलवाए हैं तो आगे भी लोग माँगेंगे। देसी पत्र-लेखन-शैली के ये उदाहरण इतिहास के साथ भाषा, संस्कृति और मध्यकालीन चित्रकला की धरोहर भी हैं। इनके संरक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। उचित संरक्षण के अभाव में इनके शीघ्र समाप्त हो जाने की संभावना है।

फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेंट के प्राचीनतम नमूने १७६५ ईसवी तक के उपलब्ध हैं। इस वर्ष से लेकर १८६५ ई० तक के पत्र 'प्राचीन हिन्दी पत्र संग्रह' शीर्षक से प्रकाशित हैं, परन्तु १८१५ ईसवी के बाद वाले पत्र अप्रकाशित हैं और हस्तलिखित रूप में मिलते हैं। मल्ल राजाओं के शासन-काल के पत्र भी प्रकाशित हैं, परन्तु बहियाँ अप्रकाशित और हस्तलिखित मिलती हैं।

यहाँ पर अभिलेखों के संदर्भ पुस्तक के परिशिष्ट में दी गई अनुक्रमणिका के अनुसार रखे हैं, क्योंकि अभिलेखों की एक फाइल में कई पत्र संकलित हैं। इनके प्रेषक, लेखन, स्थान, समय और वर्ण्य विषय आदि लगभग मिलते-जुलते हैं अथवा पृथक्-पृथक् हैं। ऐसी स्थिति में सुविधा के लिए फाइलों की संख्याओं के सामने उनसे चुने हुए अभिलेखों के आरंभ और अंत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर दी हैं क्योंकि फाइलों में अभिलेखों के लिए पृथक् संदर्भ नहीं मिलते।

तथ्यपरक विश्लेषण की दृष्टि से नमूने तदर्थ विधि से संकलित किए हैं। कहीं तो एक सम्पूर्ण रचना ले ली गई है, तो कहीं केवल पृष्ठों और अनुच्छेदों को लिया है। कहीं-कहीं एक या दो वाक्यों से काम चलाना पड़ा है, क्योंकि भारत के कुछ प्रमुख पुस्तकालयों ने किसी पुस्तक से दो-तीन पृष्ठों तक की एक अनुक्रम से प्रतिलिपि करने में आपत्ति की, तो कुछ ने एक अनुच्छेद तक की प्रतिलिपि करने को मना किया। कदाचित् भय रहा हो कि पुस्तक का चोरी-छिपे पुनर्मुद्रण न करवा दिया जाय। उनकी जो भी नीति रही हो, ऐसी स्थिति में कई हजार पृष्ठों की सामग्री कई सौ पृष्ठों में सीमित करनी पड़ी है। कुछ प्रतिष्ठित सरकारी पुस्तकालयों में प्राचीन हिन्दी की सामग्री को देखने तक नहीं दिया गया। प्रतिलिपि करने देना तो दूर रहा, यहाँ यह कहकर हतोत्साहित भी किया गया कि ये पुस्तकें अब प्रदर्शनी में नहीं लगायी जानी चाहिए। लोग देखते हैं तो माँग करते हैं हार्डिंग लाइब्रेरी, दिल्ली की पुस्तक प्रदर्शनी में प्रदर्शित **Travels into the Levant in Three Parts** लेखक **A. Lovell, 1686, London** ऐसी ही

एक प्राचीन पुस्तक है जिसमें हिन्दी के पुराने शब्द मिलते हैं। काफी प्रयास के पश्चात् भी इसके इंचार्ज ने कुछ पृष्ठों तक की माइक्रोफिल्में उपलब्ध नहीं करवाईं। भारतेन्दु भवन, बनारस से भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाएँ और उनका संकलन धीरे-धीरे लुप्त होने लगा है। भारत कला भवन, वाराणसी के हिन्दी अनुभाग के इंचार्ज ने पाँच-छह माह की पूर्वसूचना के बिना कला भवन में संग्रहित पुस्तकें आदि दिखाने पर आपत्ति की। इन सभी स्थानों से घोर प्रयास के पश्चात् भी प्राचीन दुर्लभ और आधारभूत सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी। दिल्ली के एक पुस्तकालय में तो दस हजार रुपये देकर पुस्तक ले जाने के लिए कहा गया तो कुछ सरकारी प्रतिष्ठानों के पुस्तकालयों में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी अपने बैग में पुस्तकें रख कर बेचने के प्रयास में लगे हैं। खेद है, ऐसी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय सम्पदा विदेशों में पहुँचने लगी है। इसके विपरीत इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी लंदन (इंगलैण्ड) ने अनेक दुर्लभ पुस्तकों के माइक्रोफिल्में सहज में उपलब्ध करवा दीं जिनके अभाव में आधारभूत सामग्री अधूरी रह जाती। उनका सहयोग प्रशंसनीय है। पुरातत्त्व विभाग, सिंह दरबार, काठमाण्डू, नेपाल से मल्ल राजाओं के अनेक प्राचीन पत्र प्राप्त हुए। इनसे खड़ीबोली के उपसाहित्यिक स्वरूप को स्पष्ट कर सकना संभव हो सका है।

अभिलेखों की भाषा के नमूने पूरे अभिलेख-पत्र के आधार पर एकत्र किए गए हैं। विश्लेषण में सर्वप्रथम पुस्तकों के उदाहरण रखे हैं। उसके बाद अभिलेखों का क्रम है। इनमें भी कालक्रम को सामने रखा है। गद्य रचनाएँ अधिक होने के कारण इनके नमूने पद्य रचनाओं की तुलना में अधिक लेने पड़े हैं, क्योंकि इस अवधि का खड़ीबोली का पद्य साहित्य नगण्य है। खड़ीबोली का जो भी काव्य इस समय लिखा गया, उसमें धार्मिक भावना और नीतितत्त्व प्रधान है। भारतेंदु के आगमन पर इसमें राष्ट्रीयता का स्वर भी जोड़ दिया गया।

शोधकार्य का कलेवर सात अनुभाजनों और सात परिशिष्टों में विभाजित है। प्रथम अनुभाजन में आरंभिक खड़ीबोली की साहित्यिक और उपसाहित्यिक रचनाओं तथा अभिलेखों का संक्षिप्त परिचय है। इन्हें लिपिकाल, लेखन-काल तथा प्रकाशन-काल के क्रम में सँजोया है। जिन रचनाओं में ये विवरण नहीं मिलते, उन्हें भाषा के स्वरूप के अनुसार सूचीबद्ध किया है। सभी रचनाओं के शीर्षक मूलपाठ में जैसे मिलते हैं, वैसे ही रखे गए हैं।

रचना यदि अँग्रेजी से अनूदित है तो उसके अँग्रेजी पाठ और हिन्दी अनुवाद दोनों दिये हैं, यथा Outlines of Geography and Astronomy and of the History of Hindoostan Extracted from Pears, अर्थात् पीर्यस साहब के किये हुए भूगोल वृत्तांत के संग्रह से भूगोल और खगोल का स्थूल ब्यौरा। रचनाओं का विवरण निम्नलिखित बिन्दुओं पर अवलम्बित है—१. शीर्षक, २. रचनाकार, ३. रचनाकाल, ४. लिपिकाल, ५. दशा, ६. आकार-प्रकार, ७. मौलिक अथवा अनूदित या रूपांतरित, ८. उपलब्ध संस्कार, ९. पृष्ठ संख्या, १०. प्रकाशन स्थान और प्रकाशक, ११. विषय, १२. भाषा-वैशिष्ट्य, १३. प्राप्ति का स्रोत व स्थान।

अभिलेखों का विवरण निम्नलिखित दृष्टियों से किया गया है: १, विभाग, २. आकार-प्रकार, ३. रूप, ४. दशा, ५. मूल या प्रतिलिपि, ६. पृष्ठ संख्या, ७. कागज, ८. स्याही और लेखनी, ९. लेखन वर्ष, १०. भाषा-वैशिष्ट्य, ११. पत्रलेखन शैली। इस प्रकार इसमें कुल ११२ साहित्यिक और उपसाहित्यिक विषयों की पुस्तकों और ५३ अभिलेखों का विवरण आ गया है। इन अभिलेखों और केवल ५२ पुस्तकों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन आधारित है।

द्वितीय अनुभाजन में वर्तनी-वैविध्य का अध्ययन है। इसमें स्वर और व्यंजन ध्वनियों के स्तर पर वर्तनी वैशिष्ट्य देखा गया है। इससे पता चलता है कि वर्तनी उच्चारण-भेद से प्रभावित हो रही थी। एक शब्द की दो, तीन, चार और पाँच वर्तनियाँ तक प्रचलित थीं। सभी शासकीय स्तर पर मान्य थीं।

तीसरा अनुभाजन रूपात्मक वैविध्य के संदर्भ में है। इसमें संज्ञा शब्दों के लिंग और वचन संबंधी नियमित अर्थात् साधु प्रयोग और अनियमित अर्थात् असाधु प्रयोगों का विश्लेषण है। लिंग-संबंधी विश्लेषण संज्ञा शब्दों के प्रयोग के आधार पर और वचन-विश्लेषण रूपात्मक प्रत्ययों के आधार पर किया है। संज्ञाओं के नियमित बहुवचन बनाने वाले रूपात्मक प्रत्ययों का और उनसे निर्मित नियमित बहुवचन रूपों (Regular plurals) और उनमें प्राप्त भिन्नताओं और अपवादों (Variations and Exceptions) का प्रस्तुतीकरण साथ-साथ हो गया है। इसी में संज्ञाओं का अन्य व्याकरणिक कोटियों में प्रयोग और अन्य व्याकरणिक कोटि के शब्दों का संज्ञावत् प्रकार्य भी विवेचित

है। इस प्रकार संज्ञाओं की प्रकार्यात्मक भिन्नताओं (Functional variations and differences) का अध्ययन स्वत: हो गया है। संज्ञाओं के पश्चात् सर्वनामों का क्रम है। इनका विश्लेषण मुख्य रूप से तीन बिन्दुओं पर केन्द्रित है : वचन, कारक और पुरुष पर आधारित सर्वनाम, वचन और कारक पर आधारित सर्वनाम तथा लिंग, वचन और कारक तीनों से अप्रभावित रहने वाले सर्वनाम। आरंभिक खड़ीबोली के सर्वनामों के इन तीन वर्गों से अतिरिक्त वर्ग नहीं बनाए जा सकते। सभी सर्वनाम इन तीनों में से किसी एक वर्ग में रखे जा सकते हैं। विशेषण और कारक चिह्नों का विश्लेषण भी इसी अनुभाजन के अन्तर्गत है।

चौथा अनुभाजन क्रियाओं से संबंधित है और पाँचवें में अव्ययों का विश्लेषण है।

छठे अनुभाजन में कोश-संबंधी शब्द-समष्टि और शब्द-रचना का विश्लेषण है। इसमें विभिन्न ज्ञानक्षेत्रों और कार्यक्षेत्रों से जुड़े शब्दों का विवेचन है जो सृजनात्मक और रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त सामाजिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, खगोल, कलाकौशल, रसायनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, प्रकृतिविज्ञान आदि विषयों के हैं। इसमें न केवल संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्द हैं, वरन् अरबी और फारसी भाषाओं के प्रचलित शब्द भी भरे पड़े हैं। अभिव्यक्ति को पूर्ण बनाने वाले ग्राम्य शब्दों और रचनात्मक तत्त्वों का समावेश भी इनमें कम नहीं है। इनसे पता चलता है कि इस समय तक खड़ीबोली में वैज्ञानिक विषयों के विवेचन की क्षमता विकसित हो चुकी थी। परवर्ती खड़ीबोली की तुलना में इसकी प्रकृति लचीली थी।

सातवें अनुभाजन में विशिष्ट शब्दों के अर्थ और विभिन्न सदर्भों में उनके प्रयोग-वैशिष्ट्य का विवेचन है। इसमें देखने का प्रयास है कि शब्द-प्रयोग में संदर्भ और प्रकरण महत्त्वपूर्ण न होकर प्रयोक्ता की निजी पसंद और उसका भाषाज्ञान किस प्रकार प्रधान था जिससे शब्द अपने संदर्भ से हटकर दूसरे संदर्भों में प्रयोग कर लिए गए हैं। इसमें शब्दों और विशिष्ट प्रयोगों को वर्णमाला के क्रम से बाँधा है।

वाक्य-विश्लेषण का क्षेत्र स्वयं में विस्तृत है। सम्प्रति प्रस्तुत अध्ययन में इसे नहीं लिया गया है।

उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए अध्ययन के अंत में उपसंहार, ग्यारह

छायाचित्र और सात परिशिष्ट जोड़े गए हैं। ये छायाचित्र खड़ीबोली की आरंभिक लेखन-शैली का प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित करते हैं। इसमें रोमन लिपि में खड़ीबोली लिखने की शैली, शीर्षक पृष्ठ लिखने की कला, पुस्तकों के भीतरी पृष्ठों पर विस्तार देने की भिन्न-भिन्न शैलियाँ, खरीते की साज-सज्जा, अदालती कार्यवाहियों का आकार-प्रकार तथा देसी पत्रलेखन शैली और बही शैली को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। पहला छायाचित्र डॉक्टर बार्थविक गिलक्राइस्ट की रचना (Hindoostanee Dialogues) के पृष्ठ १३५ का है। दूसरा छायाचित्र विलियम चैंपलीन कृत सती होने की रीति हिंदुओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है, रचना के प्रथम पृष्ठ का, तीसरा प्रेमसागर के शीर्षक पृष्ठ का, चौथा प्रेमसागर के पृष्ठ २६ और २७ का, पाँचवाँ चित्र पाठशाला के बैठावने की और बालकन के सिखावने की रीति का बखान शीर्षक रचना के प्रथम पृष्ठ का, छठा चित्र गणितांक का पुस्तक रचना के तीसरे पृष्ठ का, सातवाँ चित्र गाँवों के पाठशालाओं और चटसालों का सन्देसपत्र रचना के प्रथम पृष्ठ का, आठवाँ चित्र धार के राजो की बखर के प्रथम पृष्ठ का, नवाँ चित्र बुन्देलखंड एजेंसी के वर्ष १८०६ ईसवी के दस्तावेज का, दसवाँ चित्र खरीते का है जो टोंक के नवाब मुहम्मद अमीन खान के समय का है। ग्यारहवाँ चित्र पंडों की एक बही का है। इसके पश्चात् परिशिष्टों का क्रम है। प्रथम परिशिष्ट में वर्णक्रमानुसार उपलब्ध रचनाओं की सूची, दूसरे में इस कालावधि के प्रमुख लेखक, संपादक और उनकी लिखित और संपादित रचनाएँ, तीसरे में विषयक्रमानुसार प्रथम रचना, चौथे में इस समय के प्रमुख मुद्रणालय, पाँचवें में संदर्भ ग्रंथ और संदर्भ-अभिलेख, छठे में संक्षिप्त रूप और सातवें परिशिष्ट में अध्ययन स्रोतों का विस्तार दिया गया है। इस प्रकार ये सभी परिशिष्ट रेडी रेकनर (परिकलित्र) का कार्य संपादित करते हैं। पुस्तक के अंत में सहयोगी पुस्तकों की एक सूची है।

खड़ीबोली के निर्माण, विकास और प्रसार की इस सुदीर्घ परंपरा का विभिन्न विद्वानों ने शास्त्रीय और उपशास्त्रीय दोनों दृष्टियों से समय-समय पर अध्ययन और विश्लेषण किया है जिनमें डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कृत आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ० शारदादेवी वेदालंकार कृत **Development of Hindi Prose Lierature**, डॉक्टर प्रेमप्रकाश गौतम कृत हिन्दी गद्य का विकास, डॉक्टर गोविंदनाथ राजगुरु कृत गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य, डॉक्टर जयभगवान गोयल कृत गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य,

डॉक्टर रामविलास शर्मा कृत भारतेंदु और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा, आदि में हिन्दी की प्राचीन दुर्लभ रचनाओं का विवरण मिलता है। प्राचीन दस्तावेजों के संदर्भ में डॉक्टर धीरेन्द्र शर्मा कृत 'प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह' महत्वपूर्ण रचना है जिसमें १७६५ ईसवी से आरम्भ कर १८१५ ईसवी तक के फॉरन पोलिटिकल डिपार्टमेंट के कुछ महत्त्वपूर्ण दस्तावेज संकलित हैं। डॉक्टर काशीनाथ शंकर केलकर कृत १८वीं शती के हिन्दी पत्र शीर्षक रचना में महाराष्ट्र क्षेत्र के हिन्दी दस्तावेजों का अध्ययन और संकलन मिलता है। इस क्रम में डॉक्टर दयानन्द श्रीवास्तव कृत Historical Syntax of Early Hindi Pose भी है। इसमें हिन्दी के वाक्यों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन है। सत्रहवीं शताब्दि की खड़ीबोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन और १८०० ईसवी से १८५० ईसवी तक के खड़ीबोली गद्य का भाषावैज्ञानिक अध्ययन विषयों पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधियाँ प्रदान की जा चुकी हैं। प्रथम प्रबंध में १७वीं शताब्दि के कतिपय संत कवियों की काव्य-रचनाओं में प्रयुक्त खड़ीबोली का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण है। दूसरे में १९वीं शती के आरंभिक पचास वर्षों की मात्र ग्यारह ललित गद्य की रचनाओं के आधार पर खड़ीबोली का स्वरूप निर्धारित किया गया है। केवल सृजनात्मक या ललित साहित्य के गद्य और पद्य की चुनी हुई रचनाओं तक खड़ीबोली का विस्तार मानना और इसे केन्द्र बनाकर एक शती अथवा निश्चित कालखंड का भाषायी चित्र प्रस्तुत करना शोध-निष्कर्षों के प्रति न्याय नहीं है। ऐसे अध्ययनों में साहित्यिक क्षेत्र से इतर विषयों के भाषायी स्वरूप की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि भाषा की समग्रता इतर विषयों के साहित्य को समेटे रहती है। भाषा का एक अन्य रूप दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाला मिलता है जो विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमियों और भौगोलिक क्षेत्रों से जुड़े भाषाभाषियों का प्रतिनिधित्व करता है। इनसे नमूने लिए बिना आधारभूत सामग्री अपूर्ण रह जाती है। साहित्यिक स्वरूप किसी न किसी अनुपात में इससे प्रभावित होता रहता है। यह पारिवारिक पत्रों, कार्यालयीय दस्तावेजों और बहियों की भाषा में मिलता है। देवनागरी लिपि के अतिरिक्त अन्य लिपियों में लिखे साहित्य का समावेश भी आधारभूत सामग्री में करना आवश्यक होता है। खड़ीबोली का आरंभिक साहित्य देवनागरी और रोमन के अतिरिक्त गुरुमुखी लिपि में भी निबद्ध है। परन्तु पुस्तक में देवनागरी और रोमन लिपियों में लिखी खड़ीबोली से ही

नमूने लिए गए हैं। इस प्रकार इसमें पूर्व किए अध्ययनों में उपेक्षित समझी गई सामग्री को एकत्र कर शोध-परिणाम निकाले गये हैं। परन्तु विस्तार के भय से गुरुमुखी में लिखी रचनाओं को सम्प्रति नहीं लिया गया है। इसमें ५१ पुस्तकों और ५२ दस्तावेजों को केन्द्र बनाकर आरम्भिक खड़ीबोली का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास है। बार्थविक गिलक्राइस्ट कृत Hindoostancee Dialogues तथा गाँवों के पाठशालों और चटशालों का सन्देस-पत्र शीर्षक रचनाओं, खरीतों, एजेंसियों और फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेंट के दस्तावेजों तथा बहियों की भाषा को सर्वप्रथम इसी पुस्तक में लिया गया है। इसमें वर्तनी-वैविध्य, शब्द-समष्टि तथा आरम्भिक खड़ीबोली के शब्द-प्रयोगों के विस्तार के लिए पृथक् अनुभाजन रखे गए हैं। पुस्तक का आकार अत्यन्त विस्तृत न हो जाए, इसलिए इस कालखण्ड के समाचारपत्रों में व्यवहृत भाषा के स्वरूप को नहीं लिया गया है। यह एक स्वतन्त्र अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं।

आरम्भिक खड़ीबोली की आधारभूत सामग्री के संकलन तथा संदर्भ-ग्रंथों के अनुशीलन के लिए भारत और भारतेतर देशों के राजकीय और राष्ट्रीय अभिलेखागार, संग्रहालय, पुस्तकालय, सार्वजनिक पुस्तकालय, शोध संस्थान, सभा-सोसाइटी, शिक्षण केन्द्र, मन्दिर और निजी संग्रह रहे हैं। प्रमुख केन्द्रों में कलकत्ता के आठ पुस्तकालयों में नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, ऐशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, बड़ा बाजार लाइब्रेरी, कलकत्ता, कुमार सभा बड़ा बाजार लाइब्रेरी, बंगीय साहित्य परिषद् कलकत्ता, सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता, श्री हनुमान पुस्तकालय सलकिया, हावड़ा, विक्टोरिया मेमोरियल हाल, कलकत्ता हैं। दिल्ली-स्थित सात पुस्तकालय, एक संग्रहालय और एक अभिलेखागार भी प्रमुख केन्द्र रह हैं। यह निम्नलिखित हैं— इंडिया इन्टरनेशनल सेन्टर, नई दिल्ली, हरदयाल म्युनिसिपल पब्लिक लाइब्रेरी, दिल्ली, मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय, चाँदनी चौक, दिल्ली, दिगम्बर जैन नया मन्दिर, दिल्ली, द जैन सरस्वती भंडार धर्मपुरा, दिल्ली, वीरसेवा मन्दिर दरियागंज, दिल्ली, महावीर जैन पुस्तकालय चाँदनी चौक, दिल्ली, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली तथा डॉ० लोकेश चन्द्र का संग्रह। वाराणसी के तीन पुस्तकालय, यथा—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, भारतकला भवन विश्वविद्यालय, वाराणसी, कारमाइकेल स्मिथ लाइब्रेरी, वाराणसी तथा ब्रजरत्नदास जी का संग्रह प्रमुख हैं। प्रयाग के दो

पुस्तकालय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा भारती भवन, प्रयाग उल्लेखनीय स्रोत रहे हैं। राज्य संग्रहालय, मथुरा, वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन भी इसी क्रम में गणनीय हैं। लखनऊ के दो पुस्तकालयों, एक संग्रहालय और एक अभिलेखागार से भी पर्याप्त संकलन किया गया है। ये निम्नलिखित हैं, टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी, कैसरबाग, लखनऊ, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, राज्य अभिलेखागार, महानगर, लखनऊ। कुरुक्षेत्र के सन्हेत टैंक-स्थित सूर्य मन्दिर में पंडों की बहियों के विशाल संग्रह से नमूने एकत्र किये गए हैं।

भारतेतर देशों में नेपाल-स्थित पुरातत्त्व विभाग, सिंह दरबार, कांतिपुर, काठमाण्डू, नेपाल और इंगलैंड-स्थित इण्डिया ऑफिस लाइबेरी, इण्डिया, लंदन का नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार लगभग तीन दर्जन ठिकानों से खड़ीबोली के बिखरे, छिटके नमूनों को एकत्र किया गया है। इसमें पश्चिमी और दक्खिनी हिन्दी के नमूनों को नहीं लिया गया है। यदि इनके नमूने लिये जाते, तो सामग्री की संख्या कई गुना अधिक होती जिसे सँभालना संभव नहीं होता। इससे इस बात की पुष्टि में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ब्रजभाषा आदि के समान खड़ीबोली अपने समृद्ध रूप में १६वीं शती तक सर्वत्र प्रसार पा चुकी थी। उक्त केन्द्रों के अतिरिक्त सालारजंग म्यूजियम, हैदराबाद, सिक्ख रेफरेंस लाइबेरी अमृतसर, स्टेट आरकाइव्ज, बीकानेर, स्टेट आरकाइव्ज, पटियाला, मिशन कालेज, सिरामपुर, स्टेट रिकार्ड-आफिस, इलाहाबाद, पुरातत्त्व म्यूजियम, नई दिल्ली, मन्नूलाल पुस्तकालय, गया तथा अगरचंद नाहटा के संग्रह में भी खड़ीबोली की प्राचीन सामग्री सुरक्षित मिलती है।

हिन्दी साहित्य, इतिहास, कला और भाषाविज्ञान संबंधी संदर्भों के लिए उक्त सभी केन्द्रों के अतिरिक्त केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नई दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिन्दी तथा भाषविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, केन्द्रीय पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इंडियन म्युजियम कलकत्ता, बिरला एकेडमी ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर, कलकत्ता, संस्कृत पुस्तकालय, कलकत्ता, कोचीन विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, सेंट्रल म्युजियम, जयपुर, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, ३५ फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आजाद भवन, नई दिल्ली, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का पुस्तकालय, नई दिल्ली,

साक्षरता-निकेतन लखनऊ का पुस्तकालय, गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ, आचार्य नरेन्द्र देव पुस्तकालय, लखनऊ, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के व्यक्तिगत संग्रह का समय-समय पर उपयोग किया गया तथा और आवश्यक ग्रन्थों को देखा गया है।

हर निवास

—उषा माथुर

४७, पानदरीबा,

चारबाग, लखनऊ–१६

□

अन्तर्विषय

पृष्ठ

१. प्राक्-भारतेन्दु खड़ीबोली साहित्य १—७६

(i) साहित्यिक और उपसाहित्य रचनाएँ

(ii) अभिलेख और बहियाँ

२. वर्तनी-वैविध्य ७७—६३

(i) ध्वनि-वर्तनी संबंध

स्वर ध्वनि के स्तर पर

व्यंजन ध्वनि के स्तर पर

(ii) वर्ण वैविध्य

३. रूपात्मक वैशिष्ट्य ६४—१८४

(i) संज्ञा

लिंग-वैशिष्ट्य

वचन-वैशिष्ट्य

(ii) सर्वनाम

वचन, कारक और पुरुष पर आधारित

वचन और कारक पर आधारित

लिंग, वचन और कारक से अप्रभावित

४. क्रिया विश्लेषण — १८५—२२५

क्रिया प्रकृति
सहायक क्रियाएँ
प्रेरणार्थक क्रियाएँ
नाम क्रिया प्रकृति
बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ
काल सूचक क्रियाएँ
संयुक्त काल सूचक क्रियाएँ

५. अव्यय — २२६—२४६

क्रियाविशेषण
(i) सामान्य
(ii) सार्वनामिक
संबंधसूचक
समुच्चयबोधक
नियात

६. शब्द-समष्टि विश्लेषण — २४७—२८२

(i) शब्द समष्टि
(ii) यौगिक शब्द
पूर्व प्रत्यय से निर्मित शब्द पर
प्रत्यय से निर्मित
(iii) सामासिक शब्द

७. शब्द-प्रयोग और शब्दार्थ-वैशिष्ट्य — २८३—३१९

परिशिष्ट — ३२०—३४९
संकेतक — ३५०—३५५
पुस्तक-सूची — ३५६—३६४
छायाचित्र — १-११

□

अनुभाजन १

प्राक्-भारतेन्दु खड़ीबोली साहित्य

साहित्यिक और उपसाहित्यिक रचनाएँ

देश और विदेश के विभिन्न साहित्याकारों, ऐतिहासिक प्रतिष्ठानों और धार्मिक स्थलों से प्राप्त साहित्य से विदित होता है कि युग-प्रतिभा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिन अनेक विधाओं में खड़ीबोली को प्रतिष्ठित किया; वह न तो सर्वथा "नई भाषा" थी और न "गढ़ी हुई कृत्रिम भाषा"। भारतेन्दु जी से कई सौ वर्ष पूर्व यह लिखित साहित्य में प्रवेश कर चुकी थी। इस सुदीर्घ अवधि में यह कभी स्वतन्त्र रूप से तो कभी दूसरी भाषाओं के साथ मिलकर कम और अधिक अनुपात में प्रयुक्त होती हुई निरंतर विकसित होती रही है। भले ही इसका स्वरूप स्पष्ट और परिष्कृत न रहा हो और वह गूढ़ गंभीर तथा पुनरुत्थानात्मक और नवजागरण-संबंधी विषयों के प्रतिपादन में पूर्णतः सक्षम और समर्थ न रही हो। यह अपने अतीत को उपलब्धियों से स्वतः विकसित होते हुए तथा युग और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न स्वरूप धारण करते हुए निर्माण और विकास के पथ पर अग्रसर होती रही है। साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप इसे पुष्ट, समृद्ध और अलंकृत किया, शासकों ने उसका संरक्षण तथा व्यावसायिक और धार्मिक स्थलों ने उसका प्रसार और प्रचार किया। भिन्न-भिन्न भाषाभाषी समाज ने अपने पद, प्रतिष्ठा, आयु, लिंग, जाति और शैक्षिक योग्यता के अनुसार उसे सँवारा तथा सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और विभिन्न संदर्भों से जोड़कर उसका प्रयोग बनाए रखा। यह वाचिक परम्परा में आज भी विशृंखलित नहीं हो सकी है। इस प्रकार विविध शक्तियों से संबंधित और संरक्षित होने के कारण, खड़ीबोली आज संसार की विकसित भाषाओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाती जा रही है।

खड़ीबोली के आरंभिक चरण विकास की दो दिशाओं में बढ़े। एक, साहित्यिक विधाओं की दिशा में; दूसरे, उपसाहित्यिक विधाओं की ओर। साहित्यिक विधाओं के अन्तर्गत कला और संस्कृति को उजागर करने वाला

साहित्य है जिसमें तथ्यों के जीवित रूप के साथ-साथ रचनाकार की कल्पना और अनुभूति से प्रेरित विचारों की सजीव, आकर्षक और रमणीय अभिव्यक्ति मिलती है। इसे ललित साहित्य भी कहा जा सकता है। यह लेखक और पाठक दोनों की जानी हुई बातों को पढ़ने के लिए उत्सुक बनाता है तथा व्यक्तिगत संकीर्णता से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मनुष्य जाति के साथ सहानुभूतिमय तादात्म्य स्थापित करता है। उससे आत्मीयता का अनुभव कराकर संवेदनशील बनाता है। दूसरे शब्दों में इसे रचनात्मक साहित्य कहा जा सकता है। इस साहित्य का कुछ अंश भारतीय काव्यशास्त्र के मानदण्डों पर रखकर तौला और परखा जा सकता है। काव्यशास्त्रीय परिभाषा में इसे लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति करवाने वाला साहित्य कहा गया है। पौराणिक, आध्यात्मिक तथा काल्पनिक प्रसंगों से जुड़े उपाख्यान, नीति और शिष्टाचार पूर्ण तथ्यों से भरपूर कहानियाँ, लघुकथाएँ, चुटकुले, यात्रा-संस्मरण, जीवनियाँ, स्फुट पद और गीत इसी के अन्तर्गत आते हैं। समाजसापेक्ष विषयों पर लिखित मौलिक निबंध, गुरु-शिष्य-संवाद और वार्तालाप के माध्यम से शिक्षा देने की प्राचीन भारतीय शैक्षिक प्रणाली में लिखे गद्य के अंश और टीकाएँ भी इसी का एक अंग हैं। यह साहित्य मौलिक और अनूदित दो प्रकार का है। इसमें भाषा की प्रकृति मध्यकालीन ब्रजभाषा काव्य तथा ब्रजभाषा की गद्यशैली से प्रभावित है। फलस्वरूप, काव्य की-सी सरसता, रोचकता और रागमयता का प्रभावकारी गुण उत्पन्न करने तथा शब्द-चयन में नियमित गति बनाए रखने के लिए लय और तुक का ध्यान रखते अनुप्रासमय शब्द-योजना इसमें सहज रूप से प्रवेश कर गई है। इसीलिए ध्वनि-सौंदर्य का आकर्षण इस अवधि की खड़ीबोली की इन रचनाओं का एक प्रमुख गुण बनकर उभरा है। इन गुणों से पूर्ण होने के कारण खड़ीबोली की इन आरंभिक रचनाओं का गद्य तथ्य-कथन की अपेक्षा काव्य के समान जितनी रसानुभूति और आनन्दानुभूति कराने वाला हो गया है, उतना ही व्याकरण के नियमों से बँधा न होने के कारण अस्त-व्यस्त और बिखरा हुआ हो गया है। इसमें भाषा की आंतरिक व्यवस्था और उसके सब अंगों में भाषा का एक ही नियम काम करता हुआ नहीं मिलता। इसकी आंतरिक व्यवस्था में मिलने वाले समरूपों के आधार पर काल, स्थान, सामाजिक सन्दर्भ और भाषा-व्यवहार के विभिन्न प्रसंगों और उद्देश्यों की भिन्नता से उत्पन्न विषय-रूपों को स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है। इस प्रकार व्याकरणिक व्यवस्था, नियमबद्धता और समरूपता का सर्वथा अभाव होने के कारण भाषा-प्रवाह की धारा स्थान-स्थान पर बाधित हो गई है। वास्तव में इसमें भाषा का पारस्परिक सम्पर्क के समय प्रयुक्त होने वाला वह प्रकृत और

सरल रूप मिलता है जो कि किसी भाषा का विकास के प्रथम सोपान में रहा करता है। वास्तव में इस स्वरूप में वैज्ञानिक विषयों को ग्रहण करने और भाव-वहन करने की क्षमता तो रहती है, परन्तु पाठकों की अनुभूतियों और संवेदनाओं को जागृत करने वाली रचनात्मक सम्प्रेषणीयता का अभाव रहता है। खड़ीबोली की आरंभिक अवस्था में ये विशेषता विकसित न हो सकी थी। इसलिए यह सूचनात्मक सम्प्रेषण का कार्य मात्र कर सकी है।

उपसाहित्य के अन्तर्गत उपयोगी साहित्य अर्थात् ललित साहित्य से इतर साहित्य रखा जा सकता है। यह विविध ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, इतिहास और तकनीकी विषयों से सम्बद्ध है। इसमें बुद्धि या तर्क पर आधारित व्यवस्थित ज्ञान, नियम, सिद्धान्त तथा वस्तु, व्यक्ति और जाति के व्यतीत वृत्तान्त का लेखा-जोखा भी है। यह साहित्य सभ्यता के विकास से सीधा जुड़ा है। अतः विकास की गति का परिमापक और परिचायक है। इस साहित्य के पुनः दो भाग किये जा सकते हैं। एक सूचनात्मक साहित्य, जो केवल नई अथवा बिना जानी हुई बातों के विषय में मात्र सूचना देता है या जानकारी करवाता है। यह साहित्य हमारी बोधन-शक्ति या अनुभूति को बहुत कम उत्तेजित कर पाता है। कोश ग्रंथ इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। दूसरे बोधन-शक्ति, विवेक-वृत्ति और विचार-शक्ति को निरंतर जागरूक और सचेष्ट बनाए रखने वाला साहित्य है। दूसरे शब्दों में इसे विवेचनात्मक साहित्य भी कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत इतिहास, भूगोल, गणित, ज्योतिष, शकुन, धर्म, दर्शन, प्राथमिक भाषाशिक्षा, व्याकरण, नैतिक शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार, कोकशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, विधि, प्राकृतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, वैद्यक, चिकित्सा, धनुर्वेद, सैनिक शिक्षा, पाठशाला-व्यवस्था, ठग-विद्या आदि पच्चीस-तीस विषयों की रचनाएँ मिलती हैं। इनमें विषय के शास्त्रीय विधि से विवेचन के लिए विविध प्रसंगों और कहीं एक ही प्रसंग में विविध सन्दर्भों के लिए खड़ीबोली एक माध्यम है। इसमें तर्कभाषा अर्थात् भाषा का शास्त्रीय स्वरूप प्रधान है। इन उदाहरणों से विदित होता है कि इस समय खड़ीबोली में विविध विषयों के विवेचन की न केवल क्षमता विकसित हो चुकी थी, वरन् विभिन्न तकनीकी विषयों की शब्दावली का हिन्दी रूपांतर और अनुवाद भी तैयार हो चुका था जिसमें संस्कृत भाषा तथा तत्कालीन प्रचलित उर्दू भाषा का अंशदान कम नहीं है। हिन्दी शब्दों के अंग्रेज़ी रूपांतर भी इनमें मिलते हैं। इनमें से अधिकांश रचनाएँ तत्कालीन अध्यापकों और शिक्षकों के द्वारा तैयार की गई हैं। यह पाठ्य पुस्तकें हैं। इनमें विषय का प्रस्तुतिकरण संवाद-शैली या वार्तालाप-शैली में मिलता है। इनकी वाक्य-रचना अंग्रेजों को भारतीयों

से सम्पर्क स्थापित करने के लिए की गई प्रतीत होती है। इनसे प्रकट होता है कि प्राचीन भारतीय संवादात्मक शिक्षा-पद्धति कुछ प्रतिशत तक इस अवधि तक चलती रही। इनमें गुरु और शिष्य में वार्तालाप के माध्यम से किसी विषय के सत्य या परिणाम पर पहुँचने और अपने संस्कारों को परिष्कृत कर लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास है। इनमें कहीं-कहीं भाषा का अपेक्षाकृत व्यवस्था-बद्ध रूप (Codified form of the language) भी मिलता है। इनके विषयों को काव्यशास्त्रीय बंधनों में बाँधा और तौला नहीं जा सकता। इनके अतिरिक्त विभिन्न राजदरबारों के अभिलेख, सरकारी और अदालती दस्तावेज़ तथा पंडों की बहियाँ इसी कोटि के साहित्य का एक अंग हैं।

खड़ीबोली का विकास इन दोनों विधाओं में पृथक्-पृथक् हुआ। परन्तु दोनों रूप भाषा की सम्पन्नता, समृद्धता, विकास, विस्तार और उसका अस्तित्व बनाये रखने में समान रूप से सहायक हुए हैं। खड़ीबोली के मानक स्वरूप के निर्माण में ये सभी रूप परस्पर पूरक रहे हैं। साहित्य की इन दोनों विधाओं में कथन और अभिव्यक्ति पक्ष विभिन्न होते हुए भाषा का स्वरूप इस अर्थ में एक है कि दोनों में खड़ीवोली के वर्तमान स्वरूप की तुलना में अनियमितताएँ और अव्यवस्थाएँ एक ही पद्धति पर हैं। कहीं अनुपात कम हो गया तो कहीं अधिक। इसमें व्याकरणिक नियमों और व्यवस्थाओं की शिथिलता उसी प्रकार से मिलती है जैसी कि संवाद के समय कभी-कभी देखी जाती है। वार्तालाप में व्यवस्थित नियमों का उल्लंघन और उनमें समरूपता का अभाव वाक्य-रचना, शब्द-रचना, शब्द-प्रयोग और अर्थ से लेकर वर्तनी तक के स्तर पर देखा जा सकता है। विविधता का मूलभूत कारण लेखकों तथा रचनाकारों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भिन्नता है। वास्तव में इस समय का सम्पूर्ण साहित्य उस विशिष्ट भाषा-भाषी समुदाय द्वारा लिखा गया है जो हिन्दी या हिन्दी से इतर किसी भारतीय भाषाक्षेत्र का निवासी था और किसी न किसी जनपदीय बोलियों से जुड़ा रह चुका था। दूसरे जो भारत से इतर देशों का निवासी था और जिसकी मातृभाषा अंग्रेजी या कोई अन्य विदेशी भाषा, यथा फारसी आदि थी। भारतीयों से सम्पर्क साधने जैसी व्यावहारिक आवश्यकताओं के लिए उसने भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, सामाजिक वर्गों और समुदायों से जुड़े भाषा-भाषियों से विभिन्न परिवेशों, सन्दर्भों और प्रसंगों में नाना माध्यमों से हिन्दी सीखी थी। फलस्वरूप, व्यावहारिक आवश्यकताओं के लिए सम्प्रेषण और ग्रहण-प्रक्रिया के मध्य कहीं क्षेत्रीय और सामाजिक आधार पर भाषा के स्वरूप और प्रकृति में विकल्पन हुए। कहीं विभिन्न व्यावहारिक सन्दर्भों में परिस्थितियों

के अनुरूप भाषा का निर्वाह न होने के कारण विषमता आ गई है। विचार-क्षेत्र और कार्यक्षेत्र दोनों से भाषा का सामंजस्य न होने के कारण इस अवधि का खड़ीबोली साहित्य अधिक प्रभावशाली नहीं बन सका है। लेखक के विचारों का प्रवाह एक ओर है तो उसकी भाषा की धारा दूसरी ओर। भाषा में शब्द-सामर्थ्य होने पर परस्पर सामंजस्य का अभाव हो गया है। प्रयोगों की उपयुक्तता न होने के कारण (नये संदर्भों में प्रयुक्त होने पर) उनमें भाव-सम्प्रेषण का गुण गौण होकर रह गया है। इससे सम्प्रेषण प्रभावशाली नहीं रह गया है।

प्रथम प्रकार के विकल्पन प्रयोक्ता-सापेक्ष हैं जिन्हें भाषा में ध्वनि, शब्द और अर्थ के स्तरों पर देखा जा सकता है। द्वितीय प्रकार के विकल्पन शब्द, अर्थ और वाक्य के स्तरों पर मिलते हैं। विभिन्न स्तरों पर मिलने वाले विकल्पनों के आधार पर खड़ीबोली के आरम्भिक स्वरूप के चार प्रमुख भेद किये जा सकते हैं। एक जिसमें खड़ीबोली के साथ ब्रजभाषा का मिश्रण है। दूसरा, जिसमें खड़ीबोली के साथ ब्रजभाषा, राजस्थानी अथवा पंजाबी का मिश्रण है। तीसरा, जिसमें ब्रजभाषा के अतिरिक्त भोजपुरी, अवधी आदि पूर्वी बोलियों तथा बँगला भाषा का प्रभाव आ गया है। चौथा, वह जिसमें संस्कृत के तत्सम, तो कहीं उससे उद्‌भूत तद्‌भव शब्दावली का प्राचुर्य है। इन चारों रूपों में फारसी और अरबी भाषाओं का अंशदान ध्वनि और शब्द स्तर के अतिरिक्त वाक्य-संरचना के स्तर पर भी है। इससे पृथक् खड़ीबोली को देखना अनुचित है। इस प्रभाव के कारण खड़ीबोली का आरम्भिक स्वरूप उर्दू से मिलता हुआ तो कहीं उससे पृथक् दिखाई देता है। वास्तव में यह खड़ीबोली का प्रस्तावना-काल कहा जा सकता है जिसमें उसने विभिन्न भाषा-शक्तियों से आवश्यक तत्त्व ग्रहण कर अपनी अभिव्यंजना-शक्ति को समर्थ बनाने का प्रयास किया और समयान्तर पर उनमें से कुछ को आत्मसात् कर अपना पृथक् अस्तित्व बना लिया। इसका किंचित् व्यवस्थाबद्ध रूप "भारतेन्दु" में तथा परिष्कृत रूप आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की खड़ीबोली में प्रकट हुआ।

खड़ीबोली के इन उपरूपों के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व "हिन्दी", "हिन्दवी", "हिन्दुई", "हींदुई", "भाखा-भाषा" शब्द अपना स्थान बना चुके थे। गिलक्राइस्ट के भारत-आगमन पर "खड़ीबोली" शब्द भी उसी अर्थ में चल निकला। एक भाषा की विविध शैलियों के लिए इतनी अधिक संज्ञाएँ भाषा-कोश की सम्पन्नता की सूचक और भाषा के संदर्भ में विदेशी विद्वान् की देन हैं। गिलक्राइस्ट के आगमन से पूर्व अन्य सभी शब्द

ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों के बोधक थे। परन्तु गिलक्राइस्ट ने खड़ी को ब्रजभाषा से पृथक् कर दिखाने के लिए "खड़ीबोली" शब्द का प्रयोग किया। उसका स्वरूप दिखाने के लिए उन्होंने लल्लू जी लाल कवि को "प्रेम-सागर" तथा पंडित सदल मिश्र को "नासिकेतोपाख्यान" लिखने का आदेश दिया। इस प्रकार अंग्रेजों की भेदनीति वाली मनोवृत्ति भाषा के क्षेत्र में भी बनी रही। गिलक्राइस्ट के बाद से खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों भाषाएँ पृथक्-पृथक् परिभाषाओं से संबोधित की जाने लगीं। विदित है कि गिल-क्राइस्ट प्रधान रूप से हिन्दुस्तानी या उर्दू के समर्थक थे जिसका आधार "हिन्दवी" और "हिन्दुई" थी। खड़ीबोली के तद्भव शब्दावली-प्रधान तथा अरबी-फ़ारसी वाक्य ढाँचे से पृथक् वाक्य-रचना रखने वाले स्वरूप के लिए इंशा अल्ला खाँ ने "ठेठ" शब्द का प्रयोग किया। यह उस समय सम्पूर्ण भारत में प्रयुक्त भाषा थी जिसे क्षेत्र-विशेष से जुड़ जाने के कारण "दक्खिनी" कहा गया। विशेष जातियों से जुड़ा होने के कारण इसे "गोसायि भाषा", "तुलुक्क भाषा" और 'पटटाणि भाषा" कहा गया। स्पष्ट होता है कि इस समय खड़ी-बोली का प्रसार-क्षेत्र न केवल उत्तरी भारत तक सीमित था, वरन् पूर्वी, पश्चिमी और दक्खिनी भारत की ओर फैल चुका था। सम्पूर्ण भारत में यह उसी प्रकार बोधगम्य हो चुकी थी जिस प्रकार किसी समय संस्कृत भाषा और फिर ब्रज-भाषा सम्पूर्ण भारत में बोधगम्य थी।

खड़ीबोली की आरम्भिक रचनाओं में समानता का एक अन्य बिन्दु शीर्षक है। इन सभी रचनाओं के शीर्षक देवनागरी के साथ-साथ रोमन लिपि में भी दिये गये हैं। इसके साथ इनके अंग्रेजी रूपान्तर भी उद्धृत हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी में शीर्षकों के अंग्रेजी रूपान्तर देने की कला का विकास इसी काल से प्रारम्भ हुआ। शीर्षक संक्षिप्त न होकर वाक्यांशों और पूर्ण वाक्यों में है। अंग्रेजी रूपान्तरों में विषय-वस्तु का स्पष्टीकरण सरलता से हो गया है। अंग्रेजी में अनूदित और रूपान्तरित रचनाओं के मूल पाठ साथ-साथ देते चलने की शैली इस अवधि के लेखकों की प्रमुख विशेषता थी जो आगे चलकर भारतेन्दु-काल में पनप न सकी। सभी उपलब्ध तथा प्राप्त पुस्तकों को वर्णक्रम के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से व्यवस्थित किया जा सकता है—

१. Dialogues

यह फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता के हिन्दुस्तानी विभाग के प्रथम अध्यक्ष तथा व्यवसाय से विद्वान् चिकित्सक डाक्टर जॉन बार्थविक गिलक्राइस्ट की रचना है। यह प्रश्नोत्तर या वार्तालाप शैली में लिखी गई है। इसकी

रचना अंग्रेजों को हिन्दी भाषा सिखाने की दृष्टि से की गई है। यह व्यावहारिक विषयों से जुड़ी रचना है। इसकी भाषा सरल और बोलचाल की खड़ीबोली है जिसके अवशेष आज भी कलकत्ते की हिन्दी में देखे जा सकते हैं। इससे पुष्ट होता है कि आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व अहिन्दी भाषी प्रदेश, बंगाल में बँगला, हिन्दुस्तानी और उर्दू के साथ-साथ खड़ीबोली व्यापारियों के मध्य विकसित हो रही थी। गिलक्राइस्ट भारत-आगमन के पूर्व से इसके विविध रूपों से परिचित हो चुके थे। इसीलिए उन्होंने लंदन से प्रकाशित अपनी पुस्तक Oriental Linguist की भूमिका में हिन्दुस्तानी और खड़ीबोली शब्दों का प्रयोग एक भाषा की दो भिन्न शैलियों में दिखाने के लिए किया है। हिन्दुस्तानी से उनका तात्पर्य अरबी, फ़ारसी बहुल हिन्दी से भिन्न नहीं है और खड़ीबोली से उनका तात्पर्य अरबी, फारसी तत्त्वरहित हिन्दी भाषा था। इसी का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने मीर अम्मान को हिन्दुस्तानी में "बाग़ोबहार", लल्लू जी लाल कवि को "यामिनीरहित दिल्ली-आगरे की भाषा में 'प्रेमसागर" और पंडित सदल मिश्र को "चन्द्रावली की कथा" लिखने के लिए आदेश दिया। आज कलकत्ता और उसके निवासियों के मध्य गिलक्राइस्ट का 'हिन्दुस्तानी" शब्द किंचित् भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। इसका अर्थ 'हिन्दी बोलने वाले" व्यक्ति या "हिन्दी भाषा-भाषियों" से है।

८ यह रचना (Oriental Linguist) नामक रचना में संकलित है। इसके रचयिता गिलक्राइस्ट हैं। 'Oriental Linguist' का प्रथम संस्करण (Ferris and Greenway, London) से १७९८ ईसवी में प्रकाशित हुआ। पुस्तक नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में संगृहीत है।

२. उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी

इसे खड़ीबोली की प्रथम मौलिक कहानी कहा गया है। इसमें इंशा अल्ला खाँ ने राजा उदयभान और रानी केतकी के प्रेम-विवाह का अत्यन्त सरल और मनोरंजक शैली में वर्णन किया है। इसकी रचना करते समय लेखक ने अपना उद्देश्य "ठेठ हिन्दी जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले" और "जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते-चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डील रहे और छाँह किसी की न हो" रखा है। इससे पता चलता है कि यह मौलिक गद्यरचना है तथा इस समय देहली और लखनऊ के रईसों की बोलचाल में विशुद्ध फारसी का प्रचलन था। इससे इतर वर्ग में में खड़ीबोली के व्यवस्थित और परिष्कृत स्वरूप का व्यवहार हो रहा था

जिसमें उर्दू के समान अरबी और फारसी शब्दावली का बाहुल्य न था, परन्तु संरचनात्मक विशेषताएँ उर्दू और खड़ीबोली दोनों में लगभग एकसमान थीं।

इससे मिलने वाले "इयो" और "आँ" प्रत्ययों से निर्मित "कीजियो", "लीजियो" तथा "आतियाँ, जातियाँ" जैसे रूप तत्कालीन उर्दू-रचना "बागो-बहार" में भी मिलते हैं। वाक्य-गठन पर भी उर्दू भाषा का प्रभाव स्थान-स्थान पर आ गया है। इंशा अल्ला खाँ की रचनाओं में जिस प्रकार हिन्दी भाषा के शब्द मिलते हैं, उसी प्रकार उनकी हिन्दी रचनाओं में उर्दू का प्रभाव देखा जा सकता है। इसका एक कारण तो इंशा और उनके पिता माशा अल्ला खाँ दोनों का उर्दू का प्रसिद्ध शायर होना था, तो दूसरा कारण इंशा अल्ला खाँ के आश्रम दरबार का फारसी के लिए प्रसिद्ध रह चुकना था। अतः उर्दू और फ़ारसी दोनों का प्रवेश समान रूप से इंशा की खड़ीबोली में हो गया है।

"रानी केतकी की कहानी" की भाषा की दूसरी विशेषता मुहावरों का प्रयोग है जिससे भावों को गहराई तक बैठाया गया है। इंशा अल्ला खाँ इसमें सफलता से उतरे हैं। वास्तव में मुहावरों के अतिशय प्रयोग और उनके आधार पर हास्य-व्यंग्यपूर्ण उक्तियों, नीति और उद्देश्य प्रधान कथाओं की जितनी अधिक रचनाएँ इन आरम्भिक दशकों में लिखी गईं, उतनी इनके बाद देखने को नहीं मिलतीं। इंशा अल्ला खाँ की यह रचना इसी का उदाहरण है।

इसकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता मध्यकालीन लयात्मक गद्यशैली का सफल निर्वाह है। मध्यकालीन ब्रजभाषा गद्य के अनुकरण पर तुक और शब्दानुप्रास द्वारा लय और नाद सौन्दर्य बनाये रखने का प्रयास कर लेखक ने इसे खड़ीबोली की भाषा-परम्परा से एकदम विच्छिन्न नहीं होने दिया है। १९वीं शती के आरम्भिक दशकों में लिखित रचनाओं में यह विशेषता संक्रमित रूप से मिलती है। "प्रेमसागर", "नासिकेतोपाख्यान" और "रामचरित" का गद्य भी संगीतात्मक सौन्दर्य से पूर्ण है। ब्रजभाषा की गद्य रचनाओं के प्रभाव से इनमें कथात्मक भाग गद्य में और उसका सार या उपदेश भाग पद्यशैली में है। इसी प्रकार गद्य के बीच-बीच ब्रजभाषा में पद्य लिखने की शैली इस अवधि में लिखित सभी रचनाओं में मिलती है। यह ब्रजभाषा गद्य साहित्य के प्रभाव में आई प्रतीत होती है, परन्तु "प्रेमसागर" और "नासिकेतोपाख्यान" आदि से "रानी केतकी की कहानी" इस बिन्दु पर पृथक् हो जाती है कि इन रचनाओं में गद्य भाग जहाँ खड़ीबोली में है और पद्य भाग ब्रजभाषा में, वहाँ इंशा अल्ला खाँ ने गद्य के साथ-साथ पद्य में खड़ीबोली का प्रयोग आरम्भ किया।

रचना की मूल प्रति उपलब्ध न होने के कारण इसके लेखन-काल के सम्बन्ध में सुनिश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने इसका रचनाकाल १७६८ ई० से १८०३ ई० के मध्य स्वीकार किया है। रचना की एक आधुनिक हस्तलिपि नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के आर्य भाषा पुस्तकालय में उपलब्ध है। यह Journal of Asiatic Society of Bengal के १८५२ ईसवी के अंक एक में पृष्ठ संख्या एक पर प्रकाशित है। इसका अनुवाद लॉमार्टिनियर कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपल L Clint ने किया है। यह कलकत्ता-स्थित एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में उपलब्ध है।

३. बैताल पच्चीसी

यह फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता के अन्तर्गत लिखी गई खड़ीबोली की रचना है। इसमें नीति और शिष्टाचार सम्बन्धी तथा उपदेशात्मक पच्चीस किस्से हैं जो बैताल राजा विक्रमादित्य को सुनता है। यह संस्कृत की "बैताल पंचविंशतिका" के ब्रजभाषा अनुवाद से खड़ीबोली में रूपान्तरित है। इसके रूपान्तरकार मजहर अली खाँ "विला" हैं जिन्होंने लल्लू जी लाल कवि की सहायता से इसको रूपान्तरित किया। रचना के आरम्भ में दो अनुच्छेदों के अतिरिक्त शेष भाग खड़ीबोली में हैं। आवश्यक स्थलों पर अरबी-फारसी तथा ब्रजभाषा के शब्द भी आ गये हैं जिससे इसकी भाषा ब्रजभाषा, उर्दू और प्रभावित खड़ीबोली कही जा सकती है। पुस्तक की भूमिका की भाषा उर्दू है। इसके आधार पर हिन्दी के इतिहासकारों ने इसे उर्दू भाषा की रचना कह दिया है। स्वयं लल्लू जी लाल कवि ने भी अपनी पुस्तक "लालचंद्रिका" की भूमिका में इसे उर्दू भाषा की रचना कहा है। परन्तु मात्र भूमिका के आधार पर तथा एक, दो आरम्भिक अनुच्छेदों के आधार पर इसे उर्दू भाषा की रचना मान लेना उचित नहीं।

इसका प्रकाशन १८०२ ईसवी में कलकत्ते के मिरर प्रेस से हुआ था जो पूरा न हो सका। पुनः १८०५ ईसवी में कलकत्ते के हिन्दुस्तानी प्रेस से प्रकाशित हुआ। परन्तु यह संस्करण आज अनुपलब्ध है। इस समय यह सम्पूर्ण प्रकाशित हुई थी। १८२७ ईसवी में विलियम प्राइस ने फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्षता-काल में 'Hindee Hindoostanee Selections' के प्रथम भाग में इसे भी रखा। आज इसे उपलब्ध और प्राचीनतम संस्करण कहा जा सकता है। इसके पश्चात् और कई स्थानों से इसका प्रकाशन हुआ, परन्तु सभी में भाषा-स्तर पर पर्याप्त संशोधन कर दिये जाने के कारण

पाठ की प्राचीनता और प्रामाणिकता समाप्त हो गई है। यह नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता में उपलब्ध है।

४. शकुंतला नाटक[१]

यह नेवाज कवि द्वारा संस्कृत से ब्रजभाषा में किया गया और फिर ब्रजभाषा से खड़ीबोली में किया गया रूपान्तरित नाटक है। खड़ीबोली में इसके रूपान्तरकार लल्लू जी लाल कवि हैं। यह १८०२ ईसवी में कलकत्ते के गज़ट प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसका संकलन डाक्टर गिलक्राइस्ट के Hindee Manual में है। इसकी एक प्रति नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है। आगे चलकर इसका रूपान्तर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने भी किया। (ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ० १४३)

५. नागलीला[२]

यह १८०३ ईसवी में ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली में लिखी गंगाधर नामक किसी लेखक की रचना बताई जाती है। इसका उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की खोज रिपोर्ट में मिलता है।

६ श्रीभागवत[३]

इसका उल्लेख कलकत्ते के फोर्ट विलियम कॉलेज के विवरणों में मिलता है। इसके अनुसार यह पंडित सदल मिश्र द्वारा लिखित रचना है। यह १८०२ ईसवी में मुद्रण में थी। परन्तु मूल रचना अनुपलब्ध होने के कारण इसकी भाषा और शैली आदि के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है।

७. सती होने की रीति हिन्दुओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है

यह फोर्ट विलियिम कॉलेज, कलकत्ते के हिन्दुस्तानी विभाग के विदेशी विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न भाषाओं में लिखित छह निबन्धों के संग्रह (Primitia orientals) के दूसरे भाग में पृष्ठ १५२ पर संकलित हैं। यह थीसिस (प्रबंध)

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पुस्तक ३, पृष्ठ १

२. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का १४वाँ त्रैवार्षिक विवरण। (१९२९ ईसवी- ९३१ ईसवी) संपादक पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, द्वितीय परिशिष्ट, पुस्तक संख्या १०९, पृष्ठ २६४

३. वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ४२४

के रूप में तैयार किया गया था। इसे हिन्दी की प्रथम निबंध-रचना कहा जा सकता है। इसके लेखक डब्लू० चैपलीन हैं। उन्होंने इसकी भाषा को "अनजानी बोली" कहा है। पुस्तक की भूमिका में इसे "हिन्दुस्तानी" भाषा का निबन्ध कहा गया है। इसकी भाषा खड़ीबोली है जिसका स्वरूप गिलक्राइस्ट की "Dialogues" शीर्षक रचना से अधिक भिन्न नहीं है। इस पर बँगला भाषा का प्रभाव झलकता है। इसकी वाक्य-गठन-शैली बोलचाल की सरल खड़ी-बोली है जो अपनी वाचिक परम्परा में कलकत्ता और उसके आसपास आज भी सुनाई देती है। चैपलीन द्वारा इसे "अनजानी बोली" कहने का एकमात्र कारण यह है कि हिन्दी उनकी द्वितीय भाषा थी। पुस्तक में संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी भाषाओं के निबन्ध में संकलित हैं जिनके लेखक क्रमशः विलियम बटरवर्थ वैली, डब्लू० चैपलीन, जे० रोमर और टर्नबल हैं। पुस्तक का प्रथम संस्करण १८०३ ईसवी में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इसका प्रथम भाग **'Essays by the Students of the College of Fort William'** शीर्षक से छपा है। दोनों भाग नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध हैं।

८. दसवीं कहानी पहाड़ की जिसको जनने की पीर उठी

'Dusween kuhaneo puhar kee jisko janne kee peer oothee'

यह **Oriental Falulist** शीर्षक रचना की भूमिका में उद्धृत है। रचना की भूमिका में गिलक्राइस्ट ने खड़ीबोली को हिन्दुस्तानी की एक शैली बताते हुए उक्त शीर्षक से यह लघुकथा खड़ीबोली में उद्धृत की है। इसकी भाषा सरल खड़ीबोली है जिसमें "भई" जैसे शब्द ब्रजभाषा से तथा "नगर" "अद्भुत", "अधिक" संस्कृत से लिये गये हैं।

इसमें ईसप की कथाएँ तथा कुछ अन्य प्राचीन लघुकथाएँ भी हैं जिसमें मूलपाठ अंग्रेजी में और अनुवाद हिन्दुस्तानी, फारसी, बँगला, ब्रजभाषा और संस्कृत भाषाओं में दिया गया है। यह भिन्न लेखकों द्वारा लिखित है।

इसका प्रथम संस्करण १८०३ ईसवी में कलकत्ते के हरकाबरू प्रेस से छपा। यही संस्करण कलकत्ता-स्थित नेशनल लाइब्रेरी में सुलभ है।

९. प्रेमसागर

यह फोर्ट विलियिम कॉलेज के अन्तर्गत लिखित उपाख्यान है। इसमें लेखक ने कृष्ण के जन्म से लेकर बाल्यकाल तक की विविध क्रीड़ाओं और लीलाओं

१. डब्ल्यू० चैपलीन, सती होने की रीति हिन्दुओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है, पृष्ठ १५२

का वर्णन किया है। मूल ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' शीर्षक से संस्कृत में है। इसके दशम खंड के ब्रजभाषा रूपांतर से लल्लू जी लाल कवि ने गिलक्राइस्ट के ५ आदेश—'यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ीबोली'[१] से 'प्रेमसागर' शीर्षक से रूपांतरित किया है। यहाँ "यामनी भाषा छोड़" से तात्पर्य कदाचित् अरबी-फारसी की वाक्य-गठन शैली से है जो उस समय जनसाधारण के मध्य व्यवहार की भाषा बन चुकी थी। इससे पृथक् खड़ीबोली की कल्पना नहीं थी। इसका कुछ प्रभाव इंशा अल्ला खाँ की "रानी केतकी की कहानी" में मिलता है। लल्लू जी लाल कवि ने गिलक्राइस्ट के आदेश का निर्वाह वाक्य-स्तर पर तो किया है, परन्तु शब्द-स्तर पर विदेशी शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र स्वाभाविक रूप से हो गया है। इससे विदित होता है कि इस समय दिल्ली और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में जहाँ एक ओर फारसी शैली वाली खड़ीबोली व्यवहार में थी, वहीं दूसरी ओर उससे भिन्न संरचना वाली शैली व्यवहार में आ चुकी थी। यह एक ओर राजदरबारों से भी जुड़ी हुई थी और वाचिक क्षेत्र में पौराणिक आख्यान वाचकों के बीच संदर्भ-विशेष में व्यवहृत हो रही थी। महाराज छत्रसाल के शासन से सम्बद्ध पत्रों में तथा रामप्रसाद निरंजनी कृत "भाषा योगवाशिष्ट" में इसका स्वरूप स्पष्ट होता है। अपनी वाचिक परंपरा में यह आज तक कथावाचकों के मध्य प्रचलित है। गिलक्राइस्ट और लल्लू जी लाल कवि दोनों हिन्दी की इन परम्परागत शैलियों से कदाचित परिचित थे। ब्रजभाषा काव्य से रूपांतरित करने के कारण इसमें तत्कालीन ब्रजभाषा गद्य और पद्य की तुक और शब्दानुप्रास से प्रभावित लय और संगीतात्मकता की विशेषताएँ आ गई हैं। गद्य के बीच-बीच में पद्य और दोहे भी इसमें मिलते हैं। इस प्रकार "प्रेमसागर" को "भाषायोगवाशिष्ट" की गद्य-परंपरा की कड़ी माना जा सकता है जिसमें खड़ीबोली का स्वरूप ब्रज-मिश्रित है।

इसका प्रथम संस्करण कलकत्ते के हिन्दुस्तानी प्रेस से १८०३ ईसवी में प्रकाशित हुआ जो किन्हीं कारणों से संपूर्ण छप न सका था। इसका शीर्षक पृष्ठ रोमन लिपि में है। यह अधछपा संस्करण आज अनुपलब्ध हो गया है। इसी आकार में १८०५ ईसवी में पुन: प्रकाशित हुआ। इसके बाद १८१० ईसवी में कलकत्ते के संस्कृत प्रेस से संपूर्ण प्रकाशित हुआ। आज यही संस्करण उपलब्ध है और जब तक १८०३ ईसवी और १८०५ ईसवी के संस्करण उपलब्ध नहीं हो जाते हैं, तब तक इसे ही प्राचीनतम संस्करण कहा जा सकता है। इसमें शीर्षक पृष्ठ तत्कालीन प्रकाशन शैली के अनुसार अंग्रेजी में है तथा हिन्दी

---

१. लल्लू जी लाल कवि, प्रेमसागर, पृष्ठ १, २

में है जिसकी लिपि रोमन है। इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। हिन्दी का यह प्रथम पौराणिक उपाख्यान नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता में सुरक्षित है।

१०. नासिकेतोपाख्यान

यह संस्कृत (देववाणी) के पौराणिक आख्यान "चन्द्रावती की कथा" का खड़ीबोली गद्य में रूपांतर है। रूपांतरकार पंडित सदल मिश्र हैं। यह फोर्ट विलियम कॉलेज के अन्तर्गत डॉ० गिलक्राइस्ट की आज्ञा से तैयार हुई रचनाओं में से एक है। इसमें महाराजा रघु की पुत्री चन्द्रावती और उसके पुत्र नासिकेत की कथा वर्णित है। कथा कुछ इस प्रकार है कि राजा रघु की पुत्री चन्द्रावती ने गंगा में स्नान करते हुए अज्ञानवश गंगा की धारा में प्रवाहित कमलकोष में महामुनि उद्यालक का वीर्य सूंघ लिया था। परिणामस्वरूप उसकी नासिका से पुत्र नासिकेत उत्पन्न हुआ। एक दिन नासिकेत के आचरण से क्रुद्ध होकर मुनि उद्यालक ने उसे यमपुर जाने का श्राप दिया। श्राप के बल से नासिकेत यमपुर गया और यमराज से अजर-अमर होने का वरदान पाकर वापस लौट आया। इसका वर्णन सरल और बोधगम्य शैली में लेखक ने किया है। यह भी अपनी समकालीन रचनाओं के समान मध्यकालीन ब्रजभाषा शैली से प्रभावित है जिसमें लय, तुक तथा अनुप्रास के शब्दोगुण स्थान-स्थान पर मिलते हैं। ब्रजभाषा की शब्द रचनात्मक प्रत्यय तथा क्रियारूपों के साथ-साथ खड़ीबोली की संरचनात्मकता की निजी विशेषताएँ भी इसमें आ गई हैं। बँगला और कुछ पूर्वी भाषाओं की विशेषताएँ इसमें शब्द-स्तर पर देखी जा सकती हैं। रचना का लिपिकाल तथा अन्य विवरण अनुपलब्ध है। यह पोथी के आकार में सुलभ है। इसके अंत में रचना का शीर्षक फारसी लिपि में लिखा गया है। इसके अंतिम पृष्ठ पर फोर्ट विलियम कॉलेज की मुहर है। इससे विदित होता है कि यह फोर्ट विलियम कालेज के पुस्तकालय की प्रति है। श्याम सुन्दरदास जी ने इसका संपादन नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी से किया।

११. नविलयात—Hindee Roman or Thoepigraphical ultimatum.

यह रचना डॉ० गिलक्राइस्ट कृत है। यह रोमन और देवनागरी लिपि के सन्दर्भ में है। इसमें "नविलयात" शीर्षक से कुछ लघुकथाएँ हिन्दुस्तानी और खड़ीबोली में दी गई हैं जिनके साथ लेखक ने हिन्दुस्तानी, खड़ीबोली और ब्रजभाषा तीनों शैलियों में परस्पर भेद बताने के लिए एक कहानी उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत की है। इसमें कहानी संख्या ७४ में हिन्दुस्तानी का, संख्या ७५ में खड़ीबोली का तथा संख्या ७६ में ब्रजभाषा का रूपांतर दिया गया है। रचना के अंत में "शकुंतला" से प्राचीन कथा उद्धृत है।

यह सर्वप्रथम १८०४ ईसवी में कलकत्ते के हिन्दुस्तानी प्रेस से प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् १८२० ईसवी में लन्दन के ब्लैक किंग्स ब्रे एण्ड एलन बुकसेलर के यहाँ से छपी। यह संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता तथा नेशनल आरकाइव्ज़, नई दिल्ली में उपलब्ध है।

१२. रामचरित्र

यह पंडित सदल मिश्र कृत एक अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। यह संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' का खड़ीबोली में अनुवाद है। अनुवाद का समय १८०५ ईसवी बताया जाता है। इसमें राम के चरित्र की सभी घटनाएँ क्रम से वर्णित हैं। संस्कृत से अनूदित होने के कारण इसमें संस्कृत की शब्दावली स्थान-स्थान पर भरी पड़ी है। सदल मिश्र जी का पूर्वी क्षेत्रों से संबंध होने के कारण पूर्वी भाषाओं की शब्दावली भी कम नहीं है। "चीन्हना", "काँदना" इसके उदाहरण हैं। ब्रजभाषा के प्रभाव से क्रियारूप मिश्रित रूप से मिलते हैं। इसकी भाषा "नासिकेतोपाख्यान" की अपेक्षा प्रौढ़ है। अनुच्छेद-विधान और विरामों का प्रयोग इसमें भी नहीं है। इसकी हस्तलिखित प्रति इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में उपलब्ध है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित सदल मिश्र ग्रंथावली में यही संकलित हुई है।

१३. The New Cyclopedia Hindoostanica of wite.

यह फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता के अन्तर्गत विलियम टेलर और अब्राहम लाकेट के आदेश से तैयार हुई रचना है। इसमें ब्रह्मभाषा, खड़ीबोली और हिन्दुस्तानी में लिखी हास्य-व्यंग्य तथा नीतिप्रधान लघुकथाएँ हैं। यह देवनागरी और फारसी लिपि में है। सभी रचनाओं में उर्दू शब्दावली का बाहुल्य है। फोर्ट विलियम कॉलेज के अन्तर्गत तैयार हुई अन्य रचनाओं के समान इसमें भी अनुच्छेद-विधान और विराम चिह्नों की विधि नहीं मिलती। हाइफन के माध्यम से विराम-द्योतन कहीं-कहीं मिलता है। पुस्तक के अन्त में मुद्रण की अशुद्धियों के लिए "अशुद्ध शोधन" देने की शैली इसमें भी है। इस शैली का विकास मुद्रण कला के साथ-साथ हुआ है। इस प्रकार फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ-साथ हिन्दी में मुद्रण-दोषों के लिए पुस्तक के अन्त में अशुद्ध शोधन देने की प्रणाली भी विकसित हुई।

यह १८१० ईसवी में कलकत्ते के इंडिया गजट प्रेस से प्रकाशित हुई। फोर्ट विलियम कॉलेज के डब्ल्यू यू० स्मिथ ने इन सब कथाओं की "लताइफ़े हिन्दी" शीर्षक से १८११ ईसवी में लन्दन से प्रकाशित किया और देवनागरी के स्थान पर रोमन लिपि रखी। कृष्णाचार्य जी ने "हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ" शीर्षक

अपनी पुस्तक में इस नाम के पश्चात् "लताइफ़ी हिन्दी" शब्द भी जोड़ दिया है फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अंतिम अध्यक्ष विलियम प्राइस ने 'Hindoo Hindoostanee Selctions' शीर्षक अपनी संकलित पुस्तक में 'मनोहर कहानियाँ सुगम बोली में' शीर्षक से इनका संकलन किया है। यह १८२७ ईसवी में प्रकाशित हुई। यह नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में सुलभ है।

१४. अशआर मियाँ नजीर

यह वली मुहम्मद अकबराबादी द्वारा लिखित काव्य-संग्रह है। इसमें बरसात, होली, बुढ़ापा, आँधी, गिलहरी आदि विषयों पर ब्रजभाषा में लिखी कविताएँ हैं जिनके साथ अंत में कृष्ण के चरित पर आधारित कृष्ण-सुदामा का प्रसंग सरल खड़ीबोली में लिखित है। यह गीतशैली में है। इसमें कवि ने मुहावरे और कहावतों के द्वारा शिष्टाचार और नैतिक मूल्यों के प्रसार करने का प्रयास किया है। इसकी आरंभिक कुछ कविताओं में अरबी, फारसी का विशेष प्रभाव मिलता है। परन्तु कृष्ण-सुदामा प्रसंग में खड़ीबोली उर्दू और ब्रजभाषा के सरल शब्दों के साथ ब्रजभाषा के "भए" जैसे क्रियारूप मिलते हैं। पुस्तक के एक दोहे (संख्या १७) में कवि ने इसकी भाषा को 'रेख्ता' कहा है।

रचना की उपलब्ध प्रति का शीर्षक पृष्ठ फटा होने के कारण इसके रचना-काल तथा स्थान आदि का अधिक विवरण नहीं मिलता, परन्तु भाषा की प्रकृति में "हैंगे", "भया" और "भई" जैसे क्रियारूपों का मिश्रण होने के कारण इसे इस शती के आरंभिक दशकों की रचना कहने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। लल्लू जी लाल कवि ने अपनी संपादित रचनाओं में इसे भी रखा है जिससे संभावना की जा सकती है कि यह लल्लू जी लाल कवि से पूर्व लिखी जा चुकी होगी या फिर उनके समय में तैयार हुई होगी। इस आधार पर इसे १९वीं शती के आरंभिक दशकों की रचना मानने में सन्देह नहीं रह जाता। पुस्तक का एक संस्करण १८१० ईसवी में लल्लू जी लाल कवि के छापेखाने से प्रकाशित हुआ। यही उपलब्ध प्राचीन संस्करण है। बाद में 'नज़ीर की मसनवी' शीर्षक से १८८५ ई० में बनारस के लाइट प्रेस से छपी। दोनों संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध हैं।

१५. शाह फकीर के शब्द[1]

यह शाह फकीर नामक कवि की रचना है। इसमें आध्यात्मिक ज्ञान-

---

१. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १८वाँ त्रैवार्षिक विवरण (१९४१ ईसवी-४३ ईसवी) प्रथम भाग, संपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पुस्तक संख्या १४६, पृष्ठ ४८५

संबंधी पदों का संग्रह है। इसके साथ "झूलना पद" भी दिए गए हैं। यह १८१० ईसवी के हैं। शाह फकीर यारी साहब के शिष्य थे। इसका पता इनके पदों में "इयारी साहब" नाम के उल्लेख से मिलता है। इसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में मिलता है।

१६. Holy Bible[१]

यह सिरामपुर मिशनरी द्वारा तैयार किया गया बाइबिल का अनुवाद है। अनुवाद खड़ीबोली में है। यह १८१२ ईसवी में प्रकाशित हुआ। इसका विवरण इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी के कैटलाग में मिलता है। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका' में इसकी भाषा के कुछ नमूने उद्धृत किये हैं। अन्यत्र यह अनुपलब्ध है।

१७. रिसाला तीरन्दाज़ी[२]

यह इस अवधि की धनुर्वेद विषय पर लिखी खड़ीबोली की एकमात्र और प्रथम रचना है। इसके रचनाकार ख्वाजा मुहम्मद फजल हैं। इसमें तीर-कमान के उपयोग से सम्बद्ध बातों, यथा—तीर-कमान का उपयोग करने, उसे साधने, अभ्यास करने, चलाने की विधियों के साथ तीर-कमान के भेदों का वर्णन किया गया है। यह पच्चीस अध्यायों में विभाजित है। इसमें तैंतीस पृष्ठ हैं। इसकी भाषा खड़ीबोली होने पर भी तकनीकी शब्द उर्दू-फारसी के हैं।

पुस्तक की १८३८ ईसवी की एक प्रति राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली के हस्तलेख-संग्रह में उपलब्ध है। इसे किन्हीं राय खेमकरण के पुत्र राव चामांजी ने लिपिबद्ध किया है। पुस्तक का शीर्षक पृष्ठ तथा अन्त में पुष्पिका पृष्ठ फटा होने के कारण अन्य विवरण प्रामाणिक रूप से अज्ञात हैं। परन्तु रचना की भाषा-शैली तथा लेखन-विधि के आधार पर इसे इस अवधि की रचना मानने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है। कुछ अध्येताओं ने इसके १८१२ ईसवी की प्रति का उल्लेख किया है। इसी आधार पर इसे १८१२ ईसवी के आसपास की रचना कहा जा सकता है।

१८. वैद्यक योग-संग्रह[३]

यह खड़ीबोली में लिखित चिकित्साशास्त्र-सम्बन्धी १८१३ ईसवी की रचना बताई जाती है। इसके रचयिता कोई आधार मिश्र हैं।

१. वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ४६८
२. गौतम, डॉ० प्रेमप्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१७
३. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ 316।

१९. पुरुष परीक्षा संग्रह[1]

यह तारिणीचरण मित्र द्वारा १८१३ ईसवी के लगभग लिखित कथात्मक रचना है। इसमें आचार, नीति आदि का वर्णन है। यह पाठ्य पुस्तक रूप में तैयार हुई थी। मूल ग्रंथ संस्कृत में है।

२०. धर्म गीता[2]

यह १८१५ ईसवी में किन्हीं जगन्नाथदास द्वारा लिखी गई है। इसमें युधिष्ठिर को दिये गये धार्मिक उपदेशों का वर्णन है। यह कथावाचक शैली की रचना बताई जाती है, जिसमें ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली का प्रयोग है।

२१. वेदांत सार तथा वेदांत संग्रह[3]

यह वैदिक सूक्तों का खड़ीबोली में अनुवाद है। इसके अनुवादक राजा राममोहन राय हैं। अनुवाद-काल १८१५ ईसवी है। कृष्णाचार्य जी ने "वेदांत संग्रह" के मंषा उल उलम प्रेस, गुड़गांव (सोहना) से १८१२ ईसवी में प्रकाशित संस्करण का उल्लेख किया है।[4]

२२. किमियासार[5]

यह राजस्थानी और पंजाबी मिश्रित खड़ीबोली की रचना बताई जाती है। इसमें आध्यात्मिक ज्ञान सम्बन्धी बातों का वर्णन है। इसके लेखक तथा लेखन तिथि आदि का प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। केवल लिपि-काल १८१५ ईसवी के आधार पर इसे १९वीं शती के आरम्भिक दशकों की रचना कहा जा सकता है।

२३. मेवाड़ वंशावली[6]

यह ब्रजभाषा और राजस्थानी मिश्रित खड़ीबोली का उदाहरण है। इसके

१. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ २३१।
२. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १४वाँ त्रैवार्षिक विवरण, १९२९ सन् १९३१ ईसवी, संपादक पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, द्वितीय परिशिष्ट, पुस्तक संख्या १६५ ए, पृष्ठ ३३९।
३. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३९१।
४. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पुस्तक ६५७, पृष्ठ ११२।
५. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१४।
६. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१४।

लेखक अज्ञात हैं। यह १८१६ ईसवी के लगभग तैयार हुई। रचना इतिहास विषयक है जिसमें राम से लेकर भीम तक के मेवाड़ी राजाओं की नामावली और उसके पश्चात् रावल बापा गहलौत से लेकर मेवाड़ के प्रत्येक राजा के जन्म-मरण, राज्यकाल, पराक्रम और वैभव आदि का विस्तृत वर्णन दिया गया है। पुस्तक की एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन में उपलब्ध है।

२४. कोक स्वरोदय वैद्यकी[1]

यह वैद्यक, यात्रा और काल आदि के ज्ञान से सम्बन्धित रचना है। यह अपूर्ण है। इसके लेखक आदि का पता नहीं चलता। इसका लिपिकाल १८१७ ईसवी है।

२५. सकुनावली[2]

यह शकुन विचार विषयक रचना है। इसके रचनाकार आदि का नाम अज्ञात है। यह ब्रजभाषा और पूर्वीभाषा मिश्रित खड़ीबोली की रचना बताई जाती है। इसकी मुद्रित प्रतियाँ १८१५ ईसवी तथा १८२५ ईसवी की मिलती हैं।

२६. लालचंद्रिका

यह लल्लू जी लालकवि कृत "बिहारी सतसई" की टीका है। रचना के आरम्भ में लेखक ने अपना परिचय दिया है और टीका करने का कारण और उद्देश्य बताया है जिससे पता चलता है कि यह गिलक्राइस्ट के आदेश से फोर्ट विलियम कालेज के विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर तैयार की गई थी। इसकी भाषा सरल है। यह खड़ीबोली की प्रथम टीका है। १८१८ ईसवी में लिखी गई इस टीका का प्रथम संस्करण कलकत्ते के संस्कृत प्रेस से १८१९ ईसवी में प्रकाशित हुआ। ग्रियर्सन ने १८९६ ईसवी में पुनर्मुद्रित किया। यह नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता और इंडिया इण्टरनेशनल सेण्टर, नई दिल्ली के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इसका एक अन्य संस्करण १८६४ ईसवी में किन्हीं गोपाल पाठक द्वारा बनारस के लाइट प्रेस से भी छपा।

---

१. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १८वाँ त्रैवार्षिक विवरण, १९४१ सन् १९४३ ईसवी, संपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम भाग, पुस्तक संख्या ३४९, पृष्ठ ९९२।

२. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१५।

२७. भगवत गीता सुपनिषद[१]

यह खड़ीबोली में लिखी भगवद्‌गीता की टीका है। इसकी रचना १८१८ ईसवी में किन्हीं मनसाराम ने की। यह नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के पुस्तकालय में उपलब्ध है।

२८. अपरोक्षानुभव[२]

यह वेदान्त संबंधी रचना है। इसके अनुवादक का नाम शंकर तथा अनुवाद-काल १८१५ ईसवी से १८१८ ईसवी के मध्य बताया जाता है। इसकी भाषा पंजाबी प्रभावित खड़ीबोली है। ब्लूमहर्ट ने ब्रिटिश म्यूज़ियम के कैटलॉग में इसे गिनाया है। पुस्तक की एक प्रति एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के पुस्तकालय में है परन्तु यह अनुपलब्ध है।

२६. पारसभाग अथवा महमूद गज़ाली री बात[३]

यह वेदान्त संबंधी रचना है। यह फ़ारसी भाषा की "कीमिया शहादत" रचना का किन्हीं कृपाराम द्वारा किया गया अनुवाद है। अनुवाद के आधार पर इसे १८१६ ईसवी की रचना बताया गया है। यह ब्रजभाषा और राज-स्थानी मिश्रित खड़ीबोली की रचना है।

३०. मंतखबाते हिन्दी

यह जॉन शेक्सपियर द्वारा हिन्दुस्तानी, खड़ीबोली और ब्रजभाषा में लिखी लघु कथाओं का संकलन है। पुस्तक रोमन लिपि में है। इसका प्रथम संस्करण १८१६ ईसवी में प्रकाशित हुआ। यह टैगोर पुस्तकालय, विश्वविद्यालय लखनऊ में उपलब्ध है।

३१. शाहनामा[४]

यह इतिहास विषय की रचना है। इसमें युधिष्ठिर से लेकर मुहम्मद शाह तक के राजाओं का वर्णन है। इसका रचनाकाल १८१६ ईसवी है। रचना के लेखक का नाम अज्ञात है। इसका उल्लेख ब्रिटिश म्यूजियम के कैटलॉग में मिलता है।

---

१. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१६।
२. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१६।
३. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१८।
४. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१४।

३२. मूलसूत्र अथवा हिन्दी स्पेलिंग बुक[1]

इसमें छात्रों के उपयोग को ध्यान में रखकर लिखी गई लघु कथाएँ हैं। कृतिकार का नाम मिसेज रो (Rowe of Digah) बताया जाता है। रचना की भाषा व्यावहारिक खड़ीबोली है। यह १८२० ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हुई थी। इसका उल्लेख इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी के कैटलॉग में मिलता है। मूल पुस्तक अनुपलब्ध है।

३३. ज्योतिष विद्या और गोलाध्याय[2]

यह ज्योतिष शास्त्र संबंधी किसी बँगला पुस्तक का खड़ीबोली में अनुवाद है। इसके अनुवादक जे० टी० थामसन हैं। यह शीर्षक अनुवादक ने स्वयं दिया है। संभव है मूल पुस्तक किसी अन्य शीर्षक से रही हो। पुस्तक का प्रथम संस्करण १८२२ ईसवी में सिरामपुर मिशन प्रेस से प्रकाशित हुआ। यह विवरण ब्रिटिश म्यूज़ियम के कैटलॉग में मिलता है। यह इस अवधि की ज्योतिष विद्या सम्बन्धी खड़ीबोली की प्रथम रचना कही जा सकती है।

३४. नीतिकथा[3]

यह नैतिक शिक्षा देने वाली लघु कथाओं का संग्रह है। संग्रहकर्त्ता तारिणीचरण मित्र हैं। इसमें खड़ीबोली का संस्कृत और ब्रजभाषा मिश्रित रूप मिलता है। यह १८२२ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित हुई। इसके साथ किन्हीं बालगंगाधर शास्त्री का नाम सम्बद्ध है।

३५. हिन्दी भाषा का नौसिख के लिए[4]

इसमें खड़ीबोली का बँगला भाषा में प्रभावित रूप मिलता है। यह १८२३ ईसवी में प्रकाशित हुई।

३६. फ़ारसी रमल शास्त्र सार[5]

यह शकुन विषय की रचना है। इसका मुद्रण और प्रकाशन समय १८२३ ईसवी बताया जाता है।

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पुस्तक ५७, पृष्ठ १४।
२. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३३२।
३. वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ४३६।
४. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१२।
५. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१५।

३७. फतेसिंह प्रताप प्रभाकर[1]

यह इतिहास संबंधी रचना है। इसमें राजा फतेसिंह का वर्णन है। इसमें वार्ता शैली का गद्य मिलता है जिसमें बीच-बीच में पदों के द्वारा भाव पूर्ण किये गये हैं जिससे गद्य की अपेक्षा पद्य प्रधान हो गया है। यह १८२३ ईसवी में प्रकाशित हुई बताई जाती है। मूल पुस्तक अनुपलब्ध है।

३८. स्त्री शिछा विधायक

यह इस अवधि की समाज सुधार सम्बन्धी एकमात्र और प्रथम रचना है। इसमें स्त्रियों की शिक्षा का महत्त्व बताने के लिए पौराणिक और ऐतिहासिक नारी पात्रों के चरित्रों का दृष्टान्त दिया गया है। इसकी भाषा शब्द स्तर पर बँगला से प्रभावित खड़ीबोली है। इस पर बँगला की किसी रचना का प्रभाव रूप रचना के स्तर पर भी मिलता है। यह बँगला की किसी रचना का अनुवाद प्रतीत होती है। रचना के प्रेरक अंग्रेज शिक्षा संचालक कहे जाते हैं। यह कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से तैयार हुई और कलकत्ते में प्रकाशित हुई। यह एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के पुस्तकालय में सुलभ है।

३९. गोरा बादल री वारता[2]

यह वार्ता साहित्य की परंपरा में लिखी रचना है। यह जटमल नामक किसी लेखक की "गोरा बादल री बात" शीर्षक रचना का खड़ीबोली हिन्दी में रूपांतर है। इसकी भाषा को "हिन्दवी" कहा गया है। पुस्तक में मूलपाठ और उसका रूपांतर, दोनों समानान्तर रूप से उद्धृत हैं। एक पृष्ठ पर मूल है तो उसके सामने के पृष्ठ पर उसका रूपांतर। इसकी भाषा अपरिपक्व है, जिसमें स्थान-स्थान पर फ़ारसी भाषा के शब्द मिल जाते हैं। रचना की उपलब्ध प्रति पर छपी सीलों से इसका रचनाकाल १८२४ ईसवी के लगभग आँका जा सकता है। एक स्थान पर इंदौर के रेजीमेण्ट की सील भी मिलती है।

४०. ब्रह्मवाद[3]

यह जैन दर्शन संबंधी रचना है। इसके लेखक रायबरेली के कोई यज्ञदत्त कहे जाते हैं। यह १८२४ ईसवी में प्रकाशित निबंध शैली की रचना है।

---

१. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१४।

२. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ २८८।

३. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ २९९।

४१. पाठशाला के बैठावने की ओर बालकन के सिखावने की रीति का बखान

इस रचना का अंग्रेजी शीर्षक इस प्रकार से है, **Substance of Dr. Bell's Instructions for Modelling and conducting schools.** मूल रचनाकार डॉ० बेल हैं और रूपांतरकार एम० टी० एडम। रचना की भाषा अपेक्षाकृत परिष्कृत और स्वच्छ खड़ीबोली है, जिसमें "बालकन", और "बैठावने" आदि क्षेत्रीय शब्द तत्कालीन भाषा की स्वाभाविक प्रकृति के रूप में आ गये हैं। इससे प्रमाण मिलता है कि इस समय तक क्षेत्रीय बोलियों का प्रसार बंगाल तक हो चुका था, अंग्रेज अधिकारियों की अधिकांश रचनाओं में इन बोलियों का प्रयोग भाषा की सामान्य प्रकृति के रूप में हो गया। हिन्दी के किसी परिनिष्ठित स्वरूप के सम्पर्क में आने से पूर्व इन बोलियों के भाषाभाषी समुदाय से उनका नाता किसी-न-किसी प्रकार जुड़ चुका था। उन्हें भाषा का यही रूप सर्वबोधगम्य प्रतीत हुआ। इसमें कुछ पाठों के शीर्षक "पाठशाला का बखान", "रीति पाठशाला की", "रजिस्टरी सीखने का बखान", "अर्थ पूछने का दृष्टांत" इत्यादि हैं। यह कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से १८२४ ईसवी में प्रकाशित हुई। यह ३५ पृष्ठों की एक छोटी पुस्तक है। इस अवधि की रचनाओं में यह अपने विषय की एकमात्र और प्रथम रचना है।

४२. फीयर्स साहब के किया हुए भूगोल वृत्तांत का संग्रह से भूगोल और खगोल का स्थूल ब्यौरा

यह रचना भी अंग्रेजी से अनूदित है। मूल पुस्तक—**Outlines of Geography and Astronomy and of the History of Hindoostan extracted from Pears.** शीर्षक से है। इसके अनुवादक का नाम अज्ञात है। यह ६८ पृष्ठों की रचना है। इसके कुछ पाठों के शीर्षक "पृथवी की गोलता", "परिमाण", "ममन", "देशान्तर", "भूगोल खगोल संबंधी पारिभाषिक नाम", "आदमियों की गिनती", "हिन्दुस्तान की पहाड़" आदि हैं। प्रत्येक पाठ के अंत में शब्दार्थ दिये गये हैं। इसकी भाषा वर्तनी से लेकर शब्द और वाक्य स्तर तक पर अव्यवस्थित है। यह १८२५ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से प्रकाशित हुई और इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में उपलब्ध है।

४३. प्रश्नावली[1]

यह शकुन विचार संबंधी रचना है। इसके रचनाकार तथा लेखनकाल आदि का विवरण उपलब्ध नहीं होता। परन्तु अनुमान के आधार पर इसे इसी अवधि की रचनाओं में माना जा सकता है। इसकी भाषा पूर्वी भाषाओं से प्रभावित हिन्दी बताई जाती है।

४४. पासाकेवली[2]

यह भी शकुन विचार संबंधी रचना है। इसकी भाषा राजस्थानी और ब्रजभाषा से प्रभावित खड़ीबोली है।

४५. उपदेश कथा और इंग्लेण्ड की उपाख्यान का चुम्बक

यह स्टुयार्ट द्वारा Historical Anecdots with a sketch of the History of England and Her connection with India. शीर्षक से लिखित रचना का खड़ीबोली में अनुवाद है। अनुवादक डब्ल्यू० टी० एडम हैं। यह कथात्मक शैली में लिखी निबंध रचना है जिसमें ऐतिहासिक विषयों से जुड़े नैतिकतापूर्ण लघु किस्से दिये गये हैं। इसकी भाषा सरल और व्यावहारिक खड़ीबोली है जिसमें व्याकरणिक अव्यवस्था स्थान-स्थान पर मिलती है। अनुवादक ने इसकी भाषा को "हिन्दुवी" कहा है। इससे पता चलता है कि इस समय तक खड़ीबोली (हिन्दी) के लिए "हिन्दुवी" शब्द का व्यवहार हो रहा था। अनुवाद के साथ लेखक ने अंग्रेजी मूल पाठ दिया है। इसके कुछ पाठों के शीर्षक "सत उपदेश", "दयाप्रकाश", "पुण्य का फल", "माता पिता के प्रति भक्ति" "सदगुण की कथा" आदि हैं।

यह कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से प्रकाशित हुई। १८२५ ईसवी का संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है। कुछ विद्वानों ने १८२३ ईसवी के संस्करण का भी उल्लेख किया है।

४६. सेनानी पोथी

यह इस अवधि की सैनिक शिक्षा संबंधी प्रथम और एकमात्र रचना है। मूल पुस्तक "Soldiers Manual" है। पुस्तक दो भागों में है और पोथी के आकार में है। पोथी का आरंभ मंगलसूचक "हरि" शब्द से है। इसके पश्चात् मुख्य वक्तव्य इस प्रकार से आरंभ किया गया है—"श्री महाराजाधिराज

१. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१५।

२. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१५।

जार्ज इंग्लेण्ड के महाराव और बादशाही की आज्ञा से कवायद की एक पोथी किया गया उससे इस भाशाकार ने हिन्दी और अंग्रेजी के भाव में पैदल में लिए संग्रह किया तो सिपाहियों के सब कामकाज में आवे और उसका नाम सेनानी पोथी रखा।" इसमें कुछ शीर्षक "चलने का ढब", "वलम के साथ", "गाइड का चालान", "जनाजे की टोली की कवाइद", "कंपनी का वाटना" इत्यादि हैं। अनुवादक ने इसे अनुवाद न कहकर टीका ग्रन्थ कहा है। हिन्दी के पारि-भाषिक शब्दों के अंग्रेजी रूपांतर समानान्तर रूप से उद्धृत हैं। सभी पारि-भाषिक शब्द फ़ारसी से अनूदित हैं। इसमें अंग्रेजी के शब्दों का उच्चारण भी बताया गया है। यह देवनागरी लिपि में है।

रचना का प्रथम भाग संवत् १८८३ (ईसवी सन् १८२६) में कलकत्ते के किसी प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसमें १०१ पृष्ठ हैं। इसके अंत में भी मुद्रण की अशुद्धियाँ "सुधपतर" (शुद्धिपत्र) शीर्षक से दी गई हैं। दूसरा भाग १८२८ ईसवी में सिरामपुर मिशन प्रेस से जॉन स्टैपिल्स हैरियट के सम्पादन में प्रकाशित हुआ। यह आज अनुपलब्ध है। इसका प्रथम भाग इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में उपलब्ध है।

४७. जगत तारक प्रभु ईसा मसीह का नया नियम जिसको मंगल समाचार कहते हैं

यह बाइबिल के न्यू टेस्टामेण्ट का खड़ीबोली में अनुवाद है। यह १८२६ ईसवी में चर्च मिशन प्रेस, कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। यह एशियाटिक सोसा-इटी कलकत्ता में सुलभ है।

४८. A Descriptive list of the popular and Religious Festivals of the Hindoos

इसका हिन्दी रूपांतर "हिन्दू की परवों का वृत्तांत" शीर्षक से किया गया है। इसमें वैष्णव धर्म के अनुयायियों के यहाँ मनाये जाने वाले विभिन्न त्यौहारों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। त्यौहारों के मनाये जाने का कारण, विधि तथा तिथि आदि का सविस्तार वर्णन है। इसमें खड़ीबोली का स्वच्छ और परिष्कृत स्वरूप मिलता है जिसका झुकाव संस्कृत की ओर है। यह विलियम प्राइस द्वारा रचित Hindee and Hindoostanee Selections के प्रथम भाग में संकलित है। हिन्दू त्यौहारों से जुड़ी यह खड़ीबोली की प्रथम एकमात्र रचना है।

४६. A list of Hindoo Castes

इसका हिन्दी रूपांतर "हिन्दू की जातिमाला" शीर्षक से है। यह भी विलियम प्राइस कृत संकलन में है। इसमें वर्ण भेद बताते हुए विभिन्न वर्णों यथा—ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ तथा अधमों (शूद्रों) के भेद-उपभेद, उनके निवास-स्थान तथा विभिन्न संप्रदायों से जुड़े होने का विवरण दिया गया है। इसकी भाषा परिष्कृत खड़ीबोली का सुन्दर उदाहरण है। सभी शब्द संस्कृत में तथा उससे उद्भूत तद्भव कोटि के हैं।

५०. Humorous Stories in An easy style

इसका हिन्दी रूपान्तर "मनोहर कहानियाँ सुगम बोली में" शीर्षक से किया गया है। यह मुहावरों और कहावतों पर आधारित उपदेशात्मक लघु कथाओं की रचना है। कुछ कहावतें तो आज तक हिन्दी में प्रचलित हैं। इसमें अरबी और फ़ारसी के साथ-साथ जनपदीय भाषाओं के रिझाय, करै, मोकौ, तै इत्यादि शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं। इतना होने पर इसमें खड़ीबोली का विशुद्ध स्वरूप झलकता है। यह भी विलियम प्राइस के संकलन में संकलित है। इसकी अनेक कहानियाँ "लाताईफ़ हिन्दी" में संकलित हैं।

५१. Hindee and Hindoostanee Selections

यह फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अंतिम अध्यक्ष विलियम प्राइस द्वारा सम्पादित कृति है। इसका संकलन फोर्ट विलियम कालेज के विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर किया गया है। पुस्तक दो भागों में है। परन्तु इसका प्रथम भाग ही सुलभ है, जिसमें हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण, ब्रजभाषा में लिखी भक्तमाल की टीका, हिन्दू की परवों का वृत्तांत, वैताल पच्चीसी, मनोहर कहानियाँ सुगम बोली में, हिन्दू की जातिमाला ग्रंथ संकलित हैं। "हिन्दू की परवों का वृत्तांत" शीर्षक रचना हिन्दू त्यौहारों से संबंधित रचना है तथा "हिन्दू की जातिमाला" शीर्षक रचना हिन्दू जातियों से जुड़ी रचना है। यह दोनों अपने विषयों पर लिखी खड़ीबोली की प्रथम रचनाएँ हैं। सभी रचनाएँ सरल और व्यावहारिक खड़ीबोली में हैं जिनमें संस्कृत और फ़ारसी-अरबी के सरल शब्दों का व्यवहार है। स्पष्ट है कि फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दुस्तानी विभाग के प्रथम अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट ने जहाँ एक ओर हिन्दी के अरबी-फ़ारसी प्रभावित हिन्दुस्तानी रूप को मान्यता दी तो उसी कालेज के अंतिम अध्यक्ष विलियम प्राइस ने संस्कृत की तत्सम और तद्भव शब्दावली से युक्त हिन्दी को महत्त्व दिया। फोर्ट विलियम कालेज के

विद्यार्थी भी हिन्दी के इस स्वरूप से परिचित हो चुके थे। यह हिन्दी का किंचित् आधुनिक कहा जाने वाला रूप था जो समय की गति के साथ-साथ सम्पूर्ण भारत में विस्तार पाता जा रहा था। कदाचित् इसीलिए विलियम प्राइस ने इसके अध्ययन की आवश्यकता और महत्त्व को समझा।

रचना का प्रथम भाग १८२७ ईसवी में हिन्दुस्तानी प्रेस, कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। यह नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ते में सुलभ है।

५२. गणितांक का पुस्तक

यह रेवरेण्ड एम० टी० एडम द्वारा लिखित अंकगणित और लेखा (Account) विषय की प्रथम और एकमात्र रचना है। इसका अंग्रेजी शीर्षक "Arithmetic for the use of schools" है। यह १४७ पृष्ठों की रचना है। इसमें "शत", "जमा खरच", "गुण", "ह्रस्वकरण", 'दीर्घकरण", "गिनती कौड़ियों की", "गिनती चौक की", "गिनती पहाड़े की", "डेढ़ की", "अढ़इया", "हूँठा" आदि विषय वर्णित हैं। रचना के अन्त में "शुद्धि पत्र" दिया गया है। यह कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से १८२७ ईसवी में प्रकाशित हुई। यह संस्करण इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में सुलभ है।

५३. हिन्दी भाषा का व्याकरण (A Hindi Grammar or the instruction of the young in easy questions and answers)

इसके लेखक एम० टी० एडम हैं। खड़ीबोली व्याकरण की यह पुस्तक स्कूली छात्रों को दृष्टि में रखकर तैयार की गई थी। इसमें हिन्दी व्याकरण का परिचय प्रश्नोत्तर शैली में दिया गया है। यह प्रथम बार १८२७ ईसवी में कलकत्ते से और पुनः १८४५ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित हुई। इसके अन्य संस्करण भी छपे हैं। कलकत्ते से १८६७ ईसवी में तथा बनारस से १८७१ ईसवी में छपे सभी संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ते में सुलभ हैं।

५४. रामायण[1]

यह रामायण के अयोध्याकांड पर आधारित खड़ीबोली की काव्य रचना बताई जाती है। यह बरवै और लावनी छन्दों में लिखी गई है। इसके रचना-

१. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १८वाँ त्रैवार्षिक विवरण, १९४१ सन् १९४३ ईसवी, संपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम भाग, पुस्तक संख्या १४४, पृष्ठ ४८२।

कार प्रेमरंग हैं। यह १८२८ ईसवी में लिपिबद्ध हुई। इसकी एक प्रति हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हुई बताई जाती है। इसकी भाषा हिन्दी है जिसमें शब्द स्तर पर संस्कृत और फ़ारसी दोनों भाषाओं का प्रभाव मिलता है।

५५. गीतें हमारे प्रभु और प्राण करन हारे यिशु ख्रीष्ट की वन्दिगी में गाने के वास्ते

यह लुका और मार्कस आदि ईसाई संतों द्वारा लिखित गीत रचना है। गीतों में ईसा मसीह का गुणगान है। सभी गीत बँगला गीतों के छन्दों पर आधारित हैं और सरल और बोधगम्य खड़ीबोली में लिखित हैं। यह १८२८ ईसवी में सिरामपुर प्रेस से प्रकाशित हुई। यह संस्करण कलकत्ता स्थित नेशनल लाइब्रेरी में उपलब्ध है।

५६. Hindi Selections and Hindi Stories[1]—

यह हेलबरी कालेज के जेम्स मिकल की रचना है। यह पाठ्य पुस्तक रूप से तैयार हुई बताई जाती है। यह १८२६ ईसवी में प्रकाशित हुई। कृष्णाचार्य जी ने "हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ" में इसके १८६७ ईसवी के बनारस मेडिकल हाल प्रेस से प्रकाशित संस्करण का उल्लेख किया है।

५७. अखरावली[2]

यह १८२६ ईसवी में सवैया शैली में लिखी खड़ीबोली की रचना बताई जाती है। इसके लेखक सुल्तानपुर के कोई गंगाधर कहे जाते हैं। इसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की खोज रिपोर्ट में मिलता है।

५८. गौड़ वंशावली[3]

यह इतिहास संबंधी रचना बताई जाती है। इसमें खड़ीबोली का बँगला भाषा प्रभावित रूप मिलता है जिसमें शब्द स्तर पर अरबी और फ़ारसी भाषाओं का प्रभाव है। इसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन में है।

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक ७५६, पृष्ठ १२६।
२. शर्मा, डॉ० रामविलास, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास परम्परा, पृष्ठ ३१२।
३. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१५।

५६. भाव प्रकाशिका[१]

यह १८३१ ईसवी के लगभग ज्ञानी संतसिंह वेदी द्वारा लिखित "मानस की टीका" है। इसकी भाषा पर पंजाबी और अवधी भाषाओं का प्रभाव है।

६०. राजनीति उपदेश[२]

यह गद्य-पद्य शैली में लिखी रचना बताई जाती है। इसमें गद्य भाग "वार्ता" शीर्षक से है और पद्य भाग "अर्थ" शीर्षक से है। रचना राजनीतिक उपदेश विषय सम्बन्धी है। मुख्य विषय संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों पर आधारित है। अतः यत्र-तत्र संस्कृत भाषा के श्लोक भी उद्धृत हैं। यह १८३२ ईसवी में प्रकाशित हुई। रचनाकार का नाम अज्ञात है।

६१. हिन्दवी में कथाएँ[३]

इसके रचनाकार का नाम अज्ञात है। यह १८३२ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से प्रकाशित हुई।

६२. दायभाग

इसका अंग्रेजी शीर्षक "The law of Inheritance" है। यह हिन्दू विधान विषय की एकमात्र तथा प्रथम रचना है। इसमें पैतृक सम्पत्ति और उत्तराधिकार के नियमों का वर्णन है। यह संस्कृत की "मिताक्षरा" शीर्षक रचना का हिन्दी में अनुवाद है। अनुवादक का नाम दयाशंकर है जो लल्लू जी लालकवि के भाई थे। यह आगरा कालेज से सम्बद्ध थे। इसमें संस्कृत और ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली का स्वरूप मिलता है। यह पाठ्य पुस्तक के रूप में तैयार की गई और १८३२ ईसवी में एजूकेशन प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुई। इसकी एक प्रति एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के पुस्तकालय में उपलब्ध है।

६३. वैद्यक विनोद[४]

महू आयुर्वेद संबंधी रचना बताई जाती है। यह फ़ारसी की किसी रचना

---

१. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का १३वाँ त्रैवार्षिक विवरण, संपादक रा० ब० डॉ० हीरालाल, सन् १९२६-१९२८ ईसवी, पुस्तक ५०४, पृष्ठ ७६६।

२. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१५।

३. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पृष्ठ २२।

४. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का १४वाँ त्रैवार्षिक विवरण, १९२९ सन् १९३१ ईसवी, सम्पादक पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, पुस्तक संख्या ७८ ए, पृष्ठ २१६।

का अनुवाद है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में यह कानपुर निवासी किसी दरियाव सिंह की रचना बताई गई है। यह १८३३ ईसवी में अनूदित हुई। इसकी भाषा क्षेत्रीय प्रभावों से अछूती नहीं रह सकी है। इसमें राजस्थानी भाषा का पुट मिलता है।

६४. कोकसार[1]

यह कोकशास्त्र संबंधी रचना है। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। इसके लेखक अज्ञात हैं। यह १८३३ ईसवी में लिपिबद्ध हुई बताई जाती है। इसकी भाषा पर फ़ारसी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कृष्णाचार्य जी ने संस्कृत प्रेस, खिदिरपुर, कलकत्ता से इसी शीर्षक से प्रकाशित एक अन्य रचना "कोकसार संपूर्णम्" का उल्लेख किया है जिसके लेखक आनन्द कवि बताये गये हैं। कुछ शोधकर्त्ताओं ने १८५३ ईसवी में बनारस से प्रकाशित "कोकसार" का उल्लेख भी किया है।

६५. स्त्री शिक्षा[2]

यह स्त्रियों की शिक्षा पर लिखित निबन्ध है। इसके लेखक कोई पंडित रामकृष्ण हैं। यह १८३४ ईसवी में प्रकाशित हुई थी। कृष्णाचार्य जी ने मतबअ नरुल इल्म, आगरा से १८५६ ईसवी में प्रकाशित संस्करण का उल्लेख किया है।

६६. जयपुर के शासकों की वंशावली[3]

यह इतिहास विषय की रचना है। इसका रचनाकाल १८३४ ईसवी बताया जाता है।

६७. कृष्णचरितोपाख्यान[4]

यह भागवत के दशम स्कंध की कथा पर आधारित नाटक है। इसके रचयिता अज्ञात हैं। रचना में गद्य भाग खड़ीबोली में और पद्य भाग अवधी भाषा में लिखा बताया जाता है। इस पर बँगला और अन्य पूर्वी भाषाओं का प्रभाव भी है। लेखक और लिपिकाल का प्रामाणिक समय पता नहीं चलता।

---

१. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१६।

२. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पुस्तक ६४३, पृष्ठ १०६

३. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१५।

४. Vedalankar Dr. Sharda, Development of Hindi Prose, Page 237-238।

संदर्भ मिलता है कि यह १८३५ ईसवी में काठमांडू में खेला गया था। इसी अनुमान पर इसके आस-पास के वर्षों में इसका रचनाकाल स्वीकार किया जा सकता है।

६८. मनोरंजन इतिहास अर्थात् बालकों को ज्ञानदायक और नीति सिखाने का उपाख्यान (Pleasing tales or stories designed to improve the understanding)

यह लघु कथाओं और किस्सों के माध्यम से नैतिक मूल्यों की शिक्षा देने और उनका प्रसार करने की दृष्टि से तैयार की गई रचना है। यह अंग्रेजी की उक्त शीर्षक रचना का अनुवाद है। अनुवादकर्त्ता एम० टी० एडम हैं। अनुवाद के साथ-साथ मूलपाठ भी उद्धृत है। इसमें प्रत्येक किस्से, कथाओं और घटनाओं का शीर्षक देने की प्रणाली पूर्णतः विकसित मिलती है। इस बिन्दु से यह फोर्ट विलियम कालेज के अन्तर्गत लिखित रचनाओं से किंचित् भिन्न हो गई है। समकालीन अन्य रचनाओं की तुलना में इसकी भाषा व्यवस्थित है, परन्तु एक-दो स्थानों पर क्रियाओं के "भई" और "भए" जैसे उदाहरण मिलते हैं। खड़ीबोली के स्वच्छ और परिष्कृत तथा व्यवस्थित स्वरूप के विकास की संभावनाएँ इसी रचना से प्रकट होने लगती हैं। इसकी भाषा को लेखक ने "हिन्दवी" कहा है। स्पष्ट है कि इस समय तक हिन्दवी शब्द "खड़ीबोली" और "हिन्दी" शब्द के पर्याय रूप में प्रयुक्त हो रहा था।

रचना की एक प्रति १८३५ ईसवी की लिखी प्राप्त होती है। यह कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से प्रकाशित है। इसके अन्य संस्करण कलकत्ता से १८६६ ईसवी में तथा आगरे से १८४७ ईसवी में प्रकाशित हुए। यह "मनोरंजन इतिहास" शीर्षक से कलकत्ता स्थित नेशनल लाइब्रेरी में तथा "हिन्दुई प्राइमर" के साथ जिल्द होकर एशियाटिक सोसाइटी में सुलभ है।

६९. भूगोलसार अर्थात् ज्योतिष चंद्रिका (A comparison of Puranic and Sidhantic System of Astronomy with that of copernicus)

यह भूपाल शहर के एजेण्ट सिलटविलक्सिन के आदेश से सिहोर निवासी किसी ओंकार भट्ट द्वारा लिखित भूगोल विषय की पुस्तक है। यह "भागवत" और "चिन्तामणि" शीर्षक दो संस्कृत ग्रंथों पर आधारित है। पुस्तक का परिचय लेखक ने भूमिका में दिया है। यह तीन अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय पृथ्वी और सूर्य के विषय में, दूसरा थल और जल के संबंध में तथा

तीसरा अध्याय सूर्य आदि ग्रह और सातों लोगों के संबंध में है। पुस्तक में भूगोल और ज्योतिष विषय के अनेक पारिभाषिक शब्द हैं। यह ११२ पृष्ठों की रचना है। संपूर्ण विषय संवाद शैली में विवेचित हैं। गुरु और शिष्य के वार्तालाप के माध्यम से भूगोल और ज्योतिष संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है। अपने कथन की प्रामाणिकता बताने तथा उसे प्रभावशाली बनाने के लिए वार्तालाप के मध्य संस्कृत ग्रंथों के श्लोक उद्धृत किये गये हैं जिससे भाषा के सहज प्रवाह में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। बीच-बीच में संस्कृत भाषा के सरल शब्द तथा ब्रजभाषा के क्रिया रूप अनायास आ गये हैं। इतना होने पर भी पुस्तक की भाषा अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं की तुलना में व्यवस्थित है।

यह १८४१ ईसवी में आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के लिए आगरा प्रेस से प्रकाशित हुई। कुछ शोध ग्रंथों में बापटिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ते से १८३६ ईसवी में प्रकाशित संस्करण का उल्लेख मिलता है। यह संस्करण अनुपलब्ध है। १८४१ ईसवी का संस्करण कलकत्ता स्थित नेशनल लाइब्रेरी में सुलभ है।

७०. दाउद के गीत[1] (Psalms of David)

यह बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेण्ट का खड़ीबोली में अनुवाद है। अनुवादक जे० टी० थामसन हैं। इसमें अरबी और फ़ारसी के सरल शब्द बीच-बीच में मिलते हैं। यह १८३६ ईसवी में सिरामपुर से प्रकाशित हुई बताई जाती है।

७१. शिष्य बोधक

इसमें ईसप की कहानियों का खड़ीबोली हिन्दी में अनुवाद है। यह पाठ्य पुस्तक है। यह १८३७-३८ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से तीन भागों में प्रकाशित हुई। यह संस्करण इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में उपलब्ध है।

७२. भूगोल दर्पण

यह बिलंक्टस कृत 'Outline of Geography' का खड़ीबोली में अनुवाद है। अनुवादक पंडित रतनलाल शर्मा हैं। यह भूगोल विषय की पाठ्य पुस्तक है जिसमें कुछ पाठों के शीर्षक भूगोल विद्या के विषय, जल ओ थल

---

१. वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ४७५।

इत्यादि का वर्णन, एशिया का वर्णन, तातार का विषय, चीन देश का समाचार, चीन का वृत्तांत है। इसमें कुछ स्थानों पर ब्रजभाषा के पांती, लों जैसे शब्दों को छोड़कर खड़ीबोली का व्यवस्थित रूप मिलता है। यह ७६ पृष्ठों की रचना है। यह १८३८ ईसवी में कलकत्ते से और १८४५ ईसवी में आगरा से पुनः प्रकाशित हुई। इसमें १०० पृष्ठ थे। यह १८५१ ईसवी में इंदौर से प्रकाशित हुई। इस बार इसमें ६४ पृष्ठ रह गये। इसका एक संस्करण १८५० ईसवी में इलाहाबाद से मुंशी मिर्जा जान (Jan) ने पादरी वॉरन साहिब की आज्ञा से शुद्ध कर छापा। यह संस्करण आगरा स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से छपे संस्करण पर आधारित है। इसमें कुल १६८ पृष्ठ हैं। यह संस्करण इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में उपलब्ध है।

७३. हातिमताई

यह "किस्सा हातिमताई का" शीर्षक रचना का खड़ीबोली हिन्दी में अनुवाद है। इसके अनुवादक योगध्यान मिश्र, माखनलाल भंडारी और विष्णु नारायण बताये जाते हैं। यह १८३८ ईसवी में कलकत्ते से प्रकाशित हुई। इसकी १८५१ ईसवी की प्रति नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

७४. वाक्यावली (The students Assistant or idiomatic exercises in English and Hindi)

यह शिक्षण संस्था सम्बन्धी नियमों और भाषा शिक्षा सम्बन्धी विषय की प्रथम और एकमात्र रचना है। इसमें संपूर्ण विषय संवाद शैली के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। रचना से इसके लेखक और रूपांतरकर्त्ता का पता नहीं चलता। कुछ विद्वानों के अनुसार इसके लेखक जॉन विल्सन हैं। रचना में मूलपाठ और हिन्दी अनुवाद समानान्तर रूप से प्रस्तुत किया गया है। यह १८४६ ईसवी में कलकत्ते के बापटिस्ट मिशन प्रेस से प्रकाशित हुई। यही संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

७५. विद्याभ्यास का फल (Treatise on the benefit of knowledge)

यह शिक्षा प्रसार सम्बन्धी रचना है। यह १८३९ ईसवी में द्वितीय बार प्रकाशित हुई। यह संस्करण इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में उपलब्ध है।

७६. कथासार

इतिहास विषय की यह रचना जॉन क्लार्क मार्शमैन कृत (Brief Survey

of Ancient History) शीर्षक रचना का खड़ीबोली में अनुवाद है। इसके अनुवादक पंडित रतनलाल हैं। इसमें संस्कृत और अरबी-फ़ारसी भाषा के सरल और सहज शब्दों के साथ हिन्दी की प्रकृति के नवनिर्मित शब्दों का बाहुल्य है। समकालीन रचनाओं की तुलना में व्याकरणगत स्थिरता और नियमबद्धता इसकी भाषा में मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि इस समय तक खड़ीबोली अपना निजी स्वरूप विकसित कर चुकी थी। संपूर्ण पुस्तक में छह अध्याय हैं, जिनमें सृष्टि की रचना के आरम्भ से लेकर प्रलय होने तक का और ईसामसीह के जन्मकाल का वर्णन है। इसका सम्पादन पादरी जे० जे० मूर ने आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के लिये किया था। इसी सोसाइटी ने १८३९ ईसवी में इसे प्रकाशित किया। यह संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

७७. विद्यार्थी या आजमगढ़ रीडर[1]

यह हेनरी टुकर नामक किसी लेखक की रचना बताई जाती है। यह १८४० ईसवी में इलाहाबाद मिशन प्रेस से प्रकाशित हुई।

७८. ज्ञान प्रकाश

यह हिन्दी वर्णमाला संबंधी रचना है। इसके शीर्षक पृष्ठ पर—Agra School Book Societies Hindi spelling Book लिखित है जिससे विदित है कि यह आगरा स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से तैयार की गई थी। यह १८४० ईसवी में प्रकाशित हुई। इसके लेखक के नाम का पता नहीं लगता। कुछ विद्वानों के अनुसार यह मिसेज रो कृत "मूलसूत्र" से साम्य रखती है। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार यह दोनों पुस्तकें किसी एक रचना पर आधारित हैं। यह भी इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में उपलब्ध है।

७९. रसिक उर हार[2]

यह रामचरित्र संबंधी काव्य रचना बताई जाती है। इसके लेखक बिहार प्रदेश के कोई राजेन्द्र शरण बताये जाते हैं। रचना का विस्तृत विवरण पता नहीं चलता। परन्तु लेखक का जन्म-काल १८२० ईसवी होने के कारण

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक ११३, पृष्ठ २७।

२. सहाय, शिवपूजन, हिन्दी साहित्य और बिहार, द्वितीय खण्ड (१९वीं शती पूर्वार्द्ध), पृष्ठ १५४।

इसका रचनाकाल उसके पश्चात् १८४० ईसवी के लगभग अनुमानित किया जा सकता है। इसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलता है।

८०. हनुमान नाटक

यह खड़ीबोली की नाटक रचना बताई जाती है। इसे उदय नामक किसी लेखक ने १८४० ईसवी के लगभग लिखा था।

८१. ज्योतिष विद्या का संक्षेप वर्णन (A brief Account of the solar system in Hindi)

यह ज्योतिष विषय की रचना है। इसमें संवाद शैली के आधार पर विषय का विवेचन किया गया है। इसमें मुख्य रूप से ज्योतिष विद्या का लाभ दिखाते हुए नक्षत्रों और ग्रहों की चर्चा की गई है। इसमें शिष्य प्रश्न पूछता है और गुरु उनका उत्तर देता है। सभी प्रश्न फुटनोट में रखे गये हैं। रचना पाठ्य पुस्तक के रूप में है। इसका गद्य क्रमशः परिष्कृत होती जाने वाली खड़ीबोली का उदाहरण है। यह आगरा स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से तैयार की गई थी और इसी सोसाइटी के प्रेस से १८४१ ईसवी में छापी गई। इसके रचनाकार का नाम अज्ञात है। पुस्तक नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में है।

८२. इंगलैण्ड द्वीप दीपिका अर्थात् इंगलैण्ड वासियों की चाल और वहाँ की राजनीति आदि का सम्पूर्ण वर्णन (England delineated with special reference to the morals and state of society of the inhabitants)

यह अंग्रेजी की उक्त शीर्षक रचना का अनुवाद है। अनुवादक का नाम अज्ञात है। इतिहास विषयक इस रचना में इंगलैण्ड देश का इतिहास, भूगोल, राजकाज, शासन-व्यवस्था, शिक्षा प्रबन्ध और व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, विवाह, पहनावा, खानपान तथा नौकरी, पेशे की रीति एवं व्यापार आदि का वर्णन है। इसमें जनप्रचलित भाषा का व्यवहार किया गया है। रचना का प्रथम संस्करण १०८ पृष्ठों के साथ आगरा स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से

---

१. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १३वाँ त्रैवार्षिक विवरण, संपादक रा० ब० डॉ० हीरालाल, सन् १९२६-१९२८ ईसवी, पुस्तक १८०, पृष्ठ ७६६।

१८४१ ईसवी में आगरा प्रेस से प्रकाशित हुआ। यह भी इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में उपलब्ध है।

८३. **व्यंजन प्रकार**[1] **(Indian Cookery Book)**

इस शीर्षक की एक रचना के लेखक कोई जयशंकर बताये जाते हैं। यह १८४१ ईसवी में लिखी तथा १८६७ ईसवी में प्रकाशित हुई बताई जाती है। पाकशास्त्र विषय की यह प्रथम हिन्दी रचना है।

८४. **पत्रमालिका (A Journey from Sehore to Bombay in a series of letters to his friend)**

यह पत्र शैली में लिखित यात्रा संस्मरण है। हिन्दी में डायरी शैली का प्रारंभ करने वाली यह प्रथम रचना है। इसमें भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की धरोहरों को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया गया है। इससे विदित होता है कि इस समय तक जनता में अनजाने रहस्यों को जानने की चाह और हर नये-पन को सहजता से स्वीकार करने की तत्परता की भावना विकसित हो चुकी थी। भ्रमण का सच्चा उद्देश्य सामने आ चुका था। लेखक ने इसमें सीहोर से बम्बई तक की अपनी यात्रा के रोमांचक अनुभवों को सरल और सहज शैली में वर्णित किया है। यात्रा के मध्य देखे गये स्थलों की और उन स्थानों की नई और विचित्र वस्तुओं का वर्णन किया है। पुस्तक में चार पत्र हैं। प्रथम दो पत्र बम्बई वासी किसी ओंकार भट्ट नामक व्यक्ति को, तीसरा पत्र किसी सुब्बा बाबूजी साहब को और चौथा पत्र किसी चंपाराम जी नामक अपने किसी मित्र को संबोधित किया है। पत्रों का आरंभ परम्परागत शैली में है। इनमें पत्र प्राप्तकर्ता की प्रशंसा में कई वाक्यों की योजना है। रचना की भाषा प्रौढ़ तथा क्रमशः परिष्कृत होने वाली खड़ीबोली है। यह संस्मरण विषय की प्रथम हिन्दी रचना है। इसके लेखक कोई पंडित रत्नेश्वर हैं। ४३ पृष्ठों की यह पुस्तक १८४१ में आगरा स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से आगरा प्रेस से प्रकाशित हुई। यह संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

८५. **गुणकारी उपदेश का संक्षेप पाठशालाओं के लिए**

यह अंग्रेजी रचना Select Moral Maxime का हिन्दी अनुवाद है। इसमें धर्म संबंधी उपदेश दिये गये हैं। इसके मूल लेखक तथा अनुवादक का

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पुस्तक २८१, पृष्ठ ५३।

नाम पता नहीं चलता है। पुस्तक छात्रों को दृष्टि में रखकर तैयार की गई हैं। इसमें ४६ पृष्ठ हैं। इसमें खड़ीबोली का सरल और परिष्कृत स्वरूप प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत के सरल शब्द स्थान-स्थान पर आ गये हैं। यह आगरा स्कूल बुक सोसाइटी की ओर से तैयार हुई और १८४१ ईसवी में आगरा के यतीमखाने से प्रकाशित हुई। यह संस्करण इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में उपलब्ध है।

८६. नीति विनोद[1]

इसमें शिक्षा के लाभ तथा ब्रिटिश शासन की चर्चा है। इसके रचनाकार कोई शिवप्रसाद बताये जाते हैं। यह १८४३ ईसवी में इंदौर से प्रकाशित हुई।

८७. कासिदनामा[2]

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की खोज रिपोर्ट में इसका विवरण मिलता है। इसमें खड़ीबोली का मिश्रित स्वरूप मिलता है। यह १८४२ ईसवी में लिपिबद्ध हुई। इसके रचयिता हैदर बताये जाते हैं।

८८. प्रहलाद चरित[3]

इसका विवरण भी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में मिलता है। यह लच्छीराम द्वारा १८४३ ईसवी में तैयार की गई रचना बताई जाती है।

८६. बालकों के लिए प्रथम शिक्षा पुस्तक (Hindui Primer)

अंग्रेजी शीर्षक की यह हिन्दी रचना, छात्रों को प्राथमिक स्तर की भाषा शिक्षा देने के सन्दर्भ में है। इसमें देवनागरी की वर्णमाला, मात्राएँ तथा हिन्दी के संयुक्त स्वर, दो स्वरों के मध्य भेद करने और संख्याओं की भिन्न-भिन्न प्रसंगों में गणना करने की विधि बताई गई है। इसके अन्य चार अध्यायों में शिष्टाचार निरूपण नियम और नैतिक मूल्यों की शिक्षा के सन्दर्भों में विविध प्रकार के उदाहरण दिये गये हैं। इसमें भी हिन्दी का उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक तक किंचित् व्यवस्थित हो जाने वाला स्वरूप मिलता है। इसमें ब्रजभाषा

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक १२३, पृष्ठ २६।

२. शर्मा, डॉ० राम बिलास, भारतेन्दु युग, पृष्ठ ३१३।

३. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का १३वाँ त्रैवार्षिक विवरण, संपादक रा० ब० डॉ० हीरालाल, सन् १९२६-१९२८ ईसवी, पुस्तक २५५ सी, पृष्ठ ३६७।

आदि बोलियों के क्रिया रूपों के स्थान पर खड़ीबोली के निजी क्रिया रूपों का प्रयोग है। वाक्य गठन में भी व्यवस्था मिलती है। खड़ीबोली के इस स्वरूप को यहाँ "हिन्दुई" कहा गया है। यह इस बात का साक्षी है कि "हिन्दुई" शब्द खड़ीबोली का पर्यायवाची बन चुका था। यह अपने विषय की एकमात्र रचना है। यह कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी के लिए तैयार की गई थी। इसका प्रथम संस्करण अनुपलब्ध है। इसका १८४५ ईसवी में प्रकाशित संस्करण मिलता है। यह नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

९०. पदार्थ विद्यासागर

यह भी अपने विषय की एकमात्र रचना है। इसमें प्राकृतिक विज्ञान के इतिहास का वर्णन, परिष्कृत खड़ीबोली में है। संपूर्ण रचना संवाद शैली में है। सृष्टि की जानकारी के विषय में छात्रों द्वारा पूछे गये प्रश्न तथा अध्यापकों द्वारा उनके उत्तर सरल भाषा में दिये गये हैं। यह पाठ्य पुस्तक है। इसका अंग्रेज़ी शीर्षक Elements of Natural Philosophy and Natural History है। इसमें १२० पृष्ठों में १४ अध्याय हैं। इसके रचनाकार का नाम अज्ञात है। यह १८४३ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी से प्रकाशित हुई। यही संस्करण नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

९१. पटवारियों के हिसाब रखने की पुस्तक[1] (Patwari or village account)

खड़ीबोली की यह रचना १८४५ ईसवी में आगरा से प्रकाशित हुई। कृष्णाचार्य जी ने १८४६-४८ ईसवी में आगरा स्कूल बुक प्रेस से प्रकाशित संस्करण का उल्लेख "हिन्दी में आदि मुद्रित ग्रंथ" में किया है।

९२. भड़ई विलास[2]

इसका परिचय नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की खोज रिपोर्ट में मिलता है। यह फतेहपुर आगरा के गोपाल नामक किसी लेखक के नाम से १८४५ ईसवी में लिखी गई रचना बताई गई है।

९३. क्षेत्र चंद्रिका[3]

यह हेनरी रीड की किसी पुस्तक का खड़ीबोली में अनुवाद है। इसके

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक ४६०, पृष्ठ ८०।

२. शर्मा, डॉ० राम बिलास, भारतेन्दु युग, पृष्ठ ३०६।

३. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक ६६५, पृष्ठ ११३।

अनुवादक कोई श्रीलाल बताये गये हैं। यह १८४५ ईसवी में बनारस से प्रकाशित हुई।

९४. भारतवर्षीय इतिहास अर्थात् हिन्दुस्तान की कथा

Marshman's History of India from Remote Antiquity t the Accession of Mogul Dynasty.

यह मार्शमैन कृत History of India का खड़ीबोली में अनुवाद है। पुस्तक दो भागों में है। प्रथम भाग में हिन्दुओं के राज्यकाल का और दूसरे भाग में मुस्लिम शासनकाल का वर्णन है। रचना की भाषा स्वच्छ और व्यवस्थित खड़ीबोली है। यह आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के आदेश से जे० जे० मूर द्वारा प्रकाशित की गई थी। इसका प्रथम संस्करण उपलब्ध नहीं है। दूसरा संस्करण १८४६ ईसवी में बापटिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। यह नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

९५. इतिहास चंद्रिका या इंगलैण्ड का इतिहास[1]

यह १८४६ ईसवी में जवाहरलाल नामक किसी लेखक की रचना बताई जाती है। यह गोल्ड स्मिथ कृत **History of England** का अनुवाद है। यह पाठ्य पुस्तक के रूप में १८४७ ईसवी में उर्दू अख़बार प्रेस, दिल्ली से प्रकाशित हुई।

९६. ईश्वरोक्तशास्त्र धारा[2]

यह जॉन म्योर कृत खड़ीबोली की रचना है। यह १८४६ ईसवी में प्रकाशित हुई बताई जाती है।

९७. A Course of Divine Revelation[3]

यह किसी ईसाई लेखक की रचना है। इसमें खड़ीबोली का संस्कृत मिश्रित स्वरूप मिलता है। यह १८४६ ईसवी में बापटिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ते से प्रकाशित हुई।

---

१. वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ४४१।
२. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१३।
३. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ३१४।

९८. क्षेत्र कौमुदी अर्थात् क्षेत्र व्यवहार[1]

यह संस्कृत मिश्रित खड़ीबोली में लिखी गद्य-पद्यमय रचना है। इसके लेखक कोई गोपाललाल हैं। यह १८४६ ईसवी में तैयार हुई। कृष्णाचार्य जी ने १८६४ ईसवी में बनारस से प्रकाशित संस्करण का उल्लेख किया है।

९९. सुखसागर

यह खड़ीबोली गद्य में किन्हीं मक्खनलाल द्वारा लिखित भागवत की पौराणिक कथा है। इसकी भाषा फ़ारसी प्रभावित खड़ीबोली है। इसका गद्य कथावाचक शैली का उदाहरण है, जिसमें ब्रजभाषा के "भए" क्रिया रूप प्रधान है।

१००. षटपंचासिका[2]

यह किन्ही बद्रीलाल द्वारा खड़ीबोली गद्य में लिखी रचना है। इसका रचनाकाल १८४६ ईसवी बताया गया है।

१०१. लीलावती[3]

यह भास्कर आचार्य के द्वारा संस्कृत में लिखी गणित विषय की किसी रचना का जे० जे० मूर द्वारा किया गया खड़ीबोली में अनुवाद है। कृष्णाचार्य जी ने १८४६ ईसवी में कलकत्ते से प्रकाशित संस्करण का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है।

१०२. रसायन प्रकाश[4]

यह पाठ्य पुस्तक के रूप में किन्हीं बद्रीलाल द्वारा लिखित रचना है। अनुमान के आधार पर इसका रचनाकाल १८४७ ईसवी के लगभग माना जा सकता है। कृष्णाचार्य जी ने आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के प्रकाशित संस्करण का उल्लेख किया है और इसका शीर्षक "रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर" दिया है।

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक २३९, पृष्ठ ४७।

२. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १३वाँ त्रैवार्षिक विवरण, संपादक रा० ब० डॉ० हीरालाल, १९२६ ईसवी-१९२८ ईसवी, पुस्तक संख्या २३ ए, पृष्ठ १३३।

३. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पुस्तक ५५६, पृष्ठ ४६।

४. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक ६३५, पृष्ठ १०८।

१०३. गाँवों के पाठशालों और चटसालों का सन्देशपत्र

यह ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये गये प्रयासों से सम्बन्धित रचना है। इसमें तत्कालीन पाठशालाओं का विवरण लिखा गया है। इसमें सर्वत्र बोलचाल की भाषा का प्रयोग मिलता है जिसमें संस्कृत और फ़ारसी भाषा के सरल शब्द मिल गये हैं। इसके रचनाकार का नाम अज्ञात है, परन्तु भाषा के स्वरूप के आधार पर इसे १९वीं शती के चौथे दशक के अंतिम वर्षों की रचना स्वीकार किया जा सकता है। यह प्रति राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ में उपलब्ध है।

१०४. स्त्री शिक्षा[1]

यह स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित रचना बताई जाती है। इसका प्रकाशन १८४७ ईसवी में हुआ।

१०५. धर्म पुस्तक का अंत भाग

यह बाइबिल के न्यू टेस्टामेण्ट का यूनानी भाषा से खड़ीबोली हिन्दी में किया गया अनुवाद है। अनुवादक का नाम अज्ञात है। इसमें खड़ीबोली का स्वरूप ब्रजभाषा मिश्रित और कहीं-कहीं फ़ारसी भाषा से प्रभावित है, परन्तु संस्कृत की ओर झुका हुआ। यह ६४३ पृष्ठों की रचना है जो १८४८ ईसवी में कलकत्ते से प्रकाशित हुई। यह संस्करण हार्डिंग लाइब्रेरी, दिल्ली में उपलब्ध है।

१०६. गोपीचंद्र लीला[2]

यह "प्रहलाद चरित" के रचयिता किन्हीं लछिमन की रचना बताई जाती है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इसका समय १८४८ ईसवी बताया गया है।

१०७. गोस्तन शीतला[3]

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की खोज रिपोर्ट में इसे हिन्दी में लिखा

---

१. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ २९९।

२. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १३वाँ त्रैवार्षिक विवरण, संपादक रा० ब० डॉ० हीरालाल, १९२६ ईसवी—१९२८ ईसवी, पुस्तक संख्या २५५ ए, पृष्ठ ३९६।

३. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १८वाँ विवरण, द्वितीय भाग, १९४१ सन्-१९४३ ईसवी, संपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृष्ठ १००८।

बुलेटिन बताया गया है, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से चेचक के टीके लगाने का प्रचार करने के उद्देश्य को लेकर प्रकाशित किया गया था। इसमें टीके से लाभ आदि विषयों का वर्णन है। इसमें वाक्य गठन पर उर्दू भाषा का प्रभाव होते हुए भी खड़ीबोली की निजी शब्दावली का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। स्थान-स्थान पर संस्कृत स्रोत के तद्भव शब्दों की प्रधानता है। इसके रचना-काल, लेखक और सम्पादक सम्बन्धी कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता है। परन्तु इसके साथ जिल्द हुई तथा लिपिबद्ध हुई कुछ अन्य रचनाओं के आधार पर इसका रचनाकाल १८५० ईसवी के आस-पास माना जा सकता है।

१०८. राजनीतिशास्त्र

यह "राजनीतिशास्त्र" शीर्षक संस्कृत रचना के "काकोलुकी" शीर्षक तीसरे तंत्र की खड़ीबोली में लिखी टीका है। टीका के साथ मूलपाठ उद्धृत है। पुस्तक पोथी के आकार में मिलती है। इसका शीर्षक पृष्ठ फटा होने के कारण लेखक, लेखन-काल और लिपिकार आदि के सम्बन्ध में प्रामाणिक विवरण नहीं मिलते। पोथी के साथ जिल्द हुई तथा कुछ समकालीन अन्य रचनाओं की भाषा से साम्य होने के कारण इसे १८५० ईसवी के आस-पास लिखी रचना कहा जा सकता है। ब्रजभाषा का प्रभाव होने पर भी यह परिष्कृत खड़ीबोली की रचना है। यह नेशनल म्यूज़ियम, नई दिल्ली में उपलब्ध है।

१०९. मामूल अतित्वा सर्व[१]

यह टीपू सुल्तान (दक्षिण भारत का सुल्तान) कृत वैद्यक विषय की किसी रचना का खड़ीबोली में अनुवाद है। अनुवादक पंडित पूर्ण बल्लभ मिश्र बताये जाते हैं। मूल ग्रंथ फ़ारसी में है। यह पुस्तक गोस्तन शीतला नामक बुलेटिन के साथ जिल्द है।

११०. धार राजों की खबर

यह धार शहर और उसके शासकों से जुड़ी हुई इतिहास विषय की रचना है। इसमें "धार शहर का हाल", "सिन्धियों के खानदान का हाल" आदि कुछ महत्त्वपूर्ण पाठ हैं। इसकी भाषा व्यावहारिक खड़ीबोली है, जिसमें

१. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का १८वाँ विवरण, प्रथम भाग, संपादक—विश्वनाथप्रसाद मिश्र, १९४१—सन् १९४३ ईसवी, पुस्तक ८७, पृष्ठ ८९।

वर्तनी के स्तर पर शैथिल्य मिलता है। रचना के अन्त में उर्दू भाषा में एक "इशतिहार" भी दिया गया है। यह ४८ पृष्ठों की रचना है जो १८५० ईसवी में इंदौर से प्रकाशित हुई। रचना का शीर्षक पृष्ठ फटा होने के कारण अधिक विवरण नहीं मिलता है। इसकी एक प्रति इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में उपलब्ध है।

१११. बहारों की पुस्तक

यह बहीखाता रखने की विधि बताने वाली पुस्तक है। यह १८५० ईसवी में आगरा से प्रकाशित हुई। इसका विवरण "उर्दू मार्तण्ड" शीर्षक से मिलता है, जो इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में उपलब्ध है। इसका विवरण उक्त लाइब्रेरी के पुस्तक सूचीपत्र में भी मिलता है।

११२. महाजनी सार[1]

यह बहीखाता विधि की रचना है। यह १८५० ईसवी में इंदौर से प्रकाशित हुई।

११३. तर्क संग्रह

यह संस्कृत में लिखी "तर्क शास्त्र" शीर्षक रचना की टीका है। टीकाकार का नाम अज्ञात है। यह डॉक्टर बैलेण्टाइन के आदेश से तैयार की गई। यह १८५० ईसवी में इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। इसकी एक प्रति भारत कला भवन, वाराणसी में उपलब्ध है।

११४. तोता मैना की कहानी[2]

इसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलता है। इसके लेखक आगरा के कोई रंगीलाल हैं। इसका रचनाकाल १८५० ईसवी है।

११५. भोज प्रबंध[3]

इसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में मिलता है।

---

१. कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पुस्तक ७८८, पृष्ठ १३३।

२. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का १३वाँ विवरण, संपादक रा० ब० डॉ० हीरालाल, १९२६ ईसवी-१९२८ ईसवी, पुस्तक ३९९, पृष्ठ ५७९।

३. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का १४वाँ विवरण, संपादक पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, १९२९ सन्-१९३१ ईसवी, पुस्तक २९ के, पृष्ठ १३१।

यह रायबरेली निवासी किन्हीं बंशीधर की रचना है। इसका लेखन-काल १८५० ईसवी बताया गया है।

११६. हितोपदेश

यह वाराणसी पाठशाला के प्रधान अध्यक्ष डॉक्टर बैलेण्टाइन के आदेश से पंडित बद्रीलाल द्वारा खड़ीबोली में किया गया अनुवाद है। इसमें लघु कथाएँ हैं। संस्कृत से अनूदित होने के कारण इसमें संस्कृत के शब्द स्थान-स्थान पर मिलते हैं। इसका "मित्रलाभ" शीर्षक प्रथम भाग १८५१ ईसवी में आरफ़ेन प्रेस, मिर्जापुर से प्रकाशित हुआ। इसमें ६३ पृष्ठ हैं। यह नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

११७. गणित प्रकाश[1]

यह गणित विषय की पुस्तक है। इसके लेखक शिक्षा विभाग के कर्मचारी कोई श्रीलाल बताये जाते हैं। यह तीन भागों में हैं। इसमें गणित संबंधी पारिभाषिक शब्द भी मिलते हैं।

११८. रमसेना

यह ठग विद्या संबंधी कूट शब्दों का कोश है। इसके लेखक स्लीमैन हैं। यह नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में उपलब्ध है।

---

१. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का १४वाँ विवरण, संपादक पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, १९२९ सन्–१९३१ ईसवी, पुस्तक ३१६ ए, पृष्ठ ५८०।

अनुभाजन २

अभिलेख

कला संरक्षण का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। सभ्यता के आरम्भ से मानव ऐतिहासिक घटनाओं और सामाजिक-सांस्कृतिक निधियों को विविध साधनों से संरक्षित करता आ रहा है। उसने कभी प्रस्तर खण्डों या शिलालेखों, स्तम्भों और प्रतिमाओं में उकेर कर तो कभी ताम्रपत्रों, भोजपत्रों और कागजों पर लिपिबद्ध कर अपनी विरासत को समेटा और सहेजा है। उसने विभिन्न लोककलाओं के माध्यम से भी सांस्कृतिक सम्पदा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

इसी क्रम में भाषा और लेखन-कला के पुराने इतिहास को भी विविध रूपों में संरक्षित किया जाता रहा है। इसका एक रूप जहाँ शिलाओं, ताम्र-पत्रों, अवशेषपात्रों, स्तम्भों, गुफाओ, प्रतिमाओं, सिक्कों, मुहरों, आयाग पट्टों, ईटों या मृत्तिका पात्रों में सुरक्षित किया गया तो दूसरा रूप अभिलेखों[1] में संरक्षित मिलता है। अभिलेख पूर्वमध्यकाल (१००० ईसवी से १२०० ईसवी) से पूर्व के नहीं मिलते। पूर्वमध्यकाल से ही हमें कलात्मक साहित्य से इतर क्षेत्रों में भाषा और लेखन की विकास-यात्रा का इतिहास मिलने लगता है।

अभिलेखों में हिन्दी भाषा के प्राचीनतम उदाहरण १४वीं शती (१३२८

---

१. यहाँ अभिलेखों से तात्पर्य काग़जों पर लिखित क्रियाकलापों से है। इस व्यापक अर्थ में विभिन्न आकार-प्रकार के दैनिक उपयोग के पत्र (सामाजिक पत्र, पारिवारिक पत्र, व्यावहारिक पत्र), आधिकारिक पत्र, व्यावसायिक पत्र (बही, हुंडियाँ, रसीदें), राजनैतिक पहलुओं से संबधित पत्र अर्थात् अदालती कार्यवाहियाँ और प्रशासनिक पत्र (अहदनामें, इकरारनामें या करारनामें) (प्रतिज्ञापत्र), इजहारनामें (ग़वाही), सनदें (प्रमाणपत्र), अर्ज़ियाँ (प्रार्थनापत्र), ख़रीते (आज्ञापत्र), परचे (कूटनैतिक पत्र), कैफियतें (समाचार-पत्र), हुक्मनामें, खेतों के मानचित्र और धार्मिक स्थलों से प्राप्त पण्डों की लिखी बहियाँ आदि हैं।

ईसवी) में लिखी सनद में मिलते हैं।[१] यह मेवाड़ी भाषा में है, जिसमें मेवाड़ी के साथ-साथ खड़ीबोली की प्रकृति के कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह सनद राजा पृथ्वीराज और राजा समरसी से सम्बन्धित है। प्रादेशिक भाषाओं के साथ खड़ीबोली के मिश्रण की यह शृंखला आगे भी चलती रही। अकबर के मंत्री टोडरमल ने सरकारी कामकाज में महाजनी के अभिलेखों में हिन्दी का प्रचलन किया।[२] इसी समय गोस्वामी तुलसीदास के एक पंचनामे में भी खड़ीबोली के शब्द मिलते हैं। यह भदैनी के किन्हीं दो भाइयों के मध्य हिस्सा बाँट करने के सन्दर्भ में लिखा गया है।[३] शेरशाह सूरी ने भी अपने शासनकाल में फ़ारसी के साथ प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी भाषा का प्रयोग बनाये रखा। इस शासन की एक सनद १६ दिसम्बर, १५४० ईसवी की फ़ारसी में लिखी मिलती है।[४] यह हमीदपुर परगना संडीला में माफी रूप में भूमि देने के सन्दर्भ में लिखी गई है। इसका हिन्दी रूपांतर भी साथ में दिया गया है। यह कैथी लिपि में है। इसमें प्रयुक्त "बीगहा", "इनाम", "जमीन" आदि शब्द आज हिन्दी की सम्पत्ति बन चुके हैं। औरंगजेब के शासनकाल में अदालती भाषा तो फ़ारसी बनी रही, परन्तु मालगुज़ारी के अभिलेखों में फ़ारसी के साथ हिन्दी की प्रकृति के कुछ शब्द यथावत् प्रयुक्त होते रहे। इस समय किबालों के हिन्दी अनुवाद होने आरंभ हो गये थे।[५] हिन्दी में किबाले लिखने की परंपरा अंग्रेज़ों के शासनकाल तक चलती रही। इस समय पट्टे, रेहन्नामें के भी हिन्दी अनुवाद होते रहे। इन साक्ष्यों से पता चलता है कि १४वीं से १६वीं शती तक खड़ीबोली का प्रसार विभिन्न प्रदेशों तक हो चुका था और विभिन्न अदालती कार्यवाहियों में हिन्दी का प्रयोग हो रहा था।

प्रादेशिक भाषाओं के साथ खड़ीबोली के प्रयोग के उदाहरण मराठा शासन के पत्रों में भी मिलते हैं। १७वीं शती में पन्ना के मराठा शासक राजा छत्रसाल के राज्य के कुछ अभिलेख हिन्दी में मिलते हैं।[६] यह पत्र महाराजा

१. गौतम, प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ ६७ तथा पृष्ठ १३७।

२. तथा ३. मुसलमानी दफ्तरों में हिन्दी, राधाकृष्ण ग्रंथावली, संपादक श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ ८६।

४. राज्य अभिलेखागार, उत्तर प्रदेश लखनऊ के सौजन्य से उपलब्ध।

५. मुसलमानी दफ्तरों में हिन्दी, राधाकृष्ण ग्रंथावली, संपादक श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ ८६ तथा पृष्ठ ८७।

६. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के सौजन्य से उपलब्ध।

छत्रसाल के द्वारा अपने दो पुत्रों हृदयशाह और जगतराज को लिखे गये हैं। हृदयशाह और जगतराज के मध्य परस्पर व्यवहार दिखाने वाले पत्र भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। यह पारिवारिक और राजनैतिक प्रसंगों से जुड़े हैं। अधिकांश पत्रों में महाराजा छत्रसाल और उनके पुत्रों के साथ बाजीराव पेशवा प्रथम के व्यवहार की चर्चाएँ हैं। इन पत्रों की "लिषी" और "लिखत" संज्ञाएँ की गयी हैं। यह ब्रजभाषा और बुन्देली मिश्रित खड़ीबोली में लिखे गये हैं। ब्रजभाषा और बुन्देली का प्रभाव रूपात्मक प्रत्ययों में द्रष्टव्य है। "हमनै" "बहू", "परगने", "आपकी", "मेहरबानी" आदि शब्दों को खड़ीबोली से पृथक् नहीं किया जा सकता। इस काल का प्राचीनतम उदाहरण १६८८ ईसवी तक का मिलता है। इन साक्ष्यों से विदित होता है कि १७वीं शती तक खड़ीबोली मध्य प्रदेश तक विस्तार पा चुकी थी।

इसी क्रम में देशी रियासतों के नरेशों और उनके कर्मचारियों द्वारा पेशवाओं और मराठा सरदारों को तथा शासनाधिकारियों को लिखे गये पत्र भी रखे जा सकते हैं। शासनाधिकारियों के द्वारा देशी नरेशों और उनके राजघरानों तथा कर्मचारियों को लिखे गये पत्रों की अथाह निधि संग्रहालयों और अभिलेखागारों में सुरक्षित है। ये सभी पत्र खड़ीबोली में हैं।[1] इसी अवधि के किन्हीं वररुचि नामक लेखक का "पत्र-कौमुदी" शीर्षक एक पत्र-संग्रह प्राप्त होता है। यह बँगला सन् १२०४ के २८ भाद्र (१७४० ईसवी के लगभग) का लिखा हुआ बताया जाता है। इसमें फ़ारसी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली मिश्रित स्वरूप में कुछ पत्र संगृहीत हैं। इसमें लेखक ने अपनी भाषा को "हिन्दुस्थानीय" कहा है। पुस्तक के संदर्भ में लिखते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "यह पत्र ऐसे समय में लिखे गये जब कि देश ब्रिटिश शासन के अधीन तो नहीं था परन्तु उसका डर बराबर बना हुआ था। इसके अलावा पत्रों से पता चलता है कि उन दिनों राजकीय पत्र-व्यवहार में मुसलमानी शासन सूचक शब्द भी प्रचलित थे। इन बातों से पुस्तक के लिखे जाने का समय पलासी की लड़ाई से पहले का जान पड़ता है।"[2]

नेपाल के मल्ल राजाओं के कुछ पत्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें देवनागरी

---

१. देखें, केलकर काशीनाथ शंकर, १८वीं शती के हिन्दी पत्र, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।

२. द्विवेदी, डॉ० हजारीप्रसाद, दो सौ वर्ष पुरानी खड़ीबोली के नमूने, विशाल भारत, अप्रैल १९४०, पृष्ठ ३६६।

और बँगला लिपि में मैथिली के साथ खड़ीबोली के कुछ शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इनका एक अभिलेख १७१७ ईसवी—१७५३ ईसवी के मध्य का मिलता है।[१] इसी के आसपास (लगभग १७३७ ईसवी) का एक अन्य पत्र शाहजहाँ अजीमुद्दीन द्वारा राजा अमरसिंह को भेजा गया प्राप्त होता है। यह फ़ारसी और ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली में लिखा गया है।[२] इसी प्रकार का एक पत्र जयपुर के राजा टोडरमल जैन द्वारा १७५४ ईसवी का लिखा मिलता है।[३] इसमें खड़ीबोली का स्वरूप ब्रजभाषा और राजस्थानी मिश्रित है। ऐसा ही एक अन्य पत्र १७६० ईसवी का लिखा मिलता है। यह किन्हीं सूबेदार जनकोजी सिन्धिया द्वारा किसी उमेदसिंह को उनकी लूटमार करने की प्रवृत्ति के सन्दर्भ में लिखा गया है।[४]

इसी शती में कचहरी के दस्तावेजों और धार्मिक स्थलों के पण्डों की बहियों में भी खड़ीबोली अपने मिश्रित स्वरूप में प्रयुक्त की जा रही थी। १७३५ ईसवी के लगभग भोजपुरी में लिखित बैनामें में खड़ीबोली के स्फुट शब्द मिलते हैं।[५] १७८१ ईसवी के आसपास का एक पत्र कचहरियों में काम करने वाले कायस्थों का मिलता है।[६] इसमें फ़ारसी के साथ खड़ीबोली का प्रयोग है। इसी समय की कुछ अन्य बहियाँ मिश्रित खड़ीबोली में प्राप्त होती हैं। इन साक्ष्यों से विदित होता है कि १८वीं शती तक सामाजिक, धार्मिक, प्रशासनिक, व्यापारिक तथा अदालती तिथियों में फ़ारसी और प्रादेशिक बोलियों के साथ-साथ खड़ीबोली समान रूप से प्रचलित हो चुकी थी। यह बुन्देलखण्ड, राजस्थान, महाराष्ट्र से लेकर पूर्व में अवध, मिथिला और भोजपुर क्षेत्र से लेकर बंगाल तक विस्तार पा चुकी थी। यह विस्तार ही उसकी समन्वयात्मक क्षमता का उदाहरण है।

इस प्रकार जैसे-जैसे दस्तावेज तैयार करने की ऐतिहासिक कला प्रौढ़ होती गई वैसे-वैसे खड़ीबोली के प्रसार और विकास की स्वस्थ परम्परा का क्षेत्र व्यापक और समृद्ध होता गया। ''ईस्ट इंडिया कम्पनी'' के शासनकाल के अंत तथा १९वीं शती के आरंभिक वर्षों से खड़ीबोली के विशुद्ध स्वरूप में

---

१. खनाल, मोहन प्रसाद, अभिलेख संकलन, पृष्ठ ३० तथा ३१।

२. शुक्ल, डॉ० केसरी नारायण, कतिपय राजकीय पत्र, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५ अंक ३, संवत् २०१० (१९५३) पृष्ठ १९३ तथा १९४।

३, ४, ५, ६. गौतम, डॉ० प्रेम प्रकाश, हिन्दी गद्य का विकास, पृष्ठ १९३।

लिखे अनेक पत्र आदि मिलते हैं, जिनमें न तो फ़ारसी का प्रभाव मिलता है और न प्रादेशिक भाषाओं का पुट। ऐसे अनेक पत्र फाइलों में छिपे पड़े हैं। इनमें मध्यकालीन ब्रजभाषा की कथावाचक गद्य शैली के दर्शन कहीं-कहीं हो जाते हैं। इनके लिखवाने वालों तथा लिखने वालों ने इनकी भाषा के लिए "हिन्दुई", "हींदवीं", "हीन्दुस्तानी" का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं भाषा के साथ-साथ लिपि के लिए भी "हींदुई" और "हिन्दुई" शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन पत्रों को "षत", "चिट्ठी", "परचे", "कागज", "कागद", "मुरासला", "खबर", "लिषि" और "लिखत" कहा गया है। इस समय तक पत्र के लिए "लिषि" शब्द सर्वमान्य हो चुका था। यह १८४१ ईसवी तक साहित्य में चलता रहा। इसका उदाहरण पत्र-शैली में लिखित "पत्र-मालिका" शीर्षक रचना में मिलता है। इस कालखण्ड के उपलब्ध पत्र मुख्य रूप से निम्नलिखित विभागों में रखे जा सकते हैं—१. राजदरबारों के पत्र, २. भूपतियों और जनसाधारण द्वारा गवर्नर जनरलों को प्रेषित पत्र, ३. ऐजेन्सियों और रियासतों से संबंधित पत्र, ४. फॉरन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट से संबंधित पत्र, तथा ५. धार्मिक स्थलों के पण्डों की बहियाँ इत्यादि।

राजदरबारों में खड़ीबोली के प्रयोग के प्रमाण पंजाब के महाराज रणजीत सिंह के दस्तावेजों में मिलते हैं। यह १९वीं शती के आरंभिक दशकों में लिखे गये हैं। इनका एक संकलन ६ फरवरी १८३१ ईसवी से जुलाई १८३२ ईसवी के मध्य लिखे गये कूटनीतिक पत्रों का मिलता है।[१] इन्हें "परचे" या "षबर" कहा गया है। बताया जाता है कि ये "षबरें" उनके किसी विश्वासपात्र ने संकलित करके अनधिकृत रूप से लाहौर दरबार तक पहुँचाई थी। यह फ़ारसी लिपि में रहती थीं और पटियाला में इनकी "गुरुमुखी लिपि" की जाती थी। पंजाब में इस प्रकार के कूटनीतिक "परचों" की एक स्वस्थ परंपरा १८१० ईसवी से लेकर प्रथम सिक्ख युद्ध तक मिलती है। रणजीत सिंह की पत्नी महारानी जिन्दकौर के कुछ पत्र मिलते हैं, इन पत्रों को "परचे" कहा गया है।[२] ये लाहौर दरबार के प्रथम ब्रिटिश रेजीमेण्ट हेनरी लारेन्स को भेजे गये हैं। इन्हें गुरुमुखी लिपि में लिखी "हिन्दवी" की चिट्ठियों का तरजुमा कहा गया है। यहाँ "हिन्दवी" से तात्पर्य पंजाबी मिश्रित खड़ीबोली माना जा सकता है।

कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पत्र नेपाल के महाराजा और महारानी के सन्दर्भ में

१. तथा २. राजगुरु, गोविन्दनाथ, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य, पृष्ठ १७१, १७२, १८०, ३०७, ३१०।

मिलते हैं। नेपाली ब्रजभाषा और संस्कृत मिश्रित खड़ीबोली की कुछ अर्जियाँ भी उपलब्ध होती है।[1] यह भारत और नेपाल के ऐतिहासिक संबंधों पर प्रकाश डालती है। यह भारतीय पत्र-लेखन शैली के उदाहरण हैं।

इसी समय के अन्य हिन्दी अभिलेखों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन-काल में संयुक्त प्रदेश में सदर बोर्ड के 'इत्तलानामे' की नकल[2] तथा लल्लू जी लालकवि कृत 'प्रेमसागर' के नये संस्करण के प्रकाशन के लिए राजकीय संस्कृत कालेज के अध्यापक पंडित योगध्यान मिश्र का जुलाई १८४१ ईसवी में राजकीय सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखित पत्र उल्लेखनीय है।[3] १८५५ ईसवी में कुरुक्षेत्र के सूरजकुण्ड के पण्डों की कुछ बहियाँ उपलब्ध होती हैं। इनमें तीर्थ-स्थल पर यात्रियों और उनके संबंधियों के आने का विवरण, कुटुम्ब के लोगों से उनका नाता-रिश्ता इत्यादि लिखा गया है। इनमें सभी शब्द हिन्दी भाषा के हैं। 'बेटा', 'पोता', 'आया' शब्द इसी प्रकार के हैं। इसका एक वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत है,

'कोबरसीध चंदासीध का बेटा सुरती का
पोता कोबरसीध आया।''[4]

१९वीं शती के आरंभ से ही बुन्देलखंड एजेन्सी; सेण्ट्रल इंडिया एजेन्सी, बघेलखंड एजेन्सी, राजपूताना एजेन्सी तथा 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' में भी खड़ीबोली पत्र-व्यवहार की भाषा बन चुकी थी। इन विभागों के विभिन्न आकार-प्रकार के तथा विभिन्न विषयों के पत्रों में खड़ीबोली कहीं विशुद्ध रूप में तो कहीं फ़ारसी, अवधी, बुन्देली, ब्रजभाषा, राजस्थानी, भोजपुरी और नेपाली भाषाओं के साथ मिलकर प्रयुक्त हो रही थी। शब्द स्तर पर मिश्रित होने के साथ इसमें भाषा-व्यवस्था की शिथिलता बनी हुई थी। निम्नलिखित उदाहरणों में इसका विशुद्ध रूप द्रष्टव्य है। यह 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के पत्रों से है,

'.........जब हम डेढ़ पहर रात जाते दारोगा
कीहाँ गऐ थे तब दारोगा ने हमको

१. Ancient Nepal, Vol. 2. 1968 and Vol. 18, 1972।
२. वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ३२७।
३. वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ३७७।
४. सूरजकुण्ड, कुरुक्षेत्र के सौजन्य से उपलब्ध।

गरदनीआँ देके नीकाल दीआ औ
राधाको अपने मकान मो रखा था
इआ नही...............
× × ×
हमारा इजहार हीदवी मो लीखा जाऐ
हीदवी बोलते हैं ...."[1]

तथा,

।। श्री ।।

।। श्री गंगाजलनीर्मल जमुना जल पवीत्र भागी
।। रथी समान मातु श्रीवाइ साहेवजी योग्य प्रती
।।श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र ते अधीकारी गुरुमुखदास कृतानेक
।। जै श्रीराम उपरी इहा समस्त कुशल आपका कुशलादीश्री
।। जी सनंधत्रीकाल चाहते है आगु आपका पत्र पहुचा था—"[2]

अलंकृत शैली में लिखे इस उदाहरण को देखकर यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि इंशा अल्ला खाँ ने जिस समय 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की उस समय समाज के एक वर्ग में हिन्दी का विशुद्ध स्वरूप प्रयोग किया जा रहा था। खड़ीबोली के फ़ारसी मिश्रित स्वरूप का निम्नलिखित उदाहरण 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के एक पत्र से उद्धृत है। इसमें 'श्री', 'सरब' (सर्व) 'ओपमा' (उपमा), 'भले', 'समाचार', 'संदेह' और 'चाहना' हिन्दी के शब्द हैं तथा 'मुफसल', 'हरगिज,' 'मामले' आदि फ़ारसी भाषा के शब्द हैं,

"नकल हींदवी षत की
× × ×
।। सिध श्री सरब ओपमां महाराज श्री विरध
सिंह जी जोग्रराजी श्री श्री सुवैदार जी श्री
माधो राव् जी सिंधे केन.........बंचन

१. अभि० १७ क. Foreign Department, Persian Branch, Hindi Controlling Agency, Letter received, 19th January 1798. No. 42.

२. अभि० ४० क. Foreign Department, Letter received, 25th January. No. 35।

अठा का समाचार भला है उंहां के
समाचार भले चाही जै अपरंच कागद
राज का राव, राजाजी के नांव आया
समाचार मुफसल मालुम हुवा सो
तुम जैपुर के मामले को संदेह
हरगिज न करोगे ....''[१]

क्षेत्रीय बोलियों का मिश्रण निम्नलिखित उद्धरण में द्रष्टव्य है,

''..........जिस रोज हम इहा आये तिसके दूसरे रोज राजा मोहन सीध के इलाके के लोग मौजे पटना वाले आइकै जलाइ गये सो इनके पास लोग दौरे आये सो इन्हौने हुकुम दिया अपने सिपाहियों कौ की तुम भी उन्हों के गाव फूक आवो सो लाला ठाकुरदास मुषत्यार नै मनै किया की आप या वात ना कीजिये इसमैं विरोवरी ठहरती है ..''[२]

प्रस्तुत स्थल पर इन पत्रों के आकार-प्रकार, विषय तथा लेखन-शैली (विधि) पर भी किञ्चित् प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। विदित है कि भारत में मुग़ल और मराठा शक्तियों के ह्रास के पश्चात् देश का शासन पूर्णतः "ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी" के अधीन हो गया था, जिससे देशी रियासतों के प्रबंध भारत-सरकार के गवर्नर जनरलों के द्वारा संचालित होने लगे थे। ये अपने शासकीय प्रबंधों को रेज़ीडेण्टों या पोलिटिकल एजेण्टों के माध्यम से संचालित करते थे जो एक विशेष संस्था रेजीडेन्सी या पोलिटिकल एजेन्सियों से जुड़े होते थे। यह प्रबंध बड़ी रियासतों में रेज़ीडेण्टों के द्वारा और छोटी रियासतों में पोलिटिकल एजेण्टों के द्वारा संचालित होते थे। पोलिटिकल एजेण्ट "पोलिटिकल ऑफिसर" भी कहलाते थे। संस्थाओं के संगठनों (organizations) में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते थे। विभिन्न रियासतों में इन एजेण्टों के विभिन्न विषयों के वकील होते थे, जो राज्य की व्यवस्था का निरीक्षण और देखभाल करते थे। इन वकीलों द्वारा एजेण्टों को और एजेण्टों द्वारा

---

१. अभि० ५२ क. Foreign 1819 Department, Letter Received 3rd April: 132।

२. अभि० ३ क. Baghelkhand Agency Records, List 1805-1916 B. File 1/1812।
(Dispute between Bundelkhand and Kothi for the possession of the kanpur.)

राज्यप्रधानों, राजा-महाराजाओं और रेजीडेण्टों को, मंत्रियों या दीवानों द्वारा राजा-महाराजाओं और राजकुमारों और राजकुँवरों को लिखे गये शासकीय पत्र, वकीलों और उनके चपरासियों के मध्य हुए पत्र-व्यवहार तथा इन व्यक्तियों द्वारा अपने पारिवारिक जनों को घरेलू-प्रसंगों में लिखे गये पत्र करोड़ों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। इनकी संख्या अनुमानतः पच्चीस करोड़ या इससे भी अधिक आँकी जा सकती है। इन्हें लम्बाई में पच्चीस किलोमीटर से भी अधिक के परिमाप में रखना कम ही होगा। स्पष्ट है कि इस समय न केवल शासकीय और अदालती कार्यवाहियों के लिए वरन् सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्रों में भी हिन्दी में पत्र-व्यवहार की महत्ता स्वीकृत हो चुकी थी।

शासकीय और अदालती कार्यवाहियों में अहदनामें, इकरारनामें या करारनामें (प्रतिज्ञापत्र), इजहारनामें (अदालती गवाही), सनदें, (प्रमाण-पत्र), अर्जियाँ (प्रार्थना-पत्र), खरीते (आज्ञापत्र), परचे (कूटनैतिक पत्र), कैफियतें (समाचार-पत्र) और हुकमनामें सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दी भाषा में लिखे मानचित्र, हुंडियाँ और रसीदें भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती हैं।

इन सभी अभिलेखों के मुख्य विषय राज्य-सीमा-सुरक्षा, नमक-विभाजन, गोद लेना, उत्तराधिकार मिलना, एक राज्य से दूसरे राज्य में माल का आयात और निर्यात, मालगुजारी या लगान की वसूली, सीमा-सुरक्षा संबंधी नीतियाँ, सैन्य-संगठन, 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' से प्रतिशोध लेने की कूटनीति तथा उससे मित्रता बनाये रखने की मानसिकता का प्रसार तथा अन्य अनेक प्रकार की राजनैतिक शिक्षा देना आदि हैं। झूठे आरोपों का खण्डन और आक्षेपों से क्षुब्ध होकर बदला लेने की भावना, अपने आश्रय-दाताओं को शासन-व्यवस्था संबंधी तथ्यों से अवगत करवाने आदि से जुड़ी अनेक प्रवृत्तियों की चर्चा इनमें मिलती है। इनके साथ पारिवारिक या व्यक्तिगत विषय भी उल्लिखित हो गये हैं, जिनसे पता चलता है कि इस समय शासकीय कार्यवाहियों और पारिवारिक पत्रों की लेखन-शैली में कोई भेद विकसित न हो सका था। आर्थिक तंगी, संबंधियों की बीमारियाँ, पारिवारिक सदस्यों के खान-पान और वस्त्र आदि की समस्याएँ स्थान-स्थान पर लिख दी गयी हैं। ये अभिलेख राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक परिवेश, आर्थिक सम्पन्नता और विपन्नता, उन्नत कला-कौशल, जनता का शैक्षिक स्तर और व्यक्तिगत अभिरुचि भी प्रकट कर देते हैं। इससे पता लगता है कि इस समय तक भूमि राजस्व और नमक आदि आय के साधन थे। एक राज्य से दूसरे राज्य में आयात-निर्यात

प्रणाली थी। प्रत्येक राज्य अपनी सीमा-सुरक्षा का विशेष प्रबंध रखता था। निम्न स्तर के पदों (यथा, चपरासी आदि) पर कार्यरत कर्मचारी साक्षर था। वह अपनी बोली से अतिरिक्त खड़ीबोली (हिन्दी) का अच्छा ज्ञान रखता था। अनेक पत्र इन्हीं व्यक्तियों के द्वारा भी लिखे गये हैं। इस प्रकार ये पत्र अपने युग और समाज के प्रतिबिम्ब हैं। इनमें से अधिकांश पत्रों का ऐतिहासिक महत्त्व या राजनैतिक महत्त्व चाहे न हो परन्तु, भाषा अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

इन पत्रों में खड़ीबोली का प्राचीनतम नमूना १८०८ ईसवी का मिलता है। यह बुन्देलखण्ड एजेन्सी का है। इससे पूर्व के पत्र भी मिलते हैं परन्तु, अत्यंत जीर्ण अवस्था में होने के कारण उन्हें पढ़ लेना संभव नहीं हो सका। इसके पश्चात् १८०६ ईसवी से सेण्ट्रल इंडिया एजेन्सी के, १८१२ ईसवी से बघेलखंड एजेन्सी के तथा १८२४ ईसवी से राजपूताना एजेन्सी के पत्र मिलते हैं। यह हिन्दी में हैं। 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के पत्र १७६५ ईसवी से मिलते हैं। यह भी खड़ीबोली के विशुद्ध और मिश्रित रूप में लिखे गयें हैं।

ये पत्र हस्तलिखित प्राप्त होते हैं। इनमें अनेक पत्र मौखिक ढंग से बोलकर लिखवाये गये प्रतीत होते हैं और आरंभ से अंत तक एक ही व्यक्ति के द्वारा लिखे गये हैं। इनके तैयार करने वालों ने अपनी-अपनी रुचि तथा लेखन-अभ्यास के कारण वर्णों को तोड़ा-मरोड़ा है, जिससे वर्ण कहीं तो कैथी और मोड़ी के निकट पहुँच गये हैं तो कहीं देवनागरी के प्रारंभिक और आधुनिक स्वरूप से भिन्न नहीं रह गये हैं। यह अवस्था अ, ख, ष, क, न, भ, य, व, र और ह वर्णों की है। शब्दों के मध्य आवश्यक दूरी रखे बिना दूसरा शब्द लिखने और पूरे वाक्य को एक शिरोरेखा से जोड़ देने के कारण एक वाक्य दूसरे वाक्य से और एक शब्द दूसरे शब्द से पृथक् कर पढ़ना श्रमसाध्य है। वाक्य-पृथक्करण में विराम-चिह्न न होने के कारण भी इन अभिलेखों का पढ़ना सरल नहीं रह गया है। अनुच्छेद-विभाजन की प्रणाली भी इनमें कहीं नहीं मिलती। इसलिए 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के पत्रों की अपेक्षा एजेन्सियों के पत्र पढ़ना और भी कठिन है। इनकी भाषा-व्यवस्था भी शिथिल है। इससे पता चलता है कि ये पत्र कदाचित् उन लोगों द्वारा तैयार किये गये हैं, जिनको हिन्दी का अच्छा ज्ञान न था अथवा वे अपनी मातृभाषा से अतिरिक्त कोई अन्य भाषा ठीक से बोल नहीं सकते थे।

पत्रों के विषय, भाषा और लिपि में भिन्नता होने पर भी इनके आकार-

प्रकार और बाह्य कलेवर में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं हुआ है। इनका आकार-प्रकार, बाह्य सज्जा, लेखन विधि तथा तथ्य प्रस्तुतीकरण की शैली प्रायः एक समान है। पत्रों का आकार-प्रकार विषय के अनुरूप छोटा और बड़ा है। संक्षिप्त विवेचन के लिए एक या आधे पृष्ठ का और विषय के विस्तृत वर्णन के लिए तेरह से लेकर चौदह या पन्द्रह पृष्ठों तक का प्रयोग हुआ है। इनके पृष्ठों की लम्बाई ६″ से लेकर २२″ तक है। कहीं-कहीं इससे भी अधिक हो गयी है। चौड़ाई ५½″ से लेकर ८″ तक है। प्रसंग निर्बाध रूप से प्रस्तुत करने और सप्रवाह लिखने के लिए पृष्ठ लम्बाई में क्रम से चिपका कर बढ़ाये गये हैं, जिससे एक पृष्ठ आठ से लेकर नौ फुट तक लंबा हो गया है। पृष्ठ लम्बा करने की यह शैली एजेन्सियों में प्रचलित थी। 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' में विषय के विस्तृत विवेचन के लिए पृष्ठ पृथक्-पृथक् रखे गये हैं। यहाँ एजेन्सियों के समान पृष्ठ क्रम से चिपका कर लम्बा करने की विधि प्रचलन में नहीं आयी थी। इस शैली के आधार पर एजेन्सियों और 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के पत्रों को स्पष्ट पहचाना जा सकता है।

अभिलेखों की बाह्य सज्जा या बाहरी कलेवर भी कम आकर्षक नहीं है। इनका बाह्य कलेवर तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश तथा उन्नत कला-कौशल का वैभव दिखाता है। इससे राजा-महाराजाओं की संपन्नता, अभिरुचि तथा सामाजिक पद-प्रतिष्ठा से परिचय तो मिलता ही है, पत्र तैयार करने वालों की योग्यता का भी पता चलता है। इनमें चाहे राजकीय विषयों की चर्चा हो या घरेलू बातों की, इनके बाह्य कलेवर में कोई अंतर नहीं मिलता। इनके मुखपृष्ठ पर मुग़ल शैली में मेहराब के आकार में सुनहरे तथा लाल, पीले और हरे रंगों से सूक्ष्म बेलबूटे चित्रित हैं। इन रंगों की आभा और चमक आज भी ज्यों-की-त्यों ताज़ी बनी हुई है। यह धूमिल या फीकी नहीं पड़ी है। रंगों की मज़बूती और चढ़त काग़ज़ पर आज तक स्थिर है। सामान्य विषय के पत्रों में केवल मुखपृष्ठ पर या केवल प्रथम पृष्ठ पर तथा अति महत्त्वपूर्ण विषय के पत्रों के प्रत्येक पृष्ठ पर किसी-न-किसी आकार-प्रकार में बेलबूटे चित्रित हैं। बेलबूटे वाली यह कला राजपूताने की कोटा शैली का सुन्दर उदाहरण है। यह इनके लिखने और लिखवाने वालों की शाही अभिरुचि की परिमापक भी है। इससे पता लगता है कि इस समय का नागरिक अपनी सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति कितना सजग रहता था। वह उन्नत कला-कौशल से अपना नाता बनाये रखना चाहता था। कलात्मक चित्रकारी वाले अभिलेख लिखने की पर-

म्परा एजेन्सियों में विशेष रूप से प्रचलित थी। 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के कुछ अभिलेखों के मुखपृष्ठ पर तथा कुछ के भीतरी पृष्ठों पर रंगीन और सुनहरे ठप्पे से बनी चित्रकारी मिलती है। इससे पता चलता है कि इस विभाग में एजेन्सियों के समान साज-सज्जा से संवलित अभिलेख तैयार करने की प्रणाली अधिक प्रचलित न हो सकी थी। मुग़लकालीन इस चित्रकला का प्रभाव और विस्तार राजपूताना, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और सेण्ट्रल इंडिया से लेकर महाराष्ट्र तक हो चुका था। सुनहरी नक्काशी अथवा ठप्पेवाली चित्रकारी १८वीं शती के मराठी भाषी क्षेत्रों में लिखे हिन्दी पत्रों में भी मिलती है।[१] यह किसी-न-किसी रूप में १९वीं शती के आरंभिक वर्षों तक प्रचलित रही। इसके पश्चात् कार्यालयीय अभिलेखों में सुनहरी नक्काशी और ठप्पेवाली चित्रकला का प्रचलन धीरे-धीरे समाप्त होता गया। आज कार्यालयीय पत्रों में यह कला समाप्त हो चुकी है परन्तु निजी स्तर पर लिखे जाने वाले व्यक्तिगत पत्रों में यह प्रणाली कम और अधिक अनुपात में सुरक्षित है। यहाँ भी हस्त-कलाकारी का स्थान मशीन प्रिण्ट ने ले लिया है।

इन अभिलेखों की तैयारी में प्रयुक्त उपकरणों यथा, लेखन-सामग्री (काग़ज़, कलम और स्याही) का विशेष स्थान है। इनकी तैयारी में प्रयुक्त काग़ज़, स्याही और कलम विशिष्ट और विविध प्रकार के हैं। अति साधारण विषयों से सम्बद्ध अभिलेख बाँस से निर्मित काग़ज़ों पर लिखे गये हैं। यह हाथ से बनाये गये हैं। यह स्वदेशी और विदेशी काग़ज़ हैं। स्पष्ट होता है कि इस समय हाथ से काग़ज़ बनाने का उद्योग बड़े पैमाने पर था। ये काग़ज़ हल्के पीले और नीले रंग के हैं, जिनमें बाँस के रंग की अथवा कहीं-कहीं नीले थोथे के रंग की झलक स्पष्ट होती है। कुछ काग़ज़ों पर अनेक प्रकार के जल-चिह्न या जलांक (Water Marks) दिखाई देते हैं, जिनसे तत्कालीन काग़ज़ बनाने वाली कम्पनियों तथा काग़ज़ के तैयार होने के स्थान और समय आदि की प्रामाणिक जानकारी होती है। ऐसे जल-चिह्नों में से एक उदाहरण 'MSS SOUNDARY 1837' है। यह जलांक इस अवधि के अनेक अभिलेखों में मिलता है। इस प्रकार के विवरणों से भी अभिलेखों के लेखन-काल आदि की प्रामाणिकता सुनिश्चित करने में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

ब्रिटिश-सरकार द्वारा लिखित खरीते टिक्कीदार और कश्मीरी सादे काग़ज़ों पर हैं। ये किसी राजा को उसके पद और प्रतिष्ठा के अनुरूप दी

१. देखें, केलकर काशीनाथ, १८वीं शती के हिन्दी पत्र।

जाने वाली तोपों की सलामी को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। टिक्कीदार या खीमख़ाम (एक प्रकार का मखमली कपड़ा) कपड़े का उपयोग पन्द्रह से इक्कीस तोपों की सलामी वाले राजा या प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए तथा कश्मीरी सादे काग़ज़ों का प्रयोग तेरह तोपों से नीचे की सलामी वाले राआओं के सन्दर्भ में लिखे अभिलेखों के लिए हुआ है।

इन अभिलेखों में विभिन्न प्रकार की स्याहियों का उपयोग हुआ है। स्याही का चुनाव पत्र के विभिन्न अंशों को ध्यान में रखकर किया गया है। मुख्य भाग देशी काली स्याही से तथा शेष अंश, जैसे, 'नकल', 'सही', 'Copy' आदि विवरण और टिप्पणियाँ विशेष प्रकार की स्याही 'Iron gall Ink' से लिखी गयी हैं। यह हल्के भूरे रंग की हैं और अनेक स्थानों पर फीकी पड़ने लगी हैं। यह स्याही व्यापारियों के यहाँ बहियाँ लिखने के लिए विशेष रूप से तैयार की जाती है। इनके लिखने की अन्य सामग्री में सेंठे की बनी देशी कलमें तथा कहीं-कहीं निब वाली कलमें महत्त्वपूर्ण हैं। यहीं से हमें हिन्दी लिखने के लिए निब वाली कलम के प्रयोग की परम्परा मिलने लगती है।

अभिलेखों की प्रामाणिकता टिप्पणी रूप में लिखे गये 'सही' (अर्थात् मूल प्रति) शब्द से तथा इन पर लगी सीलों से सिद्ध होती है। मूल अभिलेखों पर राजा-महाराजाओं, गवर्नर जनरलों तथा वकीलों और उनके एजेण्टों के नाम की सीलें मिलती हैं। प्रतिलिपियों पर सीलों के स्थान पर 'सील', 'नकल', 'नकल प्रमांणें असल', 'नकल मुताबक असल' इत्यादि लिखकर प्रति की सत्यता प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। सीलें दो प्रकार की हैं। एक धातु में अक्षर खोदकर बनायी गयी सील (**Embossed Seal**) जिसमें अक्षर काग़ज़ पर उभर आये हैं। और दूसरे, खुदे अक्षरों के उभरे स्थानों पर स्याही लगाकर बनायी गयी सीलें। यह सीलें ठप्पे[1] लगाकर छापी गयी हैं। इस अवधि में उभरी हुई सीलों की अपेक्षा ठप्पेवाली सीलें ही अधिक प्रचलन में

१. टिप्पणी—

ठप्पे की सहायता से आकृति बनाने की कला, प्राचीन सिक्कों से आयी हुई प्रतीत होती है। प्राचीन जनपदीय सिक्कों पर ठप्पे की सहायता से वहाँ के देवी-देवता बनाये जाते थे; जिस प्रकार प्राचीन सिक्के प्रतिमा-शास्त्र को समझने में सहायक होते हैं उसी प्रकार अभिलेखों पर छपी सीलें भाषा और लिपि के विकास तथा विस्तार और फैलाव को समझने में सहायक होती हैं।

थीं। सीलें मुख्य रूप से देवनागरी लिपि में हैं। परन्तु, हिन्दी में लिखे इन अभिलेखों पर फ़ारसी और रोमन लिपि की सीलें भी मिली हैं। देवनागरी लिपि की सीलें बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और राजपूताना—एजेन्सी के अभिलेखों में मिलती है। इसका एक उदाहरण—'मोहर अदालत जिले बुन्देलखण्ड सन् १२१२' है। उर्दू भाषा के अभिलेखों में भी सीलों की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है। इसका एक उदाहरण राजपूताना एजेन्सी की एक फाइल में मिलता है, जिस पर देवनागरी लिपि में 'मोहोर कचहरी माह-पीलटीकल अजंट जी जोधपुर सन् १८४०' अंकित है। इससे पुष्टि होती है कि इस समय कचहरियों में उर्दू भाषा और फ़ारसी लिपि के साथ देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी स्वीकृत हो चुकी थी। 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के कोर्ट स्टैम्प पेपर पर लिखित एक वसीयतनामे में रोमन और बँगला लिपि की सीलें इस बात की प्रमाण हैं कि इस समय प्रान्तीय और जनपदीय भाषाओं और बोलियों का प्रयोग राजकाज में स्वीकृत हो चुका था।

पत्रों में टिप्पणियाँ फ़ारसी के साथ हिन्दी में लिखी गयी हैं। इनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित वाक्य और वाक्यांश लिखे मिलते हैं, यथा, 'हुकुम हुआ', 'इस्का तरजमा अंगरेज़ी में होवे' इत्यादि। इन टिप्पणियों से पता चलता है कि इस समय हिन्दी पत्रों के अंग्रेजी अनुवाद होते थे। इसी प्रकार फ़ारसी में लिखे पत्रों के हिन्दी अनुवाद और हिन्दी-पत्रों के फ़ारसी भाषा में अनुवाद होने की सूचना भी टिप्पणियों में मिलती है। इन पत्रों से हिन्दी में टिप्पणियाँ लिखना कब आरंभ हुआ ऐसा माना जा सकता है।

इन पत्रों में लेखन-शैली की समानता का दूसरा बिन्दु खड़ी पाइयाँ हैं। राजकीय कार्यवाहियाँ हों अथवा निजी पत्र, एक या दो पाइयों का प्रयोग सब में एक ही अर्थ में किया गया है। इनका प्रयोग कई स्थानों पर है यथा, पत्रशीर्ष में 'श्री' अथवा इसी प्रकार के किसी दूसरे शब्द से पूर्व और पश्चात् तथा देवी और देवता वाचक शब्द से पूर्व और उसके पश्चात् यहाँ पर यह मांगलिक भाव के साथ इष्ट के प्रति आदर, सम्मान और पूज्य भाव की द्योतक है। द्वितीय, मूलभाषा में प्रथम पृष्ठ पर प्रथम पंक्ति के आरंभ से पूर्व तथा तृतीय, प्रत्येक पंक्ति के आरंभ में पूर्व खड़ी पाइयों का प्रयोग है। इनसे शब्द और पंक्ति बाँधने का भाव भी लिया जा सकता है। आज इनका स्थान हाशिये के लिए खींची जाने वाली रेखा ने ले लिया है। इनसे पत्र और पंक्ति के आरंभ, इष्ट के स्मरण तथा संदर्भित व्यक्तित्व के प्रति आदर और सम्मान

का भाव भी लिया जा सकता है। यह प्रणाली एजेन्सियों के अभिलेखों में विस्तार पा चुकी थी। परन्तु 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' में यह प्रचलित नहीं हो सकी थी। तथापि, इस विभाग में पंक्ति के आरंभ से पूर्व एक या दो खड़ी पाइयों का प्रयोग अपवाद रूप में कहीं-कहीं मिलता है।

पत्र लेखन-शैली की कुछ अन्य विशेषताएँ भी थीं। यह सभी पत्रों में एक समान मिलती है। इस क्रम में पत्रशीर्ष या सिरनामा, संबोधन, स्वनिर्देश, अभिवादन, कुशल-क्षेम पूछने और अपनी कुशलता का समाचार देने की विधियाँ उद्धृत की जा सकती हैं। यह पत्र के प्रथम भाग के अन्तर्गत है। पत्र के द्वितीय भाग में मुख्य विषय का वर्णन है तथा तीसरे भाग में दिनांक, तिथि और पता, ठिकाना लिखा गया है। इस विभाजन के आधार पर पत्र-लेखन शैली का वैशिष्ट्य निम्नलिखित प्रकार से आँका जा सकता है।

पत्र के प्रथम भाग में सर्वप्रथम पत्रशीर्ष या सिरनामा है। पत्रशीर्ष या सिरनामा लिखने की रीति सभी पत्रों में मिलती है। यह पत्रों की मूल प्रतियों की विशेषता थी। प्रतिलिपियों में इसका अभाव है। पत्रशीर्ष पत्रों का आव-श्यक अंग था। कार्य आरंभ करने से पूर्व उसकी निर्विघ्न पूर्णता के लिए किन्हीं विशेष देवी अथवा देवता का चित्र बनाना, उनका नाम लिखना अथवा नाम का स्थानापन्न कोई अंक लिखना, भारतीय पत्र-लेखन शैली का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। यह विशेषता इस अवधि के प्रत्येक अभिलेख में मिलती है। इसका निर्वाह उसी प्रकार से किया गया है, जिस प्रकार काव्य या नाट्य-रचना में दोहे-चौपाई या किसी अन्य छंद में ईशवन्दना की जाती है। इससे पता चलता है कि पत्र-लेखन मांगलिक कार्य बन चुका था, इसलिए उसका आरंभ भी मंगलमय होना चाहिए था। इस मूलभूत भावना से प्रेरित हो इन पत्रों के तैयार करने वालों ने अपनी-अपनी आस्था और निष्ठा के अनुरूप इष्ट का स्मरण किया है। इस समय तक प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परपराओं का पालन करना व्यक्ति के स्वभाव का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका था। शासकीय कार्यों में जुटे रहने पर भी उसमें अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति कितनी सजगता बनी हुई थी, यह इन अभिलेखों से स्पष्ट हो जाता है। पत्र चाहे शासकीय हो, अदालती हो अथवा निजी, इनकी लेखन-शैली में इतनी एकरूपता है कि इनमें परस्पर भेद कर पाना कठिन हो गया है। सभी अभिलेखों में सबसे ऊपर, मध्य में पत्रशीर्ष लिखने की शैली मिलती है।

पत्रशीर्ष में जिन देवी और देवताओं के नाम मिलते हैं, वे सब आज भी

वैष्णव धर्मावलंबियों में पूज्य हैं और अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये हुए हैं। पत्र तैयार करने वाले तथा उनको प्राप्त करने वाले चाहे जिस धर्म-सम्प्रदाय से जुड़े रहे हों, उनके पत्रों के शीर्ष इष्ट देवी-देवता वैष्णव धर्म से संबंधित हैं। इससे पता चलता है कि इस अवधि में वैष्णव धर्म के अनुसार पूजा और अर्चना सर्वत्र प्रसार पा चुकी थी। इनमें लक्ष्मी, दुर्गा, विष्णु, राम, हरि, गणेश, वासुदेव, बैकुण्ठनाथ, लक्ष्मीनाथ, पशुपतिनाथ और ब्रह्मा प्रमुख हैं। कुछ पत्रों में 'ब्रह्मा' के स्थान पर अंक '१' मिलता है। इनके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय देवताओं की अर्चना भी प्रचलित थी। राजपूताना एजेन्सी के अन्तर्गत लिखे अभिलेखों में ऐसे कुछ नाम मिलते हैं यथा, मेवाड़ क्षेत्र के अभिलेखों में 'एकलिंग जी', जैसलमेर के अभिलेखों में 'स्वाँग जी' तथा जोधपुर के अभिलेखों में 'जालंधरनाथ जी' के नाम प्रमुख रूप से मिलते हैं। नेपाल राज्य से संबंधित पत्रों में 'पशुपतिनाथ' का नाम प्रमुख है।

देवी और देवताओं के प्रति आदर व्यक्त करने के लिए इनके नाम से पूर्व 'श्री' और नाम के पश्चात् 'जी' या 'जू' (क्षेत्रभेद से प्रभावित) लगाने की विधि प्रचलित थी। कुछ पत्रों में ऐश्वर्य बोधक शब्द 'श्री' के स्थान पर एक अथवा दो खड़ी पाइयों का प्रयोग है। यह भी मांगलिक प्रतीक के रूप में हैं। एजेन्सियों में पत्रशीर्ष लिखने की सात-आठ शैलियाँ प्रचलित थीं। यह निम्न-लिखित हैं, ।।श्री।।, ।।श्री राम जी।। ।।श्री, राम जी ।।, ।।श्रीराम जी १, ।।श्री रामजी, ।।श्री रांम, ।।श्री रांम जी, ।।श्री जलंधरनाथ,।। श्री हरिः, श्री रांम जी रूप छै इत्यादि राजपूताना एजेन्सियों के कुछ उदाहरण हैं। इनमें हरि, राम, जलंधरनाथ, एकलिंग और स्वाँग के नाम प्रमुख थे। बघेलखण्ड एजेन्सी के अभिलेखों में केवल 'श्री' या अंक '१' लिखने की विधि थी। इनमें पत्रशीर्ष निम्नलिखित प्रकार से लिये गये हैं, ।।श्री।।, श्री ।।१।। ।श्री १, ।।१।।, ।।१ इत्यादि। बुन्देलखण्ड एजेन्सी में भी यही शैली प्रचलित थी। इसके कुछ नमूने निम्नलिखित हैं, ।।श्री।। १; श्री ।।१,।। १ इत्यादि। 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्ट-मेण्ट' में राजपूताना एजेन्सी के समान देवी और देवताओं के नाम लिखने की विधि प्रचलित थी। इन नामों से पूर्व ऐश्वर्य बोधक 'श्री' शब्द तथा उसके आगे और पीछे एक या दो खड़ी पाइयाँ मांगलिक प्रतीक के रूप में लगायी गयी हैं। 'श्री' का एकाकी प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलता है। 'श्री' शब्द ऐश्वर्य और सम्पन्नता का प्रतीक माना गया है। यहाँ आदर के अर्थ के 'जी' शब्द के अतिरिक्त 'राये' और 'महाय' शब्द भी प्रचलित थे। इसमें पत्रशीर्ष लिखने की आठ-नौ विधियाँ

प्रचलित थीं। यह निम्नलिखित हैं, श्री, श्रीः, श्रीः १, ।।श्रीः।।, श्री श्री, श्रीराम जी, ।।श्री राम।।, श्री श्री वासुदेव राये, श्री राम, श्री श्री राम, ।।श्री नाथ जी।।, श्री गनस जू, श्री दुर्गा सहायः, श्री दुर्गा सहाय, श्री दुर्गा सहाये, श्री दुर्गा सहाय १, श्री नाथ जी, श्री ५० महाराज, श्री बैकुण्ठनाथजी, श्री लक्ष्मीनाथ जी इत्यादि। 'ब्रह्मा' के स्थान पर अंक '१' लिखने की रीति भी प्रचलित थी। इस विभाग के नेपाल राज्य से जुड़े अभिलेखों के पत्रशीर्ष में 'श्री पशुपति जयति', 'श्री दुर्गा', 'श्री ५ सकरि' आदि मिलता है। स्पष्ट है कि परम्परागत शैली में पत्रशीर्ष लिखने की विधि पूर्णतः जीवित थी। अभिलेखों के तैयार करने वाले चाहे हिन्दू धर्म के अनुयायी रहे हों, चाहे इस्लाम के मानने वाले, पत्रशीर्ष में भिन्नता धर्म के आधार पर नहीं मिलती। इनमें प्रयुक्त सभी शब्द देवी-देवतावाचक हैं और हिन्दी भाषा के हैं।

पत्रशीर्ष से नीचे लगभग ३″ या ४″ तक का स्थान खाली रखा गया है। इनमें बायीं और दाहिनी ओर भी पर्याप्त स्थान खाली रखा गया है। इसका उपयोग हाशिये के रूप में है। इसमें पत्र का बचा हुआ समाचार और टिप्पणियाँ आदि लिखी गयी हैं।

पत्रशीर्ष में ईशवन्दन के पश्चात् पत्र में सम्बोधन का स्थान आता है। यह पत्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। इससे प्रथम अनुच्छेद आरंभ हुआ है। इसमें सामान्य रूप से खड़ीबोली के विशुद्ध संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है परन्तु, भावों की सूक्ष्मता तथा उन्हें गहराई तक पैठाने के लिए फ़ारसी भाषा के शब्द भी ले लिये गये हैं। पत्र चाहे शासकीय कार्यवाही का हो अथवा अदालती या निजी, संबोधन की विधि एक समान है। इनमें अन्तर केवल संबोधित के पद, उपाधि, संस्कृति, भाषा, निवास-स्थान और पत्र प्रेषक के साथ आत्मीय अथवा आत्मीयेतर संबंधों के आधार पर किया गया है। इस आधार पर शब्द-चयन में अन्तर रखना इस अवधि के अभिलेखों की प्रमुख भाषागत विशेषता है। संबोधन के अन्तर्गत संबोधित के नाम से पूर्व उसके ऐश्वर्य वृद्धि के लिए मंगलकामना करने, उसका मान-सम्मान करने, कुशलता, बल और यश का बखान करने और उसके पश्चात् सद्भाव व्यक्त करने की विधि मिलती है। संबोधित को श्रेष्ठ स्वीकार करने और प्रेषक द्वारा स्वयं को उससे निचले स्तर पर रखने की शैली इनमें सबल रूप से प्रचलित हो चुकी थी। इन भावों को विविध प्रकार से व्यक्त किया गया है। संबोधन का आरंभ

एक या दो खड़ी पाइयों के पश्चात् 'श्री', 'स्वस्ति श्री', 'सोसती श्री'[1] 'सिधश्री', 'राजेश्री', 'श्री हरि' आदि मंगल बोधक शब्दों के साथ किया गया है। इन विकल्पों का चयन पत्र तैयार करने वाले की इच्छा के अनुरूप है। कहीं-कहीं संबोधित के नाम से पहले आश्रयदाता की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति करने की विधि भी मिलती है। इससे अर्थ प्रकाशन में सौन्दर्य तथा प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। इससे प्रेषक के स्वभाव की शालीनता और विनम्रता प्रकट होती है। उसकी आचारनिष्ठ मर्यादा और सदाचरण का परिचय भी इससे मिलता है। वास्तव में बल और ऐश्वर्य वृद्धि की मूलभूत भावना इसके मूल में छिपी हुई है। 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के अभिलेख से एक उदाहरण निम्नलिखित है,

"श्री दुर्गा सहाय

स्वस्तिश्रीसर्वोपमायोग्येत्यादिसकलगुणगरिष्ट
हरिहरम्बवन्दनीयचरण श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री
चंद्रशेखर उपाध्यायजीकेचरणतलइतरमाकान्त
उपाध्यायकाकोटिकोटिदण्डवत्सेवापूर्वक

पत्रमिदं"[2]

संबोधन में ऐश्वर्य वृद्धि सूचक शब्द और उनका शृंखलाबद्ध प्रयोग इस अवधि की संभाषण शैली से इतना अधिक सम्बद्ध हो चुका था कि उससे पृथक् संबोधन की कल्पना नहीं की जा सकती। यह शैली साहित्यिक रचनाओं तक में विस्तार पा चुकी थी। पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में महाराष्ट्र और राजस्थान तक इसका प्रचलन हो चुका था। लेखक अपनी परंपरा से कितना अधिक जुड़ चुका था, पत्रों का संबोधन इसका एक प्रमाण है। यह शैली अभिव्यक्ति में भीतर तक प्रवेश कर चुकी थी कि साहित्यिक रचनाएँ भी इसके प्रभाव में आ गयी थीं। १८०३ ईसवी में लिखित 'प्रेमसागर' शीर्षक रचना से इसका एक नमूना उद्धृत है, यथा, "......सो पाठशाला के लिये

१. टिप्पणी—

संस्कृत शब्द 'स्वस्ति' का परिवर्तित रूप 'सोसती' है। यह मांगलिक उपस्थिति का चिह्न भी है। यह आशीर्वाद, क्षेत्र, मंगल, पुण्य आदि का तथा प्रकाश कल्याण और दीर्घायुसूचक भी है।

२. अभि० २३ क. Original Foreign Department Hindi, Letter received 11th January, 1815 No. 4।

श्रीमहाराजाधिराज सकल गुन निधान पुन्यवान महाजान मारकोइस वलिजली गवरनर जनरल प्रतापी के राज में···औ श्री श्रीयुत गुन गाहक गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से···नाम प्रेमसागर धरा···सो अब श्री महाराजेश्वर अतिदयाल कृपाल यसस्वी तेजस्वी गिलबर्ड लार्ड मिण्टो प्रतापवान के राज में औ श्री गुनखान सुखदान कृपा निधान भगवान कपतान जान उलियम टेलर प्रतापी की आज्ञा से औ श्रीयुत परम सुजान दयासागर परोपकारी डाकतर उलियम हंटर नक्षत्री की सहायता से औ श्री निपट प्रवीन दयायुत लिपटन अबराहम लाकट रतीवंत के कहे से···पूरा कर छपवाया"[१] इसमें लल्लूजी लालकवि ने "श्री महाराजाधिराज सकल गुन निधान पुन्यवान महाजान" तथा "श्रीयुत गुनगाहक गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय" कहकर अपने आश्रयदाता की प्रशंसा की है। आश्रयदाता के संदर्भ में इस प्रकार की प्रशस्तिपूर्ण अभिव्यक्ति से आत्मश्लाघा या आत्मशक्ति के परिचय की ध्वनि तो नहीं निकलती, वरन् इस स्वाभाविक उक्ति से शासक या गुरुजन की महिमा का बखान करने की ऐतिहासिक परम्परा का पालन किया जाना ही, प्रतीत होता है। विदित है कि गुप्तकालीन शिला या स्तम्भ लेखों में विरुदावली के साथ राजा का नाम लिखने की शैली का विकास हो चुका था और यह परंपरा पिछली शती तक किसी-न-किसी रूप में निभायी जाती रही। इसी समय फोर्ट विलियम कालेज के एक अन्य अध्यापक और लेखक पंडित सदल मिश्र ने इस शैली का अनुकरण करते हुए अपनी पुस्तक 'रामचरित या अध्यात्म रामायण' में लिखा कि,

"अब इस पोथी के भाषा करने का कारण यि (–) ० ह है कि मैं जो सदल मिश्र पंडित हूँ (,) मुज को० पाठशाला में (,) जो साहब लोगों के लिये कल०कत्ता में हुई (,) संस्कृत की पोथियाँ भाषा करने० को महा उदार सकल गुण निधान मिस्तर Q जान गिलक्रुस्त साहब ने ठहराया औ एक ० दिन आज्ञा की कि अध्यात्म रामायण को० ऐसी बोली में करो नीसमें फारसी आरबी ० न आवे"[२]।

यहाँ "महा उदार सकल गुण निधान" जैसे विशेषण वाक्यांश परम्परा बनाये हुए हैं। लल्लू जी लालकवि और पंडित सदल मिश्र, दोनों लोगों" ने

१. लल्लूजी लालकवि, प्रेमसागर, पृष्ठ १, २।

२. मिश्र पंडित सदल, रामचरित अथवा अध्यात्म रामायण सदल मिश्र ग्रंथावली, पृष्ठ ३३।

डॉक्टर गिलक्राइस्ट के आदेशानुसार खड़ीबोली में रचनाएँ तैयार कीं। एक ने अपने आदेशकर्ता के सन्दर्भ में सम्मानार्थक संज्ञा 'श्रीयुत्' का प्रयोग किया तो दूसरे ने उसी संदर्भ में अपनी एक रचना 'नासिकेतोपाख्यान' में 'श्री महा-राज' तथा दूसरी रचना 'रामचरित अथवा अध्यात्म रामायण' में अंग्रेजी शब्द 'मिस्तर' (मिस्टर) का चयन किया। संस्कृति की भिन्नता के अनुरूप भाषा-चयन में भेद करना तथा संबोधित और उसके सम्मान में प्रयुक्त किये जाने वाले शब्दों में परस्पर सामंजस्य रखना पंडित सदल मिश्र की भाषा की प्रमुख विशेषता है। हिन्दी में 'मिस्तर' शब्द के प्रथम प्रयोगकर्ता पंडित सदल मिश्र ठहरते हैं। इनके पश्चात् इसका प्रयोग बुन्देलखण्ड एजेन्सी की १८०८ ईसवी की एक फाइल में मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि सम्भाषण की सम्मानित शैली के माध्यम से हिन्दी में अंग्रेजी भाषा के पद और उपाधि सूचक शब्दों का प्रवेश आरंभ हुआ। इन्हीं शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा के अन्य शब्दों ने धीरे-धीरे अपना स्थान बनाना आरंभ कर दिया।

शासक के सम्मान में 'राजमान्य राजश्री' जैसे ऐश्वर्यसूचक शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग साहित्यिक पत्रों में भी हो रहा था। 'पत्रमालिका' शीर्षक रचना से इसका एक नमूना उद्धृत है। इसी की छिटपुट परंपरा आगे चलकर भारतेन्दु-काल तक पत्रों में बनी रही। उदाहरणार्थ,

"।। वेद शास्त्र संपन्न राजमान्य ।।
।। राजश्री ओंकार भट्ट जी ।।"[1]

वास्तव में, संबोधन में विरुदावली के उल्लेख का विकास गुप्तकाल से होना आरंभ हो गया था। इसके प्रमाण प्रयाग-प्रशस्ति तथा महरौली के लौह स्तंभों में देखे जा सकते हैं। इसी समय से राजा-महाराजाओं या शासकों के नाम के साथ प्रशस्ति लिखने की परिपाटी का विकास हुआ। यही किसी-न-किसी रूप में पिछली शती तक चलती रही। इसी सामन्ती शैली के कुछ उदा-हरण मध्यकालीन भारतीय संस्कृति की चारण-भाट परम्परा में खोजे जा सकते हैं। मान, सम्मान तथा प्रशस्ति या स्तुति करने वाले इतने अधिक शब्द आरंभिक खड़ीबोली में विकसित हो चुके थे। यह उसकी सम्पन्नता, विकास और प्रगति के सूचक हैं। इससे पता चलता है कि इस समय सुसंस्कृत समाज के एक वर्ग में फ़ारसी के साथ-साथ संस्कृत और खड़ीबोली का व्यवहार

---

१. पंडित रत्नेश्वर, पत्र मालिका, पृष्ठ १।

और शिष्टाचार उसकी प्रकृति का एक अंग बन चुका था जो उसके सामाजिक व्यवहार से प्रकट होता था। स्पष्ट है कि इस समय तक खड़ीबोली में संस्कृति के अनुरूप शब्द-भेद करने की शक्ति उत्पन्न हो चुकी थी।

प्रशस्तिपूर्ण संबोधनों की एक अन्य शैली 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' में प्रचलित थी। यह सामाजिक श्रेष्ठता और पारिवारिक ज्येष्ठता के सन्दर्भ में मिलती है। यह संस्कृत की सामाजिक पदावली से अलंकृत संबोधन की शैली है। इसमें संबोधित के नाम से ठीक पहले, उसके मान-सम्मान तथा कीर्ति और यश का प्रसार करने के लिए रूपक और उपमा अलंकारों का कौशल दिखाया गया है। इसके कुछ उदाहरण 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के पत्रों से उद्धृत हैं, प्रथम पत्र किसी वैष्णव की ओर से लिखा गया है और दूसरा पत्र यंकोजी (अंकोजी) भोंसले के संदर्भ में है। यह परगना तखतपुर, ज़िला छत्तीसगढ़ की सनद का तर्जुमा (अनुवाद) है। इसमें अनुवाद की भाषा को 'हींदुस्तानी जबान' कहा गया है,

"।। श्री ।।

।। श्रीगंगाजलनींमलजमुनाजलपवीत्रभागी
।। रथीसमान भातु श्री वाइसाहेबजी योग्य प्रती
।। श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र ते अधिकारी गुरु मुखदास कृतानेक
।। जैश्रीराम उपरी इहा समस्त कुशल आपका कुशलादिश्री
।। जी संनीधत्री काल चाहते हैं ...."[1]

तथा,

"।। तर्जेमासनद परगणेतखतपुर काहींदुस्तानी जबान मों ।।
श्री से भरेहुअे अैसे जो जगंनाथ स्वामी उनके जो
चर्ण समान कमल उसकी जो खुशबोय उस
पर भवरे के समान दील है जीन का अैसे जो
कल्याण रूप श्री गुरमुर्त्तीब्रहनपुरंण की निश
है जीनकी अैसे जो हैं श्री स्वामी ब्रह्मचारी
महाराज उनके शेवा मों श्रीमंत महाराजे शेवक
यंकोजी भोसले सेना धुरंधर ईनो ने............

१. अभि० ४० क. Foreign 1820. Department, Letter received 25th January No. 35.

परगने तखतपुर महाल प्रांत छत्तीसगढ़ में कुल बाब
व कानुन समेत करारवाके करकों चढ़ायदीया है।"[1]

अधीनस्थ पदों पर कार्यरत अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए लिखे गये पत्रों में पत्र-आरंभ करने की पृथक् शैली मिलती है। हुकमनामें, इजहार-नामें, अर्जी, सनद, खरीते और मुरासले आदि में यही शैली मिलती है। इनमें न तो सम्मानार्थक शब्दावली है और न प्रशस्तिपूर्ण संबोधन। इनमें पत्र का प्रकार बताते हुए पत्र-आरंभ किया गया है। इसके बाद प्रेषक और प्राप्तकर्ता के नाम का उल्लेख है। राजपूताना एजेन्सी के 'हुकमनामें' तथा कुछ अन्य पत्रों से निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं,

"नकल हुकम कपतांन जांन लड्लु साहब
बहादुर की त्रफ सै बनांमै चोपदार
भरथ चपरासी सदासुख तारीख १५ जुंन
सन् १८४२............."[2]

तथा,

"शवाल.........शहेब मजशट.........
तुम्हारा इजहार कौनहरफमोलीखाजाऐ......
जवाब............... ....
हम हीदवी वात बोलते हैं...............
आगो आइजाहीर कीअ की ऐशोकामाह
शावन थादीन तारीखइआद नहीं हैऐक
घरीदीन चढ़ा था..........."[3]

१. अभि० ३६ क. Foreign 1819 Department, 17th March No. 1588.

२. अभि० १० क. Rajputana Agency, Marwar-Jaisalmer, File No. 1 1835-42, Boundry Dispute between Phalodi (Marwar) and Bhap (Jaisalmer).

३. अभि० १७ क. Original Foreign Department. Persion Branch, Hindi Controlling Agency, Letter received 19th January 1798 No. 42.

यह शैली आज भी व्यापारियों के यहाँ स्टाम्प लिखने में प्रयुक्त की जा रही है।

संबोधन के पश्चात् स्वनिर्देश का स्थान है। इस समय तक हिन्दी में स्वनिर्देश संबंधी कोई स्वतंत्र शब्द प्रयोग में न आ सका था, जिससे संबोधित और प्रेषक के मध्य पारिवारिक, सामाजिक या प्रशासनिक रिश्ता ढूंढ़ा जा सके। सामाजिक और पारिवारिक रिश्ते संबंधी कोई सूचना भी इनमें नहीं मिलती। इनमें प्रेषक के नाम के साथ उसकी पात्रता तथा संबोधित के साथ स्थापित संबंधों के आधार पर 'सदा का सेवक', 'चरण तल,' 'शेवा मों', 'चरणेशु', 'जोगराजी' आदि में से कोई एक वाक्यांश लिखकर शिष्टाचार का निर्वाह किया गया है। स्वनिर्देश की यह शैली 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' में उच्च अधिकारियों तथा आश्रयदाताओं के सन्दर्भ में स्वीकृत थी। एजेन्सियों में इसके लिए 'म्रफ से' 'येते — ऐते' 'अरज' 'दीन' आदि शब्दों का प्रयोग है। इस आधार पर इन दोनों विभागों के अभिलेखों को पृथक् पहचाना जा सकता है। स्वनिर्देश की इस शैली से प्रेषक के स्वभाव की विनम्रता और उसके जातिगत संस्कारों से परिचय होता है। इस समय साहित्यिक शैली के पत्रों में स्वनिर्देश संबंधी कोई शब्द नहीं मिलता। इसके पश्चात् साहित्यिक शैली के पत्रों में, यदि वे पत्र यात्रा विवरण हैं तो 'यात्री' शब्द और यदि वह सामान्य विषय का पत्र है तो आपसी संबंधी के आधार पर 'भवदीय', 'चिरानुगत' और 'दासानुदास' आदि शब्द मिलने लगते हैं। यह भारतेन्दु के साहित्य में द्रष्टव्य है।

स्वनिर्देश के पश्चात् पत्र लिखने वाले ने अपना नाम रखा है। अपने नाम से पूर्व 'श्री', 'सोसती' ('स्वस्ति') सरदार आदि शब्दों में से कोई एक शब्द अपनी पात्रता के आधार पर लगाना आवश्यक था। नाम के पश्चात् 'देव' शब्द जोड़ने की प्रणाली विकसित हो चुकी थी। स्पष्ट है कि पत्र प्राप्तकर्त्ता और प्रेषक दोनों समाज के सम्पन्न व्यक्ति माने जाते थे।

यदि पत्र परिवार के कई सदस्यों की ओर से सम्मिलित रूप से लिखा गया है तो प्रत्येक सदस्य के नाम से पूर्व परिवार के साथ उसका सम्बन्ध बताने के लिए 'राजकुमार' या 'राजकुंवर' में से किसी एक का चयन किया गया है। इनमें नामों के पश्चात् भी 'देव' शब्द लगाने की विधि प्रचलित मिलती है। यहाँ 'जी' या 'जू' आदर सूचकों का चलन नहीं

मिलता। एक ही नाम के कई व्यक्तियों का उल्लेख आवश्यक होने पर ज्येष्ठता के क्रम से नाम लिखने की विधि मिलती है। कहीं-कहीं यह भेद 'बड़े' शब्द से प्रकट किया गया है। इस प्रकार के उदाहरण एजेन्सियों के अभिलेखों में भरे पड़े हैं। बुन्देलखंड एजेन्सी के १८०६ ईसवी की फाइल से एक उदाहरण उद्धृत है,

"श्रीसाहिबवाला मुनाकिव श्रीसाहिबा आलीसांन
श्रीयुकतदाउंदोलेमुंत जेमुलमुलक मिस्तर जान
रचारडसेनसाहिव बहादुर व सालात जंग
जुयेते श्री महाराज कोमार श्री बड़े कुवँर पदमसिंघ
जुदेव् श्री महाराज कोमार श्रीकुवार जवाहिर सिंघ
जुदेव् श्री महाराज कोमार श्री कुवार रामसिंघजुदेव
के वांचने आपर अपकौ षतु आयौ महिरवानिगी जानी..."[१]

इसके पश्चात् अभिवादन-निवेदन का स्थान है। अभिलेख राजकीय कार्यवाही का हो अथवा निजी पत्र से सम्बद्ध संबोधित के प्रति अभिवादन-निवेदन करना भारतीय संस्कृति का अंग बन चुका था। यह भी शिष्टता और विनयशीलता के अनुरूप सर्वमान्य था। इसका स्थान पत्र के आरंभ के प्रथम भाग के प्रथम वाक्य में निश्चित था। यह कुछ पत्रों में अंत में भी लिखा गया है। इस समय अभिवादन-निवेदन क्रिया की कई विधियाँ प्रचलित मिलती हैं। इनमें प्रयुक्त कुछ शब्द संस्कृत के तो कुछ बोलियों के तो कुछ फ़ारसी शब्द हैं। ये विधियाँ वैष्णव मत से प्रभावित सनातन आर्य विधियाँ हैं। कुछ इस्लामी विधियाँ भी प्रचलित थीं। यह पद, प्रतिष्ठा तथा सामाजिक स्तर-भेद से प्रभावित थी और हिन्दू, मुस्लिम दोनों जातियों में समान रूप से मान्य थीं। इसमें 'रामनाम', 'श्रीरामं', 'श्री जी', "प्रणांम', 'दण्डवत सेवा', 'जोहारी,' 'जै श्री जी, 'सलाम', 'पाँव टेककर सलाम' करने की विधियाँ प्रमुख थीं। 'प्रणांम', 'साष्टांग प्रणाम' और 'दण्डवत सेवा' लिखने की विधि केवल उच्च वर्ग तक सीमित थी। अभिवादन का एक क्षेत्रीय भेद 'जोहार'

---

१. अभि० 2 क. Central India Agency, Budelkhand Agency list 1805-1879 File No. 3, 1809 Making over of Lugasi Jagir by Divan Singh Sardar Singh on account of old age and quarrels amongst his other sons K. Padam Singh, K. Jawahar Singh and K. Ram Singh.

भी प्रचलन में था। यह अवधी क्षेत्र में आज भी प्रचलित है। यह नमस्कार का एक प्रकार है। उल्लेखनीय है कि यहाँ 'नमस्कार' शब्द अभिवादन के लिए नहीं मिलता। 'सलाम' और 'पाँव टेककर सलाम' करने की विधि हिन्दू और मुस्लिम, दोनों में समान रूप से प्रचलित थी। 'पाँव टेककर सलाम' करना राजा-महाराजाओं के यहाँ विशेष रूप से प्रचलित था। अभिवादन में भावावेश तथा निवेदन की अतिशयता दिखाने की विधि मिलती है। इसके लिए अभिवादन सूचक शब्दों से पूर्व 'कोटि-कोटि', 'बहुत-बहुत' आदि पुनरुक्त विशेषणों का प्रयोग है। कहीं-कहीं अंक '१०' के द्वारा भी अभिवादन का भाव व्यक्त किया गया है। संख्याओं के आधार पर विभिन्न प्रकार के अर्थ व्यक्त करने की शैली खड़ीबोली के आरम्भिक स्वरूप की एक विशेषता बन चुकी थी। अभिवादन में पुनरुक्ति अथवा विशेषण शब्दों के आधार पर भावातिरेक स्पष्ट करने की शैली इसके बाद भारतेन्दु-काल तक चलती रही। भारतेन्दु जी ने इसके लिए 'शतकोटि', 'अनेक कोटि', 'शतशः' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

अभिवादन और नमस्कार-निवेदन का भाव अभीष्ट व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए 'के', 'केन', 'कैने', 'तकि' आदि अव्ययों का प्रयोग आवश्यक था। यह विधि आज अप्रचलित हो चुकी है। यह शब्द भी बोलियों तक सीमित रह गये हैं। अभिवादन का भाव अभीष्ट तक पहुँचाने का अर्थ व्यक्त करने के लिए, अभिवादन सूचक संज्ञा शब्दों के साथ 'पहुँचे', 'बांचे', 'बंचन', 'वांचना' आदि क्रियाओं का प्रयोग आवश्यक रूप से मिलता है। एक पूर्ण वाक्य से इस आशय को व्यक्त किया जाता था। इसका एक उदाहरण साहित्यिक शैली के पत्र से उद्धृत है,

"॥ वेदशास्त्र संपन्न राजमान्य ॥
॥ राजश्री ओंकार भट्ट जी ॥

जोग लिखी बंबई से रत्नेश्वर कानमस्कार वांचना आगे हम प्रसन्न हैं........."[१]

अभिवादन स्वीकार करवाने के पश्चात् पत्र भेंट करने की विधि प्रचलित थी। यह विधि एजेन्सियों और 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के पत्रों में मिलती है। पत्र के प्रथम भाग में, प्रथम वाक्य के दूसरे अंश में पत्र भेंट

१. पंडित रत्नेश्वर, पत्रमालिका, पृष्ठ १।

करने, अपनी कुशलता का समाचार देने, पत्र प्राप्त होने पर प्रसन्नता का भाव व्यक्त करने और उसके बाद कुशलक्षेम पूछने की विधियाँ मिलती हैं। यहाँ पत्र भेंट करने की शैली बहु प्रचलित थी। उल्लेखनीय है कि इस समय पत्र को पवित्र वस्तु माना जाता था। पत्र लिखना मांगलिक कार्य था। इसीलिए इसमें ईशवन्दन का स्थान सर्वोपरि रखा गया है। पत्र में पवित्रता का भाव छिपा रहने के कारण इस संदर्भ में 'स्मरण पूर्वक पत्रं', 'पत्र इदं' और 'दाषिल होवे,' 'हजूर में दाषील होई' आदि वाक्यांश सर्वस्वीकृत हो चुके थे। ये सब प्रथम वाक्य के अंश थे। यहाँ पत्र के संदर्भ में 'भेजना' क्रिया का प्रयोग नहीं मिलता। इस शब्द में कदाचित् पवित्रता का भाव न रहने के कारण पत्र के संदर्भ में इसका प्रयोग नहीं मिलता। 'भेजना' क्रिया का विकास भारतेन्दु-काल से हुआ माना जा सकता है। वहाँ पत्र भेजने के संदर्भ में इसका प्रयोग मिलता है।

पत्र प्राप्त होने पर हर्ष व्यक्त करना, कुशलता का समाचार पूछना और कुशलक्षेम बताना आवश्यक-सा बन चुका था। कुशलता के समाचार पूछने और मौखिक रूप से अपनी कुशलक्षेम बताने की दो प्रणालियाँ मिलती हैं। एक, लिखकर तथा दूसरे, पत्रवाहक के माध्यम से मौखिक। मौखिक संदेश या समाचार ले जाने वाले तथा लिखित पत्रों के वाहकों 'कासिद', 'हरकारे', 'पियादे', 'राउत' आदि विभिन्न नामों से पुकारे गये हैं। सभी अधिकारियों के पत्र-वाहक निजी होते थे। कुशलक्षेम पूछने और अपना कुशल-मंगल बताने के लिए एजेन्सियों के पत्रों में 'भले चाहिजै', 'महिरवानगी जानी', 'सुभस्मांचार सदा भले चाहिजै,' इत्यादि तथा 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के पत्रों में 'आपका कुशल मंगल सर्वदा चाहिये,' 'मंगलसुभ चाही,' 'कुशल चाही', "खैर सलाह चाही', 'स्मांचार भले चाहिजै', 'बरतमान मालुम हो,' 'बेहतर चाही' तथा 'समाचार सदा भले चाही' इत्यादि वाक्यांशों का प्रयोग स्थिर हो चुका था। इस प्रकार से हाल और मिजाज पूछने के संदर्भ में संस्कृत और फ़ारसी भाषा की शब्दावली सर्वत्र स्वीकृत हो चुकी थी।

इसके पश्चात् प्रेषक के कुशलक्षेम का स्थान है। प्रेषक का कुशलक्षेम संबोधित व्यक्ति की अनुकम्पा की अपेक्षा रखकर लिखा जाता था। कृपा और अनुकम्पा तथा अनुग्रह की अपेक्षा रखने का भाव 'सुनजर', 'परताप', 'महिरबानगी जानी', 'आपका आशीर्वाद से' इत्यादि किसी एक शब्द या

वाक्यांश से प्रकट किया गया है। पत्र प्राप्त होने पर हर्ष और आनन्द के मनोभाव व्यक्त करने तथा किसी सन्देश या समाचार से आश्चर्य होने पर, इन्हें पत्र में लिखना आवश्यक था। इन अर्थों को प्रकट करने के लिए 'आहाँ का सूरत अछा है', 'खातिर जमा होए', 'षुसी हुई', 'चीत परम आनन्द होए' आदि वाक्यांश निश्चित थे। वाक्य के इसी अंश में पत्र का प्रकार जैसे, 'खत' — 'षत', चिट्ठी', 'पत्र', 'कागज' — 'कागद', 'लिषी' और 'लिखत' भी स्पष्ट कर दिया गया है। इसी स्थान पर पूर्व प्रेषित पत्र तथा प्राप्त उत्तर का सन्दर्भ तथा भेजे जाने वाले पत्र के विषय आदि का उल्लेख है। इसके स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' से उद्‌धृत है,

"श्री दुर्गा सहाय:

> स्वस्ति श्री भवानिचरणसमाराधनासहित पुरुषार्थ चतुष्टय श्री गुरुगजराजमिश्र चरणेषु इत श्री जर्नैल भीमसेन थापा. श्रीकाजीरणध्वज थापा कस्य शाष्टांग प्रणामपूर्वकं पत्रं. आपका आशीर्वाद सैं आहाँ कुशल है, आपका कुशल मंगल सर्वदा चाहिये, आगे आहाँ का सूरत अछा है आगे आसीनवदि ११ रोज ६ का लिषा हुवा आशीर्वाद वत्र ए सुदि ३ रोज ५ को पहुँचा, कर्नैल साहब सों वातचित भया तिस्का मुफस्सल आपने लिषा सो हरप हरप देष कै मजमून बूझा.................."१

पत्र के प्रथम अंश के पश्चात् मुख्य विषय हैं। यह राजनैतिक, सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं से सम्बद्ध है। राजनैतिक और प्रशासनिक विषयों के साथ अन्य प्रासंगिक विषय जैसे, 'धोती जोड़े की फरमाइश', 'देश की चीज मँगाना', 'आर्थिक तंगी', [illegible] और निकट संबंधी की अस्वस्थता भी उल्लिखित हैं। इनके तैयार करने वालों

१. अभि० ३१. Foreign 1815 Department, Letter received 29th October, date of writing nil. No.75.

ने विषय प्रतिपादन के समय संबोधित व्यक्ति या अधिकारी का ध्यान अपनी ओर बनाये रखने के लिये तथा उससे नैकट्य स्थापित करने के लिए संभाषण के बीच-बीच में 'साहब,' 'सिरकार', 'हुजुर' आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग किया है। संभाषण के मध्य इस प्रकार के हस्तक्षेप घनिष्ठता और समीपता तो स्थापित करते ही हैं इनसे संबोधित के प्रति सम्मान भी व्यक्त होता है। अनौपचारिक शैली के ये सुन्दर उदाहरण वार्ता-शैली की सजावट के उपकरण हैं। यह खड़ीबोली के प्रथम दशकों की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। इनमें सभी शब्द फ़ारसी के हैं। वास्तव में, इस समय तक फ़ारसी राजकाज की भाषा तो बन ही चुकी थी, अपनी नफ़ासत और माधुर्य गुणों के कारण वह शिष्टता, नम्रता और व्यवहार की भाषा भी बन चुकी थी। एजेन्सियों के पत्रों में 'सिरकार' और 'हजुर' तथा 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' में 'साहब' बहुप्रयुक्त था। 'हजुर' का प्रयोग 'आप' के अर्थ में भी मिलता है। बघेलखण्ड एजेन्सी की १८१३ ई० की एक फाइल से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत है :

"।श्री १।

।। श्री साहिबवालामुनाकिवश्रीसाहिबआलीसान श्री मिस्तर
मोदी साहिब बहादुर जू ये ते दीनमहंमदाअसवार की—हजूर
के समाचार सदा भले चाहिजै इहा सरकार की महरबानगी से बीहा
के समाचार भले हैं आपर हम हजूर सै रुकसत हो कै चौवे जगंनाथ
के पास आये फागुन सुदि ४ को इनके पास पौहचे हजूर कौपरवानौ
दीया हुकमनामा सुनाया इनौने सिर पर धर कै लीया वसी दिन
ये वरात को गये अपनै भाइी की छै सात रोज मैं अपने भाइी
कौ व्याह कै लोटे फागुन सुदि कौ अपनै मकान
पर पौहचे तव हम इन सौ तलवी करी कै तुम
अपनी त्यारी करौ तव चौवे जी नै कहा कै अब
हम सादी सै फराकत भये हैं दो रोज मै जै हमारे
नैवतार आये हैं तिन्हौ की रुकसत करके व्राम्हन
से घरी पुछ कै हम तुम्हारे सात चलते है
सो इन वाम्हन से सुदिन पुछा सो इनका पत्रा
की घरी साइत चैत्रवदि ५ की बैठी है सो इन कौ
ले कै हजूर मै हाजिर होते हैं सादी के सवव
देरी हूइी तीसै हजूर मै अर्ज लिषी है अरु

चौवे जी ने हम सै या कहा कै हम कौ य़ेक
वडा अरसा है कै इंते दिन तौ हजूर के—
सै हम घर रहे अव हजूर कौ बुलावौ आयौ
अरु रामनौमी का मेला पंद्रा रोज के बाद
होता है सो लाष हौ आलम जूरती है अब
लाषौ रुपये का माल आवता है तीस का हम कौ
वदौवस्त करनै परत है अव इन दिनौ मैं डाकु
वौहत सुन परते है सो जो कीसु का माल
जात रहै तौ हमारी नालस हजूर मै होइ अरु जे
हमारे घर मै कारंदार है सौ अपने घर कौ गये
है तीसै हम कौ—है कै जो हम हजूर
के पास गये तो मेला के वदोवस्त करनै माफिक
दुसरा आदमी नहीं है तीसै या किसी तुम कौ
सुनाइी है तब हम चौवे जी कौ ज्याव दीया
कै या हम कुछ नहीं जानते हैं जिस दिन
तुम्हारा सुदिन वैठो है तीसी दिन हम तुम कौ
ले चलैगे उहा तुम अपनी विंती कर लीजीयौ
मालिक हजूर उहा तुम अपनी विंती
मालिक हजूर है सो इहा का हवाल इस
तौर का है पीछे तैं चौवे जी कौ लै कै
हाजिर होता हौं फागुन सुपि १२ संवत १८८० नवो
गांऊ————"१

स्तर के अनुरूप भाषा-चयन करने की क्षमता रखते थे। भाषिक-संरचना पर सामाजिक-नियंत्रण की सशक्तता के ये महत्त्वपूर्ण और सुन्दर उदाहरण हैं। यह प्रेषक के साथ आत्मीय संबंधों तथा प्रेषक की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और शैक्षिक स्तर से प्रभावित था।

पत्रों का तीसरा और अंतिम भाग भी कम वैशिष्ट्यपूर्ण नहीं है। अपने परिचितों के प्रति अभिवादन-निवेदन करना, पत्र में अधिक विस्तार न लिख सकने की असमर्थता व्यक्त करना, पत्र-वाहकों के माध्यम से मौखिक रूप में विस्तार करने, पत्र-लेखन की तिथि-वदी या सुदी-दिन, माह, संवत्, पत्र भेजने के स्थान आदि का विवरण इस भाग में मिलता है। ये सभी शब्द खड़ीबोली के हैं। पत्र समाप्ति पर 'शुभम्' और 'किमधिकम्' लिखना और उसके पश्चात् एक या दो आड़ी रेखाएँ खींचकर पत्र के अंत की सूचना देने की प्रणाली सभी पत्रों में मिलती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है,

"..........नारायण आपानिकृपा करै कि हमारे
हात्त से वही पैंले कि दोस्ति कायम होई वह सुरैत
से आपकी मेहर्वानगी सै होया संवत् १८७२ साल
मिति वैसाक सुदि १२ रोज ७ मुकाम वैंतडि शुभम्
श्री चौतरिया साह श्री रुडवीर साह का सलाम"[१]

तथा,

"..........कुसल क्षेम का मुफसिल लछुके
मुहुजुवानी वूझा जायगा ० रविज्ञेषु
किमधिकमिति अगहन सुदि १ रोज
सोम० मुकाम कान्तिपुरशुभम्"[२]

इस प्रकार समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि उन्नसवीं शती के आरंभिक दशकों के इन पत्रों में सन्दर्भ के अनुसार संस्कृत, फ़ारसी, अंग्रेजी तथा प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग-स्थान निश्चित था। इनमें मंगल और ऐश्वर्य बोधन के संदर्भ में संस्कृत भाषा के आदर और सम्मान के संदर्भ में

---

१. अभि० २३ क. Foreign 1815 Department, Hindi, letter received 11th January No. 4.

२. अभि० २७ क. Foreign Department 1815 Persion, Hindi–June 4, No. 45.

संस्कृत, फ़ारसी और अंग्रेज़ी भाषाओं के, पद और उपाधि के सन्दर्भ में फ़ारसी और अंग्रेज़ी के, अभिवादन-निवेदन के सन्दर्भ में संस्कृत, फ़ारसी और पूर्वी भाषाओं के शब्द अपना स्थान बनाये हुए थे। इस समय तक खड़ीबोली में स्वनिर्देश के अर्थ में कोई शब्द प्रचलित नहीं हो सका था। दिन, तिथि, संवत् के लिये संस्कृत तथा खड़ीबोली के निजी शब्द प्रयुक्त हो रहे थे। पत्र समाप्ति की सूचना देने वाले शब्द भी संस्कृत स्रोत से लिये गये थे।

इस समय तक कार्यालयीय-प्रयुक्ति की पृथक् संकल्पना नहीं हो सकी थी। कार्यालयीय कार्यवाही, अदालती पत्र और निजी पत्र तीनों एक शैली से लिखे जाते थे। इनमें कोई अन्तर विकसित न हो सका था। औपचारिक और अनौपचारिक दोनों शैलियाँ एक ही स्थल पर पनप रही थीं। इनमें चयन के आधार पर विषय-प्रतिपादन में प्रयुक्ति की प्रकृति के अनुरूप कोई भेद नहीं मिलता और न ही वर्तमान कार्यालयीय पत्रों जैसी कार्यालयीय वाक्य और वाक्यांश संरचना विकसित हो सकी थी। इस समय नाते-रिश्तों के आधार पर संबोधन-प्रणाली प्रचलित नहीं हो सकी थी। ये पत्र समकालीन भाषा-भाषी समाज में भाषा के स्वीकृत स्वरूप का ज्ञान करवाते हैं। इनसे भाषा के तत्कालीन व्यवहृत स्वरूप और उसकी अभिव्यंजना सामर्थ्य का परिचय मिलता है। भावों और विचारों के आदान-प्रदान को स्थायित्व प्रदान करने तथा पारस्परिक संबंधों को दृढ़ बनाने के कारण इन पत्रों का ऐतिहासिक महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

अनुभाजन—२

वर्तनी-वैविध्य

प्रत्येक भाषा समय, समाज और भाषा-भाषियों के मध्य पनपती, परिपक्व होती और मिश्रित होती हुई विकसित होती रहती है। कभी-कभी वह क्षयित हो क्षीण भी होती रहती है। समय और समाज के परिवर्तन और विकास के साथ-साथ भाषा में आकस्मिक या स्वयं परिवर्तन घटित होते रहते हैं। कुछ परिवर्तन भौगोलिक भेद और पीढ़ी-भेद के कारण घटित होते हैं तो कुछ शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भेद से प्रभावित होते हैं। इन विविध कारणों से किसी भाषा की ध्वनि-व्यवस्था की एकरूप प्रवृत्ति काफी दूर तक फैल नहीं पाती। उच्चारण में एकरूपता न होने के कारण लिखित रूप में वर्तनी वैविध्य मिलने लगता है। खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप के साथ ऐसी ही भाषायी घटनाएँ घटित हुईं, जिससे स्थान-स्थान पर वर्तनी वैषम्य उपस्थित हो गया है। साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों भाषा-स्वरूप वर्तनी-भेद से प्रभावित हैं। भौगोलिक भिन्नता और प्रयोक्ताओं का भिन्न-भिन्न भाषाभाषी समाजों से जुड़े रहना आदि अनेक ऐसे कारण ध्वनि-भेद के जनक हैं। नैसर्गिक उच्चारण अक्षमता ध्वनि-परिवर्तन का प्रमुख कारण बन गयी है। अल्पशिक्षित भाषा-भाषियों, व्यापारियों और चपरासियों आदि का खड़ीबोली की मानक ध्वनि-व्यवस्था से अनभिज्ञ रहना तथा उच्चारण की शुद्धता के प्रति असावधान रहना भी कोश ग्रंथों में दिये गये ध्वन्यात्मक-मूल्यों में परिवर्तन या भेद का एक कारण बन गया है। पत्रों की भाषा में ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं जहाँ शब्दों की वर्तनी व्यावहारिक उच्चारण के अधिक निकट पहुँच गयी है। इनके लिखने वाले और प्रतिलिपि करने वाले ऐसे भौगोलिक और सामाजिक परिवेशों से जुड़े प्रतीत होते हैं जहाँ खड़ीबोली से इतर कोई जनपदीय बोली या कोई विदेशी भाषा अपना प्रभाव बनाये हुए थी। खड़ीबोली में रचना लिखते समय, अनुवाद करते समय अथवा पत्र और अभिलेख तैयार करते समय मातृभाषा के ध्वन्यात्मक गुणों को छोड़ नहीं सके हैं। मातृभाषा का अभ्यास होने के कारण इनकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ सहज ही खड़ीबोली में प्रविष्ट हो गयी

हैं। इनके नियमों को खड़ीबोली में प्रक्षेपित करने के कारण वर्तनी-भेद आ गया है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि कोई भी दो बोलियाँ अथवा भाषाएँ पूर्णतया समान नहीं होतीं। उनमें भाषा के हर स्तर पर कुछ-न-कुछ भिन्नता रहती ही है। फिर मातृभाषा से इतर भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के अनुकरण की असमर्थता और अपूर्णता, बनकर बोलना और तदनुरूप लिखने के कारण एक शब्द दो या तीन विधियों से लिखा गया है। मातृभाषा की उच्चारण-व्यवस्था में खड़ीबोली को ढालने और व्यक्तिगत तथा स्थानीय विशिष्ट स्वराघात और बलाघात आदि भी द्विविध वर्तनी के जनक हो गये हैं। विषम-उच्चारण का प्रभाव वर्तनी पर सहज ही आ गया है। कहीं-कहीं लिपि की अज्ञानता भी वर्तनी-भेद का कारण बन गयी है। एक स्थान पर यदि परंपरागत वर्तनी रखने अथवा शब्दों की रचना के अनुरूप वर्तनी रखने का प्रयास है तो दूसरे स्थान पर व्यक्तिगत उच्चारण सौकर्य वर्तनी-वैविध्य का कारण बन गया है। एक प्रयोक्ता द्वारा किसी एक शब्द में तो कहीं अनेक शब्दों में वर्तनी-भेद किया गया है। कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न प्रयोक्ताओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के भेद किये गये हैं। कहीं-कहीं परम्परा से भिन्न वर्तनी के एकाकी प्रयोगों के सन्दर्भ में कोई निश्चित नियम नहीं बताये जा सकते। ऐसे एकाकी प्रयोग भाषा में विस्तार नहीं पा सकते हैं।

इन वर्तनी-भेदों के आधार पर तद्युगीन भाषा ध्वनियों के निकटतम उच्चारणों का मात्र अनुमान लगाया जा सकता है। पुष्ट और प्रचुर प्रमाणों के अभाव में उनका मानक उच्चारण बताना कठिन है। इन विविधताओं और विषमताओं से भाषा की व्यापकता का ज्ञान होता है। यह भी पता चलता है कि खड़ीबोली इस समय तक जन-जन में प्रवेश कर चुकी थी। साहित्य और व्यवहार की भाषा में कोई भेद न विकसित हो सका था। वर्तनी-वैविध्य होने पर अर्थ में कोई व्यवधान अथवा अंतर उपस्थित नहीं हो सका है।

इस समय खड़ीबोली के साहित्यिक स्वरूप के विकास में फोर्ट विलियम कालेज जैसी शैक्षिक संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिसने तत्कालीन प्रचलित सभी भाषाओं के साथ खड़ीबोली में महत्त्वपूर्ण साहित्य के सृजन में अभीष्ट योग दिया परन्तु, लेखन और वर्तनी की दृष्टि से इस संस्था के अन्तर्गत लिखित रचनाओं की अपेक्षा १८२५ ईसवी और उसके पश्चात् की स्वतंत्र गद्य और पद्य रचनाओं की भाषा में संवर्द्धित वर्तनी के उदाहरण उसी प्रकार मिलने लगते हैं जिस प्रकार से चॉसर अंग्रेजी कविता के जनक माने जाते रहे

हैं परन्तु, उनकी भाषा में शब्दों की वर्तनी निजी या मौलिक है, क्योंकि उनके समय तक वर्तनी संबंधी कोई मानदण्ड स्थापित न हो सका था जिससे वे संचालित होते। अंग्रेजी वर्ण विन्यास (Orthrography) में यह स्थिति एक समय तक वर्तमान रही। एलिजाबेथयुगीन अंग्रेजी भाषा की रचनाएँ वर्तनी की दृष्टि से विक्टोरियाकालीन वर्तनी से पर्याप्त प्रभावित रही हैं। इसी प्रकार खड़ीबोली की आरंभिक वर्तनी कुछ तो परम्परागत है तो कुछ स्थलों पर लेखकों की मौलिक हो गयी है। मानक वर्तनी संबंधी नियमों के अभाव में भाषा में वर्तनी स्तर पर शिथिलता और अस्थिरता भारतेन्दु-काल तक वर्तमान रही। इसमें स्थिरता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय आयी।

विभिन्न सामाजिक स्तरों और क्षेत्र-भेदों से अतिरिक्त प्रसंग, परिवेश और परिस्थितियों के अनुरूप भाषागत परिवर्तन कलात्मक साहित्य की भाषा में दृष्टिगत होते हैं। इन्हें प्रस्तुतीकरण की शैली-विशेष कहा जा सकता है। भाषा का संक्रमण-काल होना और इस अवधि तक वर्तनी संबंधी कोई स्थायी नियम अथवा मानदण्ड स्थिर न हो सकना अर्थात् एक सर्वमान्य रूप का अभाव, वर्तनी-वैविध्य का एक कारण माना जा सकता है। शब्दों का उच्चरित रूप और लिप्यन्तरित रूप दोनों असमान होने से भाषा में एकाधिक वर्तनियाँ विकसित हो जाती हैं। इन्हें मुख्य रूप से तीन स्तरों पर रखकर देखा जा सकता है। एक, साहित्यिक अर्थात् इतिहास और व्युत्पत्ति के अनुरूप वर्तनी या परम्परागत वर्तनी दूसरे, बोलचाल में प्रचलित विषम उच्चारणों के अनुरूप वर्तनी या समसामयिक प्रचलित वर्तनी और तीसरे, विविध वर्तनी या क्षेत्रीय प्रभावों से आयी वर्तनियाँ। वर्तनी-भेद शब्द के आदि, मध्य और अंत में स्वर और व्यंजन ध्वनियों में मिलता है। स्वर-स्तर पर ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर, दीर्घ स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर, शुद्ध स्वर के स्थान पर अनुनासिक स्वर या अनुनासिकता का लोप तथा व्यंजन-स्तर पर महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर अल्पप्राण व्यंजन, सघोष के स्थान पर अघोष व्यंजन और अघोष व्यंजन के स्थान पर सघोष व्यंजन ध्वनि तथा व्यंजनों का आगम और लोप मिलता है। प्रस्तुत स्थल पर उन मूल और यौगिक शब्दों में वर्तनी-वैविध्य देखने का प्रयास है जो अपने परंपरागत रूप से भिन्न होकर समकालीन उच्चारण के अनुरूप वर्तनी का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

(१) स्वर परिवर्तन

(१) ह्रस्व→ह्रस्व, इ→अ

शब्दांत में ह्रस्व 'इ' और 'उ' हिन्दी की प्रकृति में नहीं है। ऐसे शब्द संस्कृत और फ़ारसी भाषाओं से लिये गये हैं। शब्दांत में इन स्वरों का उच्चारण हल्का होने के कारण प्रायः सुनाई नहीं देता। ऐसी स्थिति में लिप्यंतरण करते समय से स्वर शब्दांत में लुप्त कर दिये गये हैं। इनके स्थान पर ह्रस्व 'अ' स्वर आ गया है। पंजाबी भाषा के उच्चारण में ह्रस्व 'इ' के स्थान पर ह्रस्व 'अ' ही सुनाई देता है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं। शब्दांत के साथ शब्द मध्य में भी 'इ' का लोप द्रष्टव्य है,

बल[१] (बलि)
भांत[२] (भाँति)
दाहने[३] (दाहिने)
कुंजड़न[४] (कुंजड़िन)

साहित्य में कहीं-कहीं ह्रस्व 'इ' स्वर अपवाद रूप से मिलता है। इससे पता चलता है कि लेखक शब्द की शुद्ध वर्तनी से परिचित अवश्य था। ऐसे स्थानों पर एक शब्द की दो वर्तनियाँ मिलती हैं,

रीति[५]—कुरीति[६]

अभिलेखों में ह्रस्व 'इ' स्वर के लोप वाले शब्द एक या दो हैं। शब्द मध्य में 'ए' भी हो गया है,

जात[७] (जाति)
लेकेन[८] (लेकिन)

(ii) ह्रस्व→ह्रस्व, संयुक्त, उ→अ, ओ

शब्द के आदि और मध्य में ह्रस्व 'उ' स्वर की सुरक्षा अभिलेखों में नहीं हो सकी है। यह कहीं 'अ' से तो कहीं 'ओ' स्वर से लिखा गया है,

हुकम[९] (हुकुम)
जोलाई[१०] (जुलाई)

---

१. वै० हि० हिंदु०, पृष्ठ २१।
२. म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २००।
३. कथा०, पृष्ठ १४।
४. म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ-२०१।
५. कथा०, पृष्ठ ६।
६. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।
७. अभि० १८ क।
८. अभि० ३५ क।
९. अभि० १० क।
१०. अभि० ६ क।

(iii) ह्रस्व→दीर्घ, अ→आ, उ→ऊ, इ→ई तथा
अ→ऊ.

भाषा में ह्रस्व स्वर को दीर्घ करके लिखने की प्रवृत्ति अत्यन्त सबल थी। संज्ञा, सर्वनाम, अव्यय और क्रियाओं के आदि, मध्य और अंत स्थितियाँ इस प्रकार के परिवर्तन साहित्य और अभिलेखों दोनों स्वरूपों में मिलती हैं, जिनके आधार पर खड़ीबोली के इस स्वरूप को दीर्घ स्वरांत भाषा का सजीव उदाहरण कहा जा सकता है। कौरवी, हरियाणवी, बिहारी, भोजपुरी और राजस्थानी में ह्रस्व स्वर को दीर्घ स्वर बनाकर बोलने की प्रकृति अब भी मिलती है। अहिन्दी भाषियों के मध्य भी यह प्रवृत्ति मिलती है। उदाहरण—

ooske[१]

अभीमानो[२]

अभिलेखों से कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं,

हामारा[३]

वहूत[४]

तूम[५]

कुछ शब्दों की तीन वर्तनियाँ अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ थीं। एक व्यक्ति द्वारा एक शब्द कहीं तो ह्रस्व 'अ' के साथ है तो कहीं इसके स्थान पर दीर्घ स्वर 'ऊ' का प्रयोग है। अर्थात् एक शब्द 'अ' और 'ऊ' दोनों से लिखा जा रहा था। कुछ स्थानों पर 'अ' स्वर लुप्त हो गया है। एक काल और एक क्षेत्र तथा एक व्यक्ति के द्वारा दो वर्तनियों 'वहादर और वहादूर' का व्यवहार भाषा के विभिन्न उच्चारणों की ओर संकेत करता है। ये सभी वर्तनियाँ तीन भिन्न क्षेत्रों के उच्चारणों पर आधारित कही जा सकती हैं,

वहादर[६] ← वहादूर[७] ← वहाद्र[८]

(iv) दीर्घ→ह्रस्व, ई→इ, ऊ→उ,

१. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ५।
२. प्रेम०, पृष्ठ ६।
३. अभि०, ४३ क।
४. अभि०, १८ क।
५. अभि०, २४ क।
६. अभि०, ३५ क।
७. अभि०, ३५ क।
८. अभि०, ८ क।

कहीं-कहीं दीर्घ स्वरों के स्थान पर ह्रस्व स्वरों का प्रयोग किया गया है। पूर्वी क्षेत्र की बोलियों में लिखते समय आज भी ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का भेद प्रायः नहीं मिलता है। पहाड़ी, नेपाली और बंगाली भाषाभाषियों के मध्य भी अनेक दीर्घ स्वर ह्रस्व रूप में उच्चरित होते सुने जाते हैं। खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में यह प्रवृत्ति पूर्णतः विकसित मिलती है, यथा,

दरबारि[१]
गुंज[२]
दुसरा[३]
संपुर्ण[४]

अभिलेखों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जहाँ उच्चारण में दीर्घ 'ऊ' स्वर के स्थान पर ह्रस्व 'उ' स्वर मिलता है। वर्तनी इसी उच्चारण के अनुरूप रखी गयी है। उच्चारण में प्रयत्न लाघव इसका एक कारण कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस समय वर्तनी उच्चारण पर आधारित हो चुकी थी, यथा,

दोनुं[५]
पुछो[६]
डाकु[७]
दुर[८]
सुरज[९]

(v) स्वर—ध्वनि परिवर्तन के कुछ एकाकी उदाहरण मिलते हैं जिनके संबंध में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता, यथा,

मनै[१०]
बिरोबरी[११]
ब्योपारी[१२]
विभव[१३]

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ५।
२. नासि०, पृष्ठ २५।
३. कथा०, पृष्ठ ८।
४. कथा०, पृष्ठ १४।
५. अभि०, ६ ख।
६, अभि०, ४ क।
७. अभि०, ४ क।
८. अभि०, १० क।
९. अभि०, ३९ क।
१०. अभि०, ३ क।
११. अभि०, ३ क।
१२. अभि०, ८ क।
१३. म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २७४।

(vi) इस समय तक खड़ीबोली में संस्कृत और फ़ारसी से शब्द उधार लेने की प्रवृत्ति विकास पर थी। उनका उच्चारण भी हिन्दी की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप करने का प्रयास किया गया है, जिससे संस्कृत शब्दों में स्वर-भक्ति की प्रवृत्ति प्रवेश कर गयी है। जिन संस्कृत शब्दों में 'र' का उच्चारण आधा अर्थात् बिना स्वर के या परवर्ती अन्य व्यंजन के साथ मिलाकर किया गया है, वहाँ स्वर-भक्ति से 'अ' स्वर 'आ' हो गया है। 'परवों,' 'मुरखता'[1] आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। परन्तु जिन शब्दों के आदि में 'स' व्यंजन आधा या बिना स्वर के हैं अर्थात् इसके साथ कोई अन्य व्यंजन ध्वनि है तो इस प्रकार के संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में 'इ' स्वर का प्रवेश हो जाता है। वर्तनी में भी 'इ' स्वर का व्यवहार इस अवधि में नज़ीर की भाषा में 'इस्तरी'[2] शब्द में द्रष्टव्य है। इनसे पता चलता है कि इस समय तक खड़ीबोली जनता के अत्यन्त निकट पहुँच चुकी थी तथा वर्तनी के मानकीकरण का कोई प्रयास नहीं किया गया था। कुछ अन्य शब्द निम्नलिखित सरणि में द्रष्टव्य हैं,

परतक्ष[3]
अकलमन्द[4]
नकशा[5]
कमपनी[6]

कुछ अन्य संस्कृत शब्द परकाश, निरमोही, दुरबल, धरम आदि इसी प्रकार के हैं। इनके विपरीत 'पतथर' और 'मुटठी' शब्दों को स्वर-भक्ति का उदाहरण नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि हिन्दी की प्रकृति में अल्पप्राण और महाप्राण ध्वनियों के मध्य स्वर-भक्ति नहीं है। दो महाप्राण ध्वनियाँ साथ-साथ आने पर उनमें एक ध्वनि का उच्चारण अल्पप्राण हो जाता है। परन्तु इन्हें मुद्रण की अशुद्धि मानना उचित है।

(vii) स्वर लोप की प्रवृत्ति भी भाषा में व्यापक है। यह मूल शब्द में, दो शब्दों के संधि स्थल पर, सर्वनाम और कारक-चिह्नों तथा क्रिया-प्रकृति और क्रिया प्रत्ययों के योग स्थलों पर मिलती हैं। यह अग्रलिखित हैं,

---

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५५।
२. अश०, पृष्ठ ३४।
३. स्त्री०, पृष्ठ १६।
४. गीते०, पृष्ठ १।
५. पत्र०, पृष्ठ ५।
६. अभि०. ३५ क।

(क) 'र' में 'अ' स्वर का लोप—

जिन शब्दों में 'र' व्यंजन स्वर के साथ आता है वहाँ 'र' की उच्चारण प्रक्रिया में 'अ' स्वर थोड़ा शिथिल होता है, जिससे यह कभी-कभी सुनाई भी नहीं देता है। कन्नौजी आदि बोलियों में 'र' के सन्दर्भ में इसी प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है। खड़ीबोली के विवेच्य स्वरूप में भी यह प्रवृत्ति वर्तमान है। यह सभी स्रोतों के संज्ञा, अव्यय और क्रिया रूपों में सक्रिय है, यथा,

चर्ण[१]
धर्ती[२] (धरती)
जर्नेल[३]
तर्फ़[४]

(ख) सर्वनामों और क्रियाओं में शब्दांत 'न' के साथ 'ने' और कारक-चिह्नों के रहने पर उच्चारण में स्थान समानता के कारण मूल प्रकृति से अंतिम 'अ' लुप्त हो गया है। इसे बलाघात का परिणाम माना जा सकता है तथा समीकरण की प्रवृत्ति का उदाहरण भी कहा जा सकता है। इससे पता चलता है कि इस समय कारक-चिह्नों को शब्दों के साथ मिलाकर लिखा जा रहा था। सर्वनाम 'उन' के साथ 'ने' का व्यवहार करते समय शब्दांत स्वर लुप्त हो गया है। यह प्रवृत्ति 'उन्ने' रूप में द्रष्टव्य है। आज 'उन' के साथ 'ने' का व्यवहार समाप्त होकर 'उन्हों' के साथ सीमित हो गया है। 'उसने' और 'उन्होंने' क्रमशः एक वचन सामान्य और बहुवचन आदरार्थक के रूप हो गये हैं। यथा,

उन्ने[५]
सुन्ने[६]

इसी प्रकार 'किस' और 'तिस' सर्वनामों के साथ कारक-चिह्न 'से' रहने पर समीकरण की प्रवृत्ति मिलती है, यथा,

किस्से[७]
तिस्से[८]

---

१. अभि०, ३६ क।
२. गीते०, पृष्ठ ३६।
३. अभि०, २३ क।
४. अश०, पृष्ठ ३७।
५. राज०, पृष्ठ १६।
६. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३।
७. गीते०, पृष्ठ १५४।
८. राज०, पृष्ठ १० पृष्ठ भाग।

दो अक्षरों के संधि स्थलों पर 'अ' स्वर का लोप 'इस्वास्ते', 'जिस्में', 'किस्की', 'उन्के' आदि में भी है। सभी रूप खड़ीबोली के आरम्भिक स्वरूप के सूचक हैं।

(ग) शुद्ध स्वरों के समान अनुनासिक स्वरों का लोप शब्द के आदि, मध्य और अंत स्थितियों में मिलता है। मुद्रित रचनाओं में इसके उदाहरण अधिक नहीं हैं, परन्तु अभिलेखों की भाषा की यह सबल प्रवृत्ति है। यथा,

कही[1]
नही[2]
मुह[3]
जमीदार[4]
गाव[5]
फूक[6]

(घ) ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं जहाँ अन्य ध्वनि-ग्रामों की तुलना में कोई एक ध्वनि-ग्राम अपने स्वन-मूल्य को परिवर्तित कर देता है और एक ध्वनि-ग्राम का प्रभाव पूरे शब्द पर छा जाता है। इसे प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक जे० आर० फर्थ ने रागात्मक तत्त्व (Prosodic Feature) की संज्ञा दी है। विवेच्य खड़ी-बोली में रागात्मकता को अनुनासिकता के स्तर पर देखा जा सकता है। यह विशेषता १८२० ईसवी और उसके पश्चात् के साहित्यिक और उपसाहित्यिक स्वरूप में तथा राजपूताना एजेन्सी के अभिलेखों में द्रष्टव्य है। यह तत्त्व कहीं तो उच्चारण के प्रवाह में ऐतिहासिक विकास-क्रम में आया है तो कहीं अकारण प्रवेश कर गया प्रतीत होता है। विदित है कि मध्य भारतीय आर्य-भाषा काल में कुछ प्रदेशों में अलिजिह्वा को नीचे झुकाकर बोलने की प्रवृत्ति थी जिससे परवर्ती ध्वनि के साम्य से कोई भी स्वर अकारण अनुनासिक हो गया है। इसे संपर्कजनित अनुनासिकता (Contigeous Nasalization) कह सकते हैं। शब्दों में पूर्ववर्ती या परवर्ती 'न' और 'म' ध्वनियाँ रहने पर उनके सम्पर्क से पूर्ववर्ती स्वर अथवा कहीं-कहीं परवर्ती स्वर अनुनासिक हो

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५५।
२. नासि०, पृष्ठ ८।
३. अश०, पृष्ठ ३८।
४. पत्र०, पृष्ठ ३।
५. अभि०, ३ क।
६. अभि०, ३ क।

गया है। कहीं-कहीं इसे व्यक्तिगत उच्चारण वैशिष्ट्य अथवा उच्चारण सौकर्य तो कहीं जनपदीय प्रभाव से आयी विशेषता माना जा सकता है। संपर्कजनित अनुनासिकता निम्नलिखित शब्दों में द्रष्टव्य है,

आंन के[1]
निंगलों[2]
मीनारां[3]
रामगढ़[4]
गांम[5]
रांम[6]

इसी प्रकार अज्ञात अनुनासिकता के अन्य उदाहरण 'लेंनें', 'दोनुं', 'कपतांन', 'तरफा', 'षेतां', 'वास्तें', 'इंते' आदि हैं। ये उदाहरण परवर्ती खड़ीबोली में अशुद्ध माने जाने लगे परन्तु, विवेच्य खड़ीबोली की भाषा-व्यवस्था के अनुकूल बने रहे। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि कभी उच्चारण के अपूर्ण अनुकरण के कारण अनुनासिकता का प्रवेश भाषाओं में हो जाया करता है। समकालीन तथा पूर्ववर्ती भाषाओं यथा—कबीर और तुलसीदास की भाषा में अनेक शब्दों में अनुनासिक ध्वनि का प्रवेश हो गया है। 'रांम', 'ध्यांन' आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

ऐतिहासिक विकासक्रम से निम्नलिखित शब्दों में अनुनासिकता आ गयी है, यथा,

पांती[7]
कवंल[8]

२. व्यंजन-परिवर्तन

(i) तालव्य→वर्त्स्य, श→स,

जनपदीय उच्चारण का प्रभाव संस्कृत शब्दों पर मिलता है। बोलियों में प्रायः 'श' के स्थान पर 'स' का उच्चारण मिलता है। फलतः संस्कृत स्रोत के शब्द तदनुरूप उच्चारण में ढाल लिये गये हैं। उनकी वर्तनी उच्चारण

१. अश०, पृष्ठ ३७।
२. स्त्री०, पृष्ठ ११।
३. अभि०, ८ क।
४. अभि०, ६ ख।
५. अभि०, ९ क।
६. अभि०, ९ क।
७. स्त्री०, पृष्ठ ६।
८. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।

का अनुकरण कर रही है। तालव्य 'श' के लिए वर्त्स्य 'स' व्यंजन का व्यवहार अनेक शब्दों में मिलता है। वर्तनी का यह भेद वर्तमान खड़ीबोली के सन्दर्भ में त्रुटि माना जा सकता है परन्तु, इस प्रकार की त्रुटियाँ अर्थ में बाधक नहीं बनी हैं। वास्तव में, ये भाषा सीखने की प्रक्रिया के स्वाभाविक परिणाम होती हैं। खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप के सन्दर्भ में ये शुद्ध रूप हैं,

सीस[1]
वसं[2]
स्याम[3]

बघेलखण्ड और राजपूताना एजेन्सी तथा फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के पत्रों में संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त विदेशी शब्दों में भी 'श' के लिए 'स' का व्यवहार मिलता है,

सादी[4]
नकसे[5]
दसमी[6]
आसिर्रवात[7]
कुसल[8]

(ii) वर्त्स्य→तालव्य स→श

उपर्युक्त वर्तनी की विपरीत अवस्था भी भाषा में मिलती है। यहाँ वर्त्स्य 'स' के लिए तालव्य 'श' का व्यवहार है। यह फोर्ट विलियम कालेज से इतर लिखित रचनाओं की भाषा में १८२५ ईसवी के पश्चात् से मिलने लगता है। यथा,

शिखावने[9]
शीखने[10]
नाशिक[11]
दश[12]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ ४।
२. नासि०, पृष्ठ ६।
३. लाल० टीका, पृष्ठ १।
४. अभि०, ४ क।
५. अभि०, ६ क।
६. अभि०, १३ क।
७. अभि०, ४३ क।
८, अभि०, ४३ क।
९. मनो० इति०, पृष्ठ १३।
१०. हिंदुई०, पृष्ठ ११।
११. पत्र०, पृष्ठ ९।
१२. पदा०, पृष्ठ ९३।

फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के १७६८ ईसवी से १८१६ ईसवी के मध्य लिखित दस्तावेजों में यथा, इजहारनामों और सनदों की भाषा में ऐसे प्रयोग प्रचुरता से मिलते हैं, यथा,

शाव़न[१]
शव़ाल[२]
उश[३]

'वाशते', 'शुना', 'शेवा' आदि कुछ अन्य उदाहरण हैं। ये सब भाषा अधिगम की अपूर्णता प्रकट करते हैं। वर्तमान मानक खड़ीबोली की वर्तनी के संदर्भ में ये अशुद्ध प्रयोग कहे जायेंगे।

(iii) अन्त:स्थ→तालव्य, य→ज,

ऐतिहासिक विकास परंपरा के साथ कुछ परिवर्तित ध्वनि वाले प्राकृत शब्द १८२२ ईसवी तक सुरक्षित मिलते हैं। यहाँ 'य' का स्थान 'ज' ध्वनि ने ले लिया है। पूर्वी क्षेत्र की बोलियों में इसके उदाहरण आज भी प्राप्त हो जाते हैं,

जोबनव़ती[४]
जोवन[५]
जादोंनाथ[६]
अपजस[७]

'य' के स्थान पर 'ज' ध्वनि वाले शब्द अभिलेखों में अत्यल्प हैं। ऐसा एक उदाहरण प्राप्त होता है,

चाहिजै[८]

अन्त:स्थ 'य' का स्थान कहीं-कहीं इसकी सबल स्वर ध्वनि 'इ' ने ले लिया है। उच्चारण को बनाये रखने के लिए वर्तनी में 'ञ', 'इ' और 'इया' दोनों का व्यवहार किया गया है। ऐसी स्थिति में एक शब्द तीन प्रकार से लिखा गया है। अवधी और भोजपुरी भाषियों के मध्य इसका ऐसा उच्चारण आज भी मिलता है,

---

१. अभि०, १७ क।
२. अभि०, १७ क।
३. अभि०, १७ क।
४. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
५. प्रेम०, पृष्ठ १०।
६. अश०, पृष्ठ ४०।
७. स्त्री०, पृष्ठ २।
८. अभि०, ३ क।

इहा[1]—इहाँ[2]—जहाँ[3]
इआद[4]

शब्दान्त में 'या' के स्थान पर विशुद्ध स्वर का व्यवहार 'एशिआ'[5] और 'किआ'[6] शब्द में द्रष्टव्य है। इसमें भूतकालिक प्रत्यय-स्वर रूप में मिलता है। जिन शब्दों में 'य' से पूर्व 'अ' स्वर है, वहाँ 'अय' के स्थान पर 'ऐ' सुनाई देता है। अतः वर्तनी में भी 'ऐ' का व्यवहार सर्वत्र किया गया है,

समै[7]
रुपै[8]
उदै[9]

(iv) मूर्धन्य→दन्त्य, ण→न,

संस्कृत शब्दों में अंतिम मूर्धन्य 'ण' ध्वनि के लिए 'न' का प्रयोग पूर्वी क्षेत्र की जनपदीय बोलियों का प्रभाव प्रतीत होता है। यह मानक हिन्दी के उच्चारण में कहीं-कहीं सुनाई देता है। उच्चारण का अनुकरण करने के कारण खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में सर्वत्र 'न' का प्रचलन मिलता है। इससे विदित होता है कि खड़ीबोली वर्तनी-स्तर पर जनपदीय बोलियाँ प्रभावित हो रही थीं, यथा.

ब्राह्मन[10]
मंगलाचरन[11]

(v) दन्त्य→मूर्धन्य तथा अन्तःस्थ, न→ण, ल तथा ड़→र.

उक्त शब्दों के विपरीत राजपूताना एजेन्सी और फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के पत्रों में दन्त्य 'न' के लिए मूर्धन्य 'ण' का व्यवहार शब्द के मध्य और अन्त में मिलता है। 'न' के स्थान पर 'ण' राजस्थानी और पंजाबी के प्रभाव से आया लगता है। एक भाषा में इतने अधिक भेदों से पता चलता

१. अभि०, ३ क।
२. भू०, पृष्ठ २०।
३. अभि०, ३० क।
४. अभि०, १७ क।
५. भू०, पृष्ठ ६।
६. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
७. प्रेम०, पृष्ठ ४।
८. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
९. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।
१०. प्रेम०, पृष्ठ १।
११. सेना, पृष्ठ १।

है कि खड़ीबोली का प्रसार-क्षेत्र पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल तक हो चुका था। लिखित रूप में आने से पहले वह बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। सर्वप्रथम जब उसे लिपिबद्ध किया जाने लगा तो इस समय के प्रचलित सभी उच्चारणों के अनुकरण पर उसकी वर्तनियाँ रखी गयीं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं,

बजाये[१]
बणाणे[२]
लूण[३]
देणे[४]

कहीं-कहीं 'न' के स्थान पर 'ल भी हो गया है, यथा

लंबर[५]

शब्द के मध्य और अंत स्थानों पर ड़' का स्थान 'र' ने यत्र-तत्र ले लिया है। यह ब्रजभाषा में आज तक प्रचलित है। खड़ीबोली में भी यहीं से आयी प्रतीत होती है, यथा,

जोरे[६]
घरी[७]
थोरे थोरे[८]

'र' व्यंजन में उच्चारण स्थान की समानता वाला वर्ण ड' भी अनेक स्थानों पर है,

पडदा[९]
चपडासी[१०]

(vi) महाप्राण→अल्पप्राण, ठ→ट, थ→त,

दो महाप्राण ध्वनियाँ साथ-साथ आने पर उच्चारण करते समय एक का उच्चारण अल्पप्राण हो जाता है। दक्खिनी, उर्दू और बुंदेली आदि में यह सक्रिय रूप से वर्तमान है। अग्रलिखित शब्दों में वर्तनी के समय 'ढ' के लिए 'ट' और 'थ' के लिए 'त' का व्यवहार है। शब्दांत का 'थ' प्रायः अल्पप्राण सुनाई देता है, यथा,

---

१. अभि०, ६ ख।
२. अभि०, ६ ख।
३. अभि०, ८ क।
४. अभि०, ४४ क।
५. अभि०, ६ ख।
६. नासि०, पृष्ठ २९।
७. अभि०, ४ क।
८. अभि०, ३ क।
९. पाठ०, पृष्ठ १।
१०. अभि०, १३ क।

पाटशाला[1]
छटा[2]
चीटी[3]—चीठी[4]
सात[5]
हात[6]

(vii) अल्पप्राण→महाप्राण, प→फ

इसके साथ अल्पप्राण ध्वनि भी कहीं-कहीं महाप्राण उच्चरित होते सुनी जाती है। खड़ीबोली में यह शब्द के मध्य में मिलती है। यहाँ 'प' के स्थान पर 'फ' रखा गया है, यथा,

आफका[7]

(viii) दन्त्योष्ठ्य→ओष्ठ्य, व→ब

'व' और 'ब' में अभेद संबंध संस्कृत काल से लिपि में चलता आ रहा है। बँगला और पूर्वी क्षेत्र में यह संबंध आज भी मिलता है। यहाँ उच्चारण में सदैव 'ब' ध्वनि प्रधान रहती है। आरंभिक खड़ीबोली में यह शब्द की तीनों स्थितियों में उपलब्ध होती है, यथा,

बिचार[8]
बिलायत[9]
ब्योपारी[10]
संबत्[11]
नाबों[12]

(ix) ओष्ठ्य→दन्त्योष्ठ्य, ब→व

इसके विपरीत स्थिति में 'ब' के लिए 'व' का प्रयोग मिलता है। इससे पता चलता है कि बोलचाल में तो 'व' और 'ब' कदाचित् पृथक्

१. पत्र०, पृष्ठ ३।
२. उप० समाचार।
३. अभि०, ३४ क।
४ स्त्री०, पृष्ठ १२।
५. अभि०, ४ क।
६, अभि०, २७ क।
७. अभि०, २५ क।
८. प्रेम०, पृष्ठ ६।
९. भू०, पृष्ठ ३३।
१०. अभि०, ८ क।
११. भार०, पृष्ठ ५१।
१२. भू०, पृष्ठ ४२।

रही होंगी परन्तु, लिपि में इनके सूचक वर्ण मुक्त-परिवर्तन में थे। मुक्त-परिवर्तन में रहने के कारण इनमें परस्पर व्यत्यय से अर्थ में कोई भेद उपस्थित नहीं होता। इनके प्रयोग के सन्दर्भ में सचेत न रहने के कारण 'ब' के स्थान पर 'व' का प्रयोग शब्द की तीनों स्थितियों में मिलता है, यथा,

वुद्धि[1]
वंधाई[2]
अवलाओं[3]
तव[4]

लिपि में वर्ण-व्यत्यय की यह स्थिति अधिक दिनों तक स्थायी न रह सकी। परवर्ती रचनाओं में 'ब' का सर्वत्र उचित प्रयोग मिलता है।

(x) अन्तस्थ→अन्तःस्थ, ल→र

शब्दों के मध्य और अंत में 'ल' के लिए 'र' का व्यवहार स्थान-स्थान पर मिलता है, यथा,

जरा[5]
सोरह[6]
नीराणा[7]

(xi) अकारण स्वर-आगम के समान कुछ व्यंजनों का प्रवेश अकारण हो गया हुआ प्रतीत होता है। निम्नलिखित शब्दों में क्रमशः न' और 'व' का प्रवेश अकारण हो गया है। यथा,

पहुनचा[8]
देव[9] (दो)

(xii) व्यंजन ध्वनि लोप के और भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। यथा,

---

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।
२. अश०, पृष्ठ ४०।
३. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७३।
४. म० क० हिं० हिंदु०, पृष्ठ १९८।
५. अभि०, ३ क।
६. अभि०, ७ क।
७. अभि०, ८ क।
८. हि० रो०, पृष्ठ ८।
९. गीते०, पृष्ठ ५।

पथर[1]

तुमारा[2]

निम्नलिखित शब्दों में बलाघात के कारण ध्वनियों का लोप हुआ प्रतीत होता है। यह १८३० ईसवी के पश्चात् से नहीं मिलते। यथा,

इंलेंड[3]

सुभाव्[4]

मानुष[5]

कायथ[6]

इस प्रकार सारांशतः कहा जा सकता है कि वर्तनी के स्तर पर खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप विविधात्मक था। वर्तनी का आधार शब्दों का उच्चरित रूप था। विविध उच्चारणों का अनुसरण वर्तनी कर रही थी। कुछ शब्दों के दो तो किसी के तीन या अधिक उच्चारण प्रचलित थे। कुछ शब्दों का केवल एक उच्चारण प्रचलित था। फलस्वरूप किसी शब्द की दो या तीन तो कुछ शब्दों की केवल एक वर्तनी प्रचलित थी। 'बहादर—बहादूर—बहाद्र' इसी प्रकार का एक उदाहरण है। इन विविधताओं से भाषा की व्यापकता और प्रसार-क्षेत्र का पता सहज ही लगाया जा सकता है। खड़ीबोली पूर्व से लेकर पश्चिम तक जनता की भाषा रूप में प्रसार पा चुकी थी। बोलचाल और साहित्य या उपसाहित्य की भाषा में उल्लेखनीय भेद विकसित न हो सका था। वर्तनी-भेद होने पर भी शब्दों के अर्थों में कोई अन्तर विकसित न हो सका था। संस्कृत के समान इसकी वर्तनियों का मानकीकरण नहीं हुआ था। विदित है कि संस्कृत जैसी नियमबद्ध भाषा में कुछ शब्दों की दो वर्तनियाँ प्रचलित थीं। प्राकृत और पालि में वर्तनी-भेद बना रहा। वर्तनी-भेद संस्कृत के तत्सम, फ़ारसी, अंग्रेजी और हिन्दी के तद्भव, देशज शब्दों तक में मिलता है। इनकी वह वर्तनियाँ मिलती हैं जो उच्चारणों के अधिक निकट हैं। अनेक स्थानों पर शब्दों के शुद्ध रूप भी हैं। उच्चारण की विषमता से अतिरिक्त प्रांत-भेद, ध्वनि-व्यवस्था की अनभिज्ञता, लिपि की अज्ञानता भी वर्तनी-वैविध्य का कारण बन गयी है। सर्वमान्य रूप का अभाव वर्तनी वैविध्य का एक अन्य कारण है।

———

१. अभि०, ६ क।
२. अभि०, १० क।
३. स्त्री०, पृष्ठ १।
४. म० क० हि० हिंदु०, पृष्ठ २०७।
५. दाय०, पृष्ठ १।
६. म० क० हि० हिंदु०, पृष्ठ २०१।

अनुभाजन — ३

रूपात्मक वैशिष्ट्य

विकास की आरंभिक अवस्था में होने के कारण तथा विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेशों से जुड़े लेखकों के द्वारा लिखित होने के कारण खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप संरचनात्मक व्यवस्था और प्रयोग के स्तर पर विविध रूपात्मक हो गया है। इसमें विविधता, विषमता, शिथिलता और अव्यवस्था या अनियमितताएँ उसी प्रकार से परिलक्षित की जा सकती हैं जिस प्रकार से वार्तालाप के समय सामान्यतः अहिन्दी भाषियों या अपर भाषा भाषियों के मध्य प्रायः देखी जाती है। कभी-कभी मातृभाषियों के द्वारा भी द्वितीय भाषा का निरंतर प्रयोग करते रहने के कारण उनकी मातृभाषा में इस प्रकार की अव्यवस्था दिखाई देती है, जहाँ न तो शैलीगत और प्रयुक्तिगत प्रयोगों के संदर्भ में व्यवहार और विषय के अनुरूप सर्वत्र भाषायी-प्रयोग मिलते हैं और न विभिन्न स्थितियों और प्रसंगों के अनुरूप उनका व्यवहार। इसमें भाषा-संरचना संबंधी कोई मानक नियम नहीं मिलते और न ही प्रयोक्ताओं की निजी भाषा की व्यवस्था पूर्णतः आ पायी है। यह कई प्रकार की भाषाओं के नियमों से सम्बद्ध भाषा है, जिसमें कहीं तो विभिन्न जनपदीय भाषाओं की विशेषताएँ प्रविष्ट हो गयी हैं तो कहीं विदेशी और प्रादेशिक भाषाओं की रूपात्मक व्यवस्था। इसमें पश्चिमी क्षेत्र की पंजाबी, राजस्थानी और ब्रजभाषा तथा अवधी, भोजपुरी आदि पूर्वी क्षेत्र की जनपदीय भाषाओं का प्रभाव आ गया है। नेपाली और बँगला का प्रभाव स्थान-स्थान पर मिलता है। फ़ारसी के संरचनात्मक तत्त्वों ने इसकी संरचनात्मक और रूपात्मक व्यवस्था को प्रभावित किया है। इसमें विभिन्न जातीय, शैक्षिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक वर्गों का भाषागत वैशिष्ट्य भी घुल-मिल गया है। हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास-क्रम से प्राप्त रूपात्मक तथा प्रयोगगत वैशिष्ट्य इसमें भरा पड़ा है, जिनके संबंध में क़ोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। संस्कृत की व्याकरणिक विशेषताएँ स्थान-स्थान पर बिखरी पड़ी हैं।

खड़ीबोली का यह आरंभिक स्वरूप संक्रांतिपरक भाषा (Transitional Language) का एक उदाहरण है। इसे वैयक्तिक बोली (Indiosyneratic Dialect) या अन्तर भाषा (Inter Language) जैसी संज्ञाएँ भी दी जा सकती हैं। संक्रांतिपरक होने के कारण यह अस्थिर और परिवर्तनशील रही है। यह जहाँ-जहाँ तक फैलती गयी, वहाँ-वहाँ की भाषाओं और बोलियों से प्रभावित होती गयी और जिन लोगों के द्वारा लिपिबद्ध की गयी उनकी निजी विशेषताएँ इसमें सक्रिय होती गयीं। उसके कुछ नियम रूढ़ होकर स्थिर होते गये और जो नियम रूढ़ न हो सके वे उसके अव्यवस्थित और अशुद्ध प्रयोग कहलाने लगे। ऐसे सभी उदाहरण और प्रयोग वर्तमान संदर्भ में भाषा के विचलित और अशुद्ध प्रयोग कहे जा सकते हैं। इन्हें तीन श्रेणियों में रखकर देखा जा सकता है, यथा, १. व्यवहार संदर्भित, २. अज्ञान संदर्भित और ३. अन्तरभाषा सन्दर्भित या संक्रातिपरक भाषा संदर्भित। इन तीनों प्रकार के अस्थिर प्रयोगों में से अज्ञान संदर्भित, अनन्वित और अशुद्ध प्रयोग अधिक अनुपात में मिलते हैं। ऐसे सब स्थानों पर भाषा के नियमों की सही और उपयुक्त जानकारी का अभाव होना अर्थात् भाषा की प्रकृति से अनभिज्ञता, प्रमुख कारण है। कहीं-कहीं भाषा का प्रयोक्ता भाषा के नियमों से अवश्य परिचित प्रतीत होता है, परन्तु उसके संदर्भगत प्रयोगों की जानकारी न होने से तथा सामान्यीकरण के कारण अनन्वित और अशुद्ध प्रयोग भाषा में प्रविष्ट कर गये हैं। प्रयोक्ताओं की द्वितीय भाषा होना अर्थात् अपनी मातृभाषा से अतिरिक्त दूसरी भाषा को जैसा सुनना वैसा लिखना के सिद्धांत के कारण भाषा में व्याकरणिक अस्थिरता और शिथिलता आ गयी है। कहीं-कहीं मात्र सूचनात्मक सम्प्रेषण प्रमुख होने के कारण भी अनियमितता दिखाई देती है। इन्हें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, कारक-चिह्न और क्रियाओं में लिंग-व्यत्यय, उभयलिंगी प्रयोग, वचन व्यत्यय, उभय वचन प्रयोग, प्रत्ययों के अनुपयुक्त प्रयोगों में देखा जा सकता है।

भाषा संबंधी इस प्रकार की अव्यवस्था और अटपटापन जिससे भाषा का प्रवाह बाधित होता प्रतीत होता है, फोर्ट विलियम कालेज के अन्तर्गत लिखित साहित्यिक रचनाओं की अपेक्षा १८२० ईसवी और उसके पश्चात् लिखी गयी असाहित्यिक रचनाओं में व्यापक होती गयी है। इनमें कुछ तो गुरु-शिष्य-संवाद शैली की मौलिक गद्य रचनाएँ हैं तो कुछ बँगला, संस्कृत, अंग्रेजी और फ़ारसी से अनूदित हैं। यह विविध ज्ञान-क्षेत्रों की पाठ्य-पुस्तकें हैं जो हिन्दी माध्यम

से तत्कालीन सरकारी कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिए तैयार की गयी थीं। इनमें भाषा के कृत्रिम रूप में विकास की अपेक्षा न रखते हुए मनुष्य के बौद्धिक और आध्यात्मिक उत्थान पर ध्यान दिया गया है। अत: भाषा की शुद्धता और व्याकरणिक व्यवस्था पर ध्यान देने की अपेक्षा विषय के कथन प्रतिपादन और प्रस्तुतीकरण और विवेचन पर लेखक का ध्यान केन्द्रित रहा है। भावों की अकृत्रिम रूप से अभिव्यक्ति होने तथा केवल सूचनात्मक सम्प्रेषणीयता पर बल होने के कारण इनमें भाषा का लोकव्यवहृत रूप मिलता है। यह विशेषता अभिलेखों और बहियों में भी स्थान-स्थान पर आ गयी है। इनमें तत्कालीन खड़ीबोली के व्यावहारिक स्वरूप के सजीव प्रमाण और बोलचाल या वार्तालाप-शैली के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इन्हें निम्नलिखित व्याकरणिक कोटियों में विभाजित कर विश्लेषित किया जा सकता है।

संज्ञा शब्द

(i) संज्ञा, लिंग-वैशिष्ट्य-रूपात्मक वैशिष्ट्य संज्ञा शब्दों में लिंग, वचन और कारकों के स्तर पर देखा जा सकता है। कोश में प्रयुक्त संज्ञा शब्दों से अतिरिक्त संज्ञावत् प्रयुक्त होने वाले विशेषण, बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ (कृदन्त) भी इस वैशिष्ट्य से पूर्ण हैं। इनमें लिंग-वैशिष्ट्य निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है,

१. संज्ञा शब्दों का लिंग शब्दों की व्युत्पत्ति, अन्त्य, रूप, आकृति या गठन पर आधारित नहीं है। यह संस्कृत के समान व्युत्पादक प्रत्ययों पर आधारित नहीं है। इन आधारों पर आरंभिक खड़ीबोली के संज्ञा शब्दों का विवेचन संभव नहीं। क्योंकि 'ए' 'ऐ' और औकारांत संज्ञा शब्दों से अतिरिक्त शेष सभी स्वरों से अन्त होने वाली संज्ञाएँ पुँल्लिग और स्त्रीलिंग हैं। ओकारान्त संज्ञाएँ विदेशी हैं और उपाधिवाचक हैं। अतः पुँल्लिग हैं। इस समय तक उपाधिसूचक स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द नहीं मिलते। यहाँ औकारान्त संज्ञाएँ नहीं मिलतीं।

सरल और यौगिक दोनों प्रकार की संज्ञाएँ पुँल्लिग और स्त्रीलिंग हैं। अत: शब्दों के गठन या संरचना के आधार पर इनका विश्लेषण संभव नहीं।

संज्ञा शब्दों की ऐतिहासिकता या व्युत्पत्ति भी लिंग-भेद स्पष्ट करने में सहायक नहीं है क्योंकि संस्कृत तथा विदेशी स्रोतों के शब्दों में मूलभाषा का

लिंग कहीं तो सुरक्षित रहा है तो कहीं इसमें परिवर्तन हो गया है। ऐसे शब्द कहीं तो पुँल्लिग हैं तो कहीं स्त्रीलिंग में रखे गये हैं। इन पर बँगला आदि पूर्वी भाषाओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है, जिनमें लिंग-भेद नहीं होता अथवा मराठी आदि भाषाओं का, जिनमें तीनों लिंग आज तक मिलते हैं। कुछ स्थानों पर जनपदीय प्रभाव लिंग-भेद का एक कारण बन गया है। वास्तव में इस काल-खण्ड का खड़ीबोली साहित्य पर्याप्त मात्रा में अहिन्दी भाषियों के द्वारा लिखा गया तथा हिन्दी में इतर प्रदेशों में निबद्ध किया गया और वहीं से प्रकाशित भी हुआ जिसका प्रभाव इन प्रदेशों में लिखी गयी और छपी हुई रचनाओं तक में छा गया। इस प्रकार लिंग वैभिन्य भाषा की प्रकृति बनकर रह गया है। स्त्रीलिंग शब्द सर्वत्र स्त्रीलिंग में रखे गये हों और पुँल्लिग शब्द सर्वत्र पुँल्लिग में हों ऐसा कोई व्यवस्थाबद्ध नियम इस समय तक विकसित नहीं हो सका था। एक ही रचनाकार के द्वारा और एक ही पत्र लेखक के द्वारा एक शब्द दो भिन्न स्थानों पर, एक ही संदर्भ में प्रयुक्त किये जाने पर दो भिन्न लिंगों में रखा गया है। स्पष्ट होता है कि इस समय तक खड़ीबोली में काल, स्थान और प्रयोक्ता के आधार पर पर्याय भेद विकसित नहीं हो सका था।

मूल स्रोत की भाषा में पुँल्लिग शब्दों के पर्यायवाची शब्द मूल भाषा में स्त्रीलिंग क्यों न रहे हों, परन्तु यहाँ पुँल्लिग शब्दों के पर्यायवाची होने के कारण पुँल्लिग बना दिये गये हैं। दो पर्यायों में से यदि एक पुँल्लिग है तो दूसरा उभयलिंगों में है।

प्रत्ययों के आधार पर भी इनका लिंग निर्णीत नहीं होता, क्योंकि संस्कृत आदि भाषाओं में जिस प्रकार शब्दों को प्राकृतिक अवस्थाओं के अनुकरण पर स्त्रीलिंग, पुँल्लिग और नपुंसक लिंग में रखा गया है और इनमें लिंग पार्थक्य प्रत्ययों से स्पष्ट होता है, उसी प्रकार यहाँ प्रत्ययों के आधार पर सर्वत्र लिंग-भेद प्रकट नहीं होता क्योंकि स्त्रीलिंग प्रत्ययों से निर्मित शब्द वाक्य में पुँल्लिग संज्ञाओं के समान प्रयुक्त हुए हैं और इसके विपरीत पुँल्लिग प्रत्ययों से निर्मित शब्द स्त्रीलिंग शब्दों के समान रखे गये हैं।

अर्थ की सजीवता और निर्जीवता के आधार पर भी लिंग विभाजन संभव नहीं, क्योंकि सजीव और निर्जीव पदार्थवाची, जातिवाचक और व्यक्तिबोधक संज्ञा शब्द आवश्यक स्थलों पर पुँल्लिग और स्त्रीलिंग बना लिये गये हैं।

कुछ भेद कर्मकारक के चिह्न 'को' के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है, परन्तु इससे केवल प्राणीवाचक और अप्राणीवाचक संज्ञाओं का भेद ज्ञात

होता है। यह केवल प्राणीवाचक संज्ञाओं के साथ ही हो ऐसा कोई नियम इसमें नहीं मिलता। अप्राणीवाचक संज्ञाओं के साथ भी इसका प्रयोग है। यह अत्यल्प स्थानों पर है। सकर्मक क्रियाओं के रहने पर वाक्य में अप्राणीवाचक संज्ञाओं के साथ 'को' का प्रयोग है, जो वास्तव में अपवाद ही कहा जायगा।

वास्तव में, खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप लिंग संबंधी अनियमितताओं, शिथिलताओं और अनिश्चितताओं से भरा पूरा है, जिसमें लोक व्यवहार को मानदण्ड माना गया है। लिंग वैविध्य पुँल्लिग शब्दों की अपेक्षा स्त्रीलिंग शब्दों में व्यापक है। स्त्रीलिंग वाचक अधिकांश शब्द चाहे वह अन्य भाषाओं में स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग में रहे हों, पँल्लिग बना लिये गये हैं। इससे प्रमाण मिलता है कि खड़ीबोली अपने आरंभिक स्वरूप में पुँल्लिग प्रधान भाषा थी। भाषा में यदि दो निकटस्थ और सामाजिक शब्दों में एक पुँल्लिग है तो निकटस्थ होने के कारण दूसरा शब्द स्त्रीलिंग वाचक होने पर भी पुँल्लिग बना लिया गया है। स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के अर्थात् विशेष्य के विशेषण स्त्रीलिंग में हैं तो उनसे अन्वित क्रियाओं के कर्ता पुँल्लिग में हैं। वाक्य में एक से अधिक कर्ता पुँल्लिग और स्त्रीलिंग हैं तो उनके क्रिया रूप कहीं तो पुँल्लिग कर्ता के अनुरूप हैं तो कहीं स्त्रीलिंग कर्ता से अन्वित हैं।

लिंग स्तर पर संज्ञाओं के अनियमित और अव्यवस्थित प्रयोग फोर्ट विलियम कालेज से इतर लेखकों की रचनाओं में तथा संस्कृत, अंग्रेजी, बँगला से अनूदित उपसाहित्यिक विषयों की पाठ्य-पुस्तकों में अधिक अनुपात में मिलते हैं। ये रचनाएँ समाज-सुधार, इतिहास, व्याकरण, प्राकृतिक पदार्थ, रसायनशास्त्र और ज्योतिष आदि विविध ज्ञानात्मक विषयों की हैं। इनके लेखक विदेशी तो कुछ स्वदेशी हैं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें कलकत्ता और आगरा से प्रकाशित हैं। इनमें लिंग वैशिष्ट्य निम्नलिखित वर्गों में रखकर देखा जा सकता है,

१. अनियमित प्रयोग, और

२. नियमित प्रयोग

(१) अनियमित प्रयोग—अ, इ, उ तथा आ और ईकारांत संज्ञाएँ, चेतन और अचेतन वस्तुओं और विभिन्न भावों की द्योतक संज्ञाएँ, वाक्य-प्रयोग में अनन्वय दोष से प्रभावित हैं। संस्कृत के तत्सम शब्द, तद्भव और देशज शब्द और कुछ विदेशी संज्ञा शब्द, जो कोश में स्त्रीलिंग हैं, यहाँ पुँल्लिग में रखे गये हैं। इन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर देखा जा सकता है,

(i) अकारांत संज्ञा शब्द 'खोज' स्त्रीलिंग है । परन्तु खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में यह पुँल्लिग है । इससे 'आविष्कार' का भाव प्रकट किया गया है । 'आविष्कार' पुँल्लिग शब्द है । अतः भाव साम्य होने के कारण खोज शब्द भी पुँल्लिग में रखा गया है, ऐसा माना जा सकता है, उदाहरण,

खोज—प्रथम प्रदक्षिण करने वाले ने इस एक दिन को घटती बढ़ती देखकर बहुत सा विचार और खोज किया ।[1]

इसी प्रकार 'कुदरत' अरबी भाषा का शब्द है । यह स्त्रीलिंग है । इसका प्रयोग नैसर्गिक गुणों या प्राकृतिक अवदान के लिए होता है । गुणों के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने के कारण यह भी पुँल्लिग में है, यथा,

कुदरत : सब कुदरत तुझ में भरा है[2]

'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के अभिलेखों में 'सरन', 'चीज़', 'सर्कार'; 'नकल', 'मारपीट', 'बुलाहट' आदि इसी प्रकार स्त्रीलिंग से पुँल्लिग बना लिये गये हैं ।

सरन : कम्पनी बहादुर का सरन[3]

चीज : देस का चीज[4]

सर्कार : हमारा सर्कार[5]

नकल : उसका नकल[6]

इसी प्रकार 'फौज', 'हकीकत', 'रसम', 'सूरत', 'सल्लाह', 'पर्दा', 'मिनार', 'मोहर', 'नालिश', 'मुलाकात' आदि शब्द हैं । यह भी पुँल्लिग में रखे गये हैं । इस समय संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के नपुंसकलिंगी शब्द तथा फ़ारसी और अरबी भाषाओं के शब्द, जो आज हिन्दी में स्त्रीलिंग में स्वीकृत हो चुके हैं पुँल्लिग में रखे गये हैं । इतने अधिक उदाहरणों से निष्कर्ष निकलता है कि खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप पुँल्लिग प्रधान था ।

सरल आकृति वाले शब्दों के अतिरिक्त यौगिक शब्द भी स्त्रीलिंग से हटाकर विपरीत लिंग में रखे गये हैं । अकारांत संज्ञाओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं । 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' में ऐसे ढेरों शब्द भरे पड़े हैं, यथा,

---

१. भू०, पृष्ठ ४२ ।
२. गीते०, पृष्ठ १५८ ।
३. अभि०, ३२ क ।
४. अभि०, ३७ क ।
५. अभि०, ३३ क ।
६. अभि०, ४२ क ।

मारपीट : मारपीट कीआ है[१]

बुलाहट : सर्कार से बुलाहट आया[२]

दुपहर : दुपहर होता है[३]

अकारांत शब्दों से अतिरिक्त कुछ आकारांत स्त्रीलिंग वाचक भी विपरीत लिंग में रखे गये हैं। 'रक्षा', 'संभावना', 'इच्छा', 'सेवा', 'दुनया' इत्यादि इसी प्रकार के शब्द हैं। ये अनूदित उपसाहित्यिक रचनाओं और अभिलेखों की खड़ीबोली में विशेष द्रष्टव्य हैं,

रक्षा=दया करि अश्वत्थामा का
प्रान रक्षा क्रिया था[४]

संभावना : क्यौंकि बालपने में किसी भाँति कुछ
दोष का संभावना नहीं[५]

इच्छा : कृपा जो केवल हमारे ऊपर रहे
ऐसा इच्छा कर्ना योग्य नहीं है[६]

सेवा : रमाकान्त उपाध्याय का कोटिकोटि
दण्डवत सेवा पूर्वकं पत्रमिदं[७]

दुनया : दुनया रहैगा[८]

अनियमितता का प्रभाव ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों पर भी देखा जा सकता है, जहाँ निकटस्थ विशेषण और क्रिया रूप पुँल्लिग हैं। ऐसे उदाहरण साहित्यिक, उपसाहित्यिक रचनाओं और अभिलेखों की भाषा में विशेष हैं, यथा,

धरती — धर्ती : धरती···चौकोना है[९]
धर्ती उसने रचा है[१०]

गाली : गाली दीआ है[११]

भलाई : हमारा भलाई[१२]

---

१. अभि०, १७ क।
२. अभि०, ३० क।
३. पदा०, पृष्ठ ११।
४. स्त्री०, पृष्ठ ६।
५. स्त्री०, पृष्ठ २०।
६. पदा०, पृष्ठ १२।
७. अभि०, २३।
८. अभि०, ३५ क।
९. भू०, पृष्ठ १।
१०. गीते०, पृष्ठ ३९।
११. अभि०, १७ क।
१२. अभि०, ३५ क।

अभिलेखों से 'अरजी······आया'[१] और "सरकार का मर्जि"[२] जैसे उदाहरण भी इसी सरणि में रखे जा सकते हैं।

(ii) व्याकरणिक स्तर पर अव्यवस्था के दूसरे उदाहरण पुँल्लिग शब्द हैं। इनका पुँल्लिग के स्थान पर स्त्रीलिंग में प्रयोग है। अकारांत शब्दों पर यह प्रभाव निम्नलिखित उदाहरणों में द्रष्टव्य है। 'मन', 'विभाग', 'पीतल', 'वर्ष', 'तारागण', 'भय', 'हिन्दुस्तान', 'ईनाम' आदि शब्द पुँल्लिग हैं, परन्तु उपसाहित्यिक खड़ीबोली में यह सब स्त्रीलिंग शब्दों के समान प्रयुक्त हुए हैं, यथा,

मन : नाना पाप कर्म में मन चलती है[३]

पीतल : जैसे पीतल धूप में चमकती है[४]

इनमें सामान्यीकरण की प्रवृत्ति सक्रिय है। 'मन-चलना' वस्तुतः 'इच्छा होने' का भाव व्यक्त कर रहा है। इच्छा' के पर्याय रूप में प्रयुक्त होने तथा 'इच्छा' का अर्थ व्यक्त करने के कारण 'मन' शब्द भी स्त्रीलिंग में रखा गया प्रतीत होता है। 'इच्छा' शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग है। 'चलना' गतिशीलता का सूचक है। सामान्य भाषा व्यवहार में यह प्राणीवाचक संज्ञाओं से अन्वित होता है, परन्तु यहाँ भाववाचक और अमूर्त संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होकर भाषा वैशिष्ट्य उत्पन्न कर रहा है। ऐसे उदाहरण प्रचलन से उठ चुके हैं, इन्हें भाषा के अव्यवस्थित प्रयोग कहा जा सकता है। 'पीतल' शब्द पुँल्लिग है। यह स्त्रीलिंग में मिलता है। कदाचित् 'धातु' होने के कारण इसे भी स्त्रीलिंग में रखा गया है। क्योंकि 'धातु' शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग है। इसे पश्चिम जनपदों में बोली जाने वाली भाषाओं का प्रभाव माना जा सकता है। द्रष्टव्य है कि इस प्रकार के उदाहरण आगरा से प्रकाशित 'ज्योतिष विद्या का संक्षेप वर्णन' शीर्षक रचना में अधिक है। यह भी उन्नीसवीं शती के चौथे दशक की रचना है। इसी प्रकार कलकत्ता से प्रकाशित 'पदार्थ-विद्यासार' में "इतने दिन की एक वर्ष",[५] "क्या तारागण सूर्य को समान हैं"[६] "इसी रीति जगतशून्य होगा ऐसी भय क्यों नहीं होती"[७] तथा "भारतवर्षीय

---

१. अभि०, १० क।
२. अभि०, ३३।
३. स्त्री०, पृष्ठ २।
४. ज्यो०, पृष्ठ ५।
५. पदा०, पृष्ठ १४।
६. पदा०, पृष्ठ ६।
७. पदा०, पृष्ठ ५३।

इतिहास" रचना में प्राप्त 'सारी हिन्दुस्तान'[१] "हिन्दी व्याकरण में और कै प्रकार से विभाग किई गई है"[२] जैसे प्रयोग उल्लेखनीय हैं। इसी दशक के राजपूताना एजेन्सी के अभिलेखों में 'ईनामं दी जावैगी'[३] जैसे शिथिल प्रयोग मिलते हैं। इसमें परणाम निकलता है कि खड़ीबोली में लिंग-स्तर पर अव्यवस्था उन्नीसवीं शती के चौथे दशक से आरंभ हुई। यह पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों के प्रभाव से हिन्दी में आयी।

(iii) संज्ञाओं में लिंग-स्तर पर प्राप्त वैशिष्ट्य उभयलिंगी-प्रयोगों में देखा जा सकता है। अ, इ, उ तथा आ और ईकारांत अनेक शब्द दोनों लिंगों में रखे गये हैं। 'पुस्तक', 'वात', 'जिनीस', 'तजबीज', 'षवर', 'स्पोट' आदि अकारांत शब्द दोनों लिंगों में हैं। कोश में यह स्त्रीलिंग है, परन्तु आलोच्य खड़ीबोली में यह दो लिंगों में प्रचलित है, यथा,

पुस्तक (पुँल्लिग) : तुम अपने पुस्तक को खोलो[४]
तुम अपने पुस्तक को ढांपो[५]

(स्त्रीलिंग) : पुस्तकें न मिलती थीं[६]
प्रत्येक देश की पुराणी पुस्तकें देखोगे[७]

यह शब्द गुणकारी उपदेश (१८४० ईसवी) तथा 'वाक्यावली' (१८४६ ईसवी) में पुँल्लिग में है, परन्तु इसी अवधि की अन्य रचना 'पत्नमालिका' (१८४१ ईसवी) और 'भूगोलसार' (१८४१ ईसवी) में स्त्रीलिंग में हैं। प्रथम दोनों रचनाएँ अंग्रेजी से अनूदित हैं। 'वाक्यावली' के रचयिता विदेशी हैं। यह कलकत्ता से छपी है। अतः संभावना की जा सकती है कि इस समय विदेशी लेखकों के हिन्दी की व्याकरणिक व्यवस्था से अनभिज्ञ रहने और अंग्रेजी से अनुवाद करने के कारण इसमें लिंग-भेद आ गया हो। पुस्तक का कलकत्ता से प्रकाशित होना भी एक कारण माना जा सकता है। इस पर बँगला का प्रभाव माना जा सकता है। इसके विपरीत 'पत्नमालिका' के रचनाकार भारतीय हैं। पुस्तक में सिहोर से बम्बई तक की यात्रा का विवरण है। दोनों पश्चिमी क्षेत्र हैं। अतः पुष्ट होता है कि इस समय खड़ीबोली का स्वरूप स्थान-भेद से भी प्रभावित था।

१. भार०, पृष्ठ १०६।
२. हिन्दी०, पृष्ठ १।
३. अभि०, ८ घै।
४. वाक्या०, पृष्ठ ५।
५. वाक्या०, पृष्ठ ७।
६. पत्न०, पृष्ठ १५।
७. भू०, पृष्ठ ३६।

अकारांत 'वात' शब्द दोनों लिंगों में मिलता है। उपसाहित्यिक रचनाओं में स्त्रीलिंग में है तो अभिलेखों में पुँल्लिग में है। 'भूगोलसार अर्थात् ज्योतिष चन्द्रिका' तथा फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के अभिलेखों से कुछ वाक्य उद्धृत हैं,

वात—वात (पुँल्लिग) : अपने दिल का समझा वात[१]
फेर दुस्तावात नहीं होने वाला है[२]

(स्त्रीलिंग) : ये बातें बढ़ाकर लिखी है[३]

अभिलेखों से 'तुमारा वात',[४] 'वन्दोवस्त का वात'[५] आदि अन्य प्रयोग भी इसी सरणि में रखे जा सकते हैं। एक समय और एक सन्दर्भ में दो भिन्न व्यक्तियों के द्वारा लिखित अभिलेखों में 'बात' शब्द दो भिन्न लिंगों में रखा गया है। एक स्थान पर पुँल्लिग है तो दूसरे स्थान पर स्त्रीलिंग है। 'फारेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के अभिलेखों से एक-दो वाक्य उद्धृत हैं। इनमें 'वात' शब्द के पुँल्लिग और स्त्रीलिंग प्रयोग द्रष्टव्य हैं,

(पुँल्लिग) : जितना वात भाई रुइवीर साह···जाहर किया था[६]

(स्त्रीलिंग) : लेकिन जितनि वात भाई रुइवीर साह···जाहर किया था[७]

इनसे विदित होता है कि इस समय तक भाषा में संरचनापरक नियम स्थिर नहीं थे। एक शब्द के पुँल्लिग और स्त्रीलिंग प्रयोग दोनों स्वीकार्य थे। लिंग-व्यत्यय व्याकरणिक-व्यवस्था के अन्तर्गत स्वीकृत था। 'बात' शब्द का पुँल्लिग प्रयोग आज समाप्त हो चुका है। केवल स्त्रीलिंग-प्रयोग बच रहा है।

सामान्यतः वाक्य में प्रयुक्त क्रियाएँ और संबंधसूचक संज्ञाओं के लिंग और वचन परस्पर अन्वित होने चाहिए परन्तु, खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में इस प्रकार के व्यवस्थाबद्ध व्याकरणिक नियमों का निर्वाह सर्वत्र नहीं हो पाया है। एक स्थान पर क्रिया रूप स्त्रीलिंग संज्ञा के अनुरूप है तो दूसरे स्थान पर क्रिया रूप संज्ञा शब्दों के लिंग से अप्रभावित है। ये पुँल्लिग में हैं। व्याकरणिक नियमों का अतिक्रमण, बोल-चाल की भाषा का प्रभाव प्रतीत होता है। 'जिनिस जनस' शब्द दोनों लिंगों में प्रचलित मिलता है, यथा,

१. अभि०, २३ क।
२. अभि०, २३ क।
३. भू०, पृष्ठ २३।
४. अभि०, ३२ क।
५. अभि०, ३३ क।
६ अभि०, २९ क।
७ अभि०, ३० क।

जिनिस—जनस : (स्त्रीलिंग) : जिनिस भेजि है पहुँचैगी[1]

(पुँल्लिग) : षात व जनस भेजा है[2]

दूसरे वाक्य में 'जनस' के साथ स्त्रीलिंग क्रिया 'भेजी' अन्वित होना चाहिए था परन्तु, यहाँ क्रिया 'भेजा' पुँल्लिग संज्ञा 'षत' से प्रभावित है। 'षत' स्रोत भाषा में पुँल्लिग है। वाक्य में दो या अधिक संज्ञाओं के रहने पर उनके क्रिया रूप अंतिम संज्ञा के लिंग से प्रभावित होते हैं। यह नियम इस समय तक विकसित नहीं हो सका था। अरबी, फ़ारसी और अंग्रेजी भाषा के शब्द 'तजवीज', 'षवर', और 'रपोट' स्त्रीलिंग हैं परन्तु यह स्त्रीलिंग और पुँल्लिग में प्रचलित मिलते हैं। राजपूताना एजेन्सी और 'फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' के अभिलेखों में यह प्रयोग विशेष रूप से प्रचलित थे। यथा,

तजवीज (तज्वीज) पुँल्लिग : अलवीस साहब बहादुर ने तजवीज किया[3]

(स्त्रीलिंग) : ये तजवीज···मंजुर की[4]

षवर (पुँल्लिग) : षवर···देना होगा[5]

(स्त्रीलिंग) : ईस तरफ की षवर[6]

रपोट (पुँल्लिग) : रपोट कीया[7]

(स्त्रीलिंग) : सदर में रपोट की[8]

अनन्वित प्रयोगों के अन्य उदाहरण ह्रस्व इकारांत तथा उकारान्त शब्दों के देखे जा सकते हैं। 'गति', 'रात्रि', 'वायु' आदि लिंग-भेद से प्रभावित हैं। ऐसे उदाहरण 'पदार्थ-विद्यासार' में भरे पड़े हैं। उल्लेखनीय है कि यह उन्नीसवीं शती के चौथे दशक की रचना है।

गति (पुँल्लिग) : पिता तुम रोवो मत क्योंकि करम की गति ऐसा है[9]

(स्त्रीलिंग) : पवन की गति[10]

रात्रि—रात्र (स्त्रीलिंग) : एक रात्रि होती है[11]

(पुँल्लिग) : दिन रात्र बड़े वा छोटे होते हैं[12]

---

१. अभि०, २६ क।
२. अभि०, ३० क।
३. अभि०, ६ ख
४. अभि०, ६ ख।
५. अभि०, ३४ क।
६. अभि०, ४७।
७. अभि०, ६ ख।
८. अभि०, ६ ख।
९. स्त्री०, पृष्ठ ८।
१०. हि० प०, हि० हिंदु०, पृष्ठ २७०।
११. पदा०, पृष्ठ १०।
१२. पदा०, पृष्ठ १०।

वायु (पुँल्लिग) : दक्षिण का वायु मध्यम है उसका यह गुण है[१]

(स्त्रीलिंग) पृथिवी का साथ स्थिर वायु मिली हुई चलती है[२]

यहाँ 'रात्र' शब्द का भाव और अर्थ साम्य कदाचित् पुँल्लिग 'अंधकार' शब्द से होने के कारण यह पुँल्लिग में रखा गया प्रतीत होता है। भाव सम्प्रेषणीयता के लिए व्याकरणिक नियमों का अतिक्रमण करना खड़ीबोली की आरंभिक अवस्था की विशेषता रही है। 'वायु' शब्द का संबंध—'दक्षिण समुद्र से उठने वाली वायु'— से दिखाया है पुँल्लिग शब्द 'समुद्र' से जोड़ने के कारण 'वायु' शब्द पुँल्लिग मे रखा गया है। 'पृथिवी' स्त्रीलिंग शब्द है। अतः जब 'वायु' का संबंध 'पृथिवी' से जोड़ा है तब वह स्त्रीलिंग में रखा गया है। स्थिरता का भाव दिखाने तथा पृथ्वी से संबंध दिखाते समय स्त्रीलिंग में 'वायु' का प्रयोग प्रयोगकर्ता का भाषा-कौशल है।

इसी प्रकार के उभयलिंगी प्रयोगों के उदाहरण आकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं के हैं। 'इच्छा', 'संख्या', 'पाठशाला' शब्द इसी प्रकार के हैं। ये स्त्रीलिंग और पुँल्लिग दोनों लिंगों में प्रचलित थे,

इच्छा (स्त्रीलिंग) : मेरी बड़ी इच्छा है[३]

(पुँल्लिग) ऐसा इच्छा कर्ना योग्य नहीं है[४]

संख्या (पुँल्लिग) : इसके वर्षों की संख्या चारों युगों के बर्षों की मिला के सहस्त्र गुण करने से उसके वर्षों को संख्या के समान होते हैं[५]

(स्त्रीलिंग) : क्रम-क्रम उनकी संख्या ऐसी बढ़ी[६]

पाठशाला (पुँल्लिग) : काशी में अंग्रेजी का एक पाठशाला है[७]

(स्त्रीलिंग) : सो वह पाठशाला बहुत अच्छी है[८]

उभयलिंगी प्रवृत्ति ईकारांत शब्दों में छायी हुई है। 'चिट्ठी', 'दोस्ती' शब्द स्त्रीलिंग और पुँल्लिग दोनों में प्रचलित थे, यथा,

---

१. पदा०, पृष्ठ २३।

२. पदा०, पृष्ठ १४।

३. वाक्या०, पृष्ठ ३।

४. पदा०, पृष्ठ १२।

५. भार०, पृष्ठ ४।

६. कथा०, पृष्ठ ८।

७. वाक्या०, पृष्ठ ३।

८. वाक्या०, पृष्ठ ३।

चिट्ठी — चीठी (स्त्रीलिंग) चिट्ठी आई[१]

: साहब की चीठी[२]

(पुँल्लिग) : चीठी जो लिखा हुआ[३]

एक संदर्भ में दो पर्यायवाची तत्सम संज्ञा शब्द जो स्त्रोत भाषा में नपुंसक लिंग हैं, दो भिन्न लिंगों में रखे गये हैं। 'ग्रंथ' और 'पुस्तक' शब्द इसी प्रकार के हैं। 'ग्रंथ' पुँल्लिग है और 'पुस्तक' शब्द स्त्रीलिंग और पुँल्लिग दोनों लिंगों में है। दोनों शब्द एक ही लेखक की भाषा में द्रष्टव्य हैं। 'भूगोल सार अर्थात् ज्योतिष चंद्रिका' से एक वाक्य उदाहरणार्थ निम्नलिखित है,

ग्रंथ (पँल्लिग) : ग्रंथ.........आया[४]

पुस्तक (पुँल्लिग) : तुम अपने पुस्तक को ढांपों[५]

(स्त्रीलिंग) : पुस्तक......छपी[६]

२. नियमित लिंग-व्यवस्था—अव्यवस्थित और अनन्वित उदाहरणों के साथ-साथ भाषा में एकरूपता का विकास मंथर गति से हो रहा था। लिंग-स्तर पर अन्वित, स्थिर और व्यवस्थाबद्ध रूप भाषा में विकसित हो रहे थे। यही अन्वित रूप आज खड़ीबोली के मानक स्वरूप के मापदण्ड कहलाते हैं। इनके उभरने के साथ-साथ विपरीत लिंग वाले तथा उभयलिंग वाले प्रयोग भाषा से समाप्त होना आरंभ हो गये हैं। लिंग-स्तर पर स्थायित्व की प्रवृत्ति संस्कृत के तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी वर्गों के शब्दों में आरंभ हो चली थी। इनमें संज्ञा शब्दों के निकटस्थ विशेषण, संबंध कारक तथा क्रिया रूप समलिंग में हैं। ऐसे उदाहरण १९वीं शती के आरंभिक दो-तीन दशकों तक प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। विदित है कि इसके पश्चात् से भाषा में लिंग वैविध्य पनपने लगा था। अकारांत पुँल्लिग शब्द सभी प्रकार के अर्थों के वाचक हैं। जातिवाचक, भाववाचक और स्थानवाचक शब्दों के कुछ उदाहरण रचनाकाल के वर्ष के क्रम के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से रखे जा सकते हैं,

ghwe : Sule se uchhe punchwale ke ghur.[७]

दलिददर : किये दूर सुदामा के दलिददर[८]

---

१. अभि०, ३७ क।

२. अभि०, ६ ख।

३. अभि०, १८ क।

४. भू० शीर्षक पृष्ठ।

५. वाक्या०, पृष्ठ ७।

६. भू० शीर्षक पृष्ठ।

७. डॉय, ओ० लि०, पृष्ठ १३४।

८. आश०, पृष्ठ ३८।

घटाव : मनुष्य का घटाव······इडन नासक उपवन से उनका निकाल देना[१]

भेद : वैश्य वर्ण कै चौरासी हैं भेद[२]

षत : हमारा षत[३]

पथर : पथर उषाड़ दीया[४]

इसी प्रकार 'इहा के समाचार',[५] 'श्री वेदव्यास जी ने बनाये कई पुरान',[६] 'मालव देश में भूपाल प्रदेश के अजंठ'[७] आदि कई उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इनसे विदित होता है कि खड़ीबोली में १७६८ ईसवी से ही स्थिरता आनी आरंभ हो गयी थी। इसी प्रकार अकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ भी अपने निकटस्थ अवयवों से अन्वित हैं, यथा

Geen : Ghore pur geen bandhee hy ki nuhhen[८]

रात : हमने रात काटी है[९]

ढील : दश-दश पल की ढील से सूर्योदय होता जाता है[१०]

आष : मेरी······आष[११]

बन्दरबोट : बन्दरबोट······आई हुई[१२]

भाषा में ह्रस्व इकारांत और ह्रस्व उकारांत पुँल्लिग शब्द अत्यल्प हैं। इनके व्याकरणसम्मत प्रयोग निम्नलिखित हैं,

ऋषि : ऋषि······खेलता था[१३]

रवि : सायन मेष पर रवि आता है[१४]

धूमकेतु : क्या ग्रहों में धूमकेतु बहुत दूर जाता है[१५]

मुनि, पति, मनु, साधु, बंधु आदि संस्कृत शब्द भी इसी सरणि में रखे जा सकते हैं। पुँल्लिग की अपेक्षा स्त्रीलिंग इकारांत और उकारांत-संज्ञाएँ सीमित हैं। इनके व्यवस्थित प्रयोग १७६८ ईसवी से मिलते लगते हैं जिससे इस तथ्य

१. कथा०, पृष्ठ १।
२. हि० जा० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २८३।
३. अभि०, ३ क।
४. अभि०, ७ क।
५. अभि०, २८ क।
६. अश०, ३७।
७. भू० भूमिका।
८. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
९. अश०, पृष्ठ ४१।
१०. भू०, पृष्ठ ४१।
११. रि०, पृष्ठ २।
१२. पत्र०, पृष्ठ १२।
१३. प्रेम०, पृष्ठ ५।
१४. भू०, पृष्ठ २५।
१५. पदा०, पृष्ठ १८।

की पुष्टि में कोई संदेह नहीं रह जाता कि खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप जहाँ जनपदीय और अन्य प्रादेशिक भाषाओं से प्रभावित हो विविध रूपात्मक था वहीं उसमें एकरूपता आनी आरंभ हो गयी थी। इकारांत और उकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं;

शक्ति : शेष अपनी शक्ति से ठहराया है[१]

bustoo : bustoo prusidha hogee[२]

आयु : इससे आयु वृद्धि होती है।[३]

इसी क्रम में पुँल्लिग आकारांत शब्दों के व्याकरणसम्मत उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संस्कृत के तत्सम, अर्धतत्सम, तद्भव तथा देशज और विदेशी स्रोतों के शब्दों में यह विशेषता निम्नलिखित उदाहरणों में द्रष्टव्य है;

पिता : तुम्हारे पिता[४]

करता : अब विभागकाल और रीति और विभाग का करता यह तीन बातें लिखते हैं[५]

महीना-महीना था[६]

षरीता : षरीता······आया[७]

चट्टा, छींटा, घराना, झगड़ा, परवाना आदि अन्य पुँल्लिग शब्द भी इसी प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इसी प्रकार की स्थिरता और व्यवस्था आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों में भी विकसित हो रही थी। यथा,

churcha : churcha phuele[८]

परीछा : इनकी बुद्धि की परीछा······नहीं की[९]

इत्तला : इत्तला···कर दई है[१०]

ईकारांत पुँल्लिग और ईकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ भी अपने निकटस्थ अवयवों के साथ अन्वित होने लगी थीं। यह प्रवृत्ति आरंभिक वर्षों से प्राप्त होने लगती है। यथा,

---

१. भू०, पृष्ठ ४८।
२. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६।
३. हिं० प०, हिं० हिदु०, पृष्ठ २७४।
४. प्रेम०, पृष्ठ ५।
५. दाय०, पृष्ठ ६।
६. अभि०, १७ क।
७. अभि०, ४९ क।
८. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ५।
९. स्त्री०, पृष्ठ ३।
१०. अभि०, १३ क।

पुँल्लिग—

योगी : योगी⋯⋯पहुँचे[१]

खेलाड़ी : अपने उस खेलाड़ी की[२]

आदमी : आदमी जाता है[३]

स्त्रीलिंग—

कली : जो फूल की कली के रूप में खिले[४]

इस्तरी : जब इस्तरी पड़ोस से एक तौफ़ा ले आई[५]

घोड़ी : घोड़ी चरती हुई[६]

इसी प्रकार जौहरी, दहेंड़ी, डाढ़ी, राह्वारी, म्हैरवांनी आदि शब्द प्रस्तुत किये जा सकते हैं। दीर्घ अकारांत पुँल्लिग और स्त्रीलिंग संज्ञाएँ अत्यल्प हैं। 'हिन्दू' और 'बहू' इसी वर्ग के शब्द हैं,

हिंदू : हिंदू थे[७]

बहू : प्रथी सिंध की बहू[८]

समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि १९वीं शती के आरंभिक पचास-साठ वर्षों की खड़ीबोली संज्ञाओं के लिंग-विधान की दृष्टि से अस्थिर और अव्यवस्थित थी। अस्थिरता और शिथिलता उप-साहित्यिक रचनाओं में अधिक मिलती है। मात्र भावों की संप्रेषणीयता पर आधारित होने के कारण इनमें तथा संस्कृत और अंग्रेजी से अनूदित होने के कारण शिथिलता का अनुपात बढ़ गया है। अहिन्दी भाषियों द्वारा लिखित होने के कारण भी खड़ीबोली की निजी व्यवस्था में पूर्णता नहीं आ पायी है। इसमें एक काल, एक स्थान तथा व्यक्ति और संदर्भ का प्रभाव पनप नहीं सका है। यह विशेषता १८४० ईसवी के आस-पास की रचनाओं में व्यापक मिलती है। पुँल्लिग के लिए स्त्रीलिंग, स्त्रीलिंग के लिए पुँल्लिग तथा उभयलिंगी प्रयोग इसमें प्रधान थे। इसके साथ-साथ नियमित लिंग-व्यवस्था भी विकसित होने लगी थी। इसका सूत्रपात १९वीं शती के आरंभिक दशकों से हो चुका था। परवर्ती खड़ीबोली की लिंग-व्यवस्था इसी पर आधारित हुई।

२. संज्ञा, वचन वैशिष्ट्य—खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में लिंग-

---

१. राम०, पृष्ठ २।

२. रानी०, पृष्ठ १।

३. अभि०, ३३ क।

४. रानी०, पृष्ठ २।

५. अश०, पृष्ठ ४० पृष्ठ भाग।

६. अभि०, १३ क।

७. भार०, पृष्ठ १२।

८. अभि०, ४१ क।

शैथिल्य की तुलना में वचन-शैथिल्य नगण्य है। इसमें संज्ञाओं के दो वचन मिलते हैं—एकत्व सूचक एकवचन और बहुत्व सूचक बहुवचन भाषा की मुख्य प्रवृत्ति रूपात्मक प्रत्ययों के आधार पर एकवचन और बहुवचन बनाने की रही है। परन्तु स्थान-स्थान पर शब्दों की पुनरुक्ति, संख्या-वाचक विशेषण और अनिश्यवाचक सर्वनाम भी वचन के स्पष्टीकरण में सहायक हुए हैं। कतिपय संज्ञा शब्द अपने कोशगत अर्थ में एकत्व और बहुत्व के ज्ञापक हैं। अनेक स्थानों पर इनके साथ भी बहुवचन सूचक प्रत्ययों का प्रयोग है। इससे पता चलता है कि बहुत्व बोधक संज्ञाओं से बहुत्व भाव प्रकट करने की क्षमता इस अवधि में समाप्त होने लगी थी। 'लोग', 'जन', 'गण' आदि समुच्चय बोधक संज्ञाएँ अपना मूल भाव प्रकट करने की शक्ति छोड़ने लगी थीं। भाषा की गति विभिन्नता से एकरूपता की ओर हो रही थी। साहित्यिक और उपसाहित्यिक भाषा का स्वरूप वाचिक और मौखिक परंपरा से प्रभावित हो रहा था, जिसमें ब्रजभाषा, भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी और उर्दू के तत्त्व घुल-मिल चुके थे। इनके प्रभाव से अनेक प्रकार के रूपात्मक प्रत्यय भाषा में प्रवेश कर गये हैं। इनमें ब्रजभाषा के—'ऐं', '—औं', पूर्वी बोलियों के '—न्ह', '—न' (—अन), राजस्थानी, पंजाबी और उर्दू का '—आं' प्रत्यय प्रमुख है। इनका प्रयोग बिखरा हुआ मिलता है। '—ऐं' प्रत्यय संस्कृत के तत्सम, तद्भव और विदेशी स्रोत की अकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं में, 'औं' प्रत्यय तत्सम, तद्भव और विदेशी स्रोत की अ, इ, ई और ऊकारांत पुँल्लिग संज्ञाओं के साथ मिलते हैं। स्त्रीलिंग अकारांत और आकारांत संज्ञाओं में 'ओं' प्रत्यय भी मिलता है। पूर्वी बोलियों के '—न्ह' प्रत्यय का व्यवहार संस्कृत स्रोत के आकारांत शब्दों में, '—न' (—अन) प्रत्यय अकारांत और आकारान्त तत्सम संज्ञाओं में प्रयुक्त हैं। '—आं' प्रत्यय बुन्देलखण्ड और राजपूताना एजेन्सियों के पत्रों में मिलता है। इनसे पता चलता है कि इस समय खड़ीबोली का जनपदीय तथा सहअस्तित्व वाली भाषाओं से मिश्रित रूप प्रधान था, इनके साथ-साथ दूसरा निजी स्वरूप विकसित होने लगा था, जिसमें जनपदीय तत्त्वों का अभाव था।

खड़ीबोली के दोनों रूपों के विभिन्न कारकों में संज्ञाओं के चार से अधिक रूपांतर नहीं मिलते। अ, इ, उ, ई और ऊकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं के तीन तथा ओकारांत संज्ञाओं के एक से अधिक रूपांतर नहीं मिलते। इन्हें

मूल कारक और विकारी कारक इन दो वर्गों में विभक्त करके निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है,

एकवचन—(i) मूलरूप…अ, इ, उ, तथा आ, ई और ऊकारांत संज्ञा शब्दों के मूलरूप अर्थात् कर्ता और कर्म कारकों के एकवचन में संज्ञाओं की मूल प्रकृति (प्रातिपदिक) का प्रयोग है। इनमें किसी प्रकार के रूपात्मक प्रत्ययों का प्रयोग नहीं है। इसलिए विश्लेषण में एकरूपता बनाये रखने के लिए इनमें प्रत्यय के संरूप शून्य '$-\phi$' की कल्पना की जा सकती है। विवेच्य खड़ीबोली में विभिन्न स्रोतों से आयी हुई व्यक्तिवाचक, जातिवाचक और भाववाचक संज्ञाओं के एकवचन के मूलरूप इसी प्रणाली पर निर्मित हुए हैं। जिन स्थानों पर कर्ता और कर्मकारक अपने-अपने कारक-चिह्नों के साथ प्रयुक्त हैं, उन सभी स्थानों पर संज्ञाओं के एकवचन के रूप विकारी कारकों के एकवचन रूपों से अधिक भिन्न नहीं हैं। इनमें और विकारी रूपों में कोई भेद नहीं रह गया है। आकारांत पुँल्लिग संज्ञाओं के रूप इसी प्रकार के हैं। इनके मूल कारक एकवचन दो विधियों से निर्मित हैं, एक, रूपात्मक प्रत्ययों के द्वारा दूसरे, इनके संरूप शून्य "$-\phi$" के द्वारा। यह प्रवृत्ति सभी रचनाओं तथा पत्रों की भाषा में सक्रिय रही है। अध्ययन में इनकी चर्चा विकारी कारकों के एकवचन रूपों के साथ है। मूल प्रकृति के साथ शून्य संरूप स्वीकार करके विभिन्न स्वरांत संज्ञाओं का रूप संरचनात्मक विश्लेषण निम्नलिखित विधि से किया जा सकता है। ये उदाहरण नियमित वचन-व्यवस्था के हैं। यथा,

स्मांचार : स्मांचार मालुम हुवा[१]
कवि : श्री-लल्लू जी-लालकवि-आया[२]
यिशु : अै प्रभु यिशु हो दयाल[३]
परवाना : परवाना दिया[४]
ईसामसी : ईसाभसी……था[५]
कलेऊ : तुझे कलेऊ दूं[६]

'गन्धर्वसेन', और 'राजा' आदि व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ भी इसी क्रम में प्रस्तुत की जा सकती हैं। इस नियमित व्यवस्था से हटकर आकारांत पुँल्लिग संज्ञाओं के दो अन्य विशिष्ट प्रयोग प्रचलित थे। एक, जिनमें एकाकी भाव पर

---

१. अभि०, १५ क।
२. लाल०, पृष्ठ २।
३. गीर्तं०, पृष्ठ ८।
४. अभि०, ३ क।
५. कथा०, पृष्ठ ६।
६. प्रेम०, पृष्ठ ३६।

बल देने के लिए पुँल्लिग संज्ञाओं से पूर्व 'एक' और 'कोई' विशेषण शब्द जोड़े गये हैं, यथा,

एक मानुसा······था[१]
एक पलटन······है[२]
कोई घुसवार······था[३]

तथा, दूसरे जिनमें संज्ञा शब्द तो एकवचन में हैं, परन्तु उनके क्रिया रूप बहुवचन में हैं। आदरार्थक स्थलों पर ऐसे उदाहरण द्रष्टव्य हैं। ऐसे प्रयोग भौतिक धरातल पर 'एक' होकर भी भाषा-प्रयोग के संदर्भ में बहुवचन के समान प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के उदाहरण जहाँ एक ओर लेखक के सामाजिक बोध के सूचक हैं वहीं दूसरी ओर इस बात के प्रमाण भी हैं कि भारतीय संस्कृति में राजा और महाराजा सदैव आदर और सम्मान के पात्र रहे हैं। यथा,

राजा : युदुकुल में पहले भजभाव नाम राजा थे[४]

स्त्रीलिंग, संज्ञा शब्द (अ, इ, उ तथा आ और ईकारांत)—इनमें भी किसी प्रकार के रूपात्मक बाह्य प्रत्यय का व्यवहार नहीं मिलता। अत: विश्लेषण की सुविधा के लिए संरूप शून्य स्वीकार किया जा सकता है,

उमर : उमर अपनी गुजारी[५]
पंचायत : पंचायत हुई[६]
कीर्ति : कीर्ति······प्रसिद्ध है[७]
वस्तु : वस्तु है[८]
दहेंडी : टटकी-टटकी दहैडियाँ बाछ-बाछ रामकृष्ण के लिये बिलोवन बैठी[९]
goree : goree ty, ar kuro[१०]

(ii) विकारी रूप—संज्ञाओं के विकारी कारकों के एकवचन के रूप दो

---

१ म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०५।
२. पत्र०, पृष्ठ २।
३. लाल०, पृष्ठ १८।
४. प्रेम०, पृष्ठ ६।
५. अश०, पृष्ठ ३६।
६. अभि०, ६ क।
७. लाल०, पृष्ठ १६।
८. दाय०, पृष्ठ ३।
९. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ५।
१०. प्रेम०, पृष्ठ ३६।
११. डॉय०, ओ० हिं०, पृष्ठ १३४।

विधियों से निर्मित हैं। एक, रूपात्मक बाह्य प्रत्ययों के द्वारा और दूसरे प्रत्ययों के अभाव में उनके संरूप शून्य के द्वारा। प्रथम विधि आकारांत संज्ञाओं में मिलती है। शेष स्वरों से अंत होने वाले शब्दों में द्वितीय विधि देखी जा सकती है। दोनों विधियों से निर्मित रूप निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किये जा सकते हैं,

(i) आकारांत संज्ञाएँ—यह '—ए', '—ऐ', और '—उ' प्रत्ययों पर आधारित हैं। इनका प्रयोग इस शती के आरंभिक वर्षों से मिलने लगता है। अन्य प्रत्ययों की अपेक्षा '—ए' प्रत्यय सक्रिय रहा है। इन प्रत्ययों का व्यवहार स्थानवाचक, और जातिवाचक संज्ञाओं में निम्नलिखित प्रकार से देखा जा सकता है। प्रत्ययों का व्यवहार शब्द की अंतिम स्वर ध्वनि के स्थान पर किया गया है। यथा,

आगरे : दिल्ली आगरे की खड़ीबोली में कह नाम प्रेमसागर धरा[१]

राजपुताणे : चीठी······राजपुताणे की लीषी हुई[२]

कलकत्ते : कलकत्ते सें हुकम······आवेगा[३]

Ghore : ghore pur yeen ban, dhee hy ke nuheen[४]

कुएँ : कुएँ में गिर पड़ो[५]

ठाकुरद्वारे : ठाकुर द्वारे में······गा रहे थे।[६]

इलाके : इलाके के लोग[७]

इस सारिणी में 'अड्डे', 'बगीचे' आदि अन्य रूप भी रखे जा सकते हैं।

(ii) '—उ' प्रत्यय का व्यवहार राजपूताना एजेन्सी के पत्रों में मिलता है। यह प्रादेशिक बोलियों का प्रत्यय है जो खड़ीबोली के प्रत्यय '—ए' के सामने ठहर न सका। यथा,

मारवाड़. वालु : बीकानेर वाला मारवाड़. वालु की बीड मैं न्ना षेतां मै चरती हुई ले गया[८]

बीकानेर वालु : सिरकार मारवाड़. वाले सिरकार बीकानेर वालु की मेवसी बगेरे लाये थे[९]

१. प्रेम०, पृष्ठ २।
२. अभि०, ८ ग।
३. अभि०, ८ ग।
४. डॉय०, ओ० लिं० १३४।
५. रानी०, पृष्ठ ७।
६. लता०, पृष्ठ ११।
७. अभि०, ३ क।
८. अभि०, १३ क।
९. अभि०, १३ क।

इसके विपरीत व्यक्तिवाचक, स्थानवाचक और जातिवाचक कुछ आकारांत संज्ञाएँ विकारी कारकों के एकवचन में किसी बाह्य प्रत्यय को स्वीकार नहीं करतीं। अतः इनके विवेचन में एकरूपता बनाये रखने के लिए संरूप-शून्य स्वीकार किया जा सकता है। यथा,

सुदामा : किये दूर सुदामा के दलिद्दर[१]
मियां : इन मियां की ढाढ़ी हिलती देख[२]
मथुरा : मथुरा कौ चला[३]
घंटा : तहाँ अंडे भारथी के घंटा से बचाए[४]
रास्ता : रास्ता में·········करेगा[५]
कबीला : मोहन के कबीला ने मारपीट की आ है[६]

यह भाषा की सबल प्रवृत्ति थी। यह अ, इ, उ, ई, ऊ और ओकारांत पुँल्लिग संज्ञाओं में भी पूर्णतः विकसित हो चुकी थी। संस्कृत स्रोत के तत्सम, तद्भव और विदेशी स्रोत की संज्ञाओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं। सारिणी में एकरूपता बनाये रखने की दृष्टि से विश्लेषण के लिए इनमें शून्य-संरूप माना जा सकता है। यथा,

भूपाल : भपाल से चलकर[७]
दुनियापति : दुनियापति ने हमकौ कहा[८]
विष्णु : विष्णु में भी यही कहा है[९]
चपरासी : चपरासी सैं हमनैं कहा था[१०]
बहनेऊ : बहन बहनेऊ को······मूंद दिया[११]
लार्डमिंटो : लार्डमिंटो······के राज में[१२]

'साईस', 'साहिब', 'सिर', ऋषि', 'आदमी' आदि अन्य शब्द भी इसी क्रम में उद्धृत किये जा सकते हैं। इन सब में रूप रचना की द्वितीय विधि मिलती है।

---

१. अश०, पृष्ठ ३८।
२. म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २००।
३. राज० तृतीय तंत्र, पृष्ठ ६।
४. अश०, पृष्ठ ३८ पृष्ठ भाग।
५. अभि०, ८ क।
६. अभि०, १७ क।
७. पत्र०, पृष्ठ १।
८. अभि०, ३ क।
९. दाय०, पृष्ठ ४३।
१०. अभि०, ३ क।
११. प्रेम०, पृष्ठ ७।
१२. प्रेम०, पृष्ठ २।

स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द···अ, इ, ई और ऊकारांत संज्ञाओं के विकारी कारक एकवचन के रूपों में प्रत्यय के अभाव में संख्या शून्य मानना पड़ता है। यथा,

रात : रात कै······जलाई गये[१]

बुद्धि : अपनी बुद्धि से स्वस्तिक बनना[२]

छोकरी : अपनी छोकरी को कीवो मारपीट करते है[३]

जोरु : लछमनसेन की जोरु की अनेक बात लोगों में प्रगट है[४]

पंचायत, औरत, चक्की आदि कुछ अन्य शब्द भी इसी प्रकार उद्‌धृत किये जा सकते हैं।

बहुवचन-मूलरूप : संज्ञाओं के मूलरूपों में विविध प्रकार के रूपात्मक प्रत्यय मिलते हैं। पुँल्लिग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं के प्रत्यय भिन्न-भिन्न हैं। पुँल्लिग में आकारांत संज्ञाएँ'—ए—ऐ' प्रत्ययों से निर्मित हैं। शेष स्वरांत संज्ञाओं में शून्य संरूप स्वीकार किया जा सकता है। '—ऐ' जनपदीय बोलियों का प्रत्यय है। यह अब इन बोलियों तक सीमित रह गया है। इसके विपरीत '—ए' खड़ीबोली का प्रत्यय है। खड़ीबोली में जनपदीय रूपों की बहुतायत को देखते हुए कहा जा सकता है कि इस समय तक इन तत्त्वों से पृथक् अपनी पहचान खड़ीबोली की नहीं बन सकी थी। इनसे मिश्रित भाषा ही खड़ीबोली थी। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं, पुँल्लिग संज्ञा शब्द (आकारांत)

शादियाने : शादियाने बजने लगे[५]

रुपअे : रुपऐ······दीऐ आ वैं[६]

बागे : बरातियों को भी अलंकार समेत बागे पहराय······पहुँचावन चले[७]

चट्टे : पाठशाला में कितने चट्टे हैं।[८]

मारवाड़. वाले : मारवाड़. वाले कहते हैं[९]

बीकानेर वालै : बीकानेरवालै कहते हैं[१०]

---

१. अभि०, ३ क।

२. स्त्री०, पृष्ठ ३।

३. अभि०, १७ क।

४. स्त्री०, पृष्ठ ४।

५. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ५।

६. अभि०, ८ क।

७. प्रेम०, पृष्ठ १६।

८. वाक्या०, पृष्ठ ११।

९. अभि०, १२ क।

१०. अभि०, १३ क।

आकारांत संज्ञाओं की इस नियमित सरणि से हटकर कुछ अपवाद मिलते हैं जिनमें बहुत्व का भाव वाक्य प्रयोग से स्पष्ट होता है। इनमें प्रत्यय का व्यवहार अलग से नहीं है। इनकी रूप रचना अ, इ तथा ईकारांत संज्ञाओं के समान हुई है। 'महीना' शब्द इसी प्रकार का एक उदाहरण है,

महीना : पदरह सोरह महीना हुआ[1]

शेष स्वरों से अन्त होने वाली सभी पुँल्लिग संज्ञाएँ किसी प्रत्यय से निर्मित नहीं हैं। इनका रूपात्मक विश्लेषण शून्य-संरूप मानकर किया जा सकता है यथा,

नेव्तार : हमारे नेव्तार आये हैं[2]

बटोही : वहाँ बटोही बड़ा दुख पाते हैं[3]

'लोग', भोजन', 'बाजार', 'समाचार', 'ऋषि', 'बढ़ई', 'आदमी' आदि शब्द भी इसी प्रकार विश्लेषित किये जा सकते हैं।

कुछ अकारांत संज्ञाएँ '—ए' प्रत्यय से निर्मित हैं। परन्तु ये रूप इंशा अल्ला खाँ कृत 'रानी केतकी की कहानी' और लल्लू जी लाल कवि कृत 'प्रेम-सागर' से अतिरिक्त नहीं मिलते। १८०३ ईसवी के पश्चात् खड़ीबोली में इनका विकास नहीं हो सका। परन्तु तत्कालीन उर्दू में इसका व्यवहार होता रहा।

'अनंदे' 'कलोले' ऐसे कुछ उदाहरण हैं, यथा,

अनंदें : अनंदें करो[4]

कलोलें : हरष से लगे······पंछी कलोलें करने[5]

स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द—पुँल्लिग संज्ञाओं की अपेक्षा स्त्रीलिंग संज्ञाओं के बहुवचन मूलकारक में आठ-नौ विधियों से निर्मित हुए हैं। कुछ रूप प्रत्ययों पर आधारित हैं तो कुछ स्थानों पर। शब्द मूल प्रकृतिरूप में बहुत्व बोधक रहा है। इनमें शून्य संरूप माना जा सकता है। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

('—एं' और '—ऐं' दोनों प्रत्यय अकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं में विकल्प से मिलते हैं। कहीं-कही दोनों प्रत्ययों का व्यवहार एक ही लेखक की भाषा

१. अभि०, १८ क।
२. अभि०, ४ क।
३. पत्र०, पृष्ठ ४।
४. रानी०, पृष्ठ १३।
५. प्रेम०, पृष्ठ २२।

में है । '–ऐं' ब्रजभाषा में भी मिलता है । इससे पता चलता है कि ब्रजभाषा का प्रभाव इस समय खड़ीबोली पर इतना अधिक जम चुका था कि रचनाकार के लिए इससे पृथक् अपनी भाषा का स्वरूप निखार पाना कठिन हो गया था । ब्रजभाषा काव्य और गद्य दोनों शैलियों में अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुकी थी । स्वदेशी और विदेशी दोनों स्रोतों के शब्द इससे प्रभावित हो रहे थे । यथा,

पुस्तकें—पुस्तकैं : पुस्तकें छापी जाती हैं[१]
पुस्तकैं न मिलती थी[२]

मोहरें—मोहरैं : कितनी एक मोहरें हैं[३]
मोहरें दिई हैं[४]

बातें—बातैं : बातें सुनाऊँ[५]
सब बातैं······रहती हैं[६]

कोकिलें : कोकिलैं कुहक रहे थे[७]

विदेशी शब्द···'तोपैं' शब्द भी रूपात्मक प्रत्यय'—ऐं' से निर्मित है ।

(ii) इसके विपरीत कुछ अकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ अपने मूल अर्थ में अनेकता सूचक हैं । इनमें अनेकता बोधन के लिए बाह्य प्रत्यय का प्रयोग नहीं हुआ है । ये सदैव एकवचन में रखी गयी हैं ।

'ओस', 'भाप' और 'जात' इसी प्रकार के शब्द हैं । आरंभिक खड़ीबोली में इनके साथ 'एं' प्रत्यय का प्रयोग रूपात्मक वैशिष्ट्य का उदाहरण कहा जा सकता है । यथा,

ओसें : ओसें आँसू की छा रही हैं[८]

बाफ़ें : असंख्य बाफ़ें समुद्र से उठती हैं[९]

जातें : पहले रहने वालों की कई एक जातें जो जंगलियों की सी हैं······
बसते हैं[१०]

---

१. पत्र०, पृष्ठ १५ ।
२. पत्र०, पृष्ठ १५ ।
३. उप०, पृष्ठ ३ ।
४. उप०, पृष्ठ ४ ।
५. रानी०, पृष्ठ २ ।
६. वाक्या०, पृष्ठ १५ ।
७. नासि०, पृष्ठ २५ ।
८. रानी०, पृष्ठ १३ ।
९. पदा०, पृष्ठ ३८ ।
१०. भार०, पृष्ठ १० ।

यहाँ पर (बाफें) (भाप) के साथ अनेकता बोधक विशेषण 'असंख्य' अनुपयुक्त है।

(iii) इनके विपरीत कुछ अकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं में अनेकता का भाव, अनेकता सूचक सार्वनामिक विशेषण 'तितनी' के आधार पर व्यक्त किया गया है, यथा,

मुहर : जितने दोहे बना लाओगे तितनी मुहर पाओगे[१]

(iv) अकारांत संज्ञाओं के प्रत्यय रहित रूपों की सरणि में उकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ भी रखी जा सकती हैं। 'वस्तु' शब्द इसी प्रकार का है। इसमें बहुवचन का संरूप-शून्य माना जा सकता है। यथा,

वस्तु : वस्तु······हैं[२]

(v) कुछ आकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ भी मूल में बहुत्व बोधक हैं। 'हवा' शब्द इसी प्रकार का है। इसमें बहुत्व भाव के लिए प्रत्यय अनावश्यक है। परन्तु आरंभिक खड़ीबोली में इनके साथ '—एँ' प्रत्यय का प्रचलन मिलता है। 'बैताल पच्चीसी', 'रानी केतकी की कहानी' और 'हातिमताई' में इसके उदाहरण मिलते हैं। इसे कदाचित् उर्दू का प्रभाव माना जा सकता है, यथा,

हवाऐं : ठंडी-ठंडी हवाऐं आतियाँ थीं[३]

(vi) स्त्रीलिंग ईकारांत संज्ञाओं के बहुवचन रूप '—आं' (यां) प्रत्यय से निर्मित है। यह भाषा का सबल प्रत्यय था। यह खड़ीबोली और उर्दू दोनों में समान रूप से प्रयुक्त हो रहा था। पंजाबी और राजस्थानी में इसका व्यवहार आज तक बना हुआ है। प्रत्यय से पूर्व शब्द का दीर्घ '—ई' स्वर ह्रस्व '—इ' में परिवर्तित हो गया है, यथा,

अमरइयाँ : अमरइयाँ देख पड़ी[४]
जनियाँ : दोनों जनियाँ······आ बैठियाँ[५]
डोरियाँ : प्रीति की डोरियाँ······काट दीं[६]
लट्टूरियाँ : लट्टूरियाँ बिखरी हुईं[७]
पोथियाँ : पोथियाँ······बनाई[८]

---

१. लाल० कवि, परिचय, पृष्ठ ४।
२. भू०, पृष्ठ २।
३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ८।
४. रानी०, पृष्ठ ४।
५. रानी०, पृष्ठ १६।
६. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५४।
७. प्रेम०, पृष्ठ ३६।
८. लाल० कवि०, परिचय, पृष्ठ ३।

(ii) इस प्रकार की नियमित भाषा व्यवस्था से विपरीत कुछ उदाहरण मिलते हैं जिनमें प्रत्यय '—आं' से पूर्व शब्द का अंतिम '—ई' स्वर अपरिवर्तित रहा है। इनमें प्रत्यय वर्ण रूप में मिलता है। उदाहरण खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप की एक पृथक् पहचान बना देते हैं। यथा,

रोटी आं : ये पत्थर रोटीआं बन जावे[1]

'—आं' प्रत्यय ऊकारांत स्त्रीलिंग शब्दों में भी सक्रिय है। यहाँ यह लयात्मकता का गुण उत्पन्न कर रहा है,

खुशबोइयाँ : खुशबोइयाँ······सुंधाई[2]

बहुवचन—

विकारी रूप—विकारी कारकों के बहुवचन रूप ब्रजभाषा, खड़ीबोली, भोजपुरी, राजस्थानी, उर्दू और संस्कृत के रूपात्मक प्रत्ययों से निर्मित हैं। यह '—औं', 'ओं', '—अन', '—न', '—न्ह', '—आत' और 'आं' है। सभी प्रत्यय वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त हैं।

पुँल्लिग संज्ञा शब्द······

(i) विकारी कारकों में अ, उ, और ऊकारांत–संज्ञाओं में '—औं' '—ओं' प्रत्यय समानानुपात में प्रयुक्त हैं, यथा,

चावलौं : चादर से चौतह चावलौ की किनकी बंधाई[3]

होठों : हौठों से······उगलता हूँ[4]

प्राचीनों : प्राचीनों ने कहा है[5]

'तीरथौं', 'फूलौं', 'पुत्रौं', 'दिनौं 'मकानौं', 'गरीबौं' आदि रूप इसी व्यवस्था के अन्य उदाहरण हैं। अकारांत संज्ञाओं के कुछ विशिष्ट उदाहरण भी मिलते हैं। यथा,

(i) इस समय अकारांत समुच्चय बोधक संज्ञाओं से बहुत्व द्योतक की क्षमता समाप्त होना आरंभ हो गयी थी। अतः इनमें बहुत्व का सूचक प्रत्ययों का व्यवहार आवश्यक हो गया था '—ओं' '—औं' '—न' प्रत्ययों का प्रयोग इनमें किया गया है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं। ये साधारण संज्ञाओं के समान प्रयुक्त हुई हैं, यथा,

१. धर्म०, पृष्ठ ६।
२. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७३।
३. अश०, पृष्ठ ४०।
४. रानी०, पृष्ठ ३।
५ पदा०, पृष्ठ १३।

लोकों—लोगों : लोकों ने कहा[१]
नेपाल के लोगों ने शरकार अंगरेज बहादुर के नोकरों के शाथ[२]

बोझों : हरि के भक्त दुख पाने लगे और धरती अति बोझों मरने[३]

सभों : सभों का सम्मान किया[४]

लोगन : लोगन को······लगते हैं[५]

(ii) कुछ अकारांत संज्ञाओं के '—न' और '—क=न्ह' प्रत्ययों से निर्मित रूप सर्वत्र बिखरे हुए मिलते हैं। यह जनपदीय भाषाओं के प्रत्यय हैं जो परवर्ती खड़ीबोली के हटकर निजी क्षेत्रों में प्रयुक्त होने लगे हैं। खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में इनके स्थान-स्थान पर मिलने वाले उदाहरणों से पता चलता है कि इसका लोकभाषा प्रभावित रूप सर्वत्र स्वीकृत था। यह जनता की बोली का प्रतिनिधि रूप था। इस समय खड़ीबोली का मानक स्वरूप न होने तथा सर्वत्र प्रसार के कारण एक समान रूप मिलना संभव न था।

नयनन्ह : नयनन्ह नीर भरि आवे[६]

बालकन् : बालकन् के बैठने के कारण[७]

भक्तन—भगतों : भक्तन को मन भावन फलदायक[८]
: लाखों उन्होंने भगतों के अपने किये हैं काम[९]

(iii) अन्तःस्थ 'व' ध्वनि से अंत होने वाले 'पाँव' जैसे शब्दों में प्रत्यय का प्रयोग होने पर कहीं तो 'व' का लोप हो गया है और प्रत्यय '—ओं' वर्ण रूप में मिलता है तो कहीं पर 'व' वर्ण यथावत् है। प्रत्यय का प्रयोग होने पर मूल प्रकृति में कोई ध्वन्यात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है। इनमें प्रत्यय मात्रा और वर्ण दोनों रूपों में मिलता है। ऐसे शब्दों की रूप, रचना आकारांत पुँल्लिग संज्ञा 'राजा' आदि के अनुरूप हुई है। ऐसे सभी शब्द आधुनिक संदर्भ में भाषा की प्राचीनता के द्योतक हैं। यथा,

---

१. राज० तृतीय तंत्र, पृष्ठ ६।
२. अभि०, २२ क।
३. प्रेम०, पृष्ठ १३।
४. राज० तृतीय तंत्र, पृष्ठ २४।
५. राम०, पृष्ठ १०।
६. नासि०, पृष्ठ ३२।
७. पाठ०, पृष्ठ १।
८. राम०; पृष्ठ २०।
९. अश०, पृष्ठ ४० का पृष्ठ भाग।

पावों—पाओं—पांवओं : पाँवों पड़ती हूँ[१]
: हाथ पाओं से परिश्रम करके[२]
: जब तक मैं तेरे शत्रुओं को पांवओं की चौकी न करऊँ तब तक तू मेरी दहिनी ओर बैठ[३]

(iv) '—आं' प्रत्यय से निर्मित अकारांत संज्ञाओं के रूप पत्रों की भाषा की विशेषता है। यह प्रत्यय राजस्थानी और उर्दू दोनों में मिलता है। इससे स्पष्ट है कि खड़ीबोली अपने विकास के आरंभिक चरणों में ब्रजभाषा से अतिरिक्त इन विदेशी भाषाओं से भी प्रभावित हो रही थी, यथा,

पंचां : दोय पंचां के ·····फेसले[४]
वकीलां : वकीलां ने ऊजर किया[५]

(v) अकारांत संज्ञाओं के पाँचवें प्रकार के उदाहरण '—आन्', और '—आत' प्रत्यय से निर्मित हैं।

असंख्यात् : असंख्यात् भेद किये जाते हैं[६]

साहिवान् : पछम के तराई मो साहिवान् का अमल दबल कराय देना[७]

ह्रस्व इकारांत पुँल्लिग संज्ञाओं के विकारी कारकों के बहुवचन में '—ओं', '—और' और 'और' '—न' प्रत्ययों का प्रयोग है। कहीं-कहीं एक लेखक में '—ओं', '—न' दोनों प्रत्ययों का प्रयोग है। यह भाषा की अस्थिरता के प्रमाण हैं। '—न' प्रत्यय का व्यवहार सदल मिश्र की भाषा से अतिरिक्त नहीं मिलता। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

ऋषियों—ऋषिन : ऋषियों को सेवा करने लगी[८]
: ऋषिन से राज्य का तिलक[९]
कवियों : कवियों को बुलवाय[१०]

ह्रस्व उकारांत पुँल्लिग संज्ञाओं के विकारी कारकों के बहुवचन रूप भी '—ओं' और '—औ' प्रत्ययों से निर्मित हैं। इनसे निर्मित रूप अग्रलिखित प्रकार के हैं।

---

१. रानी, पृष्ठ ५।
२. कथा०, पृष्ठ २।
३. धर्म०, पृष्ठ १७६।
४. अभि०, ६ क।
५. अभि०, ६ क।
६. पदा०, पृष्ठ ६१।
७. अभि०, ३७ क।
८. नासि०, पृष्ठ २६।
९. राम०, पृष्ठ ६।
१०. लाल० कवि, परिचय, पृष्ठ ५।

(i) एक, जिसमें प्रत्यय लेने पर मूल प्रवृत्ति में कोई विकार नहीं हुआ है। यहाँ प्रत्यय विशुद्ध स्वर-वर्ण के रूप में मिलता है, यथा,

मनुओं : चौदह मनुओं में एक मनु[१]

(ii) दूसरे, इसके विपरीत अनेक उकारांत शब्दों में प्रत्यय के मात्रिक चिह्न का प्रयोग है। प्रत्यय लेने पर मूल प्रकृति में कोई विकार नहीं होता परन्तु शब्द के अंतिम '—उ' स्वर के प्रभाव से 'व' श्रुति स्वर आ गया है। ये रूप भाषा में उर्दू के प्रभाव से आये प्रतीत होते हैं, यथा,

जंतुवों : जंतुवों की कितनी जाति के वर्ग हैं[२]
चक्षुवों : उसके चक्षुवों······में हैं[३]

(iii) तीसरे, जिनमें प्रत्यय से पूर्व शब्द के अंतिम स्वर '—उ' का लोप हो गया है।

काव्य की भाषा में इनकी अधिकता देखी जा सकती है, यथा,
साधो : साधो के बीच रह के[४]
गुरौ : भेजा गुरौ ने[५]

अकारांत पुंल्लिग संज्ञाओं के विकारी कारकों के बहुवचन में '—ओं', '—औं', '—अन', 'आन', '—न्ह', '—आर' तथा '—आं' प्रत्यय वर्ण और मात्रिक-चिह्न दो रूपों में मिलते हैं। इनसे निर्मित रूप दो प्रकार के हैं। एक, जिनमें प्रत्यय से पूर्व शब्द के अंत का स्वर लुप्त हो गया है। दूसरे, जिनमें कोई विकार नहीं हुआ है। संज्ञा शब्द चाहे व्यक्तिवाचक हो अथवा भाववाचक और जातिवाचक, दोनों प्रकार के प्रत्यय-रूपों को ग्रहण किये हुए हैं। इनमें दोनों, प्रत्यय वर्ण और मात्रा रूप में मिलते हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में प्रत्यय का वर्ण रूप प्रधान है। परन्तु मात्रा वाले उदाहरण अपवाद रूप से मिल जाते हैं। शेष सभी संज्ञाओं में वर्ण और मात्रा दोनों रूप समानानुपात में मिलते हैं। मात्रा रूप में प्रत्यय लेने पर शब्द में विकार हुआ है। ऐसी स्थिति में शब्द का अंतिम स्वर '—आ' लुप्त हो गया है। इसके स्थान पर स्वर प्रत्यय '—ओं', 'औ—' का प्रयोग है। यह प्रत्यय लेने की प्रारंभिक विधियाँ भी जो परवर्ती स्वरूप में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में समाप्त हो चुकी हैं

१. हिं० प०, हि० हिंदु०, पृष्ठ २६६।
२. पदा०, पृष्ठ ५५।
३. पदा०, पृष्ठ ८०।
४. अश०, पृष्ठ ३६ पृष्ठ भाग।
५. अश०, पृष्ठ ४१ पृष्ठ भाग।

परन्तु अन्य संज्ञाओं में सुरक्षित हैं। 'देवतों', 'राजों', 'दादे' जैसे रूप इसी प्रकार के उदाहरण हैं। यह विकसित नहीं हो सके। ऐसे रूप संस्कृत की विभक्ति प्रणाली के अनुरूप निर्मित हुए प्रतीत होते हैं, जहाँ लिंग, वचन और कारक तीनों अर्थ एक साथ व्यक्त करने वाली विभक्तियाँ लेने पर शब्द में विकार होता है। इसके साथ-साथ प्रत्यय का वर्ण रूप में प्रयोग करने की विधि विकसित हो रही थी जिस पर तत्कालीन प्रचलित आकारांत स्त्रीलिंग रूपों का प्रभाव माना जा सकता है। इनमें प्रत्यय स्वर वर्ण रूप में मिलता है। स्त्रीलिंग में 'अबलाओं' और 'बछियाओं' इसी के उदाहरण हैं। आज स्त्रीलिंग आकारांत संज्ञाओं में द्विविधता प्रभावी हो जाने से 'बछियाओं' जैसे रूप लुप्त हो चुके हैं और 'बछियों' रूप स्वीकृत हो गया है। इनमें स्वर संयुक्तता समाप्त हो गयी है। परन्तु 'अबलाओं', 'कथाओं' और 'दिशाओं' जैसी संज्ञाओं में स्वर-वर्ण रूप में प्रत्यय सुरक्षित है। इनमें स्वर-संयुक्तता समाप्त नहीं हुई है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

मोखों : जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगंध आय रही[1]

दोहौं : दौहौं का क्रम[2]

राजों—राजाओं—राजाऔं : दश सहस्त्र राजों की कन्या[3]

: सब राजाओं का राज ले चुका[4]

: राजाऔं की पूजा होने लगी[5]

दवतों—देवताओं : दवतों की कन्या[6]

: देवताओं······को मारो[7]

पुँल्लिग आकारांत तद्भव शब्दों में अंतिम स्वर के स्थान पर प्रत्यय के मात्रिक-चिह्न का प्रयोग सर्वत्र हुआ है, यथा,

लड़कौं : लड़कौं के पढ़ने को[8]

बसनहारौं : उसके बसनहारौं के देखने से[9]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ १२४।

२. लाल०, कवि परिचय, पृष्ठ ४।

३. नासि०, पृष्ठ ११।

४. प्रेम०, पृष्ठ १३।

५. कथा०, पृष्ठ १५।

६. नासि०, पृष्ठ १०।

७. प्रेम०, पृष्ठ २६।

८. दाय०, पृष्ठ १।

९. ज्यो०, पृष्ठ ८।

'—ओं' प्रत्यय से अतिरिक्त '—ए' प्रत्यय वाले प्राचीन रूप भी अवशिष्ट रूप में मिलते हैं। इनमें प्रत्यय से पूर्व शब्द के अंतिम स्वर—'—आ' का लोप हो गया, यथा,

दादे : जाहं दादे से धन चला आवता है[1]

आकारांत संज्ञाओं में 'रूपीओं' जैसे उदाहरण भाषा के अपवाद हैं। यहाँ प्रत्यय से पूर्व अन्तःस्थ ध्वनि '—य' का लोप हो गया है और प्रत्यय स्वर रूप में वर्तमान है, यथा,

रुपीओं : इन रुपीओं में से······आवेगा[2]

आकारांत संज्ञाओं की रूप रचना में कुछ जनपदीय प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। इनका प्रयोग पंडित सदल मिश्र की रचनाओं में और कुछ अभिलेखों तक सीमित है। इनमें '—न', '—न्ह', '—आर', 'आं' प्रत्यय प्रमुख हैं। '—न' का प्रयोग होने पर 'देवतन' और 'देवतान' दोनों रूप मिलते हैं,

देवतन—देवतान : देवतन में नायक[3]
: देवतान की विनती से[4]

तारन्ह : तारन्ह में चन्द्रमा[5]

रुपीयार : ऐक हजार रुपीयार थैली[6]

मेवाडवालां : ये फेसला मेवाड़वालां ने······तौस दिया[7]

पुँल्लिग ईकारान्त संज्ञाओं के विकारी कारक बहुवचन के रूप '—ओं' और '—औं' दोनों प्रत्ययों से अतिरिक्त '—न' प्रत्यय से भी निर्मित हैं। प्रत्ययों का प्रयोग होने पर निम्नलिखित दो रूप मिलते हैं,

(i) एक, जिनमें प्रत्यय होने पर मूल प्रकृति में किसी प्रकार का भाषायी विकार नहीं हुआ है। परन्तु प्रत्यय के 'ई' स्वर के प्रभाव से 'य' श्रुति का आगम हो गया है। प्रत्यय वर्ण तथा मात्रा दोनों प्रकार से मिलता है। यह भाषा की सबल प्रवृत्ति थी परन्तु स्थायी न रह सकी। इसके कुछ उदाहरण अग्रलिखित हैं,

---

१. दाय०, पृष्ठ ४।
२. अभि०, ८ क।
३. नासि०, पृष्ठ १।
४. राम०, पृष्ठ ६।
५. नासि०, पृष्ठ ११।
६. अभि०, ३४ क।
७. अभि०, ६ ख।

वैपारीओं : बड़ी २ नाउ के वैपारीओं को आना जाना[1]

हाथीयों : हाथीयों के फिरने में जहाँ-तहाँ[2]

आदमीयों—आदमीओं : दौलत आदमीयों को······होति है[3]

: आदमीओं कूं मीलणे वास्ते[4]

भाइयों : भाइयों को धन कहा है[5]

(ii) दूसरे, जिनमें प्रत्यय से पूर्व मूल प्रकृति का अंतिम दीर्घ स्वर 'ई' ह्रस्व 'इ' में परिवर्तित हो गया है। यहाँ पर 'ई' के प्रभाव से 'य' श्रुति का आगम प्रत्यय से पूर्व मिलता है। भाषा में यह प्रवृत्ति अस्थायी होते हुए भी आज तक बनी हुई है। यथा,

मंगलामुखियों : मंगलामुखियों को बुलाय[6]

आदमियों : आदमियों सो······तहकीक किया।[7]

(iii) एक ही लेखक के द्वारा 'पंथीयो' और 'पंथियों' जैसे द्विविध प्रयोग भी भाषा में प्रचलित मिलते थे, यथा,

पंथीयों पंथियों : ईसा पंथीयों के सतसंग से हो[8]

: ईसा पंथियों के समान[9]

(iv) 'पानी' शब्द बहुत्व ज्ञापक है। सामान्यतः इसके साथ बहुत्व के लिए किसी प्रत्यय की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु विवेच्य भाषा में उसके साथ '—ओं' प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाया गया है। इससे स्पष्ट है कि ये शब्द इस समय तक बहुत्व बोध में समर्थ नहीं हो सके थे। यथा,

पानीओं : पानीओं का आसरा समुद्र में है[10]

(v) ईकारान्त पुँल्लिग संज्ञाओं के साथ '—न' प्रत्यय वाले रूप केवल पंडित सदल मिश्र कृत 'रामचरित' में मिलते हैं। आज यह बोलियों तक सीमित रह गये हैं। यथा,

प्राणीन : प्राणीन के भाग से······प्रसिद्ध होगा[11]

---

१. पदा०, पृष्ठ ३६।
२. राज० प्रथम तंत्र, पृष्ठ १२।
३. राज० तृतीय तंत्र, पृष्ठ ५।
४. अभि०, ८ घ।
५. दाय०, पृष्ठ ४४।
६. प्रेम०, पृष्ठ १२।
७. अभि०, ३ क।
८. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५८।
९. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५४।
१०. पदा०, पृष्ठ ३४।
११. राम०, पृष्ठ ३।

(vi) इसी प्रकार '—आं (—यां)' प्रत्यय से निर्मित रूप भाषा में लुप्त होती गयी प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। इसके प्रयोग इंशा अल्ला खाँ कृत 'रानी केतकी की कहानी' तथा कुछ अभिलेखों में मिलते हैं, यथा,

मोतियाँ : भर-भर झोलियाँ और मुष्ठियाँ हीरे और
मोतियाँ से निछावर करने के लिए उतर आइयाँ[1]

व्योपारीयां : ईस वास्त व्योपारीयां से मुजाहमत करना[2]

कारबारीयां : मसुदा के तथा मेवाड़ के कारबारीयां ने इस मजमुन से[3]

दीर्घ ऊकारांत पुँल्लिग संज्ञाओं में भी विकारी कारक बहुवचन के प्रत्यय '—ओं' और '—आं' हैं। एक ही शब्द कहीं—'—ओं' प्रत्यय ग्रहण किये हुए है तो कहीं '—आं' प्रत्यय। दोनों प्रत्यय एक ही रचनाकार की भाषा में मिलते हैं। प्रत्यय का योग होने पर मूल प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ऊकारांत शब्द भाषा में अत्यल्प हैं। उदाहरण

हिंदूओं—हिंदूआं : हिंदूओं में अपने पति के साथ[4]
: हिंदूआं में अकेली अबला[5]

ऊकारांत कुछ अन्य शब्दों में प्रत्यय का योग होने पर मूल प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। परन्तु '—ओं' प्रत्यय से अनुस्वार का लोप हो गया है तथा 'ऊ' के प्रभाव से 'व' श्रुति का आगम हो गया है। यथा,

गोहूँवो : गोहूँवों से क्या बनता है[6]

स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द—

'—ओं', '—औं', और '—न' प्रत्यय अ, इ, आ और ईकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं में सक्रिय है। यथा,

आंखों : उसके आंखों के देखने से अचेत हो न गिरे[7]

गायो—गायौ : गायों की अद्भुत रीति[8]
गायौ की रक्षा[9]

बातौं : बातौं का हर साइत बरदास्त करना[10]

---

१. रानी०, पृष्ठ ३२।
२. अभि०, ८ क।
३. अभि०, २५ क।
४. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५१।
५. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५३।
६. पदा०, पृष्ठ १०४।
७. नासि०, पृष्ठ ११।
८. पत्र०, पृष्ठ २।
९. दाय०, पृष्ठ ४।
१०. अभि०, ४० क।

'—न' प्रत्यय अकारांत और इकारांत संज्ञाओं के साथ मिलता है। यथा,

मोहरन् : इन मोहरन् समेत राजा के चरण पर गिर के[१]

आषिन् : आषिन से देष आवो[२]

उकारांत स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों में '—ओं' प्रत्यय से पूर्व '—व' श्रुति का आगम भाषा की व्यवस्था के अनुसार मान्य है। परन्तु यहाँ '—य' का प्रयोग मिलता है। इसे मुद्रण की असावधानी कहा जा सकता है, यथा,

वस्तुयों : बुरी और भली वस्तुयों को जानते हैं[३]

'ऋतु' शब्द में 'उ' का लोप हो गया है और श्रुति का आगम भी नहीं हुआ है,

ऋतों : इन छः ऋतों का क्या कारण है[४]

आकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं में '—ओं' और '—औं' प्रत्यय के प्रयोग से दो प्रकार के रूप मिलते हैं। एक, जिनमें शब्दांत का स्वर अपरिवर्तित रहता है और दूसरे, जिनमें प्रत्यय लेने पर शब्दांत का '—आ' स्वर लुप्त हो गया है। अंतिम स्वर लोप से बनने वाले रूप आकारांत संज्ञा 'राजों', 'देवतों' के साम्य पर निर्मित हुए प्रतीत होते हैं। दोनों प्रकार के उदाहरण निम्नलिखित हैं,

(i) अवलाओं : अबलाओं को······देता है[५]

बछियाओं : बछड़ों और बछियाओं को पूँछ[६]

कथाओं—कथाऔं : कथाओं में बहुधा भूल दीख पड़ेगी[७]

औ कथाऔं में लिखी है[८]

(ii) दिशों : सब दिशों में फिरने सकते हैं[९]

स्त्रीलिंग आकारांत संज्ञाओं में '—आं' प्रत्यय का व्यवहार पंडित सदल मिश्र की रचनाओं से अतिरिक्त नहीं मिलता। यथा,

कन्या : नृपराजों ओं कन्यां कै वीच[१०]

---

१. उप०, पृष्ठ ३।
२. अभि०, ३ क।
३. पदा०, पृष्ठ ४४।
४. पदा०, पृष्ठ ११।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७३।
६. प्रेम०, पृष्ठ ३६।
७. भू०, पृष्ठ ३६।
८. कथा०, पृष्ठ १०।
९. पदा०, पृष्ठ ८७।
१०. नासि०, पृष्ठ २३।

स्त्रीलिंग ईकारांत संज्ञाओं के विकारी, बहुवचन के रूप '— ओं', '— औं' और '— न' प्रत्ययों से निर्मित हैं। यहाँ प्रत्यय का योग होने पर अंतिम स्वर ह्रस्व हो गया है, यथा,

सहेलियों : सहेलियों के साथ[१]

रंडियों : प्राचीन रंडियों नाना शास्त्र पढ़कर नाम निकाला था[२]

पोथियौं : तितनी पोथियौं में दोहों का क्रम[३]

'नारियों' शब्द भी इसी प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है। '— न' प्रत्यय होने पर शब्दांत का स्वर कहीं तो अपरिवर्तित रहता है तो कहीं ह्रस्व हो गया है,

स्त्रीन : स्त्रीन को देवता सम मानें[४]

अटारिन : बड़ी-बड़ी अटारिन से शोभायमान[५]

प्रत्ययों से अतिरिक्त समुच्चयबोधक कतिपय शब्दों 'जन', 'गण' 'लोग' आदि के आधार पर भी संज्ञाओं का बहुत्व प्रकट किया गया है। यथा,

जन : गुणि जन आय आय······मगन होते हैं[६]
स्त्रीजन के सहारे से[७]

गण—गन : तारागण से······जानी जाती है[८]
नक्षत्रगण पंक्तिबद्ध नहीं दिखाता[९]
कन्यागन······रह कर[१०]

लोग : परंतु मूढ़ लोग······मानते हैं[११]

आदि—आदी : सुपारी रबर आदि वृक्षों से भरा हुआ है[१२]
पुत्रादि को······भेजते हैं[१३]
कुशलादी······चाहते हैं[१४]

---

१. नासि०, पृष्ठ १२।
२. स्त्री०, पृष्ठ २।
३. लाल०, कवि परिचय, पृष्ठ ४।
४. राज०, पृष्ठ ३।
५. नासि०, पृष्ठ ३।
६. नासि०, पृष्ठ २।
७. स्त्री०, पृष्ठ १।
८. पदा०, पृष्ठ ६।
९. पदा०, पृष्ठ ५।
१०. स्त्री०, पृष्ठ २०।
११. गुण०, पृष्ठ १।
१२. पत्र०, पृष्ठ २।
१३. स्त्री०, पृष्ठ १।
१४. अभि०, ४० क।

समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि वचन-विधान की दृष्टि से खड़ीबोली की आरंभिक अवस्था विषमरूपी थी। उसमें एक ओर संस्कृत, ब्रजभाषा, राजस्थानी, पंजाबी और उर्दू आदि भाषाओं के रूपात्मक प्रत्यय सक्रिय थे तो दूसरी ओर उसके निजी तत्त्व भी विकसित होते जा रहे थे। उसका दायरा धीरे-धीरे संकुचित होता जा रहा था और निजी विशेषताएँ अपना स्थान बनाने लगी थीं। विषमरूपता, रूपात्मक-व्यवस्था के स्तर पर मिलती है। इसी कारण खड़ीबोली को नियमों में बाँधा नहीं जा सका। उसका प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता आ रहा है।

सर्वनाम शब्द—वाक्यीय संगठन में स्वतंत्र रूप से कार्य करने के कारण सर्वनामों को एक स्वतंत्र इकाई स्वीकार किया जा सकता है। स्वतंत्र इकाई मानने पर इनमें प्रकृति और प्रत्यय का विभाजन नहीं किया जा सकता। संज्ञाओं के समान सर्वनामों का विभाजन करना इनके अर्थ को बिगाड़ देना कहलायेगा।

आरंभिक खड़ीबोली के साहित्यिक और उपसाहित्यिक स्वरूप में प्राप्त सर्वनाम शब्दों को उनकी कार्यकारिता के आधार पर तीन उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम प्रकार के सर्वनाम वचन, कारक और पुरुष पर आधारित हैं। अर्थ की दृष्टि से इन्हें विशुद्ध पुरुषवाचक सर्वनाम कहा जा सकता है। इनके पुनः तीन उपवर्ग किये जा सकते हैं, एक, उत्तम पुरुषवाचक द्वितीय, मध्यम पुरुषवाचक तथा तृतीय, निजवाचक। निजवाचक सर्वनामों का प्रयोग अन्य कारकों में मिलता है परन्तु संबंध कारक से अतिरिक्त अन्य कारकों में इसके रूपान्तर नहीं मिलते। द्वितीय प्रकार के सर्वनाम केवल वचन और कारक के आधार पर रूपांतरित होते हैं। अर्थ की दृष्टि से इन्हें मिश्रित सर्वनाम या पुरुषवाचक सर्वनाम कहा जा सकता है। यह सर्वनाम पूर्वापर सन्दर्भ के अनुसार अन्य पुरुष का वाचक होने के साथ वस्तुओं और भावों का प्रतिनिधि भी है। परन्तु, ये पुरुष, वस्तुओं और भावों के अनुसार रूपांतरित नहीं होते। ये निश्चयवाचक या निकटवर्ती, दूरवर्ती, संबंधवाचक, नित्य संबंधी और अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं। तृतीय प्रकार के सर्वनाम न तो लिंग और वचन से प्रभावित हुए हैं और न कारक, और पुरुष से। यह प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं। ये वस्तुओं और विभिन्न भावों के प्रतिनिधि भी हैं। प्रथम दो वर्गों के सर्वनामों में समानता इस बिन्दु पर है कि दोनों में

संबंधकारक से अतिरिक्त अन्य कारकों में प्रयुक्त होने पर लिंग भेद नहीं मिलता।

उक्त तीनों प्रकार के सर्वनामों में प्राप्त रूपात्मक भिन्नताओं को निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है,

१. वचन, कारक और पुरुष पर आधारित सर्वनाम

(१) मूलरूप, एकवचन, उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम—यह सर्वनाम क्रिया के कर्ता के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। यह 'मैं' और 'हम' हैं। 'मैं' पुँल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों में हैं। और 'हम' केवल पुँल्लिग का प्रतिनिधि है। मूलरूप के एकवचन में 'हम' का प्रयोग स्त्रीलिंग में नहीं मिलता। 'मैं' का व्यवहार साहित्यिक रचनाओं में और 'हम' का व्यवहार अभिलेखों की खड़ीबोली में प्रधान है। 'हम' का व्यवहार एकवचन के साथ-साथ बहुवचन में भी मिलता है। बहुवचन में प्रयुक्त होने पर इसके साथ 'सब' और 'लोग' में से कोई एक शब्द जोड़ा गया है। इससे पता चलता है कि खड़ीबोली के एकवचन और बहुवचन के रूप इसी अवधि से एक समान होने आरंभ हो गये थे। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं,

मैं (स्त्रीलिंग) : मैं उसे खा गई[१]

(पुँल्लिग) : मैं······आया करुँ[२]

हम (पुँल्लिग) : **Pukarbe bolo tou hune foonege**[३]

हम वहत···घूस हूआ[४]

'मैं' के वैकल्पिक रूप 'में' और निसुनासिक रूप 'मे⁀मै' हैं। तीनों विकल्प 'नासिकेतोपाख्यान' में प्राप्त होते हैं। अन्यत्र निरनुनासिक रूप मिलते हैं, यथा,

में : में बड़ी अभागी हूँ[५]

मै⁀मे : मै तुम्हारी माता हूँ[६]

सद्र में तो लीषुगा[७]

---

१. जै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३।
२. लाल० परिचय, पृष्ठ ३।
३. डॉय०, ओ० लि०, पृष्ठ १३५।
४. अभि०, २४ क।
५. नासि०, पृष्ठ १६।
६. नासि०, पृष्ठ ३३।
७. अभि०, १२ क।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण 'माता में उद्दालक ऋषि के स्थान में रहता हूँ'[१] तथा 'मै मिला दूंगा'[२] आदि भी है ।

'हम' का विकल्प 'हाम' फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के अभिलेखों में मिलता है । इस प्रकार के विकल्प अहिन्दी भाषी उच्चारणों से प्रभावित होने के कारण भाषा में प्रविष्ट हो गये प्रतीत होते हैं, यथा,

हाम : ईहा हामभिषोदाय्ंगा आसिरंवात् सो कुसल है[३]

'हाम' का संबंध कारक में प्रयोग, अपवाद कहा जा सकता है, यथा,

हाम : कम्पनि वाहादुर सो हाम आगे सो दोस्ति हे[४]

कारक-चिह्न 'ने—नै' के साथ 'मैं' और 'हम' का प्रयोग निम्नलिखित वाक्य में द्रष्टव्य है,

मैंने······किया है[५]

हमने कही[६]

'मैंने साई दी है'[७] और 'हमनै······डाला था ।'[८] इत्यादि कुछ अन्य उदाहरण हैं ।

कारक-चिह्न 'में' के साथ पश्चिमी बोलियों और भाषाओं अर्थात् राजस्थानी और मारवाड़ी आदि में प्रयुक्त 'म्हाने' का प्रयोग राजपूताना एजेन्सी के पत्रों में मिलता है, यथा,

म्हाने : कोई फीसाद न करे और म्हाने कही[९]

: सो म्हाने······दीषी[१०]

एक लेखक के द्वारा दो भिन्न स्थानों पर एक ही सन्दर्भ में दो भिन्न सर्वनामों का प्रयोग है । एक स्थान पर 'मैं' है तो दूसरे स्थान पर 'हम' का व्यवहार है । ऐसे उदाहरण 'बैताल पच्चीसी' में विशेष हैं । ऐसी शिथिलताएँ किसी भाषा की आरंभिक अवस्था में सहज ही देखी जा सकती हैं, यथा,

मैं : मैं इसे न खाऊँ[११]

---

१. नासि०, पृष्ठ ३३ ।
२. रि०, पृष्ठ १ ।
३. अभि०, ४३ क ।
४. अभि०, ४२ क ।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २० ।
६. अभि०, १२ क ।
७. वाक्या०, पृष्ठ १७७ ।
८. अभि०, ३० क ।
९. अभि०, १२ क ।
१०. अभि०, १२ क ।
११. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१ ।

हम : राजा बोला……हम तुम्हारे आश्रम में अतिथि आये[१]

विकारी रूप, एकवचन, उत्तम पुरुष सर्वनाम—उत्तम पुरुष के विकारी रूपों में कर्म और संप्रदान कारकों में 'मुज ~ मुझ' तथा 'हम' सर्वनाम रूप मिलते हैं। अल्पप्राण व्यंजन ध्वनि 'ज' वाले रूप 'मुज' ब्रजभाषा की विशेषता है। इसका व्यवहार पंडित सदल मिश्र की रचनाओं में स्थान-स्थान पर मिलता है। इसका कारण उनकी रचनाओं का ब्रजभाषा से रूपांतर होना हो सकता है। इसका व्यवहार भारतेन्दु काल तक होता रहा। परन्तु आज इसका स्थान महाप्राण व्यंजन ध्वनि 'झ' वाले रूपों ने ले लिया है। 'मुज' रूप मराठी में मिल जाता है। दक्खिनी हिन्दी और ब्रजभाषा में भी 'मुज' रूप सजीव है। 'मुज ~ मुझ' और 'हम' का प्रयोग विकारी कारकों में को, कौ, कों, कुं कारक चिह्नों के साथ है। यथा,

मुज ~ मुझ : मुज को पाठशाला में……हुई[२]

: मुझको इस ज़ियादती से[३]

हम : **Hum ko kinare pur ootaro**[४]

कहने लगी जब इस्तरी हमकों कहाँ है ताव[५] 'जिन्होंने हमको जन्माया है;[६] 'हमको संग ले जाकर……दिखाया',[७] 'हमको तो जो कछू……हुकम आवै'[८] 'हमकुं कसम……दिलवालो'[९] 'जो हुकुम हमको आया'[१०] इत्यादि इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण हैं।

इस समय भाषा में उच्चारण के अनुरूप लेखन शैली का प्राधान्य होने के कारण 'हेम्कों' रूप भी विकल्प से मिलता है। परन्तु ये भाषा में अपवाद हैं, यथा,

हम्कों लिष ते हैं[११]

सम्प्रदान में अन्य रूप 'मुझे' और 'हमें ~ हमैं' हैं। १८१९ ईसवी के बाद से 'मुझे' के स्थान पर 'हमें' रूप व्यापक होता गया है, यथा,

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
२. राम०, पृष्ठ १।
३. हिं० रो०, पृष्ठ ८।
४. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३३।
५. अश०, पृष्ठ ३९।
६. उप०, पृष्ठ ५।
७. पत्र०, पृष्ठ २।
८. अभि०, १ क।
९. अभि०, १३ क।
१०. अभि०, ३६ क।
११. अभि०; २९ क।

मुझे : उसकी सूरत मुझे लगी रहती है[1]

: कौन मुझे पढ़ने सिखावे[2]

हमें—हमैं : अबके हमें बचाओ[3]

: हमैं नहीं दिखाई देता होगा।[4]

भाषा में इन दोनों रूपों के संतुलित प्रयोगों के रहते हुए भी भाषा में अनुनासिकता रहित रूप 'हमे' मुद्रित रचनाओं में और 'हमै' अभिलेखों में स्थान-स्थान पर मिलते हैं, यथा,

हमे—हमै : आप हमे सुनाइये[5]

: तो तारागण से हमे क्या प्रयोजन है[6]

: हमै भी मना किया[7]

'मुझे' का प्रयोग करण कारक 'मुझसे के लिये' 'प्रेमसागर' में स्थान-स्थान पर मिलता है, यथा,

यह तुम मुझे कहो समझाय[8]

करण, अपादान और अधिकरण कारकों में उत्तम पुरुष के सर्वनाम 'मुज—मुझ' और 'हम' हैं। 'मुज' ब्रजभाषा में भी मिलता है। पं० सदल मिश्र और लल्लू जी लालकवि की रचनाओं में इनका प्रयोग व्यापक है। अन्यत्र 'मुझ' रूप मिलता है, यथा,

मुझ—मुझ : यह भेज मुज से······कह गये है[9]

: यह मुझसे कहा[10]

: मुझ पर कृपा करके······कहो[11]

परन्तु अभिलेखों में इन सन्दर्भों में 'हम—हाम' रूप ही उपलब्ध होते हैं, यथा,

हम—हाम : हम सो कछू मतलब नाही है[12]

: लेकिन हाम सो कुछ झुट्टा बात कामिनाहि होता है[13]

---

१. रानी०, पृष्ठ २।
२. वाक्या०, पृष्ठ ३।
३. अश०; पृष्ठ ३८।
४. भू०, पृष्ठ ५।
५. राम०, पृष्ठ २।
६. पदा०, पृष्ठ २।
७. अभि०, ५ ख।
८. प्रेम०, पृष्ठ ६।
९. प्रेम०, पृष्ठ १६।
१०. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
११. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
१२. अभि०, १ क।
१३. अभि०, ३२ क।

एकवचन, उत्तमपुरुष, संबंधकारक के सर्वनाम वास्तव में विशेषण हैं जो परवर्ती विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार कारक-चिह्न रखते हैं। इनका प्रयोग संज्ञाओं के समान भी होता है। परन्तु संज्ञा शब्दों से इनमें अन्तर केवल इतना है कि संज्ञाओं में संबंध कारक की अभिव्यक्ति 'का', 'की' और 'के' कारक-चिह्नों के आधार पर होती है। परन्तु यहाँ सर्वनाम अपनी मूल आकृति में संबंध का अर्थ व्यक्त करते हैं। खड़ीबोली के साहित्यिक स्वरूप में 'मेरा', 'मेरी', और 'मेरे' रूप मिलते हैं तो अभिलेखों में इनके स्थान पर 'हमारा', 'हमारी' और 'हमारे—हमारै' मिलते हैं। अभिलेखों की खड़ीबोली में 'मेरे' का प्रचलन नहीं मिलता। परन्तु साहित्यिक स्वरूप में 'हमारे' का व्यवहार मिलता है। इससे यह तथ्य पुष्ट होता है कि भाषा का मानक स्वरूप बोलचाल की और असाहित्यिक भाषा से प्रभावित होता रहता है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं,

मेरा : मेरा यह हाल[१]
: मेरी बुढ़ापे की अवस्था[२]
: सो मेरे पास पौहचा[३]
हमारी : हमारी पास आइी[४]
हमारे—हमारै : Humare fath toomhen jana hoga[५]
: हमारै मुलक आय के[६]

'हमारा' के वैकल्पिक 'हमारो हमरा हामरा हामरो हमरे' आदि जनपदीय उच्चारण से प्रभावित रूप हैं। ये केवल 'गीतें हमारे प्रभु त्राण करन हारे यिशु ख्रीष्ट की वन्दिगी में गाने के वास्ते' और अभिलेखों तक सीमित रहे हैं, यथा,

हमारो—हमरा—हामरा— : हमारो नकसा जावे[७]
—हामरी—हमरे : : सुनिये हमरा जीव क्या चाहै[८]
: हामरा दिल बातिरेजमा है[९]
: हामरी आदमि······ भेजा[१०]
: पाप हमरे गिणे नहीं[११]

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ८३।
२. नासि०, पृष्ठ ८।
३. अभि०, ३५ क।
४. अभि०, ८ क।
५. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
६. अभि०, २३ क।
७. अभि०, १२ क।
८. गीतें०, पृष्ठ २।
९. अभि०, ४२ क।
१०. अभि०, ४३ क।
११. गीतें०, पृष्ठ १८२।

संबंध कारक सर्वनाम 'मेरे', कर्म और सम्प्रदान कारकों में मिलता है। ऐसे रूप पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों में बोली जाने वाली खड़ीबोली में आज भी सुनाई दे जाते हैं, यहाँ 'मेरे तईं' और 'मेरे पर' इसी प्रकार के उदाहरण हैं, यथा,

पिता ! मेरे तईं दीजे[1]

सूद्र राजा हो······अधर्म मेरे पर करेंगे[2]

मूलरूप, मध्यम पुरुष सर्वनाम 'तू' और 'तुम' हैं। 'तू' स्त्रीलिंग और पुँल्लिग दोनों में मिलता है। परन्तु, 'तुम' केवल पुँल्लिग का प्रतिनिधि है। खड़ीबोली के साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों स्वरूपों में 'तू' और 'तुम' समान अनुपात में हैं। परन्तु उपसाहित्यिक स्वरूप में 'तू' के स्थान पर सर्वत्र 'तुम' मिलता है। 'तुम' बहुवचन का सर्वनाम है। इससे प्रमाण निकलता है कि भाषा के बोलचाल वाले स्वरूप में मध्यम पुरुष बहुवचन के सर्वनाम रूप इस समय एकाकी भाव व्यक्त करने लगे थे। व्यवहार में एक ही रूप प्रचलित हो रहा था। परन्तु साहित्यिक स्वरूप में दोनों रूपों में वचन भिन्नता, सुरक्षित थी। इसमें 'तू' और 'तुम' दोनों सर्वनाम एकसमान स्तर वाले के सन्दर्भ में प्रयुक्त हो रहे थे। इनका प्रयोग घनिष्ठता, स्नेह, पूज्य-भाव और गुरु-शिष्य के संवाद में मिलता है। 'तुम' आदरसूचक और प्रतिष्ठित वर्ग का सर्वनाम भी है, जिसके लिए कहीं-कहीं 'आप' का प्रयोग मिलता है। अभिलेखों में सामान्य स्थिति में बराबर वालों के लिए तथा अधिकारी और अधीनस्थ के मध्य 'तुम' और 'आप' का प्रयोग मिलता है। विकारी कारकों में भी 'आप' का प्रयोग इन्हीं अर्थों में है। इस सन्दर्भ में यह तर्क भी दिया जा सकता है कि 'तू' शब्द में कुछ निरादर, अपमान और कुछ हलकापन आने लगा था। इसीलिए कदाचित् 'तुम' का प्रयोग एकवचन के लिए चल पड़ा और तब बहुवचन के लिए 'लोग', 'सब' आदि शब्द अलग से जोड़े जाने लगे, यथा,

तू : युसफ, तू······मत डर[3]

तुम—तुम : Toom kaun ho[4]

: तुम इतनी ठौर रहौ[5]

: तुम बोलने सकते हो[6]

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।

२. प्रेम०, पृष्ठ ३।

३ धर्म०, पृष्ठ २।

४. डॉ० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।

५. प्रेम०, पृष्ठ ३।

६. वाक्या०, पृष्ठ ३।

उच्चारण—भेद से 'तूम' और माहाप्राण ध्वनि 'ह्' से युक्त 'तुम्ह्' रूप अभिलेखों और ईसाई गीत रचना में द्रष्टव्य हैं,

तूम तुम्ह् : जो तूम भेजा है[१]

तुम्ह् राधा को देखो[२]

सम्मानबोधक स्थलों पर तुम⁓तुम्ह् और 'आप' सर्वनामों का प्रयोग मिलता है। राजा, महाराजा और खुदा के संदर्भ में इनके प्रयोग निम्नलिखित हैं,

तुम⁓तुम्ह् : राजा तुम बड़े ज्ञानी हो[३]

: ऐ खुदावन्द······तुम्ह् बिन देह् पाले जावे[४]

आप : महाराज आप······सरजनि हार[५]

: आपने लिषा[६]

इसके विपरीत सम्मान के संदर्भ में 'तू' का प्रयोग अपवाद रूप में 'बैताल पच्चीसी' में मिलता है। यथा,

तू : हे राजा। जो तू······मुझे दे[७]

'तू' का एक अन्य विकल्प 'हौं' भी मिलता है।

कर्ता कारक के चिह्न 'ने' के साथ 'तुम' और 'तैं⁓तै⁓तें' सर्वनाम मिलते हैं। 'तुम' बहुवचन में भी मिलता है। 'तैं⁓तै⁓तें' ग्राम्य रूप है। 'तैं' का व्यवहार भारतेन्दु कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' तक में मिलता है यथा 'विश्वा० अरे दुष्ट ! तैं भूल गया, कल पृथ्वी किसको दान दी थी'।[८] यह सर्वनाम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् खड़ीबोली में विकसित न हो सका परन्तु ब्रजभाषा में सक्रिय रहा। इससे स्पष्ट होता है कि खड़ीबोली के विकास के आरंभिक चरण विभिन्न जनपदों के तत्त्वों से किस प्रकार आपस में घुलमिल कर चल रहे थे। इसके आधुनिक स्वरूप के विकास में भी इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इनका प्रयोग, 'प्रेमसागर' में समान स्तर वाले व्यक्ति के सन्दर्भ में है तो 'पदार्थ विद्यासार' में गुरु द्वारा शिष्य के लिए किया गया है, यथा,

---

१. अभि०, २४ क,
२. अभि०, १७ क।
३. नासि०, पृष्ठ ४।
४. गीतें०, पृष्ठ १८१।
५. नासि०, पृष्ठ ३।
६. अभि०, २३ क।।
७. बै० हिं० हिंदु०; पृष्ठ ७१।
८. सत्य हरिश्चन्द्र, भारतेंदु ग्रंथावली, भाग १, पृष्ठ २७५।

तुम : राजा तुमने······दिया[१]

तैं—तै—तें : तैंने किया[२]

: तैंने जो आनन्द पाया[३]

: क्या अर्जुन को तें ने दूर गया जाना[४]

विकारी रूप, एकवचन, मध्यम पुरुष सर्वनाम के कर्म और सम्प्रदान कारकों के रूप 'तुज' और 'तुम' हैं। इनके साथ सम्प्रदान के अर्थ में 'तुम', 'तुझे' 'तुम्हें'—'तुमें'—'तुमे' विकल्प भी मिलते हैं। 'तुमे' अविभक्तिक कर्ता कारक में दक्खिनी हिन्दी में मिलता है। इसकी व्युत्पत्ति 'तुमन' से स्वीकार की गयी है। 'तुमें' में अनुनासिकता का अभाव मुद्रण के कारण आया प्रतीत होता है। 'तुज' का प्रयोग आज भी क्षेत्रीय रूपों में कारक-चिह्न 'को' और 'कू' के साथ मिल जाता है। साहित्यिक खड़ीबोली से ऐसे रूप समाप्त हो चुके हैं। 'तुज' का प्रयोग गुरु-शिष्य और मालिक-नौकर, के मध्य, क्रोधावेश में, सामान्य उपदेशात्मक कथन में मिलता है। उदाहरण निम्नलिखित हैं,

तुज : तुज कू······सिषावैंगे[५]

: परमेश्वर तुज को अवश्य देंगे[६]

तुझे : राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा···मैं तुझे अभी मारता हूँ[७]

तुम : **Toom ko koochh maloom hy**[८]

'तुजको बड़ी निद्रा भई थी[९] 'यिह दोहा क्या तुमको नहीं पहुनचा'[१०] 'हमारो मन तुमको नहीं पत्ती जे'[११] इत्यादि वाक्यों में भी इनके उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

'तुज' और 'तुम' का प्रयोग संबंधकारक में भी मिलता है। फोर्ट विलियम कालेज के अन्तर्गत लिखित रचनाओं में ऐसे उदाहरण स्थान-स्थान पर मिलते हैं। संबंधकारक में 'तुम्हारे' या 'तेरे' का कार्य 'तुज' से लिया गया है। निम्नलिखित द्वितीय वाक्य में 'को' कर्म कारक से अतिरिक्त संबंध का भाव भी व्यक्त कर रहा है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि इस समय तक भाषायी परिवेश में इन सर्वनामों का प्रयोग अस्थिर था। 'तुम' और 'तुज' दोनों रूप स्वतन्त्रता से व्यवहृत हो रहे थे। उदाहरणार्थ,

१ प्रेम०, पृष्ठ ६।
२. प्रेम०, पृष्ठ ५।
३. पदा०, पृष्ठ १२।
४. प्रेम०, पृष्ठ २।
५. रि०, पृष्ठ १।
६. उप०, पृष्ठ ३।
७. प्रेम०, पृष्ठ ३।
८. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
९. उप०, पृष्ठ ३।
१०. हिं० रो०, पृष्ठ ८।
११. अभि०, ३८ क।

तुज : तुज सा पूत जन्ने से तेरी मां बांझ क्यों न हुई[१]

: तुम को······पुत्र होगा[२]

'तुझे' और 'तुमें—तुमे—तुम्हें' संप्रदान कारक के अर्थ में भी मिलते हैं, यथा,

तुझे : तुझे किस वास्ते मारा[३]

: तुझे भोजन कौन······करवाता है[४]

तुमें—तुमे—तुम्हें : तुमें सीरकार अंगरेजी को[५]

: वहाँ जो तुमे कहौ कि नियोग निमित्त है[६]

: Humare fath toomhen Jana hoga[७]

मध्यम पुरुष, कर्मकारक में सम्मान के अर्थ में 'आप' का प्रयोग अभिलेखों में मिलता है, यथा,

आप : आपको पधारणे मुनासीब है[८]

: आपको जाहर है[९]

करण, अपादान और अधिकरण के सामान्य अर्थ में 'तुझ' और आदर के संदर्भ में 'आप' हैं, अभिलेखों में 'तुझ' का प्रयोग नहीं मिलता। इनमें केवल 'आप' शब्द मिलता है, यथा,

तुझ : तुझ पर क्या दुख है[१०]

: मैं तुझ से बहुत संतुष्ट हुआ[११]

आप : आपसे पुछा[१२]

: आपसे एकसुद होकर जहाँ आये[१३]

मध्यमपुरुष में संबंध कारक के सर्वनाम 'तेरा, 'तेरी', 'तेरे' हैं। इस समय भाषा में एकरूपता की प्रवृत्ति विकसित हो जाने के कारण बहुवचन के सर्वनाम रूप 'तुमारा'—'तुम्हारा', 'तुमारी'—'तुम्हारी' 'तुमारे'—'तुम्हारे' रूप भी एक प्राणी के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने लगे थे। महाप्राण 'ह' ध्वनि रहित वाले रूप 'तुमारा' आदि का व्यवहार अभिलेखों की खड़ीबोली की विशेषता

१. प्रेम०, पृष्ठ १०।
२. नासि०, पृष्ठ ७।
३. हिं० रो०, पृष्ठ २६।
४. हिं० रो०, पृष्ठ ७।
५. अभि०, १५ क।
६. दाय०, पृष्ठ ४७।
७. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
८. अभि०, १२ क।
९. अभि०, २७ क।
१०. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०।
११. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
१२. अभि०, ४६ क।
१३. अभि०, ३० क।

है। ब्रजभाषा और दक्खिनी हिन्दी में यह रूप आज भी सुनाई देता है। 'तेरा' का प्रयोग राजा के संदर्भ में और 'तुम्हारा' का प्रयोग अपने से छोटे के संदर्भ में भी मिलता है। 'तुम्हारा' और 'तुमारे' सामान्य स्तर वालों के लिए तथा प्रजा द्वारा राजा के सन्दर्भ में प्रयुक्त हैं। यथा,

तेरा : ओ राजा तेरा भी कोई बड़ा पुन्य उदै हुआ[1]

तुम्हारा : तुम्हारा कीआ नाम[2]

तुम्हारी : पृथीनाथ—अब तो मैं तुम्हारी सरन आया[3]

तुमारे—तुम्हारे : सो तुमारे वास्ते ये हुकम है[4]

: हम तुम्हारे साथ चलते हैं[5]

कुछ स्थानों पर 'तुमारे' का प्रयोग सर्वनाम 'हमारे' के साम्य पर किया गया प्रतीत होता है,

तुमारे : और तुमारे हमारे तो दाया नहीं है[6]

इनके साथ 'तुमारो' रूप भी मिलता है जो वास्तव में अपवाद है, यथा,

तुमारो : अब तो तुमारो हमारो बुहार जा दीना जान[7]

एक सन्दर्भ में 'तेरी' और 'तुम्हारा' दोनों का प्रयोग भाषा के अस्थिरता-काल का उदाहरण है। निम्नलिखित दूसरे वाक्य में 'तुम्हारा' के स्थान पर 'तेरा' रूप होना चाहिए था, यथा,

तेरी बात सुन के[8]

यह तुम्हारा कैसा आचार है[9]

'तेरे' का प्रयोग संबंध कारक से इतर कर्मकारक में और 'तुम्हरे' (तुम्हारे) का प्रयोग अधिकरण कारक में मिलता है। इस प्रकार के अपवाद वास्तव में नियमों के पूरक हैं, यथा,

तेरे : कमलाकर ! तेरे तईं अनंगमंजरी ने कहा है[10]

तुम्हरे : सब हाल में मिहरबान हुजिये तवक्का तुम्हरे पर[11]

एकवचन, निजवाचक सर्वनाम : —इन्हें सर्वनामों के प्रथम वर्ग के अन्तर्गत

---

१. प्रेम०, पृष्ठ ७।
२. अभि०, १८ क।
३. प्रेम०, पृष्ठ ३।
४. अभि०, १० क।
५. अभि०, ४ क।
६. अभि, ३८ क।
७. अभि०, ३८ क।
८. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
९. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
१०. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७४।
११. गीतें०, पृष्ठ १८१।

विभाजित किया जा सकता है। यह सर्वनाम मध्यम पुरुष सर्वनाम 'आप' (आदरसूचक) से भिन्न है। निजवाचक सर्वनाम 'आप' का विकास संस्कृत 'आत्मन्' से है और आदरवाचक सर्वनाम 'आप' का विकास संस्कृत 'आप्त' से माना गया है। 'आप' अन्य पुरुष का सूचक है। यह 'स्वयं' के अर्थ में अव्यय है। निजवाचक में इसके आप, आपस, अपना, अपने और अपनों रूप मिलते हैं। 'आप' कर्ता कारक का और 'आपस' अधिकरण कारक का सर्वनाम है। इसका प्रयोग साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों रूपों में समान अनुपात में मिलता है। कुछ वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं। इनमें इसका प्रयोग द्रष्टव्य है,

अव्ययवत् (क्रिया विशेषणवत्) प्रयोग—निम्नलिखित वाक्य में इसका प्रयोग 'स्वयं' के लिए है,

आप : राजगद्दी अपने छोटे भाई भरथरी को सौंप आप जोगी बन······ सैर करने लगा।[१]

बहुवचन में इसका तात्पर्य उन सभी लोगों से है जो किसी कार्य के करने के समय उपस्थित हो, यथा,

आपस : आपास में हित से सेवा करें[२]

निम्नलिखित वाक्य में यह कर्ता के अर्थ में है अप्ना—अपना : अप्ना दिया दुसरे का दीया[३]

अपनी : ज्मी जोती जो अपनी सब रामपुरा की है[४]

अपने : अपने तरफ सों[५]

संस्कृत का निजवाचक सर्वनाम 'निज' विशेषण के समान प्रयुक्त है। यथा,

निज : निज मंदिर में जा[६]

(२) वचन और कारक के अनुसार रूपांतरित सर्वनाम

१. निश्चयवाचक, निकटवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
२. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।
३. अभि०, ३० क।
४. अभि०, १२ क।
५. अभि०, २६ क।
६. प्रेम०, पृष्ठ २१।

इनके मूलरूप, एकवचन के सर्वनाम 'यिह' और 'यह' हैं। यह साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों रूपों में प्रचलित मिलते हैं। अभिलेखों में 'इ', 'ईहि', 'ऐहि' रूप भी प्रयुक्त मिलते हैं। 'यिह', 'ईहि' और 'ऐहि' तीनों क्षेत्रीय बोलियों (भोजपुरी, मैथिली, कन्नौजी, बैसवाड़ी आदि) से प्रभावित खड़ीबोली के उदाहरण हैं। 'ऐहि' का व्यवहार पंडित सदल मिश्र की रचनाओं तक सीमित मिलता है। यह रूप भारतेन्दु के पूर्व से समाप्त होना आरंभ हो गये थे। धीरे-धीरे इनका स्थान 'यह' ने ले लिया है। यह सर्वनाम अन्य पुरुष तथा वस्तु और भाव के अर्थ में भी मिलते हैं। 'यह' और उसके विकल्पों का प्रयोग यह वाक्य में निकटवर्ती वस्तु के सन्दर्भ में पूर्व कहे गये वाक्यांशों के लिये और आगे आने वाले वाक्य के स्थान पर भी है। सभी उदाहरण निम्निलिखित हैं,

यिह यह : यिह भी—जानता हूँ[1]

इसमें 'पास का' या 'निकटता' का भाव स्पष्ट किया गया है। पूर्व कहे गये वाक्य के लिये निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है,

यह : यह सुनके—रोई[2]

ऐहि—ईहि : अब लोगों में ऐहि बात काना कानी हो रही है[3]

: ईहि हुकुम—देया गया[4]

या : औ अभी या कहते हैं[5]

य : उन्के तरफ के वेजा य हुवा[6]

'आप या वात ना कीजिये'[7] 'या किसी तुम को सुनाई है',[8] तथा 'या हम कुछ नहीं जानते हैं',[9] आदि वाक्यों में भी 'या' का व्यवहार 'यह' के लिए द्रष्टव्य हैं।

एक व्यक्ति के लिये आदरार्थक संदर्भ 'ये' सर्वनाम है। इसका व्यवहार बहुवचन के लिये भी स्वीकृत मिलता है,

ये : ये जबके यार हैंगे[10]

---

१. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५१।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
३. नासि०, पृष्ठ २१।
४. अभि०, ४३ क।
५. अभि०, ३ क।
६. अभि०, २३ क।
७. अभि०, ३ क।
८. अभि०, ४ क।
९. अभि०, ४ क।
१०. अश०, पृष्ठ ४।

: चौवे जगंनाथ के पास आये—ये बरात को गये[१]

मूलरूप में कारक-चिह्न 'ने' के साथ 'इन' और इसके विकल्प 'ईन', 'इनो' मिलते हैं। 'इन' के साथ 'ने' कारक-चिह्न रहने पर शब्दान्त स्वर का लोप मिलता है। उच्चरण के अनुरूप वर्तनी वाले ये उदाहरण खड़ीबोली की आरम्भिक अवस्था के सूचक हैं। 'इन' बहुवचन का सर्वनाम भी है। यह एकवचन में समीप स्थित अन्य पुरुष के लिये मिलता है जिसमें औपचारिक सम्मान का भाव भी निहित है, यथा,

इन — ईन : इन्ने कहा यह तो उन्ने मुझे जी दान दिया[२]

: ईन ने भी लीषा[३]

एक अन्य विकल्प 'इनौ' अल्पप्राणीकृत उच्चारण और उसके अनुरूप वर्तनी का उदाहरण है। इस प्रकार के रूप अभिलेखों की भाषा में सहज ही उपलब्ध होते हैं,

इनौने : इनौने सिर पर घर कै लीया[४]

परन्तु साहित्यिक खड़ीबोली में महाप्राण ध्वनि 'ह्' वाले रूप मिलते हैं। 'इन्हो' कारक-चिह्न 'ने' के साथ आज स्थायी हो चुका है। परन्तु आरम्भिक खड़ीबोली में 'इन्ह' का प्रयोग कर्ता कारक से अतिरिक्त अन्य कारकों में प्रचलित मिलता है, यथा,

इन्हों—इन्हो : इन्हों क विना[५]

: किसू वात में इन्हो के मर्याद का[६]

विकारी रूप, एकवचन—निकटवर्ती अर्थ में सम्प्रदान के लिये 'इसे' रूप मिलता है, यथा,

इसे : जो इसे खायगा[७]।

: इसे जोतिक सिखओ[८]।

यहाँ सम्मान भाव दिखाने के लिये 'इन्हें' रूप मिलता है। इसका व्यवहार बहुवचन के लिये भी है,

---

१. अभि०, ४ क।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७४।
३. अभि०, १२ क।
४. अभि०, ४ क।
५. स्वी०, पृष्ठ ६।
६. स्वी०, पृष्ठ २।
७. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
८. हिं० रो०, पृष्ठ ३८।

इन्हे : खुश है ये अपने हाल में परवा इन्हे नहीं[१]

सम्प्रदान से अतिरिक्त अन्य कारकों में 'इस' सर्वनाम मिलता है, यथा,

इस : जो कोई इसके देखने को आवे[२]

'इस' का विकल्प 'इश' अभिलेखों में मिलता है। दन्त्य 'स' से स्थान पर तालव्य 'श' का उच्चरण आज भी अहिन्दी भाषियों में सुनाई देता है, यथा,

इश : काल्ह इश को बुझ हीगे[३]।

: इश वख्त रात हुआ[४]।

कारक-चिह्न के साथ 'इस' होने पर शब्द का अंतिम स्वर उच्चारण में प्रायः सुनाई नहीं देता। फलस्वरूप 'इस्का' शेष रह जाता है। आरम्भिक खड़ीबोली में इन रूपों का बहुतायत से प्रयोग इस बात की पुष्टि करता है कि इस समय भाषा के लिखित रूप में उच्चारण के अनुरूप वर्तनी रखने की विधि सर्वत्र स्वीकृत थी, यथा,

इस्का : मेहरमानगि करके इस्का जवाब भेजना होगा[५]

: इस्का मुद्दा अैसा है[६]

यहाँ भी सम्मान भाव के लिये 'इन' सर्वनाम का प्रयोग किया गया है, यथा,

इन : चौवे जगंनाथ के पास आये······इनके पास पौहचे[७]।

: सो तो इनसे ताकीद कर दी[८]

साहित्यिक रचना 'अशआर मियां नज़ीर के' में 'एक दम्में चाहे जो मिले इनको है क्या कमी' वाक्य में 'इन' आदरभाव व्यक्त कर रहा है।

'इस~ईस' संकेतवाचक होने पर विशेषण के समान भी कार्य करते हैं, यथा,

इस~ईस : इस सूरत पर यिह······है[९]'

: ईस मुकदमा का फासला[१०]।

१. अश०, पृष्ठ ४०।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।
३. अभि०, १७ क।
४. अभि०, १७ क।
५. अभि०, ३० क।
६. अभि०, ३६ क।
७. अभि०, ४ क।
८. अभि०, १४ क।
९. हिं० रो०, पृष्ठ १५।
१०. अभि०, ९ क।

अन्य व्याकरणिक कोटियों में 'इस' का प्रयोग निम्नलिखित वाक्यों में द्रष्टव्य है,

(i) क्रिया विशेषण, कालवाचक 'इतने' के लिये—

इस : इसमें वह मुनि भी आ पहुंचा[१]

: इसमें उसे होश आया[२]

: इसमें एक बरष बीत गया[३]

(ii) अव्यय 'इसलिये' के लिये—

तुम्हारा बियोग—न सह सकेंगी—

इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला[४]।

२. निश्चयवाचक, दूरवर्ती सर्वनाम-संकेतवाचक मूलरूप, एकवचन का सर्वनाम 'वह' है। यह अन्यपुरुष का सर्वनाम है। इसका प्रयोग प्राणी, पदार्थ और आराध्य के संकेत करने के लिये यों बल देने के लिये किया गया है। इसका विकल्प 'वुह' है, यथा,

वह—वह़—वह़—वुह : वह सुख देने हारा है[५]

: तूने वह फल क्या किया[६]

: वुह गिर पड़ा[७]

: वहाँ वह गई[८]

: वुह अनित्य कहलाता है[९]

'वह' के साथ अवधारण सूचक 'ही' होने पर 'वाही' रूप मिलता है। यह विशेषण के रूप में अभिलेखों में एक स्थान पर मिलता है।

: वाही बात तुम बोलो हो[१०]

प्राणी के प्रतिनिधि होने पर एकवचन में सम्मान बोधन के लिये 'वे'—'वे़' रूप मिलते हैं, यह बहुत्व बोधक भी है। यथा,

१. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७० ।
२. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७३ ।
३. लाल०, परिचय, पृष्ठ ४ ।
४. प्रेम०, पृष्ठ ६ ।
५. पदा०, पृष्ठ १ ।
६. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३ ।
७. हिं० रो०, पृष्ठ २० ।
८. नासि०, पृष्ठ २७ ।
९. तर्क०, पृष्ठ ८ ।
१०. अभि०, ३८ क ।

वे—वे : राजा परीक्षित—करने लगे—

: जब वे पास पहुंचे[1]

: वे झूठ कहते हैं[2]

कारक-चिह्न 'ने' के साथ 'वह' के रूपांतर अन्य विकारी कारकों के सर्वनाम से भिन्न नहीं हैं। यह 'उस', 'विस' और 'उन', 'वन—विन्हों', 'उन्हो—उन्हौं' हैं। 'विस', विन' और 'विन्हो' ब्रजभाषा में भी मिलते हैं। इससे पता चलता है खड़ीबोली का प्रारम्भिक स्वरूप ब्रजभाषा के कितना निकट था। इनके प्रयोग 'प्रेमसागर' में स्थान-स्थान पर मिलते हैं। कदाचित् आगरा और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों की खड़ीबोली में इनका प्रचलन रहा हो। इनका प्रयोग आराध्य, के संदर्भ में भी है। 'विन' और 'उन' एकाकी अर्थ में आदरार्थक है। कारक चिह्न 'ने' के साथ इन दोनों का प्रयोग आरम्भिक खड़ीबोली की प्रमुख विशेषता है, यथा,

बुस—उस—उस् : इसकी भाषा सब कोई समझ न सकेगा इस कारण वुसे छोड़ दिया[3]

: उसने जवाब दिया[4]

: उस्ने—--प्रकाश किई[5]

विस : विस ने अपनाऔसर पा---- किया[6]

उन : उसने ज्मी जोती[7]

: उनने सोलहवें में पाँव रखा[8]

: उन्ने आशीरवाद दिया[9]

विन : विन्ने --- कहा[10]

उन्हो—उन्हौ : उन्होंने ---- सतकार किया[11]

: लाखों उन्होंने भगतों के अपने किये हैं काम[12]

१. प्रेम०, पृष्ठ २।
२. अभि०, ७१ क।
३. राम० सदल मिश्र ग्रंथावली, पृष्ठ ८३३।
४. हिं० रो०, पृष्ठ ८।
५. मनो० इति०, पृष्ठ ४।
६. प्रेम०, पृष्ठ ४।
७. अभि०, १२ क।
८. रानी०, पृष्ठ ३।
९. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
१०. प्रेम०, पृष्ठ १५।
११. पत्र०, पृष्ठ ७।
१२. अश०, पृष्ठ ४०।

विन्हौ : विन्होंने मेरी सुध न ली[1]

: विन्होंई ने ---- कही थी[2]

कारक - चिह्न 'ने' के साथ 'उन्ह' होने पर महाप्राण 'ह' ध्वनि के लोप से बने 'उनौ' जैसे सर्वनाम रूप कई स्थानों पर मिलते हैं। यह सर्वनामों में अल्पप्राणीकरण की प्रकृति के संकेतक हैं, यथा,

उन : उनौने तोडा[3]

'वुस' और 'व़िस' का व्यवहार विशेषण के समान भी मिलता है,

विस : विसी वन में ----- [4]

बुस : बुस दोष को छिपावें[5]

विकारी रूप, एकवचन-संप्रदान कारक का सर्वनाम 'उसे ⁓ वुसे' और 'विसे ⁓ व़िसे' हैं। 'बुसे' पंडित सदल मिश्र की रचनाओं में और अन्य विकल्प फोर्ट विलियम कालेज के अन्तर्गत लिखित पुस्तकों में मिलते हैं,

उसे ⁓ वुसे : उसे स्मृति कहते हैं[6]

: वुसे छोड़ दिया[7]

विसे ⁓ व़िसे : किसने विसे महावर दिया[8]

: व़िसे छुड़ा मंगाया[9]

अन्य कारकों में दूरवर्ती सर्वनाम 'उस ⁓ ऊस', 'विस ⁓ व़िस' हैं। 'विस' प्रेम सागर से अतिरिक्त पंडित सदल मिश्र कृत----- 'नासिकेतोपाख्यान' की विशेषता भी है। वास्तव में, आगरा क्षेत्र की खड़ीबोली और ब्रजभाषा की विशेषता व्यापारियों आदि के माध्यम से पूर्वी क्षेत्रों में भी विस्तार पा चुकी थी। पंडित सदल मिश्र ने 'व़िस' के साथ-साथ 'उस ⁓ वुस' का प्रयोग भी किया है। उससे पता चलता है कि इस समय ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों को एक-दूसरे से पृथक् कर देखना सम्भव न था। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं।

उस ⁓ ऊस : अब में उसको दू हूँ श्राप[10]

: हाल मुफसील ऊससें जाहर होगा[11]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ २०१।

२. प्रेम०, पृष्ठ २६।

३. अभि०, २७ क।

४. नासि०, पृष्ठ २७।

५. राम०, पृष्ठ ३३।

६. तर्क०, पृष्ठ २३।

७. राम० पृष्ठ २।

८. प्रेम०, पृष्ठ ६।

९. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०७।

१०. प्रेम०, पृष्ठ ५।

११. अभि०, ८ क।

व़िस : सन्तान के लिए पत्नी सों भोग करना उचित— नहीं तो बि़स विन कया कदही क्रिया सिद्ध होती है[1]

इसी प्रकार 'विसके पढ़ने ही से —— पहुँचेगे[2], 'वि़सके आगे——खड़े भये[3], और 'नहीं तो वि़स विन ——— कया है[4], इत्यादि में 'बि़स—विस' का प्रयोग द्रष्टव्य है।

इस समय तक भाषा में एकरूपता की प्रवृत्ति विकसित हो चुकी थी, जिससे एकवचन में सम्मानबोधक सर्वनाम और बहुवचन के सर्वनाम एक समान होने लगे थे। 'उन', 'विन—व़ृन' तथा इनके रूपान्तर 'उन्हो—उन्हौ—उनो' बहुवचन के सर्वनाम हैं, परन्तु आदर भाव में एकवचन में भी प्रयुक्त होते हैं। महाप्राण 'ह' ध्वनिवाले रूपों का प्रयोग कारक-चिह्न 'ने' के साथ होता है परन्तु यहाँ अपादान कारक चिह्न 'से' और सम्बन्ध कारक-चिह्न 'के' और 'की' के साथ इनका प्रयोग मिलता है। आरम्भिक खड़ीबोली की यह विशेषता आगे विकसित न हो सकी। आज 'उन' का प्रयोग कर्त्ता से अतिरिक्त अन्य कारकों में और 'उन्हो' का प्रयोग कारक-चिह्न 'ने' के साथ कर्ताकारक में चल पड़ा है। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

उन—उन्हो—उन्ह—उन्हो—उनो :

: उस्ताद व़षत के ये उनसे सीष।[5]

: उन्हों के थोथे शिष्टाचार में[6]

: तुमसे उन्हों से गहरी हमेशे से है यारी[7]

: उन्हो को सहायता से[8]

: वहाँ रानी उनो के कहने से—छिपाये रही[9]

: उन्के तरफ से वेजा य हुवा[10]

वि़न—व़ृन : वि़नके में हैं—कहा[11]

: जो महाराजा चीन का गुरु है व़नका षातेरदारी—करना।[12]

१. नासि०, पृष्ठ ६।
२. राम०, पृष्ठ ३।
३. राम०, पृष्ठ २।
४. नासि०, पृष्ठ ६।
५. रि०, पृष्ठ १।
६. लाल० परिचय, पृष्ठ २।
७. अश०, पृष्ठ ३६।
८. कथा०, पृष्ठ ५।
९. नासि०, पृष्ठ २०।
१०. अभि०, २३ क।
११. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०४।
१२. अभि०, ५० क।

कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग होने पर 'उस' की अंतिम स्वर ध्वनि का लोप होने से 'उस्के', 'उन्के', जैसे प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलते हैं···

उस् : ooske puros ke puher ko[१]

: उस्से मेघ छिन्न-भिन्न होते[२]

: उन्के तरफ से—हुवा[३]

इस अर्थ में 'उस' के स्थान पर 'ता' का प्रयोग अभिलेखों में मिलता है। यह जनपदीय प्रभाव ही है, यथा,

ता : ता पर हमैं तौ आपके पास अउत इहा ते ताकौ षतु आयौ[४]

: ता पीछे साहिब की सुनजर[५]

संबंधवाचक सर्वनाम : —संबंधवाचक सर्वनाम के मूलरूप एकवचन में 'जो' रूप है। यह वस्तु और व्यक्ति दोनों का वाचक है।

जो : जो कितुरक सो वे भी[६]

"'यों' रूप मुद्रण की असावधानी से आया प्रतीत होता है, यथा,

यों : यों मनुष्य—जाता है[७]

'जो' के स्थान पर जनपदीय प्रभाव से 'जौन' रूप पंडित सदल मिश्र की रचनाओं से अतिरिक्त नहीं मिलता।

भाषा की सामान्य प्रकृति के रूप में कर्ता कारक-चिह्न 'ने—नै' के रहने पर 'जिस' के अंतिम स्वर का लोप मिलता है, यथा,

जिस्ने तुमको—जन्माया है[८]

यहाँ भी आदरसूचक एकवचन और सामान्य बहुवचन के रूप एक समान हैं 'जिन्हों—जीन्हों' सर्वनाम एकवचन का अर्थ भी व्यक्त कर रहा है, यथा,

जिन्हों—जीन्हो : सूरसेन जिन्होंने—जस पाया[९]

: जीन्होने अपना नाम नहीं लीखा[१०]

---

१. ओ० फेन्यु०, पृष्ठ ५।
२. पदा०, पृष्ठ २६।
३. अभि०, २३ क।
४. अभि०, २ क।
५. अभि०, १ क।
६. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५३।
७. मासि०, पृष्ठ ७।
८. हिंदुई०, पृष्ठ ११
९. प्रेम०, पृष्ठ ०५।
१०. अभि०, १८ क।

'जो ─ जौं' सर्वनाम विशेषण और अव्यय के अर्थ में भी प्रयुक्त हो रहे थे, अव्यय 'यदि' के स्थान पर,

: जो तू न होता तो में कुछ न बनाता[१]

: यह कल का पुतला जो अपने खेलाड़ी की सुध रक्खे तो[२]

: जो कहो कि – बुद्धि थोड़ी है[३]

: सारा संसार जौं हम पाये[४]

(ii) अव्यय 'कि' के स्थान पर—

: 'ऐसी अनीति पति के मरे पीछे नहीं करते जो उन्हें विन मृत्यु जीते जी मार डालें[५]

: इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प—डाल दिया[६]

: तब उअह कहा जो कौन रोती है[७]

विकारी कारक, एकवचन—खड़ीबोली के साहित्यिक स्वरूप में 'जिस' और 'जिसे' रूप मिलते हैं। 'जिसे' सम्प्रदान कारक का सर्वनाम है। उदाहरण,

जिस : जिसको आठ सौ बरस हुए[८]

जिसे : इस भयानक चाल का लार जिसे अब मैं दोषता हूँ[९]

अपवाद रूप में बहुवचन का 'जिन्हें' रूप एकवचन में प्रचलित मिलता है, यथा,

इसमें सभ्यता की विद्या जिन्हें यूनानियों और रूम के लोगों ने सुधारी थी[१०]

शेष कारकों में भी 'जिस' रूप हैं। परन्तु यहाँ इसके विकल्प 'जिस् ─ जीस ─ जेस' और 'जिन ─ जीन' भी मिलते हैं। 'जिन' बहुवचन में भी मिलता है। उदाहरण,

जिस ─ जिस् ─ जीस ─ जेस

: जिसका अस्तित्व—समझ लेते हैं[११]

: जीसमें मेवाड़वाले झुटे पड़ जावेंगे[१२]

१. रानी०, पृष्ठ २।

२. रानी०, पृष्ठ १।

३. स्त्री०, पृष्ठ २।

४. गीते०, पृष्ठ २।

५. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५३।

६. प्रेम०, पृष्ठ ४।

७. अभि०, १७ क।

८. भार०, पृष्ठ २।

९. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।

१०. कथा०, पृष्ठ ७।

११. लाल०, पृष्ठ ६।

१२. अभि०, १२ क।

: जेसमों हमारा भलाई हमेसा है[१]

जिन—जीन : एक आन में जिन मार लिया केसरी घोड़ा[२]

: भवरे के समान दील है जीनका[३]

यहाँ भी कारक-चिह्नों का प्रयोग होने पर शब्दांत की स्वर ध्वनि का लोप हो गया है। ये रूप करण और अधिकरण कारकों में मिलते हैं, यथा,

जिस्से : पत्रों के ऊपर जल रह के जिस्से हानि न होवे[४]

: जिस्में मसुदा की तफ से[५]

: अभिलेखों की खड़ीबोली में 'जेता' रूप भी मिलता है, यथा,

जेता : स्माचार—चाहि जेता पीछे[६]

सर्वनाम से अतिरिक्त अन्य व्याकरणिक कोटियों में 'जिस' का प्रयोग निम्नलिखित है,

(i) 'इसलिए' के स्थान पर

जिस—जीस : जी वासते हमारी सलाह[७]

(ii) 'जो' के स्थान पर

जिस : मेरी मति में कुछ भ्रम हुआ कि जिसका संभव नहीं सो देखने में आया[८]

(iii) अन्य अर्थों में—

जीस : नकस तो आपको हे जीस

पे फेर बोहत षात्री करी[९]

नित्य संबंधी सर्वनाम—आरंभिक खड़ीबोली की एक विशेषता नित्य संबंधी सर्वनामों का प्रयोग है। खड़ीबोली के वर्तमान स्वरूप से इसका लोप हो गया है। इसके स्थान पर निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनाम 'उसे' और संबंधवाचक सर्वनाम व्यवहृत हो रहा है। परंतु बोलचाल में तथा कथावाचक शैली में नित्य संबंधी सर्वनाम आज भी सुनाई दे जाता है।

मूलरूप, एकवचन में 'सो—सौ' सर्वनाम मिलते हैं। साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों स्वरूपों में यह सक्रिय मिलता है,

सो—सौ : जो बनाया हुआ हो, सो अपने बनाने वाले को क्या सराहे[१०]

: चिट्ठी आई सो चिट्ठी लेके··· आये[११]

१. अभि०, ३५ क।
२. अश०, पृष्ठ ३८।
३. अभि०, ३६ क।
४. पदा०, पृष्ठ ६२।
५. अभि०, ६ क।
६. अभि०, १ क।
७. अभि०, १५ क।
८. नासि०, पृष्ठ १५।
९. अभि०, १२ क।
१०. रानी०, पृष्ठ १।
११. अभि०, ३७ क।

फेसला……हुवा था सो अमल में नहीं लाये[1]

अवधारण के लिए "सो' के साथ बलात्मक नियात 'ही' आने पर 'सोई—मोइ' रूप मिलते हैं।

सोई — सोइ : जो नागरि—है मोई[2]

: सोइ—सिखावना योग्य है[3]

'सो' का प्रयोग सर्वनाम से इतर अव्यय 'इसलिये' के लिये भी प्रचलित मिलता है, यथा,

सो : मरा सर्प—डाल दिया सो मैं अब समझा[4]

: आपकौ षतु आयो अरु चपरासि आये सो हमारे बड़े भाग हैं[5]

विकारी रूप, एकवचन—इसके संप्रदान कारक में 'तिसे' रूप मिलता है। यथा,

तिसे : जिसे पाया तिसे न छोड़ा[6]

परन्तु संप्रदान से अतिरिक्त कारकों में 'तिस' रूप मिलता है। अभिलेखों में एक स्थान पर उच्चारण-भेद से 'तीश' रूप भी मिलता है। कारक-चिह्नों के साथ शब्द के अंतिम स्वर का लोप इनमें भी मिलता है, जिससे 'तिस् में,' 'तिस्का' आदि रूप मिलते हैं, यथा,

तिस—तिस्—तीश : तिसको वस्तै दरबार से[7]

: तिस् में इसने उत्तर दिया[8]

: जब शोक जे आ हुआ तीश के कैक रोज बाद तुम्ह राधा को देखा[9]

आज नित्यता सम्बन्धी और निश्चयवाचक, सर्वनाम भिन्न नहीं रह गये हैं। 'तिसे' का स्थान 'उसे' ने ले लिया है। यहाँ एकवचन में आदरसूचक रूप और बहुवचन के रूप एक समान हैं इसलिए 'तिन' से दोनों अर्थ व्यक्त किये गये हैं, यथा,

तिन : तिनको देख[10]

---

१. अभि०, ७ क।
२. लाल०, पृष्ठ १।
३. उप०, पृष्ठ १।
४. प्रेम०, पृष्ठ ४।
५. अभि०, २ क।
६. प्रेम०, पृष्ठ १९।
७. अभि०, ४८ क।
८. उप०, पृष्ठ १।
९. अभि०, १७ क।
१०. प्रेम०, पृष्ठ ६।

: तिनके स्वामी··········थे[१]

'तिस' रहने पर संबंधकारक में 'के' कारक-चिह्न का अभाव, इस अवधि की खड़ीबोली की पृथक् पहचान बना देता है, यथा,

तिस : तिस पीछे—लेगी[२]

'तिस' का विशेषणवत् प्रयोग निम्नलिखित है, यथा,

: तिस समै——आंधी चली[३]

'इसलिए' अव्यय के स्थान पर इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

तीसै : तीसै या किसा तुम कौ सुनाइी है[४]

: तिससे उसके घर अलक्ष्मी आवेगी[५]

अनिश्चयवाचक सर्वनाम—यह 'कौन' और 'कोई' हैं। यह अनिश्चय के साथ प्रश्नसूचक भी है। इनके रूपांतर निम्नलिखित हैं।

मूलरूप, एकवचन—इसके रूप 'कौन—कोंन – कोन' हैं, यथा,

कौन—कोन : cooh koun hy[६]

: उस्ताद कोन है[७]

मुद्रण की असावधानी से 'कान' भी मिलता है,

कहां से आई कान सी विपत में पड़ी है[८]

विकारी रूप 'किस' के स्थान पर 'कोन' का प्रयोग निम्नलिखित वाक्य में द्रष्टव्य है,

हिंदुस्थान में कोंन काल से प्रतिमाओं के पूजने का प्रारम्भ हुआ[९]

विकारी रूप, एकवचन—कर्म, अपादान, संबंध और अधिकरण कारकों में 'कौन' के रूपांतर 'किस—कीस' हैं। 'कीस' का प्रयोग अभिलेखों में मिलता है,

किस किस् कीस : नोकरी किसके वास्ते करूँगा[१०]

: तारागण का गिर्ना किस्से होता है[११]

: सो कीसका है[१२]

---

१. स्त्री०, पृष्ठ १५।
२. नासि०, पृष्ठ ३०।
३. प्रेम०, पृष्ठ ११।
४. अभि०, ४ क।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०।
६. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
७. रि०, पृष्ठ १।
८. नासि०, पृष्ठ २२।
९. कथा०, पृष्ठ १५।
१०. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २१।
११. पदा०, पृष्ठ १६।
१२. अभि०, ८ क।

'किस' के पश्चात् कारक-चिह्न रहने पर शब्द के अंतिम स्वर के लोप-की विधि इनमें भी मिलती है यथा,

किस्की तरफ का कसुर है[1]

'किस' सर्वनाम विशेषण का कार्य भी कर रहा है, किस रीति से से होता है[2]

अनिश्चयवाचक 'कोई' के रूपान्तर निम्नलिखित हैं,

मूलरूप, एकवचन—इसका सर्वनाम 'कोई' है। वर्तनी-विकल्प से 'कोइी' भी मिलता है। इसका प्रयोग अनिश्चित संख्या और 'लगभग' अर्थ के लिये है। यह अन्य पुरुष का भाव भी बताता है। अज्ञात और अनिश्चित पुरुष के लिए भी इसका प्रयोग मिलता है,

कोई : Ko, ee hy[3]

: मेरवाद को मिटाने को कोई ऐक भी प्रमान न ला सकेगा[4]

(i) 'कोई' का प्रयोग 'कुछ' सर्वनाम के लिए प्रचलित मिलता है। निम्नलिखित वाक्यों में 'कुछ' सर्वनाम अपेक्षित है परन्तु यहाँ 'कोई' का प्रयोग एक से अधिक का भाव बताने के लिए किया गया है। 'कुछ' एकाधिक संख्या का बोधक है, यथा,

उलकापात होने से कोई स्थान में[5]

फेर कोइी—न्ही करणे पावै[6]

(ii) 'कोई' का प्रयोग अव्यय 'कहीं' के अर्थ में भी मिलता है, कोई थोड़ा उसको पा सकता था[7]

(iii) इसका व्यवहार अविकारी विशेषण के रूप में भी मिलता है। सम्बन्धित विशेष्य चाहे जिस कारक में हो 'कोई' का व्यवहार अविकारी रूप में होता है,

कोई पशु—करेगा[8]

कोई कोई भूगोलवेत्ता[9]

---

१. अभि०, १० क।
२. दाय०, पृष्ठ ३।
३. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
४. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५१।
५. पदा०, पृष्ठ १६।
६. अभि०, ११ क।
७. रानी०, पृष्ठ ४।
८. नासि०, पृष्ठ ३२।
९. भू०, पृष्ठ ८।

कारक-चिह्न 'ने' के साथ 'किसी' का प्रयोग निम्नलिखित वाक्य में द्रष्टव्य है।

जिसका भेद किसी ने न पाया[१]

विकारी रूप, एक वचन : विकारी कारकों में 'किसू—कीसु' रूपांतर मिलते हैं। यह 'किसी' के जनपदीय विकल्प कहे जा सकते हैं। इनसे अर्थ में कोई अंतर नहीं आया है, यथा,

किसू—कीसु : न किसू से कुछ लेता है[२]

: जो कीसु का माल जात रहै तो[३]

विशेषण के अर्थ में इनके प्रयोग निम्नलिखित हैं, यथा,

अच्छी जातों के लोग किसी पंथ के होंय[४]

किसू जात में[५]

बहुवचन सर्वनामों के बहुवचन, संज्ञाओं के बहुवचनों से इस बिन्दु पर भिन्न हैं कि संज्ञाओं के बहुवचन रूपात्मक प्रत्ययों से निर्मित होते हैं और सर्वनामों के बहुवचन सर्वनामों के एकवचन के आदेशित रूपों से बनते हैं। इनके साथ बहुवचन बोधक संज्ञा 'लोग' और विशेषण 'सब' लगाकर बहुवचन बनाने तथा शब्दों की पुनरुक्ति कर बहुत्व ज्ञापन की शैली भी मिलती है। इससे बहुवचन को अधिक मुखर और स्पष्ट बनाया गया है। इस बिन्दु से यह संज्ञा शब्दों के बहुवचन की निर्माण-विधि के निकट पहुँच गये हैं। भाषा में एकरूपता की प्रवृत्ति इस समय तक पूर्णतः विकसित हो जाने से बहुवचन और एकवचन के रूप समान होने लगे थे। इसलिए बहुवचन में बहुत्व बोधक शब्दावली का व्यवहार आवश्यक हो गया था। सभी सर्वनामों के बहुवचन निम्नलिखित हैं।

मूलरूप, बहुवचन, उत्तम पुरुष—इसका रूप 'हम' है। यह साहित्यिक और उप-साहित्यिक दोनों स्वरूपों में मिलता है, यथा,

हम : राजा-जितने हम बड़े-बड़े ऋषि हैं[६]

: हम अंगरेज बहादुर के आसरे पर रहे[७]

---

१. रानी०, पृष्ठ १।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३।
३. अभि०, ४ क।
४. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५१।
५. स्त्री०, पृष्ठ २।
६. प्रेम०, पृष्ठ ७।
७. अभि०, ४७ क।

'हम' के साथ अनेकता बोधक 'लोग' शब्द लगाकर बहुत्व का बोध करवाया गया है, यथा

इस वास्ते हम लोग ······तस्कर भेज के[1]

विकारी रूप, बहुवचन, उत्तम पुरुष के कर्म और सम्प्रदान कारकों का सर्वनाम 'हमें' है। इसका विकल्प 'हमैं' है।

हमें हमैं : यह मुझसे कहा, यह सुनके ब्राह्मनी —— कहने लगी कि यह हमें बड़ा पाप भुगतना पड़ा[2]

: हमैं चाहिये[3]

कुछ स्थानों पर निरनुनासिक रूप 'हमें' मिलता है परन्तु, अधिक उदाहरण उपलब्ध न होने के कारण इसे मुद्रण की अशुद्धि मान लेना होगा, यथा,

हमें : शिष्य ! तो तारागण से हमें क्या प्रयोजन है[4]

सम्बन्धकारक का सर्वनाम 'हमारे' है, उदाहरणार्थ,

हमारे : ईश्वर हमारे संग[5]

मूलरूप, बहुवचन, मध्यम पुरुष का सर्वनाम 'तुम' है।

तुम : गाय और बैल को निकट बुला के पूछा कि तुम कौन हो[6]

'तुम' के साथ 'सब' लगाकर बहुत्व प्रकट करने की विधि प्रचलित मिलती है।

तुम सब : our toom fule hugir ruhoo, hum ub,hee phir ate hyn.[7]

विकारी कारकों में मध्यम पुरुष सर्वनाम के रूप नहीं मिलते। निजवाचक सर्वनाम——

विकारी रूप, बहुवचन में 'अपने' सर्वनाम मिलता है, उदाहरणार्थ,

अपने : मूर्ख लोक अपने को बड़ा मानते है[8]

इसका प्रयोग विशेषण के समान भी मिलता है,

---

१. अभि०, ४५ क।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
३. ज्यो०, पृष्ठ ६।
४. पदा०, पृष्ठ ६।
५. धर्म०, पृष्ठ २।
६. प्रेम०, पृष्ठ ३।
७. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३३।
८. हिंदुई०, पृष्ठ १०।

अपने हाथो से बनाया[1]

'अपने' की पुनरुक्ति द्वारा जहाँ बहुत्व भाव प्रकट किया गया है वहीं इससे पृथकता का बोध भी हुआ है,

हर ऐक परब अपने अपने रंग राम ढंग में दुरुस्त है[2]

२. वचन और कारक के अनुसार रूपान्तरित सर्वनाम-—

निश्चयवाचक निकटवर्ती-संकेतवाचक सर्वनाम –

मूलरूप, बहुवचन के रूप 'ये—येह' हैं। 'येह' रूप मसीह गीत रचना में मिलता है, यथा,

ये—येह : ये अक्षर —— हैं[3]

: येह बच्चे सब तुम्हारे दिये हैं[4]

'ये मुकदमें इस तरे से —— रहे[5], जैसे वाक्यों में भी 'ये' संकेत का भाव व्यक्त कर रहा है।

बिकारी कारकों के बहुवचन में सम्प्रदान कारक में 'इन्हें' रूप है, यथा,

इन्हें : इन्हें —- ले जाने की[6]

सम्प्रदान कारक में 'इन' रूप में मिलता है। यहअन्य विकारी कारकों का सर्वनाम भी है। 'इन' के विकल्प 'ईन—इन्ह' हैं। 'इन्ह' के साथ बलात्मक निपात के योग से बना 'इन्हीं' रूप है। इनका प्रयोग विशेषण के समान मिलता है,

इन—ईन—इन्इह—न्हीं : इन में कोन सत्य है[7]

: ईन रूपीओं का दावा[8]

: रोज रोज आप फजल कीजिये इन्ह नष्ट बुद्धियों की[9]

निश्चयबाचक, दूरवर्ती सर्वनाम—

मूलरूप, बहुवचन का सर्वनाम 'व—वे—बे' है। इनका प्रयोग पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में मिलता है,

---

१. नासि०, पृष्ठ ११।
२. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ६।
३. कथा०, पृष्ठ १२।
४. गीते०, पृष्ठ १८१।
५. अभि०, ६ क।
६. कथा०, पृष्ठ १८।
७. भू०, पृष्ठ १३।
८. अभि०, ८ क।
९. कथा०, पृष्ठ ३।

वे—वे—बे : चौदह मनु जनमते हैं, वे धर्म्म को बढ़ाते है[1]

: वे जैसे बड़े न होते[2]

: सोले हज़ार क़ैद से छुटवांई है रानी दिन-रात कहा करती थीं बे कृष्णा कहानी[3]

इनके विशेषणवत् प्रयोग निम्नलिखित हैं,

वे तारे······घूमते हैं[4]

इसमें अनेकता का भाव व्यक्त करने के लिए 'लोग' शब्द का आधार लिया गया है, यथा,

वे लोग ··· भोग करते हैं[5]

इसका एक अन्य रूप 'उन्हो' है। यह सर्वत्र कर्ता कारक के चिह्न 'ने' के साथ मिलता है, यथा,

उन्होंने : ज्योतिषियों का विश्वास ··· नहीं कर सकते कि उन्होने······ अपने मन से ठहराकर[6]

विकारी रूप, बहुवचन—सम्प्रदान कारक में उन्हें—उन्हैं रूप है। एक अन्य रूप 'विन्हें' प्रेमसागर की खड़ीबोली की विशेषता है। यह अन्यत्र नहीं मिलता। यह ब्रजभाषा का रूप भी है। इससे प्रमाण मिलता है कि यह आगरा और उसके आसपास बोली जाने वाली ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली की विशेषता थी जो उसके बाहर विकसित न हो सकी, इसके प्रभाव से लल्लू जी लाल कवि मुक्त नहीं हो सके थे, यथा,

उन्हें—उन्हैं : उन्हें बिन मृत्यु······मार डाले[7]

: जो हिंदू लड़े थे उन्हैं······देवता कहते हैं[8]

विन्हें : बिन्हें देख परीक्षित मन में कहने लगा[9]

शेष कारकों में 'उन—उन्हे—उन्हो' 'बिन', और 'इन्हों' सर्वनाम है। 'बिन' प्रेमसागर से अतिरिक्त नहीं मिलता। इससे पता चलता है कि

---

१. हिं०प०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २६६।
२. ज्यो०, पृष्ठ ६।
३. अश०, पृष्ठ ३८।
४. ज्यो०, पृष्ठ ४।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
६. भार०, पृष्ठ ३।
७. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ३।
८. कथा०, पृष्ठ ११।
९. प्रेम०, पृष्ठ ४।

'विन' का प्रयोग १८०३ ईसवी के पश्चात् समाप्त हो गया। इसके स्थान पर 'उन' रूप सर्वत्र ग्रहण कर लिया गया। उदाहरण,

उन—उन्—उन्ह—उन्हों : उनकी सैर किया चाहिये[1]
: जो ब्राह्मण······हें उन्को प्रायश्चित होता है[2]
: उन्ह की तो क्या चरचा है[3]
: मुद्रा ······हैं ······उन्हों की सहायता से[4]
: उन्होंने······हैं[5]

विन : विन दोनों ने······बिचारा[6]
: वसुदेव देवकी थे ··· आते ही विन के हाथ पांव की बेड़ी काट दी[7]

सर्वनामों के विकारी रूप विशेषण का कार्य भी करते हैं। 'उन और विन' का विशेषणवत् प्रयोग निम्नलिखित है,

उन सबों को बना के[8]

संबंधवाचक सर्वनाम—

विकारी रूप, बहुवचन में 'जिन—जिन्ह' सर्वनाम रूप है। 'जिन' का विशेषण के समान प्रयोग भी मिलता है, परन्तु 'जिन्ह' सर्वत्र सर्वनाम का कार्य करता है।

जिन : जिन मुलकों का नाम··· ··सुनता हूँ[9]

जिन्ह : नदी व् सोता भरपूर होते जिन्ह से सब किसी को पानी मिलता है[10]

एक वचन के सर्वनाम 'जिस' की पुनरावृत्ति द्वारा पृथकता का भाव व्यक्त किया गया है इसमें बहुत्व का भाव भी निहित है, यथा,

जिस जिस—जीस जीस : जिस जिस के विचार में जैसा आया[11]
: जीस जीस नें कांम अछा कीआ है[12]

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
२. दाय०, पृष्ठ ५।
३. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५०।
४. कथा०, पृष्ठ ५।
५. कथा०, पृष्ठ ५।
६. प्रेम०, पृष्ठ २३।
७. प्रेम०, पृष्ठ २६।
८. ज्यो०, पृष्ठ ३।
९. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
१०. पदा०, पृष्ठ २६।
११. भू०, पृष्ठ ३।
१२. अभि०, ८ ब।

नित्य संबंधी सर्वनाम–

इन सर्वनामों के विकारी कारकों के उदाहरण 'प्रेमसागर', 'नासिकेतोपाख्यान' और 'रामचरित्र' तथा अभिलेखों की खड़ीबोली से अतिरिक्त नहीं मिलते। इनका चलन आज भी जनपदीय बोलियों में मिलता है परंतु खड़ीबोली में इनका स्थान 'उन' सर्वनाम ने ले लिया है। यह 'तिन तिन्ह तिन्हें तिन्हों' हैं, यथा,

तिन — तिन्ह — तिन्हों — तिन्हों

: तिन के पीछे ...... आता है[1]

: जो मनुष्य विसे पढ़ते हैं तिन्ह को .....मीलता है[2]

: सब देवता ...... आये हैं ...... तिन्हों में कृष्ण भी औतार लेगा[3]

: नेवतार आये हैं तिन्हों को रुकसत करके[4]

'तिन' के साथ 'सब' का प्रयोग बहुत्व पर बल देने के लिए है, यथा,

अब तिन सबौं के अभाव में[5]

अनिश्चयवाचक सर्वनाम—

इनके बहुवचन 'कौन' और 'कोई' की पुनरावृत्ति से बनाये गये हैं, यथा,

कौन २ विशेष गुण हैं[6]

कोई कोई भूगोलवेत्ता......ठहराते हैं[7]

३. तीसरे वर्ग के सर्वनाम 'क्या' और 'कुछ' हैं। इनके रूप विभिन्न कारकों में अपरिवर्तित रहते हैं। 'क्या' व्यक्ति 'वस्तु' और 'प्रश्न' तीनों अर्थ व्यक्त करता है। विभिन्न प्रकार के भावों के स्थानापन्न रूप में भी 'क्या' कार्य कर रहा है। यथा,

क्या : Ek din ka b,hara kea hy[8]

: तुम यहां क्या खेलते हो[9]

इसका प्रयोग समुच्चय बोधक में व्यक्ति के संदर्भ में मिलता है,

---

१. प्रेम०, पृष्ठ २।

२. राम०, पृष्ठ ५।

३. प्रेम, पृष्ठ १६।

४. अभि०, ४ क।

५. दाय०; पृष्ठ ४३।

६. पदा०, पृष्ठ ४।

७ कथा०, पृष्ठ ८।

८. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।

९. प्रेम०, पृष्ठ ५।

: क्या ईसवी क्या और अच्छी जातों के लोग[१]

: तुम्हारे आगे क्या कोई······है[२]

आश्चर्य, तुलना और वस्तु के सन्दर्भ में इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं,

इसके······ आगे क्या कमल का फूल[३]

और कोई रीझा तो क्या और न रीझा तो क्या[४]

वस्तु, व्यक्ति और भावों की अधिकता के लिए 'क्या' की पुनरुक्ति हुई है,

क्या क्या बयान हो सके[५]

क्या क्या बस्तु है[६]

'कुछ' सर्वनाम वस्तु के एक अंश के लिए प्रयुक्त मिलता है। इसमें अनिश्चयता, परिमाण और सन्देह का अर्थ भी निहित है, यथा,

कुछ : **Vuhan kochh khane peene kee cheege milta hy**[७]

: कुछ उसके बीच में न हो[८]

: तौ भी कुछ न हो सके[९]

: कुछ गोल गोल सा है[१०]

: कुछ भी ··· न उपजी[११]

: कोई कुछ न बोला[१२]

: कुछ ऊपर किसी की तरफ से न था[१३]

जनपदीय प्रभाव से 'कुछु—कीछू' रूप भी मिलते हैं। यथा,

कुछु—कीछू : न तो किसी को कुछ रोग–होऐ[१४]

: कुछ जगा सुभे की नहीं देषी[१५]

: कुछु मदद —— नहीं पाई[१६]

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५१।
२. वाक्या०, पृष्ठ ३।
३. नासि०, पृष्ठ २२।
४. न्यू०, पृष्ठ ६।
५. अश०, पृष्ठ ३८।
६. पदा०, पृष्ठ २।
७. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३३।
८. रानी०, पृष्ठ २।
९. रानी०, पृ० १।
१०. हिं० रो०, पृष्ठ ३९।
११. नासि०, पृष्ठ ३०।
१२. न्यू०, पृष्ठ ५।
१३. अभि०, ६ क।
१४. नासि०, पृष्ठ १२।
१५. अभि०, ६ क।
१६. अभि०, ७ क।

: कीछु रुपैया --- भेजा था[1]

: कुछ रोज तुम्हारे वैष्णव टिके थे[2]

सर्वनामों के एकाकी और पुनरावृत्ति वाले प्रयोगों से अतिरिक्त संयुक्त प्रयोग भी इस समय प्रचलित हो गये थे, यथा,

जो कुछ : करतब जो कुछ है, कर दिखाता हूँ[3]

सारांश रूप से कहा जा सकता है कि आरम्भिक खड़ीबोली में प्राप्त सर्वनाम मुख्य रूप से तीन वर्गों में रखे जा सकते हैं—१. विशुद्ध पुरुषवाचक सर्वनाम २. मिश्रित सर्वनाम और ३. प्रश्नवाचक सर्वनाम। प्रथम दो वर्गों के सर्वनामों में सम्बन्ध कारक से अतिरिक्त अन्य कारकों में पुँल्लिग और स्त्रीलिंग का भेद नहीं मिलता। तीसरे वर्ग के सर्वनाम लिंग-भेद से अप्रभावित रहते हैं। इनके एक से अधिक विकल्प मिलते हैं जिनमें से अधिकांश जनपदीय बोलियों में सुरक्षित हैं, जो आज खड़ीबोली से समाप्त हो चुके हैं परन्तु बोलियों में विशेष रूप से ब्रजभाषा और राजस्थानी आदि में बने हुए हैं। उर्दू का प्रभाव भी कुछ रूपों पर माना जा सकता है। 'मुज', 'म्हाने', 'हमैं', 'हमारै', तैं, तुज, तुमें, तुमारा, हमारो, ईह,—यिहि—ऐहि, या, किसु', तुमारों, 'इन्हों', उन्हों—उन्हौं, बुह, विन, विन्हों—विन्हों, विसे, ऊस, जौं, जेस, सो—सौ, तिस, किसू—कीसु, येह, तिन—तिन्ह, तिन्हौं—तिन्हौं, कुछ न कीछू आदि के प्रयोग खड़ीबोली के प्रारम्भिक स्वरूप की पृथक् पहचान बना देते हैं। उच्चारण भेद से प्रभावित रूप भी कम नहीं हैं। में, हाम, हामरा, हमरा, तूम, इश, इनौने, ईस, वुसे, उस्से, कीस, जीस, तीश विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े अहिन्दी भाषियों में आज भी सुनायी दे जाते हैं। तुक और लय जोड़ने के लिये हमरा, हमरे, तुम, तुमारे रूप खड़ीबोली काव्य में मिलते हैं। विविधताओं से पूर्ण खड़ीबोली के आरम्भिक स्वरूप के अध्ययन से विदित होता है कि खड़ीबोली का विकास जनपदीय बोलियों के बीच से हुआ। एक अर्थ को व्यक्त करने के लिए तीन-तीन चार-चार विकल्प जहाँ एक ओर खड़ीबोली के स्वरूप वैषम्य और अस्थिरता के सूचक हैं वहीं दूसरी ओर उसकी सीमा विस्तार के द्योतक भी हैं। स्पष्ट है कि उसके बोलने वाले विभिन्न प्रदेशों से जुड़े हुए थे। इस अवधि से सर्वनामों में एकवचन और बहुवचन के रूपों में एक समानता आनी

१. अभि०, १६ क।

२. अभि०, २६ क।

३. रानी०, पृष्ठ ३।

आरम्भ हो गयी थी। सम्मानार्थक एकवचन और बहुवचन के रूप समान हो गये हैं। सामान्य अर्थ में बहुवचन के रूप एकवचन में प्रयुक्त हो रहे थे। बहुवचन 'हम' का प्रयोग एक वचन 'में' के स्थान पर होने लगा था। तब बहुवचन के लिए 'लोग' और सब' शब्द पृथक् से जोड़े जाने लगे। कुछ सर्वनामों का प्रयोग विशेषण और अव्ययों के समान भी हो रहा था।

विशेषणवत् प्रयुक्त होने वाले सर्वनाम हमारा, तुम्हारा से अतिरिक्त किसू, विस, वुस, जो, तिस, किसी आदि हैं। अव्यय का कार्य करने वाले सर्वनामों में 'आप' 'जो', 'जीस', 'तिस' आदि हैं। सर्वनामों की संरचनात्मक विशेषता 'इन' 'उन' सर्वनामों में मिलती है। यहाँ कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग होने पर 'इन्ने', 'उन्ने', 'उनौने' रूप तथा अन्य कारकों के जुड़ने पर भी शब्द के अंतिम स्वर के लोप स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं। किस्की, जिस्में, जिस्से, उन्के, उस्से इस अवधि के विशिष्ट-प्रयोग हैं। यह खड़ीबोली के आरम्भिक स्वरूप को वर्तमान से पृथक् कर देते हैं। 'इन' और 'उन' के साथ कारक-चिह्न 'ने' का प्रयोग समाप्त हो चुका है परन्तु महाप्राण—- 'ह्' ध्वनि वाले रूप 'इन्हों', 'उन्हों' के साथ 'ने' कारक-चिह्न वाले रूप शेष रह गये हैं।

विशेषण शब्द

लिंग, वचन और कारकों पर आधारित द्वितीय प्रकार के शब्द, विशेषण हैं। इनका प्रयोग वक्तव्य में अधिक स्पष्टता और पृथकता बताने के लिये किया गया है। आरम्भिक खड़ीबोली के विशेषण शब्द दो वर्गों में रखे जा सकते हैं, एक, जो कोश विषयक अर्थ में विशेषण हैं। इनमें विशेषण का अर्थ प्रधान है। दूसरे, जो वाक्य में विशेषण के समान कार्य करते हैं, इनमें अन्य अर्थ प्रधान है। प्रथम प्रकार के विशेषण अर्थ के आधार पर विशेषण हैं, दूसरे प्रयोग के आधार पर विशेषण बन जाते हैं। इसमें वचन, कारक और पुरुष पर आधारित सर्वनामों के सम्प्रदान कारक से अतिरिक्त सभी रूप विशेषण के समान भी प्रयुक्त हुए हैं। यह अपने निकटतम विशेष्य से अन्वित होने पर विशेषता का भाव व्यक्त करते हैं। इससे अतिरिक्त एकाकी रूप से प्रयुक्त होने पर सर्वनाम का कार्य करते हैं। यहाँ तात्पर्य प्रथम वर्ग के शब्दों से है। यह अर्थ के आधार पर तीन प्रकार के हैं—१. भाववाचक २. गुणवाचक और ३. संख्यावाचक।

खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में दोनों प्रकार के विशेषण समान अनुपात में मिलते हैं। सार्वनामिक विशेषणों की तुलना में सामान्य वर्ग के

विशेषण शब्दों की आवृत्ति अधिक मिलती है। साहित्यिक रचनाओं की भाषा की तुलना में अभिलेखों की भाषा में सामान्य विशेषण संख्या और आवृत्ति दोनों बिन्दुओं पर अधिक नहीं हैं। इनमें सार्वनामिक विशेषण अधिक मिलते हैं।

विशेषण सरल आकृति के हैं। यह अन्त्य के आधार पर दो प्रकार के हैं, एक रूपान्तरशील विशेषण और दूसरे रूपान्तररहित विशेषण या अरूपान्तरित विशेषण। विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुरूप परिवर्तित होने वाले रूपान्तरशील विशेषण हैं और विशेष्य के अनुरूप प्रभावित न होने वाले या अप्रभावित रहने वाले विशेषण रूपान्तररहित विशेषण हैं।

इन दोनों प्रकार के विशेषणों में कुछ अपने ऐतिहासिक स्रोत संस्कृत से जुड़े हैं तो कुछ शब्द फ़ारसी से लिये गये हैं। फ़ारसी की अपेक्षा संस्कृत स्रोत से आये विशेषण शब्द अधिक हैं। यह तत्सम और तद्भव हैं। आरंभिक खड़ीबोली में तत्सम शब्दों के उदाहरण अत्यल्प हैं। सर्व, बहु, नाना, प्राचीन, अल्प, अद्भुत आदि कुछ शब्द संस्कृत के विशेषण हैं। फ़ारसी स्रोत के शब्दों में साफ़, उद्धृत किया जा सकता है। विभिन्न स्रोतों के विशेषणों का प्रयोग लेखकों ने अपनी-अपनी शैली के अनुरूप किया है। इनमें उच्चारण-भेद से विकल्प भी मिलते हैं तथा जनपदीय बोलियों के विशेषण भी आ गये हैं। इससे स्पष्ट होता है कि खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप विशेषण के स्तर पर जनपदीय बोलियों से अछूता न रह सका था। दुजा, च्यार, तीजे, इसी प्रकार के कुछ उदाहरण हैं।

विशेषणों का प्रयोग संज्ञा और क्रियाविशेषणों के समान भी मिलता है। ऐसी स्थिति में इनके रूपांतर संज्ञाओं के समान हैं। विशेषणों के संदर्भ में कुछ अन्य विशेषताएँ भी मिलती हैं। यहाँ संज्ञा, सर्वनाम, क्रियाविशेषण और तात्कालिक और भूतकालिक बहुकार्यात्मक क्रियाएँ कृदंत भी आवश्यक स्थलों पर विशेषण बना ली गयी हैं। इनका अपना मूल अर्थ प्रधान होने के कारण इनका उल्लेख यथास्थान किया जा रहा है। महा, अति आदि प्रत्ययों से निर्मित विशेषणों के उदाहरण संबंधित अध्याय में वर्णित हैं। अन्य उदाहरण निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किये जा सकते हैं।

रूपांतरशील विशेषण—यह आकारांत है। ये गुण, भाव, परिमाण के वाचक हैं। संज्ञा शब्दों के समान इनका विश्लेषण भी लिंग, वचन और कारकों के आधार पर किया जा सकता है। सामान्यतः पुँल्लिग संज्ञाओं के साथ

आकारांत रूप और स्त्रीलिंग संज्ञाओं के साथ ईकारांत रूपों का व्यवहार किया गया है। अर्थात् पुँल्लिग में शब्दांत में '—आ' प्रत्यय और स्त्रीलिंग में '—ई' प्रत्यय मिलता है। एकवचन में कोई प्रत्यय नहीं मिलता। पुँल्लिग आकारांत विशेषण शब्दों में एकवचन में आदरसूचक रूपकों पर '—ए' प्रत्यय है। '—ए' बहुवचन का प्रत्यय भी है। स्त्रीलिंग विशेषण अरूपांतरित रहते हैं। रूपांतरशील विशेषणों में विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के आधार पर नियमितता सर्वत्र नहीं मिलती। इनमें अनियमितताएँ भरी पड़ी हैं। रूपांतरशील विशेषण निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किये जा सकते हैं,

मूलरूप, एकवचन—इसमें भाववाचक, गुणवाचक और परिमाणवाचक विशेषण कोशगत रूप में मिलते हैं। इनमें किसी प्रत्यय का व्यवहार नहीं मिलता। अतः शून्य-संरूप की कल्पना करनी पड़ती है, यथा,

आकारांत विशेषण (i) भाववाचक और गुणवाचक,

दहना : दहना हाथ[1]

सच्चा : सच्चा पुजारी[2]

भाषा में इनके विकल्प भी मिलते हैं। ये भाषा में उच्चारण के अनुरूप वर्तनी रखने के कारण आ गये लगते हैं। यथा,

अछा आच्छा—अच्छा

: संसार में अछा भोग अन्त में मुक्ति[3]

: सब द्रव्यौं से आच्छा द्रव्य होता है[4]

: अच्छा स्मरण है[5]

भाषा में प्राप्त इस प्रकार के विकल्पों से भाषा के क्षेत्र-विस्तार का और उसके विश्रृंखलित सामाजिक स्वरूप का पता चलता है। विकल्प उच्चारण-भेद से आये हैं। इससे प्रकट होता है कि भाषा का लिखित रूप बोलचाल वाले रूप से प्रभावित होता रहता है।

स्त्रीलिंग विशेष्य के विशेषण पुँल्लिग में मिलते हैं। निम्नलिखित वाक्य में 'वात' शब्द स्त्रीलिंग है इसके साथ पुँल्लिग विशेषण का व्यवहार भाषा विश्रृंखलता का सूचक है, यथा,

---

१. रानी०, पृष्ठ २।
२. कथा०, पृष्ठ ३।
३. नासि०, पृष्ठ ४।
४. दाय०, पृष्ठ ६।
५. वाक्या०, पृष्ठ ७।

झुट्टा : सब झुट्टा बात करता है[१]

एकवचन में सम्मान का भाव व्यक्त करने के लिए 'ए' प्रत्यय वाले रूपों का प्रयोग है। यह बहुवचन में भी कार्य करता है, यथा,

बड़े बड़े : जादों नाथ हेंगे बड़े कृष्ण कन्हाई[२]

: बड़े कुंवर पदमसिंध जु देव[३]

छोटे : दीवान काशीनाथ के छोटे पुत्र[४]

इसके विपरीत उदाहरण भी मिलते हैं जहाँ सम्मानार्थक स्थलों पर विशेषण एकवचन में है। अभिलेखों की भाषा में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, यथा,

बड़ा : बड़ा साहेब[५]

(ii) परिमाणवाचक विशेषण

थोड़ा : थोड़ा सा ब्यौरा[६]

सारा : सारा संसार जौं हम पाए[७]

ईकारांत विशेषण, (i) भाववाचक तथा गुणवाचक

अनूठी : un,oot,hee bustoo[८]

चौड़ी : पक्की चुआन चौड़ा खाई[९]

अछी : अछी बात[१०]

इस नियमित व्यवस्था के विपरीत कुछ अपवाद भी मिलते हैं। यहाँ पुँल्लिग विशेषण मे अन्वित पुँल्लिग विशेषण अपेक्षित हैं, यथा,

अनूठी : **Un,oot,hee uchruy dik,ha,e deya**[११]

(ii) परिमाणवाचक विशेषण :—

ठंढी ठंढी : ठंढी ठंढी पवन[१२]

थोड़ी—थोड़ी : थोड़ी दूर[१३]

थोड़ी मुद्रा[१४]

---

१. अभि०, ४२ क।
२. अश०, पृष्ठ ४०।
३. अभि०, २ क।
४. लाल०, परिचय०, पृष्ठ ३।
५. अभि०, ३६ क।
६. स्त्री०, पृष्ठ ८।
७. गीतें०, पृष्ठ २।
८. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६।
९. प्रेम०, पृष्ठ १२४।
१०. राम०, पृष्ठ ३।
११. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६।
१२. प्रेम०, पृष्ठ १०।
१३. भू०, पृष्ठ ५।
१४. कथा०, पृष्ठ ५।

आकारांत रूप और स्त्रीलिंग संज्ञाओं के साथ ईकारांत रूपों का व्यवहार किया गया है। अर्थात् पुँल्लिग में शब्दांत में '—आ' प्रत्यय और स्त्रीलिंग में '—ई' प्रत्यय मिलता है। एकवचन में कोई प्रत्यय नहीं मिलता। पुँल्लिग आकारांत विशेषण शब्दों में एकवचन में आदरसूचक रूपकों पर '—ए' प्रत्यय है। '—ए' बहुवचन का प्रत्यय भी है। स्त्रीलिंग विशेषण अरूपांतरित रहते हैं। रूपांतरशील विशेषणों में विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के आधार पर नियमितता सर्वत्र नहीं मिलती। इनमें अनियमितताएँ भरी पड़ी हैं। रूपांतरशील विशेषण निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किये जा सकते हैं,

मूलरूप, एकवचन—इसमें भाववाचक, गुणवाचक और परिमाणवाचक विशेषण कोशगत रूप में मिलते हैं। इनमें किसी प्रत्यय का व्यवहार नहीं मिलता। अतः शून्य-संरूप की कल्पना करनी पड़ती है, यथा,

आकारांत विशेषण (i) भाववाचक और गुणवाचक,

दहना : दहना हाथ[१]

सच्चा : सच्चा पुजारी[२]

भाषा में इनके विकल्प भी मिलते हैं। ये भाषा में उच्चारण के अनुरूप वर्तनी रखने के कारण आ गये लगते हैं। यथा,

अछा आच्छा—अच्छा

: संसार में अछा भोग अन्त में मुक्ति[३]

: सब द्रव्यों से आच्छा द्रव्य होता है[४]

: अच्छा स्मरण है[५]

भाषा में प्राप्त इस प्रकार के विकल्पों से भाषा के क्षेत्र-विस्तार का और उसके विशृंखलित सामाजिक स्वरूप का पता चलता है। विकल्प उच्चारण-भेद से आये हैं। इससे प्रकट होता है कि भाषा का लिखित रूप बोलचाल वाले रूप से प्रभावित होता रहता है।

स्त्रीलिंग विशेष्य के विशेषण पुँल्लिग में मिलते हैं। निम्नलिखित वाक्य में 'वात' शब्द स्त्रीलिंग है इसके साथ पुँल्लिग विशेषण का व्यवहार भाषा विशृंखलता का सूचक है, यथा,

---

१. रानी०, पृष्ठ २।

२. कथा०, पृष्ठ ३।

३. नासि०, पृष्ठ ४।

४. दाय०, पृष्ठ ६।

५. वाक्या०, पृष्ठ ७।

झुट्टा : सब झुट्टा बात करता है[१]

एकवचन में सम्मान का भाव व्यक्त करने के लिए 'ए' प्रत्यय वाले रूपों का प्रयोग है । यह बहुवचन में भी कार्य करता है, यथा,

बड़े बड़े : जादों नाथ हेंगे बड़े कृष्ण कन्हाई[२]

: बड़े कुंवर पदमसिंध जु देव[३]

छोटे : दीवान काशीनाथ के छोटे पुत्र[४]

इसके विपरीत उदाहरण भी मिलते हैं जहाँ सम्मानार्थक स्थलों पर विशेषण एकवचन में है । अभिलेखों की भाषा में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, यथा,

बड़ा : बड़ा साहेब[५]

(ii) परिमाणवाचक विशेषण

थोड़ा : थोड़ा सा ब्यौरा[६]

सारा : सारा संसार जौं हम पाए[७]

ईकारांत विशेषण, (i) भाववाचक तथा गुणवाचक

अनूठी : **un,oot,hee bustoo**[८]

चौड़ी : पक्की चुआन चौड़ा खाई[९]

अछी : अछी बात[१०]

इस नियमित व्यवस्था के विपरीत कुछ अपवाद भी मिलते हैं । यहाँ पुँल्लिग विशेषण मे अन्वित पुँल्लिग विशेषण अपेक्षित हैं, यथा,

अनूठी : **Un,oot,hee uchruy dik,ha,e deya**[११]

(ii) परिमाणवाचक विशेषण :—

ठंढी ठंढी : ठंढी ठंढी पवन[१२]

थोड़ी—थोड़ी : थोड़ी दूर[१३]

थोड़ी मुद्रा[१४]

---

१. अभि०, ४२ क ।
२. अश०, पृष्ठ ४० ।
३. अभि०, २ क ।
४. लाल०, परिचय०, पृष्ठ ३ ।
५. अभि०, ३६ क ।
६. स्त्री०, पृष्ठ ८ ।
७. गीतें०, पृष्ठ २ ।
८. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६ ।
९. प्रेम०, पृष्ठ १२४ ।
१०. राम०, पृष्ठ ३ ।
११. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६ ।
१२. प्रेम०, पृष्ठ १० ।
१३. भू०, पृष्ठ ५ ।
१४. कथा०, पृष्ठ ५ ।

विकारी रूप, एकवचन—पुँल्लिग आकारांत विशेषण रूपों में '—ए' प्रत्यय मिलता है। परन्तु ईकारांत शब्दों में बाह्य प्रत्यय का अभाव है। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

आकारांत विशेषण (i) भाववाचक तथा गुणावाचक

अच्छे : **Puble uch,hhe punchwale ke ghur**[1]

थोथे : थोथे शिष्टाचार में[2]

ढीले : इस ढीले लड़के को[3]

बड़े—बड़े : बड़े साहब के पास[4]

: बड़े भाई की[5]

विकारी कारकों में उसके अपवाद मिलते हैं। इनमें '—ए' प्रत्यय का व्यवहार नहीं मिलता। इस प्रकार के उदाहरण अभिलेखों में अधिक हैं। ये साहित्यिक स्वरूप में आगे पनप न सके,

बड़ा : बड़ा साहेब का मेहेरवानी[6]

(ii) परिमाणवाचक विशेषण

सारे : सारे शहर को[7]

ईकारांत विशेषण (i) भाववाचक और गुणवाचक विशेषण

ढंडी : ढंडी साँस का टहोका[8]

छोटी : छोटी बस्तु का[9]

(ii) परिमाणवाचक विशेषण

सारी : सारी पृथ्वी का पति[10]

पुँल्लिग विशेष्य के विशेषण स्त्रीलिंग में भी प्रचलित हैं। 'हिन्दुस्तान' संज्ञा पुँल्लिग में स्वीकृत है। अतः पुँल्लिग सारे' अपेक्षित है। यह न होकर स्त्रीलिंग 'सारी' का व्यवहार किया गया है, यथा,

सारी : सारी हिंदुस्तान में[11]

---

१. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
२. लाल० परिचय, पृष्ठ २।
३. वाक्या०, पृष्ठ १२७।
४. अभि०, १६ क।
५. दाय०, पृष्ठ ४५।
६. अभि०, २५ क।
७. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ५।
८. रानी०, पृष्ठ २।
९. पदा०, पृष्ठ ३।
१०. नासि०, पृष्ठ १२।
११. भार०, पृष्ठ ५२।

मूलरूप, बहुवचन—यहाँ पुंल्लिंग भाववाचक, गुणवाचक और परिणाम-वाचक विशेषण '—ए' प्रत्यय से बने हैं। परन्तु स्त्रीलिंग में किसी बाह्य प्रत्यय का अभाव है, यथा,

आकारांत विशेषण (i) भाववाचक और गुणवाचक विशेषण

डहडहे : डहडहे फूल[1]

पूरे : पूरे दिनों लड़का हुआ[2]

(ii) परिमाणवाचक विशेषण

सारे : उसके सारे अजाइब नाम[3]

आकारांत विशेषण के अनन्वित उदाहरण भी स्थान-स्थान पर मिलते हैं, यथा,

थोड़ा : थोड़ा सीपाही······जाय कै[4]

ईकारांत विशेषण (i) भाववाचक और गुणवाचक

छोटी : छोटी पुस्तकें[5]

विकारी रूप, बहुवचन—इनमें भी आकारांत विशेषण '—ए' प्रत्यय से बने हैं और ईकारांत विशेषण प्रत्ययरहित है, यथा,

आकारांत विशेषण (i) भाववाचक और गुणवाचक विशेषण

बड़े : बड़े योतषी[6]

आकारांत विशेषण 'नाना' अविकारी रहकर बहुत्व भाव प्रकट कर रहा है। यह बहुत्व से अतिरिक्त अनिश्चित संख्या काबोधक भी है, यथा,

नाना : नाना देशों की[7]

: नाना शास्त्र पढ़कर[8]

ईकारांत विशेषण (i) परिमाणवाचक विशेषण

सारी : सारी नदियों में[9]

: सारी बातां कूं[10]

रूपांतर रहित विशेषण—इस वर्ग के विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और कारक से अप्रभावित रहते हैं। वाक्य में प्रयुक्त संज्ञाओं के स्त्रीलिंग और

---

१. रानी०, पृष्ठ १७।
२. प्रेम०, पृष्ठ ११।
३. गीते०, पृष्ठ ३८।
४. अभि०, ४५ क।
५. पत्र०, पृष्ठ ५।
६. प्रेम, पृष्ठ ३४।
७. स्त्री०, पृष्ठ १।
८. स्त्री०, पृष्ठ २।
९. रानी०, पृष्ठ १।
१०. अभि०, ८ क।

पुँल्लिग के अनुसार इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। यह अ, इ, ओ और औकारांत है। यह अर्थ के आधार पर गुण,परिमाण और संख्या के बोधक हैं। परिमाणवाचक विशेषण एकवचन में परिमाण बोधक हैं, परन्तु बहुवचन में अनिश्चित संख्या का बोध भी करवाते हैं। यह अकारांत है। संस्कृत का उकारांत 'दयालु' शब्द यहाँ अकारांत है। यथा,

मूलरूप, एकवचन (i) भाववाचक और गुणवाचक

परम : परममित्र नंद जी[१]

ढीढ : ढीढ वैरागी[२]

दयाल : दयाल ईश्वर[३]

अदभुत : अदभुत रीत[४]

सब : सब षबर[५]

विकारी रूप, एकवचन (i) परिमाणवाचक

अल्प : अल्प स्थान में[६]

तनक : तनक दोष पर[७]

मूलरूप, बहुवचन (i) भाववाचक,

प्राचीन : प्राचीन इतिहास वेत्ताओं[८]

(ii) परिमाणवाचक

अधिक : ud, hik cha, o se[९]

सकल : सकल मनोरथ[१०]

सर्व : सर्व विद्या[११]

बहु : बहु प्रकार[१२]

इनमें भी उच्चारण-भेद से प्रभावित विकल्प मिलते हैं,

सब—सव—सभ : सब समाचार[१३]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ १६।

२. म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ १६४।

३. गीतें०, पृष्ठ ५।

४. पत्र०, पृष्ठ २।

५. अभि०, ४७ क।

६. पदा०, पृष्ठ ४६।

७. प्रेम०, पृष्ठ ५।

८. भार०, पृष्ठ २।

९. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ५।

१०. राम०, पृष्ठ ४।

११. नासि०, पृष्ठ २।

१२. भू०, पृष्ठ २।

१३. प्रेम०, पृष्ठ ३६।

: सव जमीन[१]
: सभ हवाल[२]
बहुत—वोहत—वहत : बहुत हिंदू[३]
: वोहत षागी[४]
: वहत सलाम[५]

विकारी रूप, बहुवचन— इसमें केवल परिमाणवाचक के उदाहरण प्राप्त होते हैं, यथा,

सब—सव : सब लोगों[६]
: सव सूरत[७]

वहुत—बहुत : वहुत जातों का[८]
: बहुत वरस में[९]

संख्यावाचक विशेषण— यह रूपांतरशील और रूपांतररहित दो प्रकार के हैं। रूपांतरशील विशेषणों के अन्तर्गत क्रमवाचक और आवृत्तिवाचक विशेषण हैं। शेष विशेषण रूपांतररहित वर्ग के हैं। रूपांतरशील विशेषण आकारांत है। यह विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार रूपांतरित होते हैं, यथा,

(i) क्रमवाचक संख्या विशेषण - यह पूर्णांक बोधक विशेषणों से निर्मित है। तत्सम शब्द विशेष्य के लिंग, वचन और कारक से प्रभावित नहीं हैं। यह कालवाचक क्रियाविशेषणों के समान प्रयुक्त हुए हैं। 'प्रथम' शब्द इसी प्रकार का है। तद्भव शब्द 'पहिले' भी इसी भाव में प्रयुक्त हुआ है। तद्भव शब्दों में अंत में '—आं', '—ए', और '—वा' प्रत्ययों का प्रयोग है,

प्रथम : प्रथम आकश और पृथ्वी को बनाया[१०]
पहले—पहिले—पेहले—पैले : ईसाई के चार सौ बरस पहले जन्म था[११]
: पहिले तुमकों—पुत्र होगा[१२]

---

१. अभि० १२ क।
२. अभि०, ४ क।
३. हिं० प०, हिं हिंदु०, पृष्ठ २०६।
४. अभि०; १२ क।
५. अभि०, ३४ क।
६. रानी०, पृष्ठ ४।
७. अभि०, ३४ क।
८. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५४।
९. ज्यो०, पृष्ठ ६।
१०. कथा०, पृष्ठ १।
११. भार० पृष्ठ ५१।
१२. नासि०, पृष्ठ ९।

	: पेहले—लीष दीया है[१]
	: पैले की दोस्ति[२]
पहला	: पहला काल[३]
दुजा	: दुजा साहेब[४]
दूसरे—दुसरे	: दूसरे रोज[५]
	: दुसरे फेसले में[६]
तीसरे—तीजे	: तीसरे पहर[७]
	: तीजे दिन[८]
नवा	: नवा महीना[९]

(ii) आवृत्तिवाचक संख्या विशेषण—निम्नलिखित विशेषण शब्द भी '—आ' प्रत्यय पर आधारित है,

दूना : उनके माता को दूना है[१०]
गुन—गुना : रंडी की बुद्धि चार गुन आ—है[११]
: व्यवसाय में छे गुन—है[१२]

रूपांतरितरहित विशेषण—ये गणनावाचक विशेषण हैं। ये पूर्ण संख्या, अपूर्ण संख्या और आवृत्ति के वाचक हैं। 'येक—ईक, 'च्यार' जनपदीय उदाहरण हैं,

ऐक—एक—य़ेक—ईक : ऐक औरत[१३]
: एक बुद्धिमान[१४]
: य़ेक चपरासी[१५]
: = ईक ठौर[१६]

---

१. अभि, १२ क।
२. अभि०, २७ क।
३. कथा०, पृष्ठ २।
४. अभि०, १२ क।
५. अभि०, ३ ख।
६. अभि०, ६ क।
७. अभि०, ११ क।
८. अभि०, १२ क।
९. नासि०, पृष्ठ २०।
१०. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५३।
११. स्त्री०, पृष्ठ ३।
१२. स्त्री०, पृष्ठ ३।
१३. हिं० रो०, पृष्ठ १५।
१४. उप०, पृष्ठ १।
१५. अभि०, ३ क।
१६. अभि०, २५ क।

द्वि : द्वि केशर[१]

च्यार : च्यार सकस[२]

कहीं-कहीं संख्यासूचक शब्द न लिखकर मात्र संख्या लिखकर काम चलाया गया है, यथा, '१ षत'।[३] इसी प्रकार अन्य संख्याओं के उदाहरण भी उद्धृत किये जा सकते हैं। एक सौ से ऊपर की संख्याओं के सूचक शब्द निम्नलिखित हैं,

सोलै हज़ार—रानी[४]

तीन सौ साठ अंश के[५]

पूर्ण संख्यासूचक शब्द 'तीन' क्रमवाचक भी है, यथा 'तिन पहर है'।[६] इस प्रकार के उदाहरण खड़ीबोली की आरम्भिक विशेषता है। पूर्ण संख्या-सूचक शब्दों के युग्मों के द्वारा अनिश्चयता का भाव बताया गया है, यथा,

तीन चार सौ : आदमी तीन सै च्यार सै के करीब[७]

सात आठ : सात आठ साहेब लोक[८]

पूर्ण संख्यासूचक शब्दों की आवृत्ति से पृथकता का अर्थ व्यक्त किया गया है, यथा,

दोय दोय : दोय दोय पंच[९]

अनिश्चित संख्या के लिये '—ओं', '—अन', '—आं' प्रत्ययों का प्रयोग है, यथा सैकड़ों—सेकड़ों—सेंकरन : सैकड़ों बरस[१०]

: सेकडो बड़ी तोपे[११]

: सेंकरन सूर्य की ज्योति[१२]

लाखों—लाखां—लाषहो : लाखों रुपैये[१३]

: सितारे लाखां मौजूद हैं[१४]

---

१. पदा०, पृष्ठ ६०।
२. अभि०, ७ क।
३. अभि०, २६ क।
४. अश०, पृष्ठ ३८।
५. भू०, पृष्ठ ६।
६. अभि०, २५ क।
७. अभि०, ११ क।
८. अभि०, ४७ क।
९. अभि०, ७ क।
१०. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५४।
११. पत्र०, पृष्ठ ४।
१२. राम०, पृष्ठ ६।
१३. पत्र०, पृष्ठ ६।
१४. गीतें०, पृष्ठ ३६।

: लाष हौ आलम जूरती है[१]

हजारहां : हजारहां आफरीन उस पर होव[२]

जिन संज्ञाओं से पूर्व संख्यावाचक शब्द हैं वे संज्ञाएँ परवर्ती विशेष्य के विशेषण का कार्य कर रही हैं। यहाँ 'बीघा' विशेषण है,

हजारा बीघा जमीन[३]

पूर्ण संख्यासूचक शब्दों के साथ '—ओ', '—औ', 'उं—ऊँ' प्रत्ययों का योग करके समुदाय का अर्थ लिया गया है,

दोनों—दोनुं—दोनूं : दोनों भाई[४]

: दोनु राज में[५]

: दोनूं राज में[६]

तीनौं : तीनौं लोक[७]

'आठौं', 'सोरहो' शब्द भी इसी प्रकार से निर्मित हुए हैं। अपूर्ण संख्या-बोधक निम्नलिखित शब्द मिलते हैं,

साढ़े साड़ : साढे उनतीस दिन[८]

: साड़े सातबरस[९]

डेढ़ डेढ : ड़ेढ़ बरस[१०]

: डेढ पहर रात[११]

अध : अध बना छपा[१२]

अढ़ाई : अढ़ाई दंड[१३]

समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप विशेषणों के स्तर से भी मिश्रित था। उसमें सेंकरन, ईक, येक, दोय, च्यार, दोनुं आदि विशेषण जनपदीय भाषाओं के प्रभाव से घुल-मिल चुके थे। एक शब्द के कई विकल्प प्रचलित थे।

---

१. अभि०, ४ क।
२. गीते०, पृष्ठ ४०।
३. अभि०, १२ क।
४. प्रेम०, पृष्ठ १३०।
५. अभि०, १२ क।
६. अभि०, ७ क।
७. स्त्री०, पृष्ठ ६।
८. पदा०, पृष्ठ १५।
९. ज्यो०, पृष्ठ ८।
१०. स्त्री०, पृष्ठ १६।
११. अभि०, १७ क।
१२. प्रेम०, पृष्ठ २।
१३. पदा०, पृष्ठ ५०।

कारक चिह्न—विभिन्न प्रकार के कारक संबंधों के प्रकट करने वाले कारक-चिह्न, आरंभिक खड़ीबोली में पूर्णतः विकसित हो चुके थे। यह व्युत्पत्ति और प्रयोग की दृष्टि से, व्याकरणिक प्रत्ययों और संबंध सूचक शब्दों[1] से पर्याप्त भिन्न है। परन्तु, संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के बाद प्रयुक्त होकर उनका संबंध अन्य शब्दों से स्थापित करते हैं, इसलिए इन्हें विशिष्ट प्रकार के संबंध सूचक कहा जा सकता है। कारक-चिह्नों और संबंध सूचकों में अंतर केवल इतना है कि संबंध सूचक वाक्य में स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं और क्रियाविशेषण आदि अन्य व्याकरणिक कोटियों में भी प्रयुक्त होते हैं। कारक-चिह्न की अलग से कोई सत्ता नहीं होती। यह शब्द-विशेष के साथ प्रयुक्त होकर उसका व्याकरणिक संबंध अन्य शब्दों से स्थापित करते हैं। संबंध सूचकों के समान कारक-चिह्न, अन्य समानार्थक शब्दों से स्थानापन्न नहीं किये जा सकते। परन्तु कभी-कभी अन्य व्याकरणिक कोटियों के शब्द संबंध सूचकों के समान अवश्य प्रयुक्त कर लिये जाते हैं।

वाक्य में कारक-चिह्नों का स्थान सामान्य तौर से संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के पश्चात् होता है। परन्तु आरंभिक खड़ीबोली में यह क्रम कहीं-कहीं परिवर्तित हो गया है। ऐसे स्थानों पर संज्ञा और कारक-चिह्न के मध्य कलात्मक नियात 'ही' का प्रयोग हो गया है। विवेच्य खड़ीबोली में सर्वनामों के साथ कारक-चिह्नों का प्रयोग होने पर दो प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। एक, उच्चारण के आग्रह से कारक-चिह्न जुड़ने से पूर्व सर्वनाम के अंतिम स्वर का लोप हो गया है। दूसरे, कारक-चिह्नों का प्रयोग होने पर मूल प्रकृति में किसी प्रकार का भाषा-विकार नहीं आया है। प्रथम विधि का प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन लेखकों की भाषा तक चलता रहा है। आज इसके स्थान पर द्वितीय विधि प्रचलित हो गयी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि खड़ीबोली का प्रारंभिक लिपिबद्ध स्वरूप उच्चारण पर आधारित था, जिससे भाषा में एक शब्द के अनेक विकल्प भी प्रचलित हो गये, उसका परवर्ती लिखित स्वरूप स्वाभाविकता से दूर हो कृत्रिम होता गया है। आज उच्चरित रूप और लिखित स्वरूप पर्याप्त भिन्न हो गये हैं।

सभी कारक-चिह्नों का प्रयोग एकाकी रूप से है परन्तु आवश्यक स्थलों पर अर्थ स्पष्ट करने के लिये दो कारक-चिह्नों का प्रयोग भी मिलता है। सम्बन्धों में अनेकरूपता स्पष्ट करने के लिए भी ऐसा किया गया है। सभी

---

१. संबंध सूचक शब्द निम्नलिखित हैं, अनुसार०, सामने, पास, नीचे आदि।

कारक-चिह्नों का विकास संस्कृत से खोजा जा सकता है। ये संस्कृत के सम्बन्ध सूचक शब्दों के घिसे हुए रूप हैं। संस्कृत के प्रभाव से संश्लिष्ट विभक्ति सूचक और कुछ विदेशी कारक-चिह्न भी प्रवेश कर गये हैं। जनपदीय बोलियों के कारक-चिह्न भी भरे पड़े हैं। इस प्रकार कारक-चिह्नों के स्तर पर खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप मिश्रित भाषा का सुन्दर उदाहरण है।

सभी कारक-चिह्न आकार और गठन के आधार पर दो प्रकार के हैं। एक, रूपान्तरहित और दूसरे, रूपांतरशील। सम्बन्ध कारक से अतिरिक्त कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण कारकों के चिह्न रूपांतररहित हैं तथा सम्बन्ध कारक के चिह्न रूपांतरशील हैं। प्रथम प्रकार के कारक-चिह्नों में सम्बन्धित संज्ञा के अनुरूप कोई परिवर्तन नहीं होता। परन्तु, दूसरे वर्ग के कारक-चिह्न परवर्ती संज्ञा के लिंग और वचन से प्रभावित होकर रूपांतरित होते हैं। रूपांतररहित कारक-चिह्न, संज्ञा और सर्वनाम का सम्बन्ध अर्थात् अन्वय क्रिया से दिखाते हैं। परन्तु रूपांतरशील कारक-चिह्न क्रिया से संबंधित नहीं होते। यह एक संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध दूसरे संज्ञा या सर्वनाम से स्थापित करते हैं और उसके लिंग-वचन के अनुसार रूपांतरित होते हैं। भेद्य के लिंग और वचन से अन्वित होने के कारण तथा क्रिया से अन्वित न होने के कारण कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने इन्हें कारक-चिह्नों के अन्तर्गत न रख कर विशेषणों की कोटि में रखा है। क्योंकि संज्ञा और सर्वनाम का जो रूप वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध व्यक्त करता है, कारक कहलाता है। यह सम्बन्ध अनेक प्रकार के हो सकते हैं।[1] रूपांतररहित और रूपांतरशील कारक-चिह्न निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किये जा सकते हैं,

रूपांतररहित कारक-चिह्न

(i) ने—नें—नै—नैं—जिन स्थानों पर क्रिया के लिंग और वचन, कर्म के लिंग और वचन से प्रभावित हुए हैं, उन सभी स्थानों पर इन चिह्नों का प्रयोग मिलता है। ये कार्य के साधक के रूप में प्रयुक्त होकर सकर्मक भूतकालिक कृदन्तीय क्रियाओं (बहु प्रकार्यात्मक क्रिया) के साथ कर्तृपरक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इन्हें कर्ता कारक के चिह्न कहा जा सकता है।

---

१. विस्तार के लिए देखें अव्यय प्रकरण।
माथुर, उषा-भारतेंदु की खड़ीबोली की भाषा। विश्लेषण, पृष्ठ १८२-१८३।

'ने' चिह्न साहित्यिक और उपसाहित्यिक दोनों स्वरूपों में मिलता है। 'नें' १८२३ ईसवी के पश्चात् की अनूदित रचनाओं में मिलता है। 'नैं' का प्रयोग १६३२ ईसवी के लगभग लिखी 'दायभग' शीर्षक रचना में तथा 'नैं' और 'नै' पत्रों की खड़ीबोली में प्रचलित मिलते हैं। निरनुनासिक 'नै' ब्रजभाषा से तथा 'नैं' खड़ीबोली के क्षेत्रीय रूप का प्रभाव माना जा सकता है। अनुनासिक 'नें' खड़ीबोली के मानक स्वरूप का कारक-चिह्न नहीं है। इसे भी जनपदीय प्रभाव कहा जा सकता है। परवर्ती खड़ीबोली के मानक रूप में 'ने' शेष रह गया है। इसके विकल्प क्षेत्रीय बोलियों में आज भी मिलते हैं। इनके प्रयोग निम्नलिखित हैं,

ने : एक राजा ने किसी कंगाल ब्रह्मन से पूछा[1]

: तुम्हने सुना है[2]

नें : महाराज नें कहा[3]

: मेवाड के कारबारीयां ने—दसकत कर दीये[4]

नै : वृहस्पति जी नै भी कहा[5]

नैं : मैंनैं—हूकम दीया है[6]

कहीं-कहीं कारक-चिह्न 'ने' का प्रायः लोप कर दिया गया है। इस प्रकार के वैकल्पिक प्रयोग खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप की प्रमुख विशेषता है। अभिलेखों में इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। यथा,

हम—जाऐ के देखा[7]

इस प्रकार के प्रयोग खड़ीबोली की प्रकृति के अनुरूप न होने के कारण आगे विकसित नहीं हो सके और न ही खड़ीबोली के मानक स्वरूप में स्थायी हो सके। आज ग्रामीण अंचलों से आये भाषा-भाषियों की खड़ीबोली में इस प्रकार के वाक्य अक्सर सुने जाते हैं।

'ने' का अकर्मक क्रियाओं के साथ प्रचलन भी मिलता है, यथा,

वुटवल के तरफ रंगनाथ पण्डित जी ने वातचित वन्दोवस्त कर आये[8]

विकल्प से 'न्यै' कहीं-कहीं मिलता है। इसे व्यक्तिगत उच्चारण वैशिष्ट्य कहा जा सकता है, यथा,

---

१. हिं० रो०, पृष्ठ ७।
२. अभि०, ८ क।
३. हिं० रो०, पृष्ठ ३६।
४. अभि०, ६ क।
५. दाय०, पृष्ठ ४४।
६. अभि०, ७ क।
७. अभि०, १७ क।
८. अभि०, २३ क।

दोस्ति कायम रषन्यै का तौर होगा[१]

एक ही प्रयोक्ता के द्वारा 'ने' और 'नै' दोनों के एक संदर्भ में प्रयोग से विदित होता है कि इस समय 'ने' के सभी वैकल्पिक रूप भाषा में समान स्थान बनाये हुए थे, उदाहरणार्थ,

चौवेजी नै कहा[२]

अर चौवेजी ने हमसे या कहा[३]

मुद्रण की असावधानी भी भाषा-विकल्प का कारण बन गयी लगती है, जिससे एक स्थान पर 'ने' के स्थान पर 'न' का प्रयोग मिलता है, उदाहरणार्थ

आगे वुजरगो न कहा है[४]

सर्वनामों के साथ 'ने' और उसके विकल्पों के प्रयोग सर्वनाम प्रकरण में दिये गये हैं।

को—कों—कौ—कौं—कू—कु—कुं तथा तईं—

यह कारक-चिह्न मुख्य रूप से दो कारक संबंधों को प्रकट करते हैं। एक, जहाँ क्रिया के व्यापार का फल, जिस संज्ञा अथवा संज्ञावत् प्रयुक्त होने वाले शब्द पर पड़ता है, उस कर्म कारक के विभिन्न अर्थों में और दूसरे, जहाँ कर्ता अपने कर्म के द्वारा जिससे संबंध स्थापित करता है अथवा व्यापार करता है, उस सम्प्रदान कारक के विभिन्न अर्थों में इन कारक-चिह्नों का प्रयोग मिलता है।

'को—कों—कौं—कूं' और 'तईं' कर्म कारक के अर्थ में साहित्यिक रचनाओं में मिलते हैं। उपसाहित्यिक रचनाओं में 'को—कों—कौ—कौं—कं—कुं का प्रचलन मिलता है। अन्य कारक-चिह्नों की तुलना में 'कों' का प्रयोग अत्यल्प है। 'कौं—कूँ' ब्रजभाषा के प्रभाव से आये हैं। 'कूँ' का प्रयोग आज भी खड़ीबोली के भौगोलिक बोली क्षेत्रों में हो रहा है। यह तत्कालीन उर्दू रचनाओं में और दक्खिनी हिन्दी में भी सक्रिय है। 'कै' राजस्थानी में और 'कौ' कन्नौजी में मिलता है। इससे पता चलता है कि इस कालखण्ड में खड़ीबोली का विस्तार-क्षेत्र ब्रजभाषा के साथ-साथ विस्तार पाता जा रहा था। खड़ीबोली और अन्य क्षेत्रीय बोलियाँ संरचना और शब्द-भण्डार में एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती थीं, परन्तु इन समान तत्त्वों के रहते हुए भी

१. अभि०, २३ क।

२. अभि०, ४ क।

३. अभि०, ४ क।

४. रि०, पृष्ठ ३।

उनके व्याकरण और शब्द भण्डार की निजी विशेषताएँ विकसित होकर दृढ़ होती जा रही थीं जिनके आधार पर उनकी पृथकता पहचानी जाने लगी थी। इस समय इन बोलियों में पर्याप्त साहित्य लिखा जा चुका था और निजी क्षेत्रों में वे बोली जा रही थीं। उनका प्रवेश जन-जन के अन्दर इतने दृढ़ रूप से हो चुका था कि खड़ीबोली में विचार अभिव्यक्त करते समय इन भाषाओं की विशेषताओं को सहज ही छोड़ सकना उनके लिए असंभव-सा हो गया था। इन चिह्नों के प्रयोग निम्नलिखित प्रकार के हैं,

को : Hum ko kinare pur otaro[१]

कों : पण्डितों कों साथ लिये······कहने लगे[२]

: जर्नेल भीमसेन थापा हमकों भी साथ लेकर हजूर को गये[३]

कौ : हमकौ तो जो कछू साहिव कौ हुकम आवै[४]

: अपने भाई कौ व्याह कै लौटे[५]

कौं : मोकौं तो रिझाय ही न सक्यौ[६]

कै : रात कै इन्हो के इलाके का गाव···जलाई गयो[७]

कूं—कु : सदा सै मुझकू सोष तीरंदाजी का रहा[८]

: असकु भी लूट कर भाज गये[९]

कुं : लालबीरजलाल कुं भेजा[१०]

तांई : परंतु वह ऐसा विचारवान था कि अपने शत्रुओं के हाथ न आया और तुरंत उसने अपने तांई स्वतंत्र राजा माना[११]

सम्प्रदान के अर्थ में 'को—कों—कौं' मिलते हैं। साहित्यिक स्वरूप में 'को' और 'कौ' तथा अभिलेखों में 'कों' रूप मिलता है। संप्रदान के अर्थ में इनके अतिरिक्त 'अर्थ', 'लिये' और 'वास्ते' शब्द भी मिलते हैं, यथा,

को : राजा फिर ऐक समैं आखेट को गये[१२]

---

१. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३३।
२. नासि०, पृष्ठ ३।
३. अभि०, २३ क।
४. अभि०, १७ क।
५. अभि०, ४ क।
६. न्यू०, पृष्ठ ६।
७. अभि०, ३ क।
८. रि०, पृ० ५।
९. अभि०, ११ क।
१०. अभि०, ८ क।
११. भार०, पृष्ठ १०९।
१२. प्रेम०, पृष्ठ ४।

: इन्द्र आदि देवता सव भी जाने को ललचाते हैं[१]
: अभ्यास कर्ने को आज्ञा दिई[२]

को : ये वरात कौ गये[३]

कों : दोस्ति कायम रखने कों सर्कार सों आप गये थे[४]

के लिये—लियै : इस अकारथ प्रसन्नता के लिये ऐसा बड़ा अधर्म भरा हो जै जैकार करे[५]
: लड़कियों के पढ़ाने के लियै जो जो चटसाल हूए हैं[६]

के कारण : सो सन्तति के कारण किस से कन्या हम मागे[७]

संप्रदान के अर्थ में 'षायबेकु'[८] जैसे उदाहरण अभिलेखों में मिलते हैं।

'को' का प्रयोग कर्म और संप्रदान कारकों से अतिरिक्त करण कारक और संबंध कारक के अर्थ में भी प्रचलित हो चुका था, यथा,

(i) करण कारक 'से' के अर्थ में—

मैंने छः बेर इसको कह दिया है[९]

(ii) संबंध कारक 'को' के अर्थ में—

जिनके धर्म में ऐसी हिंसा है कि नारी को
मरे स्वामी पर वल देते हैं[१०]
देवकी को आठवां गर्भ रहा[११]

(iii) संबंधकारक 'के' के अर्थ में—

विद्वान एक राजा की सभा में प्राप्त होने से उसकी नम्रता और शिष्टता को द्वारा मनस्थ विद्या के प्रकाश पावने से राजा ने उसको अपने समीप में बैठाया[१२]

(iv) संबंधसूचक 'की ओर' के अर्थ में—

पृथवी निराधार तो है, परंतु नीये को चली जाती[१३]
सब ग्रह····· पूर्ब्व से पच्छन्न को घूमते दिखाई देते हैं[१४]

---

१. नासि०, पृष्ठ १।
२. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
३. अभि०, ४ क।
४. अभि०, २३ क।
५. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५५।
६. स्त्री०, पृष्ठ १६।
७. नासि०, पृष्ठ ८।
८. अभि०, ४१ क।
९. वाक्या०, पृष्ठ ७।
१०. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५४।
११. प्रेम०, पृष्ठ २१।
१२. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
१३. भू०, पृष्ठ ५१।
१४. ज्यो०, पृष्ठ ४०।

इसी प्रकार 'हमारे पास' के अर्थ में 'हमकौ' का प्रयोग भाषा की प्राचीनता का सूचक है, यथा,

परमाना हमकौ आया[१]

सामान्य रूप से कर्म कारक के चिह्न 'को' का व्यवहार व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के साथ होता है। परन्तु आरंभिक खड़ीबोली में निर्जीव वस्तुओं और भाववाचक संज्ञाओं के साथ इसका प्रयोग भरा पड़ा है। सकर्मक क्रियाओं के साथ इस प्रकार के उदाहरण, भाषा की प्रमुख विशेषता हैं,

कुरीति को जानियेगा[२]

नृत्य करते भार को टाला[३]

इसी प्रकार 'तुम अपने पुस्तक को खोलो'[४] 'कल को मैं उस पाठशाला हो जाऊँगा'[५] 'जिस प्रकार से अन्धकार में दीपक शोभा को पावता है तैसे'[६] 'धनी ने ढेर से धन को साथ में लिया'[७] तथा 'एक धनी बड़े भोर को घोड़े पर चढ़के नगर की प्रदक्षिण करता था'[८] जैसे उदाहरण 'वाक्यावली' और 'मनोरंजन इतिहास' जैसी रचनाओं में मिल जाते हैं। कुछ अन्य विशिष्ट उदाहरण निम्नलिखित हैं। यह 'सती होने की रीति हिंदूओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है' शीर्षक निबंध में मिलते हैं,

"क्यूंकि माता की ममता के वंधन छूट जाते हैं
और वुह सुख आस भरा दरस कि जो सुमाता को
अपने प्यारे लड़कों के पालने में नेम धर्म से हैं सो
कुसमें धूंधला हो जाता है सती के धुएँ से और
बुद्धिलोगों की रंडी के जल मरने को नहीं
चाहती इसलिये कि मति ऐसे मरने की रीति
को अज्ञान देगी।"[९]

से—सैं—सैं—सें—सो—शो—सों—सौ, ते, सेती—

यह कारक–चिह्न दो अर्थ प्रकट कर रहे हैं। एक, क्रिया की सिद्धि में सहायक होने वाले या साधक के रूप में प्रयुक्त होने वाली संज्ञाओं और

१. अभि०, ३६ क।
२. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५२।
३. अश०, पृष्ठ ३८, पृष्ठ भाग।
४. वाक्या०, पृष्ठ ५।
५. वाक्या०, पृष्ठ ५।
६. मनो० इति०, पृष्ठ १६।
७. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
८. मनो० इति०, पृष्ठ ४।
९. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५६।

सर्वनामों के साथ करण कारक के अनेक अर्थों में और दूसरे, क्रिया को विभाग की अवधि आदि का बोध करवाने के लिए अर्थात् अपादान कारक के अर्थ में। करण कारक के अर्थ में 'से—सै—सें—सैं—सो—सों—सौ—शो,' 'ते' और 'सेती' मिलते हैं। अपादान कारक के अर्थ में 'से—से—सों—सै' और 'सौ' मिलते हैं। 'सेती' का व्यवहार आज भी हापुड़, मेरठ और गाज़ियाबाद क्षेत्र में हो रहा है। वर्तमान स्वरूप में इसका उपयोग शैली वैशिष्ट्य और चरित्र कौशल मात्र दिखाने के लिए साहित्य में किया जा रहा है। इन चिह्नों से पता चलता है कि खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप इन विविध क्षेत्रों से जुड़े भाषा-भाषियों द्वारा प्रयुक्त भाषाओं से प्रभावित हो रहा था। इनके प्रयोग निम्न-लिखित हैं,

करण कारक के अर्थ में—

से : मेरी बुद्धि से तो यिह रीति प्रसिद्ध सांच ही जानी जाती है[१]

: मेने करनेल साहेब से पुछा[२]

सै : जो जो कायदे हमारे सै सीषे[३]

लेकिन निजर सै देषतै रहो[४]

सैं : मजबूती सैं आय कै रहैंगे[५]

सें : एक ओर सें महादेव पार्वती का सम्वाद[६]

: अंकसर इस तर सें फेसला हुवा करता है[७]

सो : हमको लडकइ सो मोहन साधी मुददइ पाला है[८]

शो : मोहन के कवीला शो भात कपरा वास्ते······हुआ था[९]

सों : सन्तान के लिये पत्नी सों भो करना उचित[१०]

सौ : तब हम इन सौ तलवी करी[११]

ते : इस्से भवबंधन ते मुक्ति······चाहते हैं[१२]

---

१. प्री० ओ० सं०, ५१ पृष्ठ।
२. अभि०, १२ क।
३. रि०, पृष्ठ २।
४. अभि०, १० क।
५. अभि०, २३ क।
६. राम०, पृष्ठ ६।
७. अभि०, ७ क।
८. अभि०, १७ क।
९. अभि०, १७ क।
१०. नासि०, पृष्ठ ६।
११. अभि०, ४ क।
१२. राम०, पृष्ठ ६।

अपादान कारक के अर्थ में—

से : oof kaghiy ke choukee ke neeche se ootha lao[1]

सें : सांभर से लुण की भरनी करके जाये छ[2]

सों : ब्रह्मा सों उत्पन्न भये[3]

सै : बाजू की पड. डी सै आधी चाहीये[4]

सौ : आगे नेपाल सौ जो हुकुम हमकौ आया[5]

'सें' का प्रयोग अधिकरण कारक के लिये मिलता है, परन्तु यह अपवाद है, यथा,

सें : देवतान सें पूज्य होवे[6]

इसका प्रयोग 'करने पर' के अर्थ में एक स्थान पर मिलता है, यथा,

मनुष्य हित कर्नें से अहित जानता उस्का कभी भला नहीं होता[7]

'में—मैं—मो—मों' 'पै—पे—पर'—

क्रिया के व्यापार के आधार की बोधक संज्ञा अथवा संज्ञावत् प्रयुक्त शब्द, अधिकरण कारक में हैं। इसके लिए 'मैं' और 'पर' दो कारक-चिह्न प्रधान रूप से मिलते हैं। परन्तु जनपदीय प्रभाव से 'मैं', 'पै' और 'मो' कारक-चिह्न भी आ गये हैं। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

में—मे : कितने दिनों के बअद राजाने ये अपने दिल में ब्रिचारा[8]
मसुदा के इलाके में है[9]

मै : यों मनुष्य ऋतु समय मै उसके पास जाता[10]

मो—मों : तुम्हारा इजहार कौन हरफ मो लीखा जाऐ[11]
: आपका मंगल कूसल······चाहते हैं जेसमों हमारा दिल वहत षातर जमा है[12]

मौं : आश्विन सुदि ११ रोज ६ मौं लिषि हुई[13]

पर : Ghoree pur geen band, hee hy he nuheen[14]

पे—पै : वसुदेव ले कंस पै गये[15]

१. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३६।
२. अभि०, ८ क।
३. हिं० जा०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २७८।
४. रि०, पृष्ठ ४
५. अभि०, ३६ क।
६ राम०, पृष्ठ ५।
७. मनो० इति०, पृष्ठ ४।
८. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
९. अभि०, १२ क।
१०. नासि०, पृष्ठ ७।
११. अभि०, १७ क।
१२. अभि०, ३४ क।
१३. अभि०, २८ क।
१४. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
१५. प्रेम०, पृष्ठ १७।

: नकस तो आपको हे जीस पे फेर बोहत षातो करी[1]

इनके कुछ विशिष्ट प्रयोग भी प्रचलित मिलते हैं। एक ही लेखक द्वारा एक संदर्भ में दो विकल्पों का प्रयोग भाषागत अस्थिरता का प्रमाण है,

पै—पे : परबत रखा है उंगली पै जौ रूई का गाला[2]

: चरनौं को धोके सिर पे चढ़ाया सभौ ने आब[3]

'में' और 'से' कारक-चिह्नों के संयुक्त प्रयोग अर्थ-विस्तार को स्पष्ट करते हैं, यथा,

में सै : अर पंचो में सै दोय पंचां के—फेसले[4]

कहीं-कहीं 'में' और 'पै—पर' में परस्पर व्यत्यय हो गया है, यथा,

चौराहे में खड़ा करवाकर उसके रखवालों से कहा[5]

'में' का प्रयोग कर्मकारक 'को' के अर्थ में प्रचलित मिलता है, यथा,

अचला सप्तमी माघ सुदी सप्तमी में नदी का पानी और कोई न हिलाने के आगे जो स्नान करे[6]

दोनों ने अवस्था को प्राप्त होके दूर देश में गमन किया[7]

'में' का प्रयोग करण कारक के अर्थ में भी सक्रिय मिलता है, यथा,

जिसमें इसके हाथ से यह बचे[8]

तिसमें बालक व्याकुल होके राजास कहने लगा[9]

सम्बन्धकारक के अर्थ में 'में' का प्रयोग स्थान-स्थान पर साहित्यिक स्वरूप में मिलता है, यथा,

'की' के स्थान पर—

जो तुम मेरे प्रत्युपकार के स्वीकार कर्ने में इच्छा नहीं करते तो मैंने कुछ भी नहीं खुवया[10]

---

१. अभि०, १२ क।
२. अश०, पृष्ठ ३८, पृष्ठ भाग।
३. अश०, पृष्ठ ४०, पृष्ठ भाग।
४. अभि०, ६ क।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।
६. हिं० पु०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २७५।
७. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
८. प्रेम०, पृष्ठ १७।
९. उप०, पृष्ठ ४।
१०. मनो० इति०, पृष्ठ ३।

'का' के स्थान पर--

इससे यह भी पृथ्वी के गोल होने में प्रमाण है[१]

'के' के स्थान पर--

कलिकात्ता राजधानी में इडुकेशन यन्त्र म छापा गया[२]

'के पास' के अर्थ में 'पै' का प्रयोग 'प्रेमसागर' में स्थान-स्थान पर मिलता है, यथा,

पहला पुत्र देवकी के हुआ तब वसुदेव ले कंस पै गये[३]

'तुम' सर्वनाम के साथ 'में' का प्रयोग 'नासिकेतोपाख्यान' आदि प्रारंभिक रचनाओं में मिलता है,

क्या कारण हम जो तुम्मे जन में[४]

इसी प्रकार 'इन दिनों में कुछ उसके तेवर और बेडौल आँखें दिखाई देती है',[५] वाक्य में 'में' का व्यवहार निरर्थक है। एक स्थान पर 'कर रहे' क्रिया के लिए 'में' का व्यवहार द्रष्टव्य है,

सब के सब कलोल में थे[६]

रूपांतरशील कारक-चिह्न—

का—कौ—की—के—कै—कें—यह सम्बन्ध कारक के सूचक हैं,

का—कौ : Palkee ka hookum de[७]

: साहिब कौ परवानी[८]

की : लोहे की करछी[९]

: इनके चलने की घरी साइत[१०]

कै—के—कें : Fuwaree ke ghore ko hayir kuro[११]

: अजमेर कै साहब······की चीटी[१२]

'का', 'की', 'के' में परस्पर व्यत्यय की प्रवृत्ति स्थान-स्थान पर मिलती है।

---

१. भू०, पृष्ठ ३।
२. दाय० शीर्षक, पृष्ठ १।
३. प्रेम०, पृष्ठ १७।
४. नासि०, पृष्ठ ३७।
५. रानी०, पृष्ठ ७।
६. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ८।
७. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३५।
८. अभि०, १ क।
९. अश०, पृष्ठ ३९।
१०. अभि०, ४ क।
११. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
१२. अभि०, ७ क।

'का' के स्थान में—

और पशु पंछी मनुष्य के प्रतिपाल करने का बड़ा धर्म है[१]

: Fule kee d,hyam oofee pur t,hee[२]

'की' के स्थान पर 'का' और 'के'—

क्योंकि वालपने में किसी भाँति कुछ दोष का संभावना नहीं[३]

देवी। मेरे पुत्र के बल देने से राजा की सौ बरस उमर होवे[४]

'के' के स्थान पर 'का' और 'की'—

जो दारोगा का मक़ान के[५]

हिंदू की परवों का वृत्तांत[६]

संबंध कारक के इन चिह्नों का प्रयोग कर्ता, कर्म, करण और अधिकरण कारकों के अर्थ में भी प्रचलित मिलता है, यथा,

कर्ता कारक 'ने' के स्थान पर—

ख्रीष्ट के आपने आश्रित को कहा है निस्तारणे को[७]

कर्मकारक 'को' के स्थान पर—

जो जीव तृन जल खा बन बास करते हैं तिनके मारने से बड़ा अधर्म होता है[८]

बालकों के शिक्षा कर्ना माता पिता को कर्तव्य है[९]

करण कारक 'से' के स्थान पर—

पुत्रहीन के देता वो पितर······सन्तुष्ट नहीं[१०]

अधिकरण कारक 'में' के स्थान पर—

मनुष्य को पृथ्वी की धूल से बनाकर उसकी प्राण प्रतिष्टा की[११]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि कारक-चिह्नों के स्तर पर खड़ीबोली क्षेत्रीय बोलियों के साथ मिश्रित रूप से विकसित हो रही थी। उसमें कारक-चिह्नों का अर्थ दृढ़ नहीं हो सका था। सभी चिह्न अपना क्षेत्र छोड़कर अन्य क्षेत्रों में भी प्रयुक्त हो रहे थे।

———

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
२. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ५।
३. स्त्री०, पृष्ठ २०।
४. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २१।
५. अभि०, १७ क।
६. हिं० जा०, हिंदु०, पृष्ठ २६६।
७. गीते०, पृष्ठ २।
८. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
९. मनो० इति०, पृष्ठ ३७।
१०. नासि०, पृष्ठ ६
११. कथा०, पृष्ठ १।

अनुभाजन—४

क्रिया विश्लेषण

आरंभिक खड़ीबोली के क्रिया रूपों का विश्लेषण क्रिया-प्रकृति, बहु-प्रकार्यात्मक क्रियाएँ (कृदन्त), संयुक्त क्रिया और काल-रचना के आधार पर किया जा सकता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि अन्य शब्दों के समान क्रिया-प्रकृति खड़ीबोली से अतिरिक्त उर्दू और जनपदीय भाषाओं की भी हैं। रिझाना, पहरना, हुकसना, चिताना, धाना, पैठना, बूझना, पठाना, पैठारना आदि ऐसे कुछ उदाहरण हैं। ये प्रकृतियाँ परवर्ती खड़ीबोली के मानक स्वरूप में स्थान न पा सकीं परन्तु खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में इनका प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। खड़ीबोली के विकास को समझने में इन क्रियाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन क्रिया-प्रकृतियों का प्रयोग भाव और अर्थ की सूक्ष्मता व्यक्त करने, उन्हें प्रभावी बनाने और पूर्ण बताने के लिए किया गया है। इससे पता चलता है कि इस समय लेखकों ने अपने भावों और कथन को स्पष्ट करने के लिए भाषा शुद्धता की अपेक्षा विषय स्पष्टीकरण को महत्त्व अधिक दिया। ये उदाहरण खड़ीबोली से समाप्त हो ब्रजभाषा, अवधी, उर्दू आदि में सक्रिय हैं। विभिन्न तकनीकी विषयों के आशय स्पष्ट करते समय इन रूपों का प्रयोग किया गया है। क्रिया-प्रकृतियों की संरचना विभिन्न रूपात्मक प्रत्ययों द्वारा हुई है। कृदन्तों और संयुक्त क्रियाओं की संरचना में क्रिया-प्रकृति (मूल प्रकृति या धातु) तथा काल, वाच्य, अर्थ, पुरुष, लिंग और वचन सूचक प्रत्ययों के आधार पर हुई है। इन्हें रचनात्मक प्रत्यय (Personal suffices) भी कहा जा सकता है। यह प्रत्यय उक्त किन्हीं दो अर्थों को व्यक्त करते हैं।

क्रिया-प्रकृति दो प्रकार की है, एक मुख्य क्रिया-प्रकृति और दूसरी सहायक क्रिया-प्रकृति। मुख्य क्रिया-प्रकृति वाक्य में स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं और स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होती हैं। यह क्रिया वाक्यांश के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाती है। संयुक्त क्रियाओं में यह एक नवीन अर्थ की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। यह अभिधार्थ को व्यक्त करती है और स्वतन्त्र अर्थ रखती है। इस

कोटि के अन्तर्गत अकर्मक, सकर्मक और प्रेरणार्थक क्रियाएँ हैं। यह अनेक हैं। यह मुख्य रूप से क्रिया-प्रकृति√आ√खा,√देख आदि पर आधारित हैं। द्वितीय प्रकार की क्रिया-प्रकृतियाँ सहायक क्रियाएँ हैं, जो कभी तो स्वतंत्र अर्थ में मुख्य क्रिया के समान कार्य करती हैं तो कभी अन्य मुख्य क्रिया (क्रिया के वर्तमानकालिक, भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रिया रूप) कृदन्तीय रूप (तथा क्रियार्थक संज्ञा) के साथ जुड़कर सहायक क्रिया का कार्य करती है। यह व्याकरणिक अर्थ व्यक्त करती है अर्थात् विभिन्न कालों की रचना में सहायक होती है। यह क्रिया-प्रकृति एकाकी और संयुक्त दोनों रूपों में काल-रचना में सहायक होती है। प्रथम प्रकार की क्रिया-प्रकृतियों की तुलना में इनकी संख्या अत्यन्त कम है। यह क्रिया-प्रकृतियाँ मुख्य रूप से चार हैं, जो√होना~√हौना,√रहना,√सकना पर आधारित हैं। क्रिया-प्रकृति√होना~√हौना पर आधारित रूप कहीं तो कर्ता के लिंग और वचन पर निर्भर हैं तो कहीं पुरुष और वचन पर। इनमें लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार प्रत्ययों का योग किया गया है। यहाँ इनके मुख्य क्रियावत् प्रयोग और सहायक क्रियावत् प्रयोग एक साथ उद्धृत हैं। सुविधा को देखते हुए सर्वप्रथम इन सहायक क्रियाओं का विश्लेषण प्रस्तुत है।

वर्तमान निश्चयार्थ काल :—इसमें मूल प्रकृति√होना के रूप, पुरुष और वचन भेदक प्रत्ययों से निर्मित हुए हैं। यह 'हूँ~हुँ', 'हो' और 'है,' हैं। इनका प्रयोग उत्तम पुरुष के सर्वनाम 'मैं' और 'हम' के साथ है। सर्वनामों में जिस प्रकार बहुवचन के रूप एक वचन के लिए प्रयुक्त होते हैं उसी प्रकार इन क्रियाओं के रूप भी रखे गये हैं। अर्थात् बहुवचन के क्रिया रूप सम्मानार्थक एक वचन के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं। इनके प्रयोग निम्नलिखित हैं।

हूँ~हुँ, हैं—यह एकवचन, उत्तम पुरुष की क्रियाएँ हैं। 'हूँ' पुँल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों में मिलता है। 'मैं' सर्वनाम के साथ 'हूँ~हुँ' और 'हम' के साथ 'हैं' का प्रयोग मिलता हैं। 'मैं' सर्वनाम पुँल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों में मिलता है। परंतु 'हम' केवल पुँल्लिग संज्ञाओं का स्थानापन्न है। उल्लेखनीय है कि 'हम' का स्त्रीलिंग में प्रयोग भारतेन्दु काल से आरंभ हुआ। भारतेन्दु कृत 'कर्पूर मंजरी' में इसका स्त्रीलिंग प्रयोग एक स्थान पर बहुवचन में प्राप्त होता है यथा,

विचक्षणा······खफा मत हो अपनी देखो, आप आपही हो, एक अक्षर नहीं जानते तिस पर भी हीरा तौलते हो और हम सब पढ़-लिखकर भी अब तक कपास ही तौलती हैं।[1]

---

१. यहाँ संस्कृत 'धातु' शब्द के लिए 'क्रिया-प्रकृति' शब्द का प्रयोग है।

खड़ीबोली की साहित्यिक रचनाओं में 'हूँ' और अभिलेखों में 'है' मिलता है। स्त्रीलिंग में 'हूँ' के प्रयोग 'प्रेमसागर', 'बैताल-पच्चीसी', 'नासिकेतो-पाख्यान' और 'स्त्रीशिक्षा विधायक' आदि रचनाओं में मिलते हैं। अन्य स्थानों पर स्त्री पात्र या स्त्रीलिंग का सन्दर्भ न होने के कारण स्त्रीलिंग के रूप नहीं मिलते। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

हूँ : यिह भी निश्चय कर जानता हूँ[१]

धरती बोली…मैं भी भागती हूँ[२]

हैं : हम मुषत्यार भेजते हैं[३]

'हूँ' का प्रयोग काव्य-रचना में मिलता है,

अफसोस करता आया हुँ दयाल ईश्वर आपके पास[४]

एक अन्य काव्य रचना 'अशआर मियां नज़ीर के' में 'मिलहैगा' प्रयोग तुक के आग्रह के कारण किया गया प्रतीत होता है। यह वस्तुत: 'मिलेगा' के स्थान पर है, यथा,

ज़र बिन नहीं मिलहैगा आदर किसी मकां[५]

है, हो—हौ—जिस प्रकार एक वचन, मध्यम पुरुष में दो सर्वनाम 'तू' और तुम मिलते हैं उसी प्रकार एक वचन, मध्यम पुरुष में दो क्रियाएँ 'हैं' और 'हो—हौ' मिलती हैं। यह क्रियाएँ वाक्य में 'तू' और 'तुम' सर्वनामों से जुड़ी हैं। 'हौ' रूप राजपूताना एजेन्सी के अभिलेखों में विशेष हैं : अन्यत्र 'है' और 'हो' रूप मिलते हैं।

है : अरे तू कौन है[६]

: काहे रोती है[७]

हो—हौ : तुम—कन्या हो[८]

: तुम क्यों रोते हौ[९]

---

१. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५१।
२. प्रेम०, पृष्ठ ३।
३. अभि०, ३ क।
४. गीतें०, पृष्ठ ५।
५. अश०, पृष्ठ ३६।
६. प्रेम०, पृष्ठ २।
७. अभि०, १७ क।
८. नासि०, पृष्ठ ३६।
९. उप०, पृष्ठ ४।

: झूठी कियी लिषते हौ[१]

'आप' सर्वनाम होने पर क्रिया रूप 'हैं' है। वह सम्मानार्थ सन्दर्भ में मिलता है,

हैं : आप ईश्वर का पुत्र हैं[२]

कहीं-कहीं शैली के भेद से 'आप' सर्वनाम के साथ 'हो—हौ' क्रिया रूप मिलते हैं। परवर्ती खड़ीबोली के मानक स्वरूप से यह प्रयोग समाप्त हो चुके हैं, यथा,

हो : राजा से पूछा कि यहाँ किस कारन आये हो[३]

हौ : आप समीपी सेवकों—हौ[४]

है—है—यह एक वचन, अन्यपुरुष की क्रिया है, यथा,

है : सती होने की रीति=है[५]

: जवाब—नहिं आवता है[६]

यहाँ आदर सूचक स्थलों पर 'है', 'हैंगे' और 'हैं' क्रिया रूप मिलते हैं,

राजा उपजे है अभिमानी[७]

हैंगे क़दीम यार तुम्हारे मदनगुपाल[८]

हमारे बड़े भाग हैं[९]

'हैं' के पश्चात् '—गा' भविष्यत सूचक प्रत्यय का प्रयोग खड़ीबोली की प्राचीनता का सूचक है। इसका प्रयोग कथन की निश्चयात्मकता सूचित करता है। नज़ीर की काव्य भाषा में इसका अनुपात अधिक है। इसे उर्दू का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है, यथा,

हैगा : उन पे पीतांबर हैगा में कमलीर खुंकाली[१०]

होगा : चीन महाराजाओं का जी बहुत षुस हगा यह षबर—देना होगा[११]

'है' का प्रयोग भूतकालिक क्रिया 'थे' के लिये भी है। यह भाषा का अपवाद है, यथा,

---

१ अभि०, १ क।
२. धर्म०, पृष्ठ ६।
३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
४. अभि०, ४० क।
५. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५१।
६. अभि०, २९ क।
७. प्रेम०, पृष्ठ ५।
८. अश०, पृष्ठ ३९।
९. अभि०, २ क।
१०. अश०, पृष्ठ ३९।
११. अभि०, ३४ क।

काम से पीड़ित भऐ निदान ऐक दिन इसी ध्यान में हैं कि उनका बीज पतन हुआ[1]

'हैं' और 'हो' का प्रयोग वर्तमान निश्चयार्थ के बहुवचन में है। बहुवचन में उत्तम पुरुष में 'हैं' मिलता है। यथा,

हैं : मुनि बोले राजा—जितने हम बड़े-बड़े ऋषि हैं पर ज्ञान में शुक से छोटे ही हैं[2]

बहुवचन, मध्यम पुरुष का रूप 'हो' है,

हो : गाय और बैल को भी निकट बुला के पूछा कि तुम कौन—हो[3]

बहुवचन में अन्य पुरुष का क्रिया रूप 'हैं' है। यह पूर्णतः विकसित मिलता है,

हैं : चारों युग जो ब्रह्मा ने बनाऐ हैं[4]

: नजात की बाहें तेरी हैं[5]

इसके विपरीत निरनुनासिक 'है' मुद्रित रचनाओं और हस्तलिखित पत्रों में स्थान-स्थान पर मिलता है। इस संदर्भ में तर्क दिया जा सकता है कि इस समय अनुनासिक चिह्न के प्रति लेखक सतर्क नहीं थे। निम्नलिखित वाक्यों 'सोलह' और 'बौहत' विशेषणों के आधार पर बहुत्व का बोध होता है,

ये सोलह स्वर्णमुद्रा भी तुम्हारी नहीं हैं[6]

डाकु बौहत सुन परते हैं[7]

भूत निश्चयार्थः—क्रिया-प्रकृति 'होना' का उपरूप 'था' 'थी' और 'थे' क्रमशः पुँल्लिग और स्त्रीलिंग एकवचन में भूत निश्चार्थक हैं। 'थे' क्रिया रूप एकवचन में 'हम' सर्वनाम के साथ प्रयुक्त हुआ है। यह एकवचन में आदरार्थक भी है और बहुवचन में बहुत्व बोधक संज्ञाओं से अन्वित होता है। यह पूर्ण-रूप से विकसित प्रवृत्ति है,

एकवचन, उत्तम पुरुष—

थी : मैं ठाकुर की सेवा करती थी[8]

था : पाप में तो मैं था अज्ञान[9] हमनै कहा था[10]

१. नासि०, पृष्ठ १०।
२. प्रेम०, पृष्ठ ६।
३. प्रेम०, पृष्ठ ३।
४. प्रेम०, पृष्ठ ३।
५. गीते०, पृष्ठ १५४।
६. मनो० इति०, पृष्ठ ४।
७. अभि०, ४ क।
८. नासि०, पृष्ठ २४।
६. गीते०, पृष्ठ १।
१०. अभि०, ३ क।

थे : हम—गऐ थे[१]

एक वचन में मध्यम पुरुष के क्रियारूप उपलब्ध नहीं हैं। कुछ स्थानों पर आदरार्थ में 'थे' क्रिया मिलती है,

थे : सर्कार सों आप गये थे [२]

एकवचन, अन्य पुरुष में 'था' और 'थी' क्रियाएँ क्रमशः पुँल्लिग और स्त्रीलिंग की हैं, यथा,

था : शब्द—सुना जाता था[३]

थी : रघीआ—गई थी[४]

'मोहन' भी गआ था[५] और 'Our fule kee d'hyan oofee pur thee'[६]

आदि इनके कुछ अन्य उदाहरण हैं। इनमें लिंग संबंधी अव्यवस्थाएँ मिलती हैं जहाँ पुँल्लिग कर्त्ता के क्रियारूप स्त्रीलिंग हैं। यह निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट होता है 'वात' और 'राहवारी' शब्द स्त्रीलिंग में स्वीकृत हैं, परन्तु यहाँ उनके क्रियारूप पुँल्लिग में रखे गये हैं, यथा,

हमने सलूक का वात डाला था[७]
उस्का वात—लिखने मों आया था[८]
राहवारी—लिया जावै था[९]

इन उदाहरणों से पता चलता है कि खड़ीबोली में नियमित व्यवस्था के मध्य अनियमित व्यवस्था भी चल रही थी। परन्तु वह सक्रिय नहीं थीं।

बहुवचन में उत्तम पुरुष का क्रिया रूप 'थे' है। यथा,

थे : हम नहीं जाते थे[१०]

बहुवचन में मध्यम पुरुष के प्रयोग उपलब्ध नहीं हैं। अन्य पुरुष में 'थे' और 'थी' मिलते हैं।

थे : जितने—नौकर चाकर थे[११]
: वे बीमार थे[१२]

---

१. अभि०, १७ क।
२. अभि०, २३ क।
३. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ५।
४. अभि०, १७ क।
५. अभि०, १७ क।
६. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ५।
७. अभि०, ३० क।
८. अभि०, ३० क।
९. अभि०, २४ क।
१०. अभि०, ३ क।
११. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ५।
१२. अभि०, ३ क।

थे : कुछ रोज तुम्हारे वैष्णव टिके थे[१]

थीं : ठंढी हवाएँ आतियां थीं[२]

: दिन रात कहा करती थीं वे कृष्ण कहांनी[३]

: रंडियां थीं[४]

'थे' और 'थीं' के साथ राजस्थानी के 'छें' क्रिया रूप कुछ स्थानों पर मिलते हैं। अभिलेखों में इसके उदाहरण स्थान-स्थान पर मिलते हैं, यथा,

राहदारी मांगे छें[५]

भविष्य निश्चयार्थ—भविष्य निश्चयार्थ काल के क्रिया रूप क्रिया-प्रकृति√ होना में भविष्यत सूचक प्रत्यय 'ग' के योग से बने हैं। '—ग' प्रथम प्रत्यय और उसके पश्चात् जुड़ने वाले '—आ', '—ई', '—ए' द्वितीय प्रत्यय लिंग और वचन-भेदक हैं।

एकवचन, उत्तम पुरुष के क्रियारूप 'हूँ—हुँ' में '—ग —आ' प्रत्यय लगा कर बनाये गये हैं। सभी रूप पुँल्लिग हैं, यथा,

हूँगा—हुँगा : राजा परीक्षित ने—पूछा—कैसे भवसागर हूँगा पार[६]

: भरोसा मेरे मन में है कि मैं हुँगा खीष्ट के मरण से उद्धार[७]

एकवचन, मध्यम पुरुष के क्रियारूप 'हो' में, प्रत्यय '—ग+आ' द्वारा निर्मित हुए हैं। यह रूप भी पुँल्लिग है, यथा,

होगा : तू—भवसागर पार होगा[८]

मध्यम पुरुष में आदरार्थक स्थलों पर प्रत्यय—'—ग+ए' से निर्मित रूप मिलते हैं, यथा,

ज्ञान पाओगे तब सुखी होगे[९]

और आप भी बहुत षुस होंगे[१०]

मध्यम पुरुष एकवचन में 'व' श्रुति स्वर वाले 'होवेगी' रूप आज लुप्त हो चुके हैं। संभावना की जा सकती है कि इस प्रकार के रूप तत्कालीन उर्दू संरचना शैली से प्रभावित रहे हों। उदाहरण अग्रलिखित हैं—

---

१. अभि०, २६ क।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ८।
३. अश०, पृष्ठ ३८।
४. स्त्री०, पृष्ठ १५।
५. अभि०, ८ क।
६. प्रेम०, पृष्ठ ८।
७. गीते०, पृष्ठ १।
८. प्रेम०, पृष्ठ ६।
९. हिंदुई०, पृष्ठ ११।
१०. अभि०, ३५ क।

ऐ रानी ! तू इसे खा कि अमर होवेंगी[१]

एक वचन, अन्य पुरुष—इसका क्रिया रूप 'होगा' और 'होगी' है। यह मध्यम पुरुष के समान है। स्त्रीलिंग में '—ग+ई' प्रत्यय है। उदाहरणार्थ

जो मेरे पुत्र होगा[२]

कीसी जघा व्योपारी का नुकसान हरज होगा[३]

buftoo...hhogee[४]

तुम्हारी चाकरी—होगी[५]

पहिली आज्ञा राजा की थी—उनके दूसरी भी न होगी[६]

यहाँ भी भविष्यत सूचक प्रत्यय '—गा' से पूर्व '—य' (ये) और '—व' (—वे) श्रुतिवाले वैकल्पिक रूप मिलते हैं। ऐसे सभी रूप खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में बहुलता से मिलते हैं। परवर्ती खड़ीबोली में इनसे श्रुति का लोप होकर केवल 'होगा' रूप शेष रह गया है। यह विशेषता तत्कालीन ब्रजभाषा में भी प्रवेश कर चुकी थी और उर्दू रचनाओं में भी इसके प्रयोग मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ब्रजभाषा खड़ीबोली और उर्दू परस्पर एक-दूसरे के तत्त्व ग्रहण कर विकसित हो रही थीं। इनमें क्रिया स्तर पर समानता विकसित हो चुकी थी। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं,

होयगा : जो कोई उसे खायगा सो अमर होयगा[७]

: गरीबौ का कैसा नीर्वाह होयगा[८]

होयेगा—होवेगा : पुत्र को शिखाने से नीति होवेगा यह नहीं होने से सब मंगल होयेगा विफल[९]

: सो मनजुर होवेंगा[१०]

आदर भाव में 'होयगे' रूप मिलता है,

होयगे : जमादार जहर सिंह—दाषिल होयगे[११]

भविष्य निश्चयार्थ काल के बहुवचन में केवल अन्य पुरुष के उदाहरण मिलते हैं, यथा,

---

१. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
२. प्रेम०, पृष्ठ १७।
३. अभि०, ८ ख।
४. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६।
५. लाल० परिचय, पृष्ठ ३।
६. ज्यो०, पृष्ठ ३३।
७. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
८. अभि०, ४० क।
९. मनो० इति०, पृष्ठ ३७।
१०. अभि०, १२ क।
११. अभि०, ३७ क।

होवेंगे : अक्षांश होवेंगे[१]

: ब्राह्मण लोग तो ऐसे लोभी होंगे[२]

भूत संभावनार्थ काल—यह क्रिया-प्रकृति√होना में '—त' प्रथम प्रत्यय और लिंग, वचन भेदक '—आ—ई, —ए' प्रत्ययों से निर्मित है। विवेच्य खड़ीबोली में केवल अन्य पुरुष के रूप मिलते हैं,

होता : घर घर मंगलचार होता[३]

होती : जो पृथ्वी दर्पण के समान होती और सूर्य—घूमता—रात्रि न होती[४]

इस काल के बहुवचन के उदाहरण अनुपलब्ध हैं।

वर्तमान आज्ञार्थ काल अथवा वर्तमान संभावनार्थक काल—यह क्रिया-प्रकृति√होना के रूपों के समान है। इनके माध्यम से आज्ञा और संभावना के अतिरिक्त अनुनय और विनय का भाव भी प्रकट किया गया है। इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं,

एकवचन, मध्यम पुरुष के क्रियारूप 'हौ—होओ' है।

हौ—होओ : तुम हम कौ रोकते हौ[५]

: तुम नहीं जाते हौ तौ[६]

: महाराज भयभीत मत होओ[७]

एकवचन, अन्य पुरुष—

हो : चोर हो या चंडाल शत्रु हो या पितृघातक[८]

: आपकी प्रसन्नता के समाचार आवें तो परमानंद हो[९]

अन्य पुरुष में 'व' और 'य' श्रुति वाले रूप बहुलता से मिलते हैं। परवर्ती खड़ीबोली में इन रूपों को 'हो' क्रिया ने समाप्त कर दिया है, उदाहरण,

होवे—होवे : सौ बरस की उमर होवे[१०]

: जब फैसला होवे उस वषत—मुनासीब है[११]

: आपको दर्कार हौवे सो लिष भेजना[१२]

१. भू०, पृष्ठ ४४।
२. राम०, पृष्ठ ३।
३. नासि०, पृष्ठ १२।
४. भू०, पृष्ठ ३।
५, अभि०, ३ क।
६. अभि०, ३ क।
७. मनो० इति०, पृष्ठ १७।
८. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
९. पत्र०, पृष्ठ १।
१०. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २१।
११. अभि०, १२ क।
१२. अभि०, ३७ क।

होय—होय्—होय् : मेरे पाप की माफ़ जो पाय दौलत बिन वो आनन्द होय[1]

: सिद्ध न होय् तो केवल परिश्रम ही रह जाता है[2]

: फेर कीला नीचे होय्[3]

: तुमको कर देनो होय तो भले आदमी भेजो[4]

'य' और 'व' श्रुति वाले रूपों से अतिरिक्त स्वर युक्त रूप 'होऐ' मिलता है। यथा,

होऐ : जिससे लोक में हसी होऐ[5]

: वो यह जज्ञशाला न अशुद्ध होऐ[6]

वर्तमान आज्ञार्थ क्रियाओं के बहुवचन में केवल अन्य पुरुष के रूप मिलते हैं। इनमें विशुद्ध स्वर के स्थान पर अनुनासिक स्वर मिलता है। 'य' और 'व' श्रुति युक्त रूप 'होंय—होवें' है। यथा,

होंय : क्या ईसवी क्या और अच्छी जातों के लोग किसी पंथ के होंय जाना जाता है[7]

होवें : जो ज्योतिष में धर्म की बात और कथा वार्ता लिखी होवें तो[8]

खड़ीबोली के परवर्ती स्वरूप में क्रिया रूपों में 'य' और 'व' ध्वनियाँ समाप्त कर अपनी क्रिया-रचना पद्धति सीमित कर ली है। क्रिया-प्रकृति √होना पर आधारित उपप्रकारों से अतिरिक्त भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रिया (कृदन्त) के समान प्रयुक्त होने वाली क्रियाएँ भी मिलती हैं। यह वाक्य में सहायक क्रिया, मुख्य क्रिया और बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं के समान प्रयुक्त हुई है तथा लिंग और वचन-भेदक प्रत्यय '—आ, —ई, —ए' से युक्त है। प्रत्यय होने पर क्रिया-प्रकृति का अंतिम '—ओ' स्वर कहीं तो ह्रस्व स्वर 'उ' में परिवर्तित हो गया है कहीं आधार दीर्घ 'ऊ' हो गया है। 'बैताल-पच्चीसी', 'नासिकेतोपाख्यान' और 'स्त्रीशिक्षा विधायक' रचनाओं में ऐसे उदाहरण स्थान-स्थान पर मिलते हैं,

१. गीते०, पृष्ठ २।
२. स्त्री०, पृष्ठ १३।
३. अभि०, १२ क।
४. अभि०, ४० क।
५. नासि०, पृष्ठ २०।
६. नासि०, पृष्ठ २६।
७. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५१।
८. भू०, पृष्ठ ८५।

एकवचन —

हूआ : शंक नाम राजा हुआ[1]

: बहुत घूस हुआ[2]

हुई—हूई : मेरी ऐसी कुमति हुई[3]

: पाठशाला—हूई[4]

: पंचायत हुई[5]

पुँल्लिग क्रियाओं के एकवचन में विशुद्ध स्वर के स्थान पर 'य' और 'व' श्रुति ध्वनि वाले रूप भी मिलते हैं। यह रूप पत्रों की भाषा में विशेष हैं। परवर्ती खड़ीबोली में 'आ' स्वर वाले उपर्युक्त रूप शेष रह गये हैं। उदाहरण,

हुवा—हुवा : हमारा अमल दषल हुवा[6]

: सो सवीस्तर—मालुम हुवा[7]

: धीरजसिंघ से मालूम हुवा[8]

हूया : साहसाहब—सलामत अप्रंच मालुम हूया[9]

एक वचन में स्त्रीलिंग क्रिया 'हुई' के साथ ब्रजभाषा का 'भई' समानान्तर रूप से प्रयुक्त हो रहा था। 'प्रेमसागर' तथा अन्य रचनाओं में स्थान-स्थान पर इसके प्रयोग से पता चलता है कि ब्रजभाषा की सीमा पश्चिम से लेकर पूर्व तक फैली हुई थी। ब्रजभाषा पूर्व में बंगाल तक प्रभावी थी। खड़ीबोली का प्रयोक्ता 'भई' का प्रयोग धड़ल्ले से कर रहा था। विदेशी अनुवादकों को भाषा में 'हुई' और 'भई' दोनों रूप प्रचलित मिले। अतः उन्होंने हिन्दी में अनुवाद करते समय दोनों रूपों का प्रयोग, भाषा की सामान्य व्यवस्था के अनुरूप किया। इस क्षेत्र में गिलक्राइस्ट, एम० टी० एडम और विलियम प्राइस के नाम उल्लेखनीय हैं। एक प्रकार से ये रूप खड़ीबोली के अन्य वैकल्पिक रूप कहे जा सकते हैं। समयान्तर से 'हुई' आदि रूपों ने इन वैकल्पिक रूपों को क्षेत्र से हटा कर अपना दृढ़ स्थान बना लिया है। कुछ उदाहरण अग्रलिखित हैं,

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
२. अभि०, २४ क।
३. प्रेम०, पृष्ठ ४।
४. राम०, पृष्ठ १।
५. अभि०, ९ क।
६. अभि०, ३७ क।
७. अभि०, ४० क।
८. अभि०, १ क।
९. अभि०, ८ क।

भई : Ek choohee b, hu,ee[१]

: राजा की इच्छा भई[२]

: वृद्धि भई है[३]

अभिलेखों में स्त्रीलिंग क्रिया रूप नहीं मिलते। इनमें पुँल्लिग क्रिया 'भया' का व्यवहार कई स्थानों पर मिलता है। यथा,

भया : और उसका सब अह्वात मालूम भया[४]

आदर और सम्मान का भाव 'हुए—हुअे' क्रिया से प्रकट किया गया है। यह बहुवचन में भी कार्य कर रहा है,

एक साहिब मुकर्रर हुए[५]

श्री से भरे हुअे ऐसे जो जगंनाथ स्वामी[६]

बहुवचन में उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष के उदाहरण अनुपलब्ध हैं। अन्य पुरुष के रूप निम्नलिखित हैं—

हुए—हुऐ—हुये : लड़के लड़की उत्पन्न हुए[७]

: जितने मुनि थे……उठ खड़े हुऐ[८]

: हमारा तुमारा जवाब होते छ महना हुये[९]

हुईं : छोटी छोटी लटूरियाँ बिखरी हुईं[१०]

बहुवचन क्रियाओं के स्थान पर एकवचन का प्रयोग भाषा का अपवाद है। यहाँ 'हुए' के स्थान पर 'हुया' इसी प्रकार का प्रयोग है, यथा,

दोये दीनै हुया सो बंद है[११]

'हुए' के समानान्तर प्रतिरूप 'भऐ—भये' अतीत बोध के लिए अनूदित रचनाओं में मिलते हैं। 'प्रेमसागर' और 'नासिकेतोपाख्यान' में इनका प्रयोग बहुलता से किया गया है। १८२० ईसवी के पश्चात् अनूदित रचनाओं में भी इसका प्रभाव मिलता है। अनूदित रचना 'कथासार' और 'दायभाग' में इसका प्रयोग भाषा की प्रकृति के रूप में मिलता है। विदित है कि 'प्रेमसागर',

१. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६।

२. उप०, पृष्ठ ३।

३. स्त्री०, पृष्ठ २।

४. अभि०, ३५ क।

५. लाल० परिचय, पृष्ठ ३।

६. अभि०, ३६ क।

७. कला०, पृष्ठ २।

८. प्रेम०, पृष्ठ ६।

९. अभि०, ३८ क।

१०. प्रेम०, पृष्ठ ३६।

११. अभि०, ४६ क।

'कथासार' और 'दायभाग' के रचयिता तीनों ब्रजभाषा क्षेत्र आगरा से जुड़े रह चुके थे, और 'नासिकेतोपाख्यान' के रचनाकार का क्षेत्र पूर्व प्रदेश था। स्पष्ट है कि पश्चिम से लेकर पूर्वी क्षेत्रों में खड़ीबोली का ब्रजमिश्रित स्वरूप व्यवहृत हो रहा था। इनके वाक्य-प्रयोग निम्नलिखित हैं,

उद्दालक मुनि भऐ[१]
फिर भी जयवंत भये[२]
कोई वस्तु मोल लीनी भई[३]

क्रिया-प्रकृति√होना पर आधारित क्रियाओं के समान दूसरे प्रकार की सहायक क्रियाएँ क्रिया-प्रकृति√रहना पर आधारित हैं। इसके विभिन्न कालों में मिलने वाले रूपांतर निम्नलिखित हैं,

अपूर्ण वर्तमान काल—

रहुँ : मैं······रहुं[४]
रहे : जो कीसु का माल जात रहे तो[५]

भूतकाल के अर्थ में 'रहै∽रहे' रूप हैं। 'रहैं' जनपदीय उच्चारण से प्रभावित है, उदाहरण,

रहै∽रहे : हमारे घर मैं कारंदा रहै[६]
: साहेब राजी रहे[७]

भविष्यतकाल के क्रिया रूप 'रहे' में '—ग+आ, —ई, —ए', प्रत्ययों से निर्मित हैं, यथा,

रहेगा : जिसका धर्म रहेगा[८]
: जबतक दुनया़ रहेगा[९]
रहेंगी : जीमेंवा़री······रहेंगी[१०]
रहेंगे : जर्नेल भीमसेनथापा···रहेंगे[११]

आज्ञार्थक क्रिया रूप क्रिया-प्रकृति√ रहना के साथ '—औ' के योग से निर्मित हुए हैं, उदाहरण,

रहोगे : हमारे ताह······मेहरवा़नगी करते रहोगे[१२]

---

१. नासि०, पृष्ठ ४।
२. कथा०, पृष्ठ २०६।
३. दाय०, पृष्ठ ३।
४. गीते०, पृष्ठ ८।
५. अभि०, ४ क।
६. अभि०, ४ क।
७. अभि०, १२ क।
८. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ६।
९ अभि०, ३५ क।
१०. अभि०, ८ क।
११. अभि०, २३ क।
१२. अभि०, ३७ क।

: तुम···देषते रहो[1]

क्रिया-प्रकृति√जाना और√सकता से भी इसी प्रकार के रूप निर्मित हुए हैं। इनकी चर्चा बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं (कृदन्त) और संयुक्त क्रियाओं के अन्तर्गत है। उल्लेखनीय है कि क्रिया-प्रकृति√होना√हौना के रूपांतरों को निम्नलिखित विधि से भी विश्लेषित किया जा सकता है,

१.—√होना के साथ भूतकालिक रचनात्मक प्रत्यय '—आ, —ई, —ए' का योग होने पर क्रिया प्रकृति का 'हु' रूपांतर हो जाता है, परन्तु अन्य सभी स्थानों पर 'हो' यथावत् रहता है। क्रिया-प्रकृति के आकार में कोई ध्वन्यात्मक परिवर्तन नहीं होता।

२.—√होना की दो कोटियाँ और बनाई जा सकती हैं, जिन्हें अधूरी क्रिया कहा जा सकता है। यथा,

(i) 'ह' जिसके केवल वर्तमानकालिक पुरुष और वचन रूप मिलते हैं।

(ii) 'थ' जिसके केवल भूतकालिक लिंग और वचन भेदक रूप मिलते हैं। 'थ' को क्रिया-प्रकृति√होना का ध्वनि प्रतिबंधित रूप भी कहा जा सकता है।

प्रेरणार्थक क्रियाएँ—मुख्य क्रिया-प्रकृति का प्रधान भेद प्रेरणार्थक क्रियाएँ हैं। इसके दो वर्ग हैं। एक प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया और दूसरे द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाएँ, प्रथम प्रेरणार्थक कियाएँ-क्रिया-प्रकृति में '—आ, —व, —ला' प्रत्ययों से निर्मित हैं और द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाएँ '—वा' प्रत्यय से निर्मित हैं। इस प्रकार आरंभिक खड़ीबोली में चार प्रकार के प्रेरणार्थक प्रत्यय मिलते हैं। 'ला' प्रत्यय से निर्मित क्रिया रूप साहित्यिक स्वरूप में और '—व' प्रत्यय से निर्मित क्रिया रूप उपसाहित्यिक खड़ीबोली में सक्रिय है।

प्रेरणार्थक क्रियाएँ सकर्मक क्रिया-प्रकृतियों (धातुओं) से निर्मित हैं परन्तु सभी सकर्मक क्रिया-प्रकृतियाँ प्रेरणार्थक क्रियाएँ नहीं बनातीं। कुछ अकर्मक क्रिया-प्रकृतियाँ '—आ' प्रत्यय से निर्मित हैं। √जाना√होना और√पाना से प्रेरणार्थक क्रियाएँ नहीं बनतीं। सभी प्रेरणार्थक क्रियाएँ निम्नलिखित हैं,

(i) प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाएँ '—आ' प्रत्यय से निर्मित हैं,

मिटाना : मेरवाद को मिटाने को कोई ऐक भी प्रभान न ला सकेगा[2]

---

१. अभि०, १० क।   २. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५१।

ढलकाना : नयनों से आँसू ढलकाती······कहने लगी[1]

रिझाना : अपने ठाकुर को रिझाता हूँ[2]

प्रथम प्रेरणार्थक क्रियाओं में '—आ' प्रत्यय होने पर क्रिया-प्रकृति का '—ए' स्वर कहीं तो ह्रस्व 'इ' में परिवर्तित हो गया है तो कहीं क्रिया-प्रकृति में कोई विकार नहीं हुआ है। ध्वनि-विकार की यह प्रवृत्ति परवर्ती खड़ीबोली में सुरक्षित चलती आ रही है।

बेठाया—बिठाया : आसन दे बेठाया[3]

: चौकी पै बिठाया[4]

दिखाए—देखाई : जसोदा को दिखाए[5]

: किस समय देखाई दिया[6]

'—आ—' प्रत्यय के साथ '—व—' प्रत्यय विकल्प से मिलता है। यह भाषा की प्राचीनता का द्योतक है। ऐसे रूप 'प्रेमसागर' और 'रामचरित' और पत्रों की भाषा में विशेष हैं। यथा,

बरसावने : देवता······फूल बरसावने लगे[7]

ठहरावने : ईश्वर ठहरावने के लिए[8]

वढ़ावने : इन्होने तक़ार बढ़ावने का उपाय किया[9]

इसी प्रकार '—गावता', 'लगावते', 'कहावता', बहावता' और 'सिखावना' आदि क्रियाएँ भी हैं।

(ii) प्रथम प्रेरणार्थक प्रत्यय '—ला—' का प्रयोग खड़ीबोली के साहित्यिक स्वरूप में मिलता है। पत्रों की व्यावहारिक बोलचाल की भाषा में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती। यह साहित्य में स्थिर हो चुकी थी। इससे प्रमाण मिलता है कि इस स्तर पर भाषा का साहित्यिक स्वरूप और बोलचाल का स्वरूप दोनों पृथक् होने लगे थे,

दिखलाऐ : गोप ग्वालों को अपने बागे दिखलाऐ[10]

दिखलाते : तारे······दिखलाते हैं[11]

---

१. नासि०, पृष्ठ २१।
२. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ १९९।
३. नासि०, पृष्ठ ३४।
४. अश०, पृष्ठ १।
५. अश०, पृष्ठ ३८।
६. धर्म०, पृष्ठ ३।
७. प्रेम०, पृष्ठ २२।
८. राम०, पृष्ठ ३।
९. अभि०, २३ क।
१०. प्रेम०, पृष्ठ १३१।
११. ज्यो०, पृष्ठ १।

द्वितीय प्रेरणार्थक क्रियाएँ…'—वा—' प्रत्यय से निर्मित हैं, यथा,

धुलवाकर : उस फल को धुलवाकर खाया[१]

पठवाये : भले मानस पठवाये[२]

भेजवाय : देस का चीज…भेजवाय दोहिगे[३]

दिलवाने : काम ढिलवाने का……फाईदा……नहिं[४]

'सुनवता', 'छुटवांई', बुनवाते, बनवाये, आदि अन्य क्रियाएँ भी इसी सरणि में विश्लेषित की जा सकती हैं। इनके विपरीत कुछ क्रियाओं में 'वा' प्रत्यय अपेक्षित हैं, परन्तु इसका प्रयोग नहीं हुआ है। इस प्रकार के प्रत्यय रहित रूप पूर्वी बोलियों यथा, भोजपुरी आदि के प्रभाव से आये हैं, उदाहरण,

बंधाए : हाथ बंधाए उन्हों के काम[५]

नाम क्रिया-प्रकृति (नाम धातु) :—

संज्ञा शब्दों के अंत में क्रिया-बोधक प्रत्ययों के योग से निर्मित क्रिया-प्रकृति, नाम क्रिया-प्रकृति है। खड़ीबोली के आरंभिक साहित्यिक स्वरूप में नाम-क्रिया-प्रकृतियाँ मिलती हैं। परन्तु पत्रों की भाषा में इनका प्रचलन नहीं मिलता। स्पष्ट है कि इस स्तर पर दोनों स्वरूपों में भेद प्रारंभ हो गया था। नाम-क्रिया-प्रकृतियाँ पश्चिम से लेकर पूर्वी क्षेत्रों तक साहित्य की भाषा में प्रयुक्त हो रही थीं। पूर्वी हिन्दी से प्रभावित 'नासिकेतोपाख्यान' और 'राम-चरित्र' और पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा) से प्रभावित (प्रेमसागर) में इनका व्यवहार बहुलता से हुआ है। 'जन्म लेना' और 'जन्म होना' के लिए 'जन्मा', 'जन्माया', 'जन्मते', 'जन्मावेगी' आदि तीन-चार नाम क्रिया-प्रकृतियाँ प्रचलित मिलती हैं। '—आ-', '—त—', '—आया—' और '—आव—' प्रत्ययों से क्रिया से संज्ञा और विशेषण बनाने की विधि खड़ीबोली की रचना शक्ति और उसकी प्राचीनता की द्योतक है। ये जनपदीय प्रयोग खड़ीबोली में तो नहीं परन्तु, बोलियों में सुरक्षित मिलते हैं। शिष्ट और मानक खड़ीबोली में केवल '—आया' प्रत्यय शेष रह गया है। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

जनमें⌣जन्मे⌣जन्मा : सो क्या कारण हम जो तुम्में जनमें[६]

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३।
२. अभि०, १ क।
३. अभि०, ३७ क।
४. अभि०, ३० क।
५. अश०, पृष्ठ ३८।
६. नासि०, पृष्ठ ३६।

	: सो पुत्र······दुख देन के लिए जन्में हैं[१]
	: सुलिमान जन्मा[२]
जन्माया	: जिस्ने तुम्को इस जगत में जन्माया[३]
जन्मते	: मनुष्य जन्मते है···जो जन्मते उनमें स्त्री जन्मी
	: है[४]
जन्मावेगी	: गर्भवंती होके पुत्र जन्मावेगी[५]
उपजा	: जिस समय वह उपजा था[६]
त्यागने	: उसे······त्यागने ठहराया[७]
जनी	: पुत्र न जनी[८]
कोपियेगा	: जद् आप् कोपियेगा[९]
सेव्ने	: आप जा—सेव्ने लगी[१०]
विचारा	: तब उन्होंने विचारा, कि जिन्होंने हमको जन्माया है[११]

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण 'प्रगटे' भी है।

बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ (कृदन्त)—

यह दो प्रकार की है। एक, कर्त्ता और कर्म के लिंग, वचन से प्रभावित होने वाली अर्थात् विकारी बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ और दूसरे लिंग, वचन से अप्रभावित क्रियाएँ। इन्हें अविकारी बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ कह सकते हैं। दोनों प्रकार की बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ (कृदन्तीय क्रियाएँ) क्रिया भाव से अतिरिक्त संज्ञा, विशेषण और क्रिया-विशेषण का भाव भी व्यक्त करती हैं। इन्हें परम्परागत व्याकरण ग्रंथों में कृदन्त कहा गया है। क्रिया-प्रकृति√जाना √होना और√रहना के भूतकालिक रूप बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं के समान कार्य करते हैं। विकारी कृदन्तों के अन्तर्गत वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ, भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ, क्रियार्थक संज्ञा और कर्तृवाचक भावव्यक्त करने वाली क्रियाएँ आती हैं। इन क्रियाओं का विश्लेषण अग्र-लिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है,

---

१. उप०, पृष्ठ ५।
२. धर्म०, पृष्ठ १।
३. हिंदुई०, पृष्ठ ११।
४. पदा०, पृष्ठ ५३।
५. धर्म०, पृष्ठ २।
६. भार०, पृष्ठ ५२।
७. धर्म०, पृष्ठ २।
८. धर्म०, पृष्ठ २।
९. प्रेम०, पृष्ठ २७।
१०. नासि०, पृष्ठ ३०।
११. उप०, पृष्ठ ५।

(i) वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ क्रिया-प्रकृति (धातु) में '—त' प्रत्यय लगाकर बनाई गयी हैं। इनमें '—आ,' '—ई' और '—ए' लिंग और वचन सूचक प्रत्यय जोड़े गये हैं। क्रिया रूप रचना की यह शैली अकारांत, आकारांत, ईकारांत और एकारांत क्रिया-प्रकृतियों में मिलती है। इन क्रियाओं का वाक्य में प्रयोग उद्देश्यात्मक और विधेयात्मक है। यह निम्नलिखित हैं,

एकवचन—

सकता : कोई मेट नहीं सकता[1]

करते : नृत्य करते भार को टाला[2]

मारते : मोहन को मारते रधीआ को न देखा[3]

करती : विहार किया करती[4]

बहुवचन में स्त्रीलिंग क्रिया रूप मिलते हैं। इनमें '—ईं' प्रत्यय का प्रयोग है,

वर्षातीं : जो बूंदे जमके वर्षतीं उनको करका कहते हैं[5]

बहुवचन में निरनुनासिक '—ई' अपवाद है। यथा,

सकती : जो उन्होने कमी नहीं देखी सहज में बढ़ सकती हैं[6]

वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं के बहुवचन में '—आं' प्रत्यय का व्यवहार इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में मिलता है। इसे उर्दू का प्रभाव माना जा सकता है,

खातियां : जितनी—नावें थीं—लचके खातियां, आतियां, जातियां —थीं[7]

अकारांत क्रिया-प्रकृति√सक और√कर में '—त', '—आ', '—ई' प्रत्यय होने पर अंतिम स्वर '—अ' लुप्त हो गया है। यह परिवर्तन अंतिम ध्वनि पर बलाघात के कारण है। जिससे 'सक्ता', 'कर्ता', 'कर्ती' रूप मिलते हैं। इस प्रकार के उदाहरण मात्र एक रचना 'पदार्थ विद्यासागर' में मिलते हैं। इसलिये इन्हें अपवादों की कोटि में रखा जा सकता है,

---

१. प्रेम०, पृष्ठ २६।
२. अश०, पृष्ठ ३८।
३. अभि०, १७ क।
४. नासि०, पृष्ठ ११।
५. पदा०, पृष्ठ २८।
६. स्त्री०, पृष्ठ १६।
७. रानी०, पृष्ठ २८।

सक्ता : जल हलका होने सक्ता[१]

कर्ता : दयामय सृष्टि कर्ता[२]

कर्ती : सूर्य की किरण प्रकाश नहीं कर्ती[३]

क्रिया-प्रकृति और प्रत्यय के मध्य '—व—' ध्वनि का आगम ब्रजभाषा आदि बोलियों में आज भी वर्तमान है। परन्तु खड़ीबोली में '—व—' ध्वनि रहित रूप 'आता', 'पाता' आदि विकसित हो चुके हैं। 'आवता' और 'भावता' आदि रूप प्राचीन उर्दू में भी मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस समय खड़ीबोली और उर्दू परस्पर प्रभावित हो रही थीं, उदाहरण,

आवता : धन चला आवता है[४]

पावते : परंपरा की बातों से पावते हैं[५]

वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक प्रत्यय '—त—' का प्रयोग कर 'प्रेमसागर' में विशिष्ट रूपों की रचना की गयी है। 'चुपचुपाते' इसी प्रकार का शब्द है, यथा,

गर्गमुनि चुपचुपाते चले गये[६]

इसी प्रकार का एक अन्य रूप 'जानो' है। यहाँ '—त—' प्रत्यय अपेक्षित है। पत्रों से एक उदाहरण निम्नलिखित है। इसमें 'जानते ही हो' के स्थान पर 'जानो ही हो' का प्रयोग किया गया है।

तुम जानो ही हो वाई येक बात हम कबुले हैं[७]

वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं का प्रयोग क्रिया भाव से अतिरिक्त विशेषण और क्रिया-विशेषणों के लिये भी मिलता है। निम्नलिखित वाक्यों में 'वर्षती', 'सूखते', 'रोता हुआ' आदि विशेषणवत् प्रयुक्त हुए हैं,

वर्षती बूंदों में किरण थोरी पडती[८]

सूखते पेड़ हरे होते[९]

रोता हुआ लडका आगे घर दिया[१०]

---

१. पदा०, पृष्ठ ३८।
२. पदा०, पृष्ठ ८९।
३. पदा०, पृष्ठ १७।
४. दाय०, पृष्ठ ६।
५. कथा०, पृष्ठ ४।
६. प्रेम०, पृष्ठ ३६।
७. अभि०, ३८ क।
८. पदा०, पृष्ठ २६।
९. पदा०, पृष्ठ २६।
१०. प्रेम०, पृष्ठ १७।

बनसी बजाते नृत्य करते भार को टाला[१]

इन क्रिया रूपों के साथ बलात्मक निपात 'ही' का प्रयोग तात्कालिकता का अर्थ व्यक्त करता है,

चरन छू ते ही यमुना थाह हुई[२]

देखते ही मोहित हो गए[३]

भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ—ये क्रियाएँ क्रिया-प्रकृति के साथ 'आ' '—आं,' '—ई', '—ईं,' '—ए' प्रत्ययों से निर्मित हैं। यह प्रत्यय लिंग और वचन-भेदक है। यह क्रियाएँ वाक्य में कर्ता से अन्वित होती हैं। '—आं' प्रत्यय इंशा अल्ला खाँ की भाषा की विशेषता है। क्रियाओं में यह अन्यत्र नहीं मिलता। अन्य सभी स्थानों पर शेष प्रत्यय मिलते हैं—

एक वचन, पुँल्लिग और स्त्रीलिंग—

लगा : बेटा···राज करने लगा[४]

आई : बरात···आई[५]

देखा : हम देखा[६]

'हम देखा' में क्रिया कर्म से प्रेरित है। कर्म यहाँ लुप्त है। सकर्मक क्रिया होने पर कर्ता विकारी कारक-चिह्न 'ने' के साथ होना चाहिये था।

पुँल्लिग में एकवचन में आदर भाव के लिये—'—ए' (ये) 'ऐ' प्रत्ययों का व्यवहार है,

आये—आय्—आऐ : वे······आये[७]

: अरु चपिरासि आय्[८]

: वेद मन्त्र से नहलाय बाहर आऐ[९]

लाये : सौ अमल मैं न्ही लाये[१०]

जनपदीय क्रिया रूप 'सोनाया', 'आयौ', 'पोहोचा', 'गयो' स्थान-स्थान पर मिलते हैं,

---

१. अश०, पृष्ठ ३८।

२. प्रेम०, पृष्ठ २४।

३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७३।

४. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।

५. प्रेम०, पृष्ठ १५।

६. अभि०, १७ क।

७. लाल० परिचय, पृष्ठ २।

८. अभि०, २ क।

९. नासि०, पृष्ठ ३१।

१०. अभि०, ७ क।

सोनाया : उसने······सोनाया[१]

आयौ : साहिब कौ परमानौ आयौ[२]

गयो : ······मसुदे गयो[३]

पोहोचा : मुताले में पोहोचा[४]

बहुवचन···

सुंधाईं : खुशबोइयाँ सुंधाईं[५]

आईं : जब आठ ही आठ गिनती में आईं[६]

बैठियाँ : दोनों महारानियाँ···आ बैठियाँ[७]

लिये : सिर काट लिये[८]

इन क्रिया रूपों में लिंग व्यत्यय के उदाहरण भी स्थान-स्थान पर मिलते हैं, यथा,

'मुद्रा', 'रपोट', 'अर्जी', 'मोहर' आदि संज्ञाएँ स्त्रीलिंग में स्वीकृत हैं। इनके क्रिया रूप भी स्त्रीलिंग में होने चाहिए। परन्तु निम्नलिखित वाक्यों में उनके साथ भूतकालिक क्रियाओं के पुँल्लिग रूप रखे गये हैं। इस प्रकार के उदाहरण भाषा की शिथिलताएँ ही हैं, यथा,

बीस मुद्रा······देने लगा, परन्तु द्वारपाल ने ग्रहण न किया[९]

रपोट कीया[१०]

मोहर···पहुँचा होगा[११]

अर्जी इहा पहौचा[१२]

इन क्रियाओं के द्विविध रूप मिलते हैं। 'करा—किया—कीया—कीआ' आदि उदाहरणों से विदित होता है कि इनके प्रयोक्ताओं के मध्य भाषा का मानक स्वरूप स्पष्ट न हो सका था। एक क्रिया के अनेक विकल्प, भाषा की अस्थिरता प्रकट करते हैं,

---

१. नासि०, पृष्ठ ३७।

२. अभि०, १ क।

३. अभि०, १२ क।

४. अभि०, ११ क।

५. रानी०; पृष्ठ २।

६. प्रेम०, पृष्ठ १८।

७. रानी०, पृष्ठ ३१।

८. स्त्री०; पृष्ठ ५।

९. मनो० इति०; पृष्ठ ३।

१०. अभि०, ७ क।

११. अभि०, ३० क।

१२. अभि०, २३ क।

करा—किया—कीया—कीआ : उत्पन्न करा[१]
: मैंने किया[२]
: रपोट कीया[३]
: मारपीट कीआ[४]

किई—की : इच्छा किई[५]
: तजवीज-मंजूर की[६]

दिई—दी : थैली सोंप दिई[७]
: आज्ञा······दी[८]

दीये, कीआ, दीआ, लीया आदि दीर्घ ईकारांत युक्त क्रियाएँ पत्रों की भाषा में भरी पड़ी हैं, यथा,

दीये : दसकत कर दीये[९]
दीआ : नीकाल दीआ[१०]
लीया : इनौने···लीया[११]

भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं के 'क्रिया चाहना' 'जाया चाहना', 'सुना चाहना' आदि रूपों का चलन परवर्ती साहित्यिक और व्यावहारिक दोनों स्वरूपों से समाप्त हो गया है। 'चाहना' क्रिया से बनने वाले ये रूप भाषा की प्राचीनता के द्योतक बन कर रह गये हैं। इनके स्थान पर क्रियार्थक संज्ञा 'करना', 'जाना', 'सुनना' व्यवहृत हो रहे हैं। 'किया चाहता' जैसे रूप भारतेन्दु तक सुरक्षित रहे। उनके पश्चात् पात्र विशेष के सन्दर्भ में इनका प्रयोग चलता रहा। उर्दू काव्य रचनाओं में भी इस प्रकार के प्रयोग प्रचलित मिलते हैं। उदाहरण निम्नलिखित हैं,

किया चाहिए : उनको सैर किया चाहिए[१२]

---

१. कथा०, पृष्ठ १।
२. अभि०, ३ क।
३. अभि०, ७ क।
४. अभि०, १७ क।
५. मनो इति०, पृष्ठ ३।
६. अभि०, ७ क।
७. मनो० इति०, पृष्ठ ३।
८. कथा०, पृष्ठ २।
९. अभि०, ९ क।
१०. अभि०, १७ क।
११. अभि०, ४ क।
१२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।

जाया चाहती : मैं······जाया चाहती हूँ[१]

सुना चाहते : वर्णन सुना चाहते हैं[२]

भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ विशेषण का कार्य भी कर रही है, यथा,

मरा हुआ : मरा हुआ काला नाग[३]

किया हुआ : कालिदास का किया हुआ शकुंतला नाटक[४]

लिखे हुए : लिखे हुए अक्षर रहते हैं[५]

'बोए खेत में'[६], 'पहिले आया हुवा मोहर'[७]

'इस वषत् का कहा और किया बात'[८] इसी के उदाहरण हैं।

क्रियार्थक संज्ञा—तृतीय प्रकार की बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ वस्तुतः संज्ञाएँ हैं। यह विशुद्ध संज्ञाएँ न होकर किसी क्रिया से निष्पन्न वह रूप हैं जो संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं। परन्तु अपने क्रियार्थ को भी नहीं छोड़ते। विशुद्ध संज्ञा शब्दों में क्रिया भाव नहीं मिलता। ये क्रियाएँ, क्रिया-प्रकृति के साथ '—ना',—'—नी'—और '—ने' प्रत्ययों को ग्रहण करती हैं। राजपूताना एजेन्सी में '—णे' प्रत्यय भी मिलता है। प्रेमसागर में '—न' प्रत्यय वाले रूप में मिलते हैं,

हुलसना : नेत्र ही का काम हुलसना है[९]

दैना—देना : एक अंश ठहराय देना[१०]

: १० का भाग देना[११]

चलनै : इनके चलनै की घरी[१२]

'करणे करनै रखनै, 'निस्तारणो, बाणाणे' कुछ अन्य रूप हैं।

'न' प्रत्ययांत शब्दों के एक वर्ग में संज्ञा का भाव प्रधान है। इन्हें क्रियार्थक संज्ञाओं में हटाकर भाववाचक संज्ञाओं की कोटि में रखा जा सकता है। इन क्रियाओं का प्रयोग संज्ञा के समान होने पर इनके रूप मूल कारक और विकारी कारकों के समान बनते हैं। विकारी रूपों में कारक-चिह्नों का व्यवहार भी है,

---

१. नाभि०, पृष्ठ २६।
२. भू०, पृष्ठ ६।
३. प्रेम०, पृष्ठ ५।
४. स्त्री०, पृष्ठ ४।
५. कथा०, पृष्ठ ५।
६. मनो० इति०, पृष्ठ २३।
७. अभि०, ३० क।
८. अभि०, ३१ क।
९. लाल० टीका०, पृष्ठ ६।
१०. दाय०, पृष्ठ २।
११. भू०, पृष्ठ ४४।
१२. अभि०, ४ क।

जानने : अपने जानने में न देखा[१]

बढ़ना-घटना : समुद्र का बढ़ना-घटना···किस्से होते हैं[२]

इनके कुछ विशिष्ट प्रयोग हैं जहाँ क्रिया-प्रकृति में '—व—' प्रत्यय जोड़ा गया है, यथा,

पावने : प्रकाश पावने में···बैठाया[३]

बचावने : अपने को बचावने नहीं सक्के[४]

क्रियार्थक संज्ञाओं में कारक-चिह्न जोड़कर विभिन्न प्रकार के अर्थ व्यक्त करने की शैली अत्याधुनिक है। परन्तु खड़ीबोली के प्रारंभिक स्वरूप में बिना कारक-चिह्न के क्रियार्थक संज्ञाओं की रचना शैली ब्रजभाषा के प्रभाव से आयी प्रतीत होती है। ये प्रयोग खड़ीबोली में विकसित न हो सके परन्तु, ब्रजभाषा में आज भी मिलते हैं,

बधाई देन आऐ[५]

विलोचन बैठी[६]

चौथे प्रकार की बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ कर्तृवाचक हैं। इनकी रचना क्रिया-प्रकृतियों के पश्चात् '—वाला', '—हारा' और '—आ' लगाकर की गयी है। '—हारा' ब्रजभाषा में और 'आँ' पंजाबी, राजस्थानी और उर्दू में मिलता है। ये रूप विशेष्य के लिंग, वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं इसलिये ये संरचना में तो क्रियार्थक संज्ञाएँ हैं परन्तु अर्थ की दृष्टि से विशेषण हैं। '—वाला' प्रत्यय से बने रूप साहित्य और अभिलेख दोनों में मिलते हैं। '—हारा' का व्यवहार केवल साहित्य में है। और '—आँ' का प्रयोग 'रानी केतकी की कहानी' की विशेषता है। '—आँ' का प्रयोग एक प्रकार से अनुप्रासमयता उत्पन्न करता है जिससे गद्य में लयात्मकता का आभास होता है। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

तारणे वाला × यिशु ख्रीष्ट बिना मेरा तारणेवाला नहीं[७]

कर्ने वाले : अर्ज करने वाले[८]

---

१. नासि०, पृष्ठ २३।
२. पदा०, पृष्ठ ३५।
३. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
४. उप०, पृष्ठ ५।
५. प्रेम०, पृष्ठ २८।
६. प्रेम०, पृष्ठ २६।
७. गीते०, पृष्ठ १।
८. अभि०, २३ क।

जाननिहार : सब शास्त्र के सार जाननिहार[1]

सृजनहार : खुदा है मेरा सृजनहार[2]

आने हारे : तुमको आनेहारे क्रोध से भागने को किसने चिताया[3]

आतियां जातियां : आतियां जातियां जो सासें हैं[4]

इनके अन्य उदाहरण 'गिराने वाली', 'बनाने वाले', 'बसनहारों', 'रहनेहारों' आदि हैं।

अविकारी बहुप्रकार्यात्मक क्रियाएँ—ये क्रियाएँ कर्ता और कर्म के लिंग, वचन से प्रभावित नहीं होतीं। प्रयोग की दृष्टि से ये क्रियाएँ अव्ययों से अधिक भिन्न नहीं हैं। यह पूर्वकालिकता का अर्थ बताती हैं। क्रिया-प्रकृतियों के पश्चात् 'के—कै—कर', और 'करके' जोड़कर इनकी रचना की गयी है। इनमें ब्रजभाषा का '—आय' और '—आई' प्रत्यय भी बहुप्रचलित मिलता है। कै, —आय खड़ीबोली में ब्रजभाषा आदि बोलियों से आये हैं। उदाहरण,

सींसीं के : सींसीं के धोती को सुधारी[5]

लै कै : हुकुम लै कै हम······आय[6]

बुझाकर : बुझाकर कहों[7]

पैठकर : घर में पैठकर बालक को······[8]

बुलाय : सूद्र को बुलाय दुखपाय झुंझलाय कर कहा[9]

लगाय : चित्त लगाय तपस्या करने लगे[10]

: पडदा लगाय देना[11]

जलाइ : कान्हपुर को जलाइ गए[12]

'—आय' प्रत्यय से बने रूप पश्चिम से लेकर पूर्वी क्षेत्रों तक प्रचलित मिलते हैं। यह प्रत्यय भारतेन्दु-काल तक खड़ीबोली में प्रभावी बने रहे और शैली-विशेष के लिए सीमित हो गये। इसके विपरीत '—आय' प्रत्यय के साथ सो 'को' का प्रयोग भी प्रचलित मिलता है, यथा,

---

१. नासि०, पृष्ठ ३।
२. गीते०, पृष्ठ ३८।
३. धर्म०, पृष्ठ ५।
४. रानी०, पृष्ठ १।
५. अश०, पृष्ठ ३६।
६. अभि०, ३ क।
७. प्रेम०, पृष्ठ ३।
८. धर्म०, पृष्ठ २।
९. प्रेम०, पृष्ठ २।
१०. नासि०, पृष्ठ १०।
११. पाठ०, पृष्ठ १।
१२. अभि०, ३ क।

हम लोग वैष्णव भोग लगाय को आपका शुभचींतन करै[1]

सहायक क्रिया-प्रकृति √सक के साथ 'के' का व्यवहार व्याकरणसम्मत नहीं है। परन्तु अपवाद रूप में 'सक्' के साथ 'के' का व्यवहार मिलता है। वह प्रयोग आगे चल न सके,

अपने को बचावने नहीं सक्के केवल······कांपने लगे[2]

कहीं-कहीं क्रिया-प्रकृति मूल रूप में पूर्वकालिकता का अर्थ बताती है। प्रेमसागर में यह अधिक सक्रिय है। यथा,

ठान : अपने दिल में ठान[3]

हो : लालों लाल हो इस अकारथ
प्रसन्नता के लिये······करे[4]

'आन' क्रिया का व्यवहार भी इसी प्रकार से है। यथा,

आन : इसी रोज आन पहुंचा[5]

कालभेदक क्रियाएँ (तिङ्तीय क्रियाएँ)—

मुख्य क्रियाओं का दूसरा भेद काल भेदक क्रियाएँ हैं। परम्परागत व्याकरण ग्रंथों में इन्हें तिङ्तीय क्रियाएँ कहा गया है। यह क्रियाएँ कर्ता के वचन और पुरुष के अनुसार रूपांतरित होती हैं और बहुप्रकार्यात्मक (कृदन्तीय क्रिया) क्रियाओं के समान एकाकी रूप में प्रयुक्त होकर मूलकाल अथवा साधारण काल का अर्थ व्यक्त करती हैं। साधारण काल मुख्य रूप से तीन हैं,

१. वर्तमान संभावनार्थक काल या वर्तमान इच्छार्थक काल
२. वर्तमान आज्ञार्थक काल और
३. भविष्य निश्चयार्थक काल।

इन रूपों में भी विकल्प पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। इसके उदाहरण निम्न-लिखित हैं,

वर्तमान संभावनार्थक काल—

एक वचन, उत्तम पुरुष···यह रूप—ऊं,—एं~—ऐं, और – अयं प्रत्ययों से निर्मित है—

---

१. अभि०, ४० क।
२. उप०, पृष्ठ ५।
३. प्रेम०, पृष्ठ ४।
४. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५५।
५. अभि०, २६ क।

दूं : जो तू बर माँगे सो दूं[१]
पांय : हम किस्से··· पांय[२]
जांय—जावें : हम······जांय[३]
: जहां कहीं जावें हम[४]
करें—करैं : हमें चाहिये कि उसकी सेवा करें[५]
: उनका विचार कहाँ लौं करैं[६]
लै : हम उनसे ले नहीं लै[७]

कुछ स्थानों पर अकारांत क्रिया-प्रकृति और एकारांत क्रिया-प्रकृतियों के रूप आकारांत क्रिया-प्रकृतियों के समान निर्मित हैं। इसमें क्रिया-प्रकृति की अंतिम स्वर-ध्वनि में कोई लोप या परिवर्तन नहीं हुआ है। उत्तम पुरुष सर्वनाम 'मैं' के साथ '—ऊँ' प्रत्यय का प्रयोग है। यथा, करऊँ, लेऊँ आदि। इन शब्दों के अंत में दो स्वर ध्वनियों का प्रयोग है। यह आरंभिक खड़ीबोली की विशेषता है। परवर्ती खड़ीबोली में इनका स्थान 'करूँ' 'लूं' आदि क्रियाओं ने ले लिया है।

करऊँ : मैं······चौकी न करऊँ[८]
लेऊँ : मैं ·····लेऊँ[९]

एक वचन में मध्यम पुरुष की क्रियाएँ अनुपलब्ध हैं। केवल अन्य पुरुष की क्रियाएँ मिलती हैं। इनमें '—ए' और '—ऐ' प्रत्ययों से निर्मित विकल्प स्थान-स्थान पर मिलते हैं, यथा,

करे—करै : स्त्री······करे[१०]
: षयाल न करै[११]
चितावै : कोई···चितावै[१२]
पहूँचे—पहुँचै—पौंहचे : अपना षत पहूँचे[१३]
: यह षत···पहुँचै[१४]

---

१. बैं० हि० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
२. गीते०, पृष्ठ १५४।
३. गीते०, पृष्ठ १५४।
४. गीते०, पृष्ठ १५४।
५. ज्यो०, पृष्ठ ६।
६. भू०, पृष्ठ २।
७. अभि०, ३८ क।
८. धर्म०, पृष्ठ ५३६।
९. धर्म०, पृष्ठ ६।
१०. प्रेम०, पृष्ठ ६।
११. अभि०, १० क।
१२. लाल० परि०; पृष्ठ ६।
१३. अभि०, २४ क।
१४. अभि०, २९ क।

: सलाम पौहूचे[1]

इनके वैकल्पिक रूपों में '—य' का आगम मिलता है। एक ही संदर्भ में दो भिन्न क्रिया रूपों का व्यवहार इस अवधि की खड़ीबोली की विशेषता बन चुका था। 'दे' और 'देय' दोनों रूपों का व्यवहार द्रष्टव्य है,

दे—देय : श्रेष्ठ विभाग दे[2]

: सबको समान अंश देय[3]

बहुवचन, उत्तम पुरुष की क्रियाओं के स्त्रीलिंग में 'दें' रूप मिलता है। यह 'हम' सर्वनाम से अन्वित है। अनुनासिकता का व्यवहार आदर भाव सूचित करता है। यथा,

दे : तुम्हारो वियोग हम अबला न सह सकेंगी इससे तुम्हारे साथ जी दे तो भला[4]

बहुवचन, अन्य पुरुष में भी द्विविध रूप मिलते हैं। इनकी रचना 'ए—ऐं' प्रत्ययों से हुई है। दोनों प्रत्यय इस अवधि के सक्रिय प्रत्यय हैं। यथा,

पड़े—पड़ें : दोनों बालक गिर-गिर पड़े[5]

: छोटी-छोटी रेणु पड़ें[6]

करें—करैं : दो भाई······करें[7]

: हम तुम···युद्ध करैं[8]

पढ़ैं : सब······पढ़ैं[9]

वर्तमान आज्ञार्थक काल—इसके मध्यम पुरुष एकवचन के रूपों से अतिरिक्त सभी रूप वर्तमान संभावनार्थक काल के रूपों से भिन्न नहीं हैं। इनमें प्रत्यय रहित और प्रत्यय सहित दोनों प्रकार के रूप हैं। प्रत्ययों में '—ओ—औ' प्रधान हैं, यथा, एक वचन, मध्यमपुरुष—

चल : मोहन कहा जो रथीआ चल[10]

करो—करौ : तुम······नास करो[11]

१. अभि०, ३५ क।
२. दाय०, पृष्ठ ६।
३. दाय०, पृष्ठ ६।
४. प्रेम०, पृष्ठ ६।
५. प्रेम०, पृष्ठ ३६।
६. भू०, पृष्ठ १०७।
७. उप०, पृष्ठ ५।
८. कथा०, पृष्ठ २०६।
९. वाक्या०, पृष्ठ ४।
१०. अभि०, १७ क।
११. प्रेम०, पृष्ठ १९।

: बाबा जू ! बस करो[1]

भेजो : हमको......भेजो[2]

इनके अतिरिक्त अन्य प्रवृत्ति भी सक्रिय थीं। सामान्य रूप से प्रत्यय से पूर्व क्रिया-प्रकृति (धातु) के अंतिम स्वर का लोप और उसके स्थान पर प्रत्यय होता है। परन्तु, यहाँ प्रत्यय होने पर क्रिया-प्रकृति में कोई विकार नहीं हुआ है, यथा,

सिखओ : इसे जोतिक सिखओ[3]

देओ : उनको संवार देओ[4]

कहीं-कहीं '—इओ' (—इयो) प्रत्यय भी है। यहाँ '—य' श्रुति उच्चारण के प्रभाव से आ गयी है। 'करियो', 'कहियो' इसी प्रकार के उदाहरण हैं। ये रूप समय के प्रवाह में खड़ीबोली के साहित्यिक स्वरूप से तो हट चुके हैं परन्तु बोलचाल में कहीं-कहीं सुनाई देते हैं,

करियो : तुम......चौकसी करियो[5]

कहियो : मैं...कहूँ तो तुम कहियो[6]

खयिओ : धोखा मत खयिओ[7]

लीजीयो : तुम......कर लीजीयो[8]

ब्रजभाषा के प्रभाव से 'कीजो', 'दीजो' रूप भी आ गये हैं। यहाँ 'ज' ध्वनि का आगम हो गया है। इससे स्पष्ट होता है कि खड़ीबोली के विकास में ब्रजभाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

कीजो : तुम......मत कीजो[9]

दीजो : अपना लड़का ला दीजो[10]

: गाड़ी वा वेला कं जावा दीजो[11]

इनमें प्रत्यय ' – ओ' से पूर्व 'न्व' श्रुति स्वर आ गया है। यथा,

आवो : तुम...फूक आवो[12]

रोवो : पिता तुम रोवो मत[13]

---

१. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ १९९।
२. अभि०, ३४ क।
३. हि० रो०, पृष्ठ ३८।
४. वाक्या०, पृष्ठ २१।
५. प्रेम०, पृष्ठ २०।
६. वाक्या०, पृष्ठ ७।
७. वाक्या०, पृष्ठ १७७।
८. अभि०, ४ क।
९. प्रेम०, पृष्ठ २१।
१०. प्रेम०, पृष्ठ २१।
११. अभि०, २४ क।
१२. अभि०, ३ क।
१३. स्त्री०, पृष्ठ ८।

'—ओ' प्रत्यय के स्थान पर '—व' का प्रयोग कहीं-कहीं मिलता है। काव्य-रचना में यह निम्नलिखित प्रकार से है,

मिटाव : इच्छा मेरी सब मिटाव[१]

देव : ख्रीष्ट को दिल देव[२]

आदरभाव सूचक स्थलों पर क्रिया-प्रकृति में 'ज' ध्वनि का आगम है। इसमें '—इओ (—इयो)' प्रत्यय का योग किया गया है। उल्लेखनीय है कि क्रिया-प्रकृति होना से निर्मित 'हूजिये' जैसे रूपों का स्थान 'हो' ने ले लिया है। परन्तु ले से निर्मित 'लीजिए' रूप आज सुरक्षित रह गया है। इसके विकल्प 'लीजे' भी है। यथा,

हूजिये : सब हाल में मिहरबान हूजिये तबका तुम्हरे पर[३]

लीजिये—लीजे : आप······लीजिये[४]

: क्या लीजे भेट घर में नहीं दे है दिखाई[५]

भविष्य निश्चयार्थक काल—इन क्रिया रूपों की रचना क्रिया-प्रकृति में '—ग' प्रत्यय और उसके साथ लिंग, वचन-भेदक '—आ, —ई, —ए' प्रत्ययों से हुई है।

एकवचन, उत्तमपुरुष, पुंल्लिग और स्त्रीलिंग—

क्रिया-प्रकृति में '—ऊँ' प्रत्यय से निर्मित रूप 'मैं' सर्वनाम के साथ अन्वित हैं और '—ए' '—ऐं' प्रत्यय से निर्मित रूप 'हम' सर्वनाम से अन्वित हैं। '—ऊँ' का प्रयोग होने पर क्रिया-प्रकृति में कोई विकार नहीं हुआ है। 'लेऊँगी' इसी प्रकार का उदाहरण है। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

लेऊँगा : मैं······बोझ लेऊँगा[६]

सकूंगी : मैं सह न सकूंगी[७]

लिषैंगे : हम सब······लिषैंगे[८]

करेंगे : हम फिसाद करेंगे[९]

प्रत्यय '—ए' होने पर क्रिया-प्रकृति में विकार हो गया है, जिससे 'सुनेंगे' के स्थान पर 'सोनेंगे' रूप मिलता है, यथा,

---

१. गीते०, पृष्ठ ५।
२. गीते०, पृष्ठ २८।
३. गीते०, पृष्ठ १८१।
४. हि० रो०, पृष्ठ ३६।
५. अश०, पृष्ठ ४०।
६. उप०, पृष्ठ ४।
७. प्रेम०, पृष्ठ ३।
८. अभि०, ३ क।
९. अभि०, १३ क।

सोनेंगे : हम कभी नहीं सोनेंगे[१]

इसी प्रकार '—य' ध्वनि का आगम होने पर 'देयेगें' रूप बनता है, यथा,

देयेगे : तुमारा भला—कर देयेगे[२]

प्रत्यय '—ग' से पूर्व बलात्मक नियात 'ही' का प्रयोग 'लेना' भाव पर बल देने के लिए किया गया है। पत्रों की भाषा से एक उदाहरण निम्नलिखित है,

लेहींगा : नहीं हम तो लेहींगा[३]

'नासिकेतोपाख्यान' में '—ओं + —ग + —ई' वाले रूप स्थान-स्थान पर मिलते हैं, यथा,

छूटोंगी : आव्रागमन से छूटोंगी[४]

पीयोंगी : मैं कुछ खाऊँगी न पीयोंगी[५]

लीपोंगी : आज मैं ही लीपोंगी[६]

एकवचन, मध्यम पुरुष, पुँल्लिग—

इनकी संरचना वर्तमान आज्ञार्थक काल की क्रियाओं के साथ '—ओ+ग +ए' प्रत्ययों से हुई है। अभिलेखों में उनके उदाहरण मिलते हैं,

लीषोगे : सो इसकी सलाह लीषोगे[७]

मेलोगे : तुम······नहीं मेलोगे[८]

आदर भाव के रूप भी इसी प्रकार से हैं, यथा,

यहाँ एकारांत क्रिया-प्रकृति√दे में प्रत्यय '—ओ+ —ग+ए' में 'ओ' का संयोग होने पर '-व' श्रुति आ गयी है। इससे पता चलता है कि खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में 'य' और 'व' श्रुतियों का कहीं सार्थक तो कहीं निरर्थक प्रयोग हो रहा था। इसे श्रुति स्वर प्रधान भाषा का उदाहरण कहा जा सकता है। एक उदाहरण निम्नलिखित है,

देवोगे : बदोबस्त······करा देवोगे[९]

एकवचन, अन्य पुरुष पुँल्लिग, स्त्रीलिंग :—इन क्रियाओं की रचना क्रिया-

१. अभि०, ३२ क।
२. अभि०, ३२ क।
३. अभि०, ३८ क।
४. नासि०, पृष्ठ २।
५. नासि०, पृष्ठ ३२।
६. नासि०, पृष्ठ ३४।
७. अभि०, ८ क।
८. अभि०, ३२ क।
९. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।

प्रकृति के साथ '—ए— —ऐ' प्रत्ययों के पश्चात् '—ग+ —आ, —ई' से हुई है। यथा,

चाहैगा : जो……नहीं सुना चाहैगा[1]

आवेगी : अलक्ष्मी आवैगी[2]

'आवैगा', 'कहैगी', 'उतरावेगी' आदि कुछ अन्य उदाहरण हैं। सम्मानार्थक स्थलों पर '—इए+ग+आ' प्रत्यय का व्यवहार मिलता है। यह वर्तमान आज्ञार्थक कालों से बने हैं।

पाइयेगा : क्रम जुजा……ही पाइयेगा[3]

बूझिएगा : हवाल बूझियेगा[4]

बहुवचन—

उत्तम पुरुष :—इसका प्रत्यय '—एं' है। वर्तमान संभावनार्थक, उत्तम पुरुष, बहुवचन की क्रियाओं की रचना '—एं+ —ग+ए' प्रत्ययों के योग से हुई है। यहाँ भी 'य—' का निरर्थक आगम है,

करयेंगे : हम लोग……करयेंगे[5]

: बड़ा लाट साहेब……करयेंगे[6]

अन्य पुरुष—

मागेंगे : यह हमैं……भुगतना पड़ा, क्योंकि अमर होके कब तक भीख मागेंगे[7]

करेंगे : अमले के लोग करेंगे[8]

अन्य पुरुष, बहुवचन के इस नियम के कुछ अपवाद हैं। यहाँ बहुवचन कर्ता के क्रिया रूप एकवचन में हैं,

अपना लोग…सभ हवाल कहैगा[9]

संयुक्त काल—क्रिया-प्रकृतियों को एकाकी प्रयोगों से अतिरिक्त उनके संयुक्त-प्रयोग भी मिलते हैं। इन्हें क्रिया-संयुक्तता कह सकते हैं। इनसे अनेक व्याकरणिक अर्थ उत्पन्न किये गये हैं। इन क्रियाओं में प्रथम क्रिया-

---

१. अभि०, ११ क।
२. भू०, पृष्ठ २३।
३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०।
४. लाल० परि०, पृष्ठ ४।
५. अभि०, २३ क।
६. अभि०, ३३ क।
७. अभि०, ३४ क।
८. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
९. अभि०, ८ घ।

प्रकृति मुख्य क्रिया है और दूसरी क्रिया-प्रकृति सहायक क्रिया है। प्रथम क्रिया अर्थबोधक और सहायक क्रिया काल-बोधक हैं। यह काल या समय का ज्ञान कराने में सहायक हुई है।

सामान्य धारणा है कि काल-वर्तमान, भूत और भविष्यत—के मध्य भेद समय के तीन आयामों के अनुरूप होता है। ऐसा प्रायः मान लिया जाता है कि काल की प्रकृति समय की प्रकृति को प्रतिबिम्बित करती है। परन्तु सदैव ऐसा नहीं होता है। यहाँ तक कि वर्तमान काल कभी-कभी भविष्य के समय की ओर भी संकेत करता है। इसलिए समय की स्वच्छंदता काल के अन्तर्गत जकड़ी रहती है जिसमें प्रथम को दार्शनिक अभिप्राय और दूसरे को व्याकरणिक वर्ग कहा जा सकता है। इनकी एकरूपता या समरूपता एक घटना मात्र है। काल सदैव समय का संकेत करे यह आवश्यक नहीं है। समय और काल को एक में बाँधना, व्याकरण को संकुचित करना होगा।

यहाँ स्पष्टीकरण आवश्यक है कि प्रत्येक वाक्य में समापिका क्रिया के द्वारा काल की अभिव्यक्ति होती है। सहायक क्रिया काल की वाहक है। परन्तु वाक्य में कहीं सहायक क्रिया न भी हो, जैसा कि अनेक स्थितियों में संभव होता है तो काल की अभिव्यक्ति मुख्य क्रिया में कतिपय रूपात्मक परिवर्तनों के द्वारा कर दी जाती है। यहाँ विभिन्न उपवर्गों की मुख्य क्रियाओं और सहायक क्रियाओं के आधार पर संयुक्त काल निम्नलिखित प्रकार से दर्शाये जा सकते हैं,

(i) वर्तमानकालिक कृदन्त और सहायक क्रिया के आधार पर निर्मित काल—

वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थक—यह काल क्रिया-प्रकृति√होना के वर्तमान निश्चयार्थ काल के क्रिया रूपों से निर्मित हुए हैं, जिनमें√होना के साथ '—ऊँ, —एँ—ऐ' प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। इन संयुक्त क्रियाओं में प्रथम क्रिया वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं (कृदन्त) के प्रत्यय '—त' से निर्मित है।

उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष की क्रियाओं की अपेक्षा अन्य पुरुष की क्रियाएँ अधिक हैं। इसमें स्त्रीलिंग की तुलना में पुँल्लिग क्रियाएँ प्रधान हैं। इनमें १८२० ईसवी के पश्चात् की रचनाओं में एकवचन और बहुवचन के रूपों में एक समानता मिलने लगती है। यह अग्रलिखित है,

एकवचन, उत्तम पुरुष—

दोषता हूँ : मैं दोषता हूँ[१]

चलवाते हैं : हम हल चलवाते हैं[२]

एकवचन, मध्यम पुरुष—

करता है : तू महापाप करता है[३]

चढ़ते हो : तुम कैसा चढ़ते हो जो गिर गिर पड़ते हो[४]

लिषते हौ : अैसी झूठी किऔ लिषते हौ[५]

सम्मानार्थक स्थलों पर सहायक क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थक रूप 'हैं' और 'हो' प्रयुक्त हुए हैं, यथा,

सकते हैं : जर्नेल भीमसेनथापा······आय सकते हैं[६]

कहते हो : महाराज आप······ऐसी मिथ्या वात कहते हो[७]

एकवचन, अन्य पुरुष—

आता है : ऐक सूद्र मारता आता है[८]

पैठती है : किरण···पैठती है[९]

'है' सहायक क्रिया का प्रयोग मध्यम पुरुष के लिए भी मिलता है, यथा,

तुम्ह—कीवो मारपीट करते है[१०]

'प्रेमसागर' में इन क्रियाओं का स्थान वाक्य के अन्त में न होकर मध्य में है। ऐसा काव्य-शैली के अनुकरण पर किया गया प्रतीत होता है। यथा,

अपना बखान कर जो मारता है गाय औ बैल को जानकर[११]

प्रथम क्रिया 'होता' के स्थान पर 'होवे' क्रिया रूप का प्रयोग भी इसी अर्थ के लिए किया गया है। यह खड़ीबोली की प्रकृति से भिन्न रूप है। ये रूप जनपदीय बोलियों में आज भी चुने जा रहे हैं,

पल पल में जाहिर होवे हैं नसीहत सबको देवे है[१२]

वाक्य के अंत में नकारात्मक नियात रहने पर सहायक क्रिया की अलग से आवश्यकता नहीं रह गयी है। प्रथम क्रिया ही दोनों अर्थ वहन कर रही है, यथा,

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।
२. अभि०, ५ ख।
३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
४. हिं० रो०, पृष्ठ २०।
५. अभि०, १ क।
६. अभि०; २३ क।
७. नासि०, पृष्ठ १०
८. प्रेम०, पृष्ठ २।
९. पदा०, पृष्ठ ६।
१०. अभि०, १७ क।
११. प्रेम०, पृष्ठ २।
१२ गीते०, पृष्ठ ३६।

जो राजा···दुखदाइयों को नहीं दंड देता[१]

सोलह मुद्रा से अधिक—धरता नहीं[२]

'मेट नहीं सकता,—'डर नहीं होता', 'ऐसा नहीं होता' आदि कुछ अन्य प्रयोग हैं। सम्मान के अर्थ में सहायक क्रिया 'हैं' की अपेक्षा निम्नलिखित वाक्यों में हैं,

वे झूट कहता है[३]

बहुवचन, उत्तम पुरुष—

सकते हैं : हम अैसी दूर की वस्तुओं को देख सकते हैं[४]

बहुवचन, मध्यम पुरुष—

जाते हो : गाय और बैल को भी निकट बुलाके पूछा कि···किसलिये भागे जाते हो[५]

बहुवचन, अन्य पुरुष—

सीखती हैं : रंडियां······सीखती हैं[६]

पावते हैं : माता-पिता सदा ही दुःख पावते हैं[७]

अपवाद रूप से बहुवचन 'हैं' के स्थान पर 'है' एकवचन का प्रयोग मिलता है,

जो अपना लोग इहां से षत ले जाता है[८]

सील और धर्म जाता है[९]

क्रिया-प्रयोगों में प्रथम क्रिया में प्रत्यय '—त' से पूर्व क्रिया-प्रकृति के अंतिम स्वर '—अ' का लोप हो गया है, यथा,

तारे······परकाश कर्ते हैं[१०]

भूत अपूर्ण निश्चयार्थक काल :—यह वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं के साथ मूल क्रिया-प्रकृति √होना के भूतनिश्चयार्थक क्रिया रूपों से निर्मित हैं। यथा,

एकवचन, उत्तम पुरुष—

जानता था : मैं न जानता था[११]

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।
२. मनो० इति०, पृष्ठ ४।
३. अभि०, १ क।
४. ज्यो०, पृष्ठ ६।
५. प्रेम०, पृष्ठ ३।
६. स्त्री०, पृष्ठ ३।
७. उप०, पृष्ठ ५।
८. अभि०, २४ क।
९. प्रेम०, पृष्ठ १३।
१०. ज्यो०, पृष्ठ ३।
११. पदा०, पृष्ठ ६३।

जाते थे : हम नहीं जाते थे[१]

एकवचन, अन्य पुरुष—

करता था : ऐक ब्राह्मन······तपस्या करता था[२]

प्रथम क्रिया में '—त' के स्थान पर '—व' ध्वनि वाले क्रिया रूप भी मिलते हैं, यथा,

जावे था : राहवारी—लिया जावे था[३]

बहुवचन में अन्य पुरुष की क्रियाएँ मात्र मिलती हैं, यथा,

रहते थे : **Dadoor ruhte t,he**[४]

वसते थे : जो···तट पर वसते थे[५]

भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थक काल :—यह काल वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं (वर्तमानकालिक कृदन्त) के साथ क्रिया-प्रकृति√होना के भविष्यतकालिक रूपों से अभिव्यक्त किया गया है, यथा,

करते होंयगे : बाबा नंद हमारी बाट देख देख भावना करते होंयगे[६]

भूत अपूर्ण संभावनार्थक काल—यह काल वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं के साथ√होना के भविष्य निश्चयार्थक रूपों से मिलकर अभिव्यक्त हुआ है, यथा,

एकवचन, अन्य पुरुष—

देता होगा : वह मेरु हमें नहीं दिखाई देता होगा[७]

बहुवचन, अन्य पुरुष—

कहते होंयगे : रोमक पत्तन, रूप को कहते होंयगे[८]

होते होंयगे : आधे आधे दिन—होते होंयेगे[९]

वर्तमानपूर्ण निश्चयार्थक—यह काल भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं और सहायक क्रिया√होना के वर्तमान निश्चयार्थक काल के रूपों से व्यक्त किया गया है, यथा,

---

१. अभि०, ३ क ।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २ ।
३. अभि०, ८ क ।
४. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६ ।
५. कथा०, पृष्ठ २०५ ।
६. प्रेम०, पृष्ठ १३० ।
७. भू०, पृष्ठ ५ ।
८. भू०, पृष्ठ ८ ।
९. भू०, पृष्ठ २१ ।

एकवचन, उत्तम पुरुष—

आया हूँ—हुँ : उसने कहा महाराज ! शिकार करने आया हूँ[1]

: अफ़सोस करता आया हुँ[2]

एकवचन, अन्य पुरुष—

दिआ है : हम···भगवा दिआ है[3]

चिताया है : किसने चिताया है[4]

किई है : सर्वनाश की इच्छा किई है[5]

इसके बहुवचन में अन्य पुरुष के रूप मिलते हैं। यथा,

कुटवांई है : सोले हज़ार क़ैद से छुटवांई है रानी[6]

भूत निश्चयार्थक काल—इनकी रचना भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं और√होना के भूत-निश्चयार्थकाल की क्रियाओं से हुई है।

एकवचन, उत्तम पुरुष—

पाया था : मैंने जो पाया था[7]

एकवचन, अन्य पुरुष—

बना हुआ था : गढ़······बना हुआ था[8]

खोयी थी : थैली खोयी थी[9]

अन्य पुरुष में आदर भाव में सहायक क्रिया 'थे' है, यथा,

जहाँ लोमस ऋषि······तप कर रहे थे[10]

राजा मनियाँ बापू भी······आये थे[11]

बहुवचन, अन्य पुरुष—

रहे थे : फूल-फूल रहे थे[12]

भूतपूर्ण संभावनार्थक काल :—इनकी रचना भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रिया और क्रिया-प्रकृति√होना के भविष्य निश्चयार्थक रूपों के आधार पर हुई है, यथा,

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७० ।
२. गीते०, पृष्ठ ५ ।
३. अभि०, २४ क ।
४. धर्म०, पृष्ठ ५ ।
५. उप०, पृष्ठ ४ ।
६. अश०, पृष्ठ ३८ ।
७. मनो० इति०, पृष्ठ ४ ।
८. पदा०, पृष्ठ २ ।
९. मनो० इति०, पृष्ठ ३ ।
१०. प्रेम०, पृष्ठ ४ ।
११. लाल० परि०, पृष्ठ २ ।
१२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ८ ।

एकवचन, अन्य पुरुष—

भया होगा : कैसा डर भया होगा[1]

हुआ होगा : संदेह हुआ होगा[2]

इनके अपवाद भी मिलते हैं। यहाँ 'हुआ ही होगा' के स्थान पर 'हुई होगा' मिलता है, यथा,

अरजी······भेजी सो मालुम हुई होगा[3]

संयुक्त-क्रियाएँ :—विभिन्न क्रिया-प्रकृतियों के आधार पर नवीन अर्थ अभिव्यक्त करने वाली संयुक्त क्रियाओं की रचना इस अवधि से आरंभ हो गयी थी। यह दो या अधिक संज्ञाओं और क्रियाओं से निर्मित है। इनमें पहली क्रिया मुख्य क्रिया है और दूसरी और उसके बाद आने वाली क्रियाएँ सहायक क्रियाएँ हैं। संयुक्त क्रियाएँ दो प्रकार की हैं। एक, सामान्य वर्ग की संयुक्त क्रियाएँ और दूसरे पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ।

सामान्य वर्ग की संयुक्त क्रियाएँ—यह पाँच प्रकार की हैं।

प्रथम, जिसमें मुख्य क्रिया, क्रिया-प्रकृति (धातु) रूप में रहती है, परन्तु पूर्वकालिकता का अर्थ नहीं देती। इनसे उत्कर्ष, सामर्थ्य और पूर्ति का अर्थ व्यक्त होता है। इसकी सहायक क्रियाएँ जाना, देना, रहना, सकना और चुकना आदि है,

हो जाना : सिर जुदा हो गया[4]

छोड़ देना : वुसे छोड़ दिया[5]

कर देना : व्योपारी कुंरवाने कर दी जो[6]

भेज देना : साहेब सरव्र कु भेज दीजे[7]

इनके व्याकरण से अनन्वित प्रयोग भी मिलते हैं। इनमें परवर्ती सहायक क्रिया के ध्वनि-साम्य पर पूर्ववर्ती मुख्य क्रिया के रूप बनाये गये हैं। ऐसे उदाहरण शैली-विशेष के आग्रह से बनाये गये प्रतीत होते हैं। भाषा के ये उदाहरण अत्यल्प हैं :

खोई गई : मेरी अक्ल खोई गई[8]

---

१. ज्यो०, पृष्ठ २०६।
२. भू०, पृष्ठ ३७।
३. अभि०, १२ क।
४. बैं० हि० हिंदु०, पृष्ठ २१।
५. राम०, पृष्ठ २।
६. अभि०, ८ क।
७. अभि०, १२ क।
८. बैं० हि० हिंदु०, पृष्ठ २।

द्वितीय, जिनमें मुख्य क्रिया, क्रियार्थक संज्ञा है। क्रियार्थक संज्ञाएँ काल आदि से अप्रभावित रहती हैं। इनसे अनुक्रम का भाव व्यक्त होता है। इच्छार्थक क्रिया 'माँगना' वस्तु के संदर्भ में प्रयुक्त होती है। परन्तु, यहाँ 'चाहना' के अर्थ में मिलती जो वस्तुतः बँगला के प्रभाव से आयी प्रतीत होती है। यह खड़ीबोली की प्रकृति के विपरीत है। 'जाने माँगना' में पूर्वपद की क्रिया पर-पद की क्रिया से नियंत्रित नहीं है। यह खड़ीबोली की प्राचीनता के उदाहरण हैं, यथा,

गलने जाना : पांडव····· हिमालय गलने गये[1]

जाने माँगना : वकील······जाने माँगता है[2]

आने देना : वह घुस करके आने दो[3]

इसके विपरीत उदाहरण भी हैं। यहाँ क्रियाएँ परस्पर व्याकरणसम्मत नहीं हैं। यहाँ विकारी क्रियार्थक संज्ञा 'लिखने' के स्थान पर अविकारी 'लिखना' रूप तथा 'होने' के स्थान पर केवल 'हो' रूप व्याकरणसम्मत होते हैं। यथा,

लिखने होना : तुम्हें इससे शीघ्र लिखने होगा[4]

होने सकना : अधिक प्रकार होने सकते हैं[5]

जावा देना : व्योपारी ने जावा दीया[6]

इसके निश्चित क्रम में शैली के आग्रह से परिवर्तन हो गया। यथा,

दांत पीस-पीस लगा थर थर कांपने और क्रोध कर कहने[7]

तीसरे प्रकार की संयुक्त क्रियाओं में मुख्य क्रिया के अर्थ में संज्ञा शब्दों का व्यवहार है। ऐसी क्रियाएँ वस्तुतः मुहावरों की रचना भी करती हैं। ये दिलाना, होना, करना, आदि सहायक क्रियाओं से बनी हैं। इन्हें सांज्ञिक-संयुक्त क्रियाएँ कह सकते हैं, यथा,

गुनहगार होना : मै हूँ बड़ा गुनहगार[8]

डुबकी दिलाना : मैं तो······डुबकी दिलाता हूँ[9]

चसमनवाह करना : चसमनवाह कर गये[10]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ २।
२. अभि०, ३४ क।
३. अभि०, ३४ क।
४. वाक्या०, पृष्ठ ११।
५. पदा०, पृष्ठ ६१।
६. अभि०, ८ क।
७. प्रेम०, पृष्ठ ५।
८. गीतें०, पृष्ठ १।
९. धर्म०, पृष्ठ ५।
१०. अभि०, ३ क।

चौथे प्रकार की संयुक्त क्रियाओं में मुख्य क्रिया, भूतकालिक, बहुप्रकार्यात्मक क्रिया है। इसमें जाना, आना सहायक क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। इनसे पूर्णता और प्रभाव का अर्थ व्यक्त हुआ है, यथा,

बांधा जाना : खीष्ट के प्रेम में बांधा गया[१]

सुना जाना : नातीश भी सुना जाता है[२]

चला आना : अब जवाब उसका चला आता है[३]

: छोकरी रोती चली आवै है[४]

यहाँ आकांक्षा सूचक संयुक्त क्रियाओं में√चाहना के आदरार्थक रूप के साथ कर्तव्य अथवा आवश्यकता का बोध करवाया गया है। खड़ीबोली के साहित्यिक स्वरूप में इसके प्रयोग नियमित बना लिये गये हैं, यथा,

किया चाहना : सैर किया चाहिये[५]

पिता विभाग किया चाहै[६]

जाया चाहना : ऐक स्थान में जाया चाहती हूँ[७]

मिला चाहना : उसे मिला चाहते हैं[८]

सुना चाहना : हम—सुना चाहते हैं[९]

: जो···नहीं सुना चाहैगा[१०]

समझाया चाहना, पुजवाया चाहना, बिठलाया चाहना आदि में प्रेरणार्थक क्रिया से बनी संयुक्त क्रिया के नियमित प्रयोग मिलते हैं, यह भी भाषा की प्रवृत्ति बन चुकी थी।

पाँचवें प्रकार की संयुक्त क्रियाओं में मुख्य क्रिया वर्तमानकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रिया के रूप में है। इससे निरंतरता का भाव व्यक्त होता है, यथा.

ठगते फिरना : ब्राह्मण लोग···औरों को ठगते फीरेंगे[११]

बढ़ती होना : सेत्न की ओर भी बढ़ती हुई[१२]

कुसला रखना : कौन—फुसलाये के रखता है[१३]

---

१. गीते०, पृष्ठ १।
२. अभि०, १७ क।
३. अभि०, ३५ क।
४. अभि०, १७ क।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
६. दाय०, पृष्ठ ६।
७. नासि०, पृष्ठ २६।
८. दाय०, पृष्ठ ४७।
९. भू०, पृष्ठ ६।
१०. भू०, पृष्ठ २३।
११. राम०, पृष्ठ ३।
१२. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
१३. अभि०, १७ क

पुनरुक्त क्रियाएँ— संयुक्त क्रियाओं का दूसरा भेद पुनरुक्त क्रियाएँ हैं। इनका प्रयोग नियमित रूप से १६ वीं शती की आरंम्भिक रचनाओं यथा, 'प्रेमसागर', 'नासिकेतोपाख्यान', 'रानी केतकी की कहानी' में मिलता है। ये बहुप्रकार्यात्मक संज्ञाओं से बनायी गयी हैं। यथा,

१. पूर्वकालिक बहुप्रकार्यात्मक पुनरुक्त क्रिया—

खेलते खेलते : राजा खेलते खेलते प्यासे भये[1]

फिरते फिरते : सिगरे लोक फिरते फिरते सत्य लोक में जा पहुँचे[2]

पूर्ण कालिकता के अर्थ में भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं की पुनरुक्ति 'प्रेमसागर' में मिलती है। यहाँ निरंतरता का भाव है,

चला चला : चला चला एक जोगी के पास गया[3]

२. भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक पुनरुक्त क्रिया—'—आय' प्रत्यय से बनी भूतकालिक बहुप्रकार्यात्मक क्रियाओं की पुनरुक्ति भी 'प्रेमसागर' की विशेषता है। ऐसे अनुप्रासमय प्रयोग 'प्रेमसागर' और 'नासिकेतोपाख्यान' आदि से अतिरिक्त नहीं मिलते हैं।

पछताय पछताय : हाय हाय कर पछताय पछताय बिन रोये न रहा[4]

कुछ अन्य पुनरुक्त क्रियाएँ निम्नलिखित हैं—

अछता पछता : कंस अछता पछता वहाँ आया[5]

बैठे बैठे : बैठे बैठे यह बात चढ़ी[6]

पढ़ने पढ़ावने : सब वेदशाला पढ़ने पढ़ावने का......फल मिलता है[7]

सुनने सुनाये : सुनने सुनाये का विसका जो गुण[8]

———

१. प्रेम०, पृष्ठ ४।

२. राम०, पृष्ठ २।

३. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ १६७।

४. प्रेम०, पृष्ठ ६।

५. प्रेम०, पृष्ठ २६।

६. रानी०, पृष्ठ २।

७. राम०, पृष्ठ ३४।

८. राम०, पृष्ठ ३।

अनुभाजन—५

अव्यय

आरंभिक खड़ीबोली में शब्दों के अनुपात के आधार पर संज्ञा शब्दों के पश्चात् अव्ययों का स्थान है। वाक्य-संरचना में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखने के कारण अव्यय शब्दों की गणना व्याकरणिक कोटियों के अन्तर्गत की गयी है। विवेच्य क्षेत्र में प्रयोग-भेद से निम्नलिखित अव्यय मिलते हैं, १. क्रिया-विशेषण, २. संबंध सूचक, ३. समुच्चयबोधक, ४. नियात और ५. विस्मयादिबोधक।

क्रिया-विशेषण—यह दो प्रकार के हैं, एक, सामान्य वर्ग के क्रिया-विशेषण और दूसरे, सार्वनामिक क्रिया-विशेषण। सामान्य वर्ग के क्रिया-विशेषण केवल क्रिया की विशेषता बताते हैं परन्तु सार्वनामिक क्रिया-विशेषण सर्वनामवत् भी प्रयुक्त होते हैं। यह निश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, संबंधवाचक और नित्य संबंधी सर्वनाम हैं। दोनों प्रकार के क्रिया-विशेषण समय, काल, स्थान, दिशा, रीति, गुण, परिमाण और संख्या आदि विविध अर्थों के वाचक हैं। संबंधवाचक सर्वनामों से बने क्रिया-विशेषण संबंध का अर्थ भी व्यक्त करते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से सामान्य वर्ग के क्रिया-विशेषण, संस्कृत और फ़ारसी तथा क्षेत्रीय बोलियों के प्रभाव से आये हुए हैं। परन्तु, सार्वनामिक क्रिया-विशेषण तद्भव तथा क्षेत्रीय बोलियों यथा, ब्रजभाषा और अवधी आदि के भी हैं। उच्चारण-भेद से इनके अनेक वैकल्पिक रूप मिलते हैं। स्पष्ट होता है कि अव्ययों के स्तर पर खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप मिश्रित और विकल्प प्रधान था।

सामान्य वर्ग के क्रिया-विशेषण निम्नलिखित हैं,

१. समय और कालबोधक—

Ahifte : giru ahifte chulo[1]

तुरंत—तरंत : तुरंत गाडी व बेला कुं जावा दीजो[२]

: हमको तरंत षवर करो[३]

---

१. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३५।

२. अभि०, ८ क।

३. अभि०, ३४ क।

सदा : प्रजा पालने में सदा प्रसन्न[1]

इस प्रकार के अन्य शब्द 'आज', 'फिर—फेर', 'देरी—देर' 'जलदि—जल्दी—जलदी—जल्द', हमेसे—हमेसौ—हमेसा—हैमेशा—हमेशा—हामेस', 'कल—काल्ह', 'हौले–हौले', 'सर्वदा', 'अक्सर' आदि हैं।

२. स्थान, स्थिति और दशाबोधक—

समीप : पिप्पलाद मुनि फिर निपट समीप आ ······[2]

नीचे—निचे : Ruhe Ruhe palke neech, he rukh do[3]

: भोटिया कु निचे षेचा जाऐगा[4]

कुछ अन्य क्रिया-विशेषण 'पीछ', 'मध्य—मधे' 'बाहर—वाहर—बाहिर', 'सम्मुख—सामने—साम्हने', 'आगे', 'अगाड़ी' आदि भी स्थान, स्थिति और दशाबोधक हैं। 'पीछे' और 'आगे' क्रिया-विशेषण काल और समय के बोधक भी हैं। निम्नलिखित वाक्यों में पहले के लिए इनका प्रयोग द्रष्टव्य है,

पीछे : पीछे उस भुक्त वस्तु का कोमल भाग नीचे जाता[5]

अगाडी : ईश्वर के अगाडी पराक्रमी अहेरी था[6]

आगे : विद्या सीखने में जो······कुछ दोष होता तो आगे की साध्वी स्त्रियाँ कभी न सीखतीं[7]

'आगे' और 'आगू' का प्रयोग कहीं-कहीं निरुद्देश्य प्रतीत होता है। इस प्रकार वाक्य में निरर्थक शब्दों के प्रयोग उद्‌गार वाचक शैली या तकिया कलाम शैली के उदाहरण कहे जा सकते हैं। यह शैली खड़ीबोली के प्रारंभिक स्वरूप की पृथक् पहचान बना देती है। यथा,

आगू आपका षत पहुँचा[8]

आगे श्री रुक्मिनी जी हाथ जोड़ सिर झुकाय कहने लगीं[9]

'साम्हने' और 'सम्मुख' दोनों रूप फोर्ट विलियम कालेज में प्रचलित थे। यथा,

जो ऐही साम्हने देखती हो[10]

---

१. नासि०, पृष्ठ १२।
२. नासि०, पृष्ठ ७।
३. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३५।
४. अभि०, ३३ क।
५. पदा०, पृष्ठ ४९।
६. कथा० पृष्ठ ६।
७. स्त्री०, पृष्ठ २।
८. अभि०, ४० क।
९. प्रेम०, पृष्ठ २०२।
१०. नासि०, पृष्ठ ३३।

सूर्य की ओर सम्मुख हाथ जोर खडी हो लगी कहने[१]

परन्तु, आगे चलकर महाप्राण ध्वनि 'ह' वाले रूप समाप्त हो गये ।

रीति बोधक—यह क्रिया-विशेषण दो प्रकार के हैं । एक, निश्चयबोधक और दूसरे, अनिश्चयबोधक । ये कारणबोधक भी हैं ।

निश्चयबोधक—

अवश्य : तुजको अवश्य देंगे[२]

अनिश्चयबोधक—

अगर : अगर हरऐक का मोल[३]

रीतिबोधक—

तनिक : तनिक भी दोस नहीं[४]

क्रम क्रम : अनंतर क्रम क्रम से उनका राज्य फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, हालंड आदि देशों में हो गया था[५]

मानों : फ़ारसी लोगों की······कोठी ऐसी बनी हुई है, मानो बड़े-बड़े मनुष्यों के स्थान हैं[६]

'पूर्वक ~ पूर्वक — पुर्वक' और 'ठीक — टीक' भी इसी क्रम में रखे जा सकते हैं ।

परिमाणबोधक—यह क्रिया-विशेषण परिमाण और अनिश्चित संख्या के बोधक भी हैं,

यथा,

केवल : परंतु विवेक भगवान ने केवल मनुष्य ही को दिया है[७]

'ईत्यादि' — 'इत्यादि' और 'वग़ैरह' — 'वगैरह' अदि अव्यय अभिलेखों से उद्‌धृत किये जा सकते हैं,

सार्वनामिक क्रियाविशेषण—यह निश्चय, संबंध, प्रश्न और नित्यता का अर्थ प्रकट करते हैं । ये काल, स्थान, दिशा, रीति, गुण और परिमाणबोधक भी हैं । सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

(i) कालवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण—इनमें निश्चयवाचक निकटवर्ती क्रियाविशेषण 'अब' मिलता है । इसके 'अव' — 'आव' विकल्प भी भाषा में

१. नासि०, पृष्ठ २७ ।
२. उप०, पृष्ठ ३ ।
३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ६ ।
४. नासि०, पृष्ठ ७ ।
५. भू०, पृष्ठ ६ ।
६. पत्र०, पृष्ठ १३ ।
७. भू०, पृष्ठ २ ।

मिलते हैं। 'आव' अभिलेखों में मिलता है,

अब—अब्—अव—आव : Han fahib ub kurta hoon[1]
: मैं अब् करता हुँ बिलाप[2]
: अव आपका आदमि हमारे पास पहुँचे[3]
: आव हमारा फौज नेपाल पे चड़ा[4]

प्रश्नवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण 'कब' है। इसके कई विकल्प यथा, 'कव—कध—कद' मिलते हैं। 'कद' अनूदित रचनाओं की खड़ीबोली में और अभिलेखों में प्रचलित मिलता है। यह ब्रजभाषा और मारवाड़ी में आज भी सक्रिय है। यथा,

कब—कव—कध—कद : मिलते हैं कब किसी को यहाँ भागों से आ गए[5]
: विना सन्तान योग तय कव ही फलदायक होता है[6]
: हमारा कहा कध झूठ न होगा[7]
: नहीं तो विस विन क्या कद ही क्रिया सिद्ध होती है[8]

संबंधवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण 'जब—जब—जद' हैं। 'कद' के समान 'जद' भी ब्रजभाषा और मारवाड़ी का सर्वनाम है जो अनूदित कथात्मक गद्य तथा पत्रों के गद्य में मिलता है। यथा,

जब—जव—जद : जब सुबह हुई तो[9]
: जब धीरज की दृष्ट से देखियेगा तव इसकी अनीति—को जानियेगा[10]
: जव पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा[11]
: जद हमने कही[12]

---

१. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
२. गीतें०, पृष्ठ ५।
३. अभि०, ३३ क।
४. अभि०, ३२ क।
५. अश०, पृष्ठ ४०, पृष्ठ भाग।
६. नासि०, पृष्ठ ७।
७. नासि०, पृष्ठ १०।
८. नासि०, पृष्ठ ६।
९. बै० हि० हिंदु०, पृष्ठ ५।
१०. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।
११. प्रेम०, पृष्ठ १३।
१२. अभि०, १२ क।

कालवाचक नित्यसंबंधी सार्वनामिक क्रिया-विशेषण 'तब—तव—तद' और 'तो—तौ' हैं। ब्रजभाषा में 'तद' और 'तौ' दोनों रूप मिलते हैं। खड़ीबोली की अनूदित रचनाओं यथा, प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान और दायभाग में इनका प्रयोग सर्वत्र मिलता है,

तब—तव—तद : तब ब्राह्मन बोला[१]

: तव उन्हों के मा बाप पुत्रादि[२]

: उसके न होने से कन्या लेती है जो ऊढ़ा न होय तद और दूसरी स्मृति में भी कहा है[३]

तो—तौ : Pokar ke bolo tou hum foonege[४]

: हरऐक का मोल कड़ोड़ कड़ोड़ कहूँ तौ भी हो नहीं सकता[५]

स्थान वाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण स्थान, दिशा और स्थितिबोधक हैं। उच्चारण-भेद, क्षेत्र-भेद और लेखन विधि के अंतर से 'यहाँ', 'तहाँ' और 'जहाँ' के अनेक वैकल्पिक रूप मिलने लगते हैं, यथा, 'यहाँ—इहां—इहा—ईहा—याहां'—हयां तथा 'जहां—जाहां', 'तहां—ताहां' आदि। प्रेमसागर में 'तहां' और 'वहां' दोनों समानार्थक हैं परन्तु विकास परंपरा में 'तहां' का एकाकी प्रयोग भाषा से समाप्त हो गया है। यह सामासिक रूप 'जहां-तहां' में बच रहा है। 'इहां' आदि अवधी और अन्य पूर्वी बोलियों में बोले जा रहे हैं। पंडित सदल मिश्र की भाषा से अतिरिक्त इसका प्रयोग नहीं मिलता। यथा,

यहां—इहां—इहा—ईहा—याहा—हयां :

: तुम यहां क्या खेलते हो[६]

: स्त्री के शाप से इहां आ पहुँची[७]

: इहा समस्त कुशल······है[८]

: ईहा के समाचार भले हैं[९]

: फेर याहां से जमीयत पोहोंची[१०]

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
२. स्त्री०, पृष्ठ १।
३. दाय०, पृष्ठ ४४।
४. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३५।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ६।
६. प्रेम०, पृष्ठ ५।
७. नासि०, पृष्ठ ११।
८. अभि०, ४० क।
९. अभि०, ३८ क।
१०. अभि०, ११ क।

: प्रीतम के दुख से आपको क्या वे भला ह्यां किसी का ऐसा मन कठिन है जो हमारा साथी हो[१]

वहां—वहां—उहां—उहा—वाहां :

: wuhan koun ruhta hy[२]

: जब ठाकुर ने कही वहां तक आप मत लीषो[३]

: औनुमी कामीन बजारशो उहां पहुंची[४]

: उहा का जो हकीगत होगा[५]

: वाहां सो भी मर्जि आवैगा[६]

कहां—काहा : Safib toom kuhan ooteroge[७]

: रोती काहा जाती है[८]

जहां—जाहां : जहां इन्द्र आदि देवता······रहते हैं[९]

: जांहां कहें तांहि आय् सकते हैं[१०]

तहां—ताहां : तहां मंत्री ने कहा[११]

: तांहां का कुशल मंगल चाहते हैं[१२]

इन क्रियाविशेषणों का व्यवहार अन्य व्याकरणिक कोटियों में भी प्रचलित हो चुका था। 'यहां' संज्ञा के समान कार्य कर रहा है, यथा,

: Chulo hum ko puhoncha, o—sahib ke eehan[१३]

: तुम किसू के यहाँ मत जाओ[१४]

'यहाँ' का व्यवहार 'के' संबंध कारक चिह्न के साथ होने पर 'कीहां—काहा' रूप बनता है। इस प्रकार की संधि वाले रूप अभिलेखों में मिलते हैं,—

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५७।
२. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३३।
३. अभि०, १२ क।
४. अभि०, १७ क।
५. अभि०, १८ क।
६. अभि०, ३३ क।
७. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
८. अभि०, १७ क।
९. नासि०, पृष्ठ १।
१०. अभि०, १७ क।
११. प्रेम०, पृष्ठ १३।
१२. अभि०, २६ क।
१३. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
१४. प्रेम०, पृष्ठ ३७।

: नौनी कामीन कीहां जाऐ के रही है[१]
: दारोगा काहा नालीश करने जाते हैं[२]

'कहां—कहां' का व्यवहार दिशावाचक क्रियाविशेषण 'किधर' के लिये भी मिलता है, यथा,

तव नहीं देखा जो रधीआ कहां गई है[३]
रोती कहां जाती है[४]

दिशाबोधक सार्वनामिक क्रियाविशेषण 'इधर—ईधर' और 'उधर' है,

इधर—इंधर : इधर जनमा उधर मरा[५]
: तुम सब इंधर—तो न कही देखा है[६]
उधर : oodhur ko phiro[७]

रीतिबोधक सार्वनामिक क्रियाविशेषण 'यों', 'वो—वों—वौं' और क्योंकर हैं।

खड़ीबोली के परवर्ती स्वरूप में इनके स्थान पर 'कैसा', 'ऐसा' आदि का प्रचलन मिलता है,

यों : अब तो इससे यों कह—बचाऊँ[८]
वो—वों—वौं : आश्रम देख वो हीं सन्तुष्ट हो जी में लगी कहने[९]
: तांना दिया फिर वौंही कि देखे तुम्हारे यार[१०]
क्यूंकर : तुम्हारा कहा क्यूंकर झूठ होऐ[११]

प्रश्नवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेपण 'क्यूं—क्यों—क्यौं—कीवा—कीवो' तथा 'कियो' है। 'कीवा कीयो' पत्रों की भाषा में मिलता है।

क्यूं : क्यूं जल मरती हैं[१२]
क्यों : बहू तू ही क्यों मुंह लटकाए फिरती है[१३]

---

१. अभि०, १७ क।
२. अभि०, १७ क।
३. अभि०, १७ क।
४. अभि०, १७ क।
५. प्रेम०, पृष्ठ १६।
६. नासि०, पृष्ठ ३२।
७. डॉय ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
८. प्रेम०, पृष्ठ १७।
९. नासि०, पृष्ठ २५, २६।
१०. अश०, पृष्ठ ४०।
११. नासि०, पृष्ठ ३१।
१२. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५३।
१३. लाल० टीका०, पृष्ठ १।

क्यौं : कुछ और कमाई क्यौं नहीं करता[१]

कियो : अैसी झूटी कियो लिखते हो[२]

कीवा : तब हम डांटा जो कीवा नालीश करने जाती[३]

कीवों : हमारे छोकरी को कीवो रख[४]

ज्यों—जौं—जों : ज्यों लगी उसको वेदना होने[५]

: सखियों को साथ ले हरि के मिलने की चिंता किये··· जौं वहाँ से निचिंत हो चलने को हुई[६]

: जों इतनी बात कही तों सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी[७]

त्यों—तों : त्योंही कुंज के द्वार पर जा खड़ी हो कहने लगी[८]

: बोलचाल वैसी ही जो की तों बनी रही[९]

गुणवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण 'ऐसा', 'वैसा' इत्यादि हैं। यह वस्तुतः गुणवाचक विशेषण हैं जो विशेष्य के लिंग और वचन में प्रभावित होते हैं। क्रियाविशेषण के अर्थ में ये निकटस्थ क्रिया के लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं। ये बलात्मकता का भाव भी व्यक्त करते हैं। यह निम्नलिखित हैं :

ऐसा—अैसा—अैशा—अयसा—ऐसा—अैसो :

: राज ऐसा बढ़ा[१०]

: सबी ठहरा निकम्मा[११]

: अैसा निहायत परेशान[१२]

: फीरंगी का वखत है अब तो अैशा है जो[१३]

: दूष्ट ने अयसा विश्वास दिया[१४]

: ऐसा अपने दिल का समझा बात अपने लिखा[१५]

---

१. लाल० टीका०, पृष्ठ १।
२. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २११।
३. अभि०, १ क।
४. अभि०, १७ क।
५. अभि०, १७ क।
६. नासि०, पृष्ठ २७।
७. प्रेम०, पृष्ठ २०७।
८. प्रेम०, पृष्ठ २४।
९. नासि०, पृष्ठ २७।
१०. भार०, पृष्ठ ११।
११. बै० हिं०, हिंदु०, पृष्ठ २।
१२. गीतें०, पृष्ठ ५।
१३. अभि०, १७ क।
१४. राज० तृतीय तंत्र, पृष्ठ १६।
१५. अभि०, २३ क।

: ठाकुर अरज करी अैसो नही होवे[1]

जैसी : सकत जैसा चाहिए वैसी नहीं रखता[2]

'ऐसे—अैसे, कैसे—केसे', 'जैस', 'तैसे' भी इसी वर्ग के अन्य क्रिया-विशेषण हैं। इनका व्यवहार विशेषणवत् भी प्रचलित था, यथा,

जैसा हुकुम······पहुचा[3]

परिमाणबोधक सार्वनामिक क्रियाविशेषण रीति और परिमाण के बोधक भी हैं। यह विशेषण का कार्य भी करते हैं।

इतना—ऐतना : इतना कह मचल पड़े[4]

: तब ऐतना कह[5]

तितनी : जितने दोहे बना लाओगे तितनी मुहर पाओगे[6]

'इतना' कालवाचक क्रियाविशेषण के लिए भी मिलता है, यथा,

: इतने में सखी ने आन के उठाया[7]

'इतने' और 'केता' यह विशेषण का अर्थ भी देता है, यथा,

: इंत दिन[8]

: इतने काम[9]

: Dekh keta dinchurha hy[10]

'कितना' का प्रयोग 'प्रेमसागर' में लंबी अवधि बताने के लिए प्रयुक्त हुआ है, यथा,

कितने ऐक दिन पीछे ऐक दिन राजा परीक्षित आखेट को गए[11]

कालवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण और दूरवर्ती सार्वनामिक क्रिया-विशेषणों के साथ बलात्मक निपात 'ही' के योग से निम्नलिखित रूप मिलते हैं, 'अभी', 'कभी—कभी_काभि—कभु' जभी, 'तभी—तधी', 'वहीं' और 'ताहि'—

अभी : **Hum ub, hee ja, enge**

कभी—कभीं—काभि—कभु : ऐसी पाठशाला मैंने कभी नहीं देखी[12]

---

१. अभि०, १२ क।
२. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।
३. अभि०, ४० क।
४. प्रेम०, पृष्ठ ३८।
५. नासि०, पृष्ठ ८।
६. लाल० परि०, पृष्ठ ४।
७. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७३।
८. अभि०, ४ क।
९. अभि०, २३ क।
१०. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
११. प्रेम०, पृष्ठ २।
१२. डाय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३३।
१३. वाक्या०, पृष्ठ ११।

: भूमि कभीं निकट कभीं दूर स्थित है[१]
: झुट्टा वात काभि नाहि होता है[२]
: यिशु को मैं अब दिल से यिशु खीष्ट के मैं कभु नहीं छोड़ूँगा[३]

जभी : सोते हुए सुदामा सबेरे जभी उठे[४]

तभी ~ तधी : तभी माया ने जा······बास लिया[५]
: जद आप कोपियेगा तधी वे भाग जायेंगे[६]

'वहाँ' और 'तहाँ' में बलात्मकता का भाव '—आं' के स्थान पर '—ईं (हीं)' के योग से प्रकट हुआ है,

वहीं : ऐक सुनते ही दौड़ा वहीं गया[७]

तंहि : जाँहाँ कहै तंहि आय सकते हैं[८]

संबंध सूचक अव्यय—

संज्ञाओं अथवा सर्वनामों के पश्चात् आकर उनका संबंध वाक्य में किसी अन्य संज्ञा अथवा सर्वनाम अथवा क्रिया से स्थापित करने वाले शब्द संबंध-सूचक अव्यय हैं। सामान्य क्रियाविशेषण और संबंध सूचक अव्ययों में अंतर केवल इतना है कि क्रियाविशेषण वाक्य में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होकर क्रिया की विशेषता बताते हैं तो संबंध सूचक किसी संज्ञा अथवा सर्वनाम की सहायता से अर्थ व्यक्त करते हैं। यह संबंध बताने के लिए 'कीं' 'के', री, रे और 'से' कारक-चिह्नों की सहायता लेते हैं। कभी-कभी कारक-चिह्नों की सहायता के बिना अर्थ स्पष्ट करते हैं। कुछ भाषावैज्ञानिकों के अनुसार यह 'के' कारक-चिह्न न होकर स्वतन्त्र अव्यय है जो भेद्य के लिंग और वचन से अप्रभावित रहता है। यह कभी स्वतन्त्र रूप से तो कभी संबंध सूचक किसी शब्द के साथ जुड़ता है। संबंध सूचक संस्कृत स्रोत के तत्सम, तद्भव और देशज हैं। फारसी स्रोत के कतिपय शब्द भी संबंध सूचक के समान प्रयुक्त हुए हैं। यह काल, स्थान, सादृश्य, सहचर, संग्रह, विरोध, व्यतिरेक, हेतु आदि अनेक अर्थों को व्यक्त करते हैं। व्याकरणिक संबंधों में कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण

---

१. पदा०, पृष्ठ ७।
२. अभि०, ४२ क।
३. गीतें०, पृष्ठ १।
४. अश०, पृष्ठ ४०, पृष्ठ भाग।
५. प्रेम०, पृष्ठ २१।
६. प्रेम०, पृष्ठ २७।
७. प्रेम०, पृष्ठ ५।
८. अभि०, २३ क।

आदि कारकों का अर्थ भी बताते हैं। ये दो प्रकार के हैं। एक कारक-चिह्नों के साथ प्रयुक्त होने वाले और दूसरे स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होने वाले।

'के' और 'रे' के साथ प्रयुक्त होने वाले—

अर्थ : पौत्र के अर्थ विभाग करे[१]

साम्हने—सामने : राजा के साम्हने जाकर कहा[२]

: पेड़ के सामने दीखाई देती है[३]

सों : जिसके सोंहीं कोई दीन को सतावेगा[४]

न्याई—नाईं : धन की न्याई विद्या का[५]

: चक्र को नाईं सूर्य को प्रदक्षिण कर्त्ती है[६]

अगाड़ी : वृतांत के अगाड़ी हिंदुओं की काल वर्णन विद्या···है[७]

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण 'पास—पाश', 'नीचे', 'वीच' 'संग', 'साथ', 'वास्ते—वाशते', 'ढिग', 'पलटे', 'ताईं' आदि का व्यवहार 'के' के साथ मिलता है। इसकी विपरीत प्रवृत्ति भी व्यवहार में थी जहाँ कारक-चिह्न 'के' का अध्याहार है। ऐसे उदाहरण खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में सर्वत्र प्रचलित मिलते हैं,

विना : कुमुदिनी चंद्र विना और किसी को नहीं चाहती है[८]

पास : भार्य्या पास जाने से तनिक भी दोस नहीं[९]

त़रह : सारे शहर कोअ़जब ऐक त़रह की खुशी[१०]

पीछे—पीछै : तिस पीछे···जाता है[११]

कुछेक काल पीछै···हुई[१२]

निम्नलिखित संबंधसूचक अव्यय सर्वत्र 'की' और 'से' के साथ प्रयुक्त हुए हैं, यथा,

अपेक्षा : बुध ग्रह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के बहुत निकट है[१३]

---

१. न्याय०, पृष्ठ ६।
२. हि० रो०, पृष्ठ ३८।
३. ज्यो०, पृष्ठ ३।
४. प्रेम०, पृष्ठ २।
५. मनो० इति०, पृष्ठ १६।
६. पदा०, पृष्ठ ७।
७. भार०, पृष्ठ ३।
८. स्त्री०, पृष्ठ १२।
९. नासि०, पृष्ठ ७।
१०. बै० हि० हिंदु०, पृष्ठ ५।
११. वाक्या०, पृष्ठ ३।
१२. कथा०, पृष्ठ १५।
१३. ज्यो०, पृष्ठ ८।

तरफ़—तफ : अपने नगर की तरफ़ चला[1]
: टोंक की तफ जावे था[2]
परे : विद्या से परे और कोई मित्र नहीं है[3]

इसके विपरीत दूसरे प्रकार के निम्नलिखित संबंध वाचक अव्यय सर्वत्र बिना कारक-चिह्नों के प्रयुक्त हुए हैं। ये जनपदीय बोलियों के शब्द हैं। 'लग' और 'लों' खड़ीबोली और जनपदीय बोलियों के आपसी संबंधों को प्रकट करते हैं, यथा,

तलक : रायतीपूर्वगोरषपुर तलक अमल करने का[4]
ताई : जाहा ताई तुमारी जमीन नकसा में लीषुगा[5]
लग : जब लग इन्होंने···भंग न करी[6]
लों—लौं : उनका विचार कहांलों करैं[7]
: यहां लौं कि तोप का गोला···न पहुँचे[8]

'प्रकार', 'तक—तकं' आदि कुछ अन्य शब्द भी इसी प्रकार से वाक्यों में प्रयुक्त किये गये हैं।

समुच्चयबोधक अव्यय—

एक शब्द या वाक्यांश अथवा वाक्यों को दूसरे शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों से जोड़ने वाले अव्यय समुच्चबोधक हैं। यह दो प्रकार के हैं, एक दो स्वतन्त्र शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को संयुक्त करने वाले। ये समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय हैं। यह चार प्रकार के हैं, संयोजक, विभाजक, विरोध सूचक, परिणाम सूचक। दूसरे, एक या अधिक आश्रित वाक्यों को जोड़ने वाले। यह व्यधिकरण समुच्चयबोधक हैं। यह तीन प्रकार के हैं, कारणवाचक, संकेतबाचक और स्वरूपवाचक।

१. समानाधिकरण समुच्चयबोधक—

(१) संयोजक—'—और—ओर—अर', 'औ—ओ—ओं', 'बो—वा—व' हैं। 'औ' 'ब्रजभाषा में भी मिलता है। यह अनूदित साहित्यिक रचनाओं जैसे 'प्रेमसागर', 'स्त्रीशिक्षा विधायक' 'धर्म पुस्तक का अंत भाग'

---

१. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
२. अभि०, ८ क।
३. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
४. अभि०, ३६ क।
५. अभि०, १२ क।
६. कथा०, पृष्ठ १।
७. भू०, पृष्ठ २।
८. ज्यो०, पृष्ठ ६।

और 'लालचंद्रिका' आदि में मिलता है। 'ओ' प्रेमसागर में, तथा 'वो' 'सती होने की रीति हिंदुओं में अपने पति के साथ भैलमनसी और मया के चलन से बाहर है' शीर्षक निबंध तथा 'नासिकेतोपाख्यान', 'भूगोलसार' और 'हिंदुई प्राइमर' में मिलता है। नासिकेतोपाख्यान में 'और—ओ' तथा 'वा' भी मिलते हैं। अभिलेखों में 'और—ओर—अर—अर्' 'तथा 'व्' मिलता है। विभिन्न एजेन्सियों के पत्रों में 'अरु' भी प्रयुक्त किया गया है। ये निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किये जा सकते हैं,

और—ओर~अर : ऐक से ऐक पंडित और ज़ोरावर था[1]

: करनेल अलविस साहब कै अर पंचों में से दोय पंचांके[2]

ओ~ओ~ओं : आदमी जलाई गय् है और अभी या कहते हैं[3]

: यह अपने घर आई ओ वह अपने[4]

: दस सहस्त्र नृप राजों ओं कन्यां के बीच में रह के[5]

अरु : आपकौ षतु आयौ अरु चपरासि आये[6]

वो—वौ—वा—व्—व : हिय में सुमति उपजती वो संसार में लोगों अच्छा अच्छा भोग विलास कर[7]

: अज्ञानी बड़ा दुःख पावते हैं, वा मूर्ख कहलाते हैं[8]

: अंगरेज बहादुर इनौ स व् सरकार से अनबन हो रही है[9]

'और' का व्यवहार संज्ञा और विशेषण के समान भी मिलता है;

संज्ञावत् प्रयोग—

'—अर्थात् औरों की भांति उत्साह से पूर्ण हो[10]

---

१. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
२. अभि०, ६ ख।
३. अभि०, ३ क।
४. प्रेम०, पृष्ठ २१।
५. नासि०, पृष्ठ २३।
६. अभि०; २ क।
७. नासि०, पृष्ठ १।
८. हिन्दुई०, पृष्ठ ११।
९. अभि०, ४८ ख।
१०. लाल० परि०, पृष्ठ ३।

विशेषणवत्—

इससे कुछ और उपाय किया चाहिये[1]

'वा' संयोजक समानाधिकरण से अतिरिक्त विभाजक समानाधिकरण का कार्य भी कर रहा है, यथा,

: आपनी इच्छा से पुत्र वा पौत्र के अर्थ विभाग करें[2]

(ii) विभाजक समानाधिकरण—

या—इआ : चोर हो या चंडाल, शत्रु हो या पितृघातक[3]

: हीदीमो इआ बंगला मो लीखा जाए[4]

किंवां : वे अपने व्यय् से किंवां इंलेंड की स्त्रीजन के सहारे से······ करें[5]

(iii) विरोधसूचक समानाधिकरण—

bulke : Nuheen, fahib, budlee hy' bulke burfta hy[6]

'लेकिन—लेकीन—लेकेन—लेन' आदि अभिलेखों में मिलते हैं 'परन्तु—प्रंत्र' साहित्य और पत्र दोनों में मिलते हैं। 'पर' केवल साहित्य में। प्रयुक्त हो रहा था।

१. परिणामसूचक समानाधिकरण—

इसलिये—ईसलीअे : क्योंकि उसकी दुर्दशा के समान ·····नहीं थी इसलिये वह जिसको देखता उसी की हिंसा करता[7]

मुजाहयत करना सलाह न्हीं हे ईसलीअें लीषा जावे छे[8]

जिसलिये : पुत्र जो······नहीं जन्मे सो भी भला, जिस्लिये सो एक बेर शोक देता है[9]

तिसलिये : जिसने···बनाया है···

तिसलिये हमैं चाहिये कि उस की सेवा करें[10]

१. लाल परि०, पृष्ठ ३।

२. दाय०, पृष्ठ ६।

३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७०।

४. अभि०, १७ क।

५. स्त्री०, पृष्ठ १।

६. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३६।

७. मनो० इति०, पृष्ठ ४५।

८. अभि०, ८ क।

९. उप०, पृष्ठ ५।

१०. ज्यो०, पृष्ठ ६।

ईसवास्ते : ईस वास्तें चाहीये[१]

'किस लिये' भी इसका एक अन्य उदाहरण है। 'जिस लिये' और 'तिसलिये' आगे विकसित न हो सके। 'इसलिये' का प्रयोग कारण वाचक अव्यय के लिए भी मिलता है, यथा,

'ओ अधिक दोहे और कवियों के रहने दिये, इसलिये कि, वे ऐसे मिल गये हैं'[२]

२. दूसरे वर्ग के व्यधिकरण समुच्चयबोधक हैं। इनमें कारणवाचक और संकेतवाचक दो उपभेद मिलते हैं,

(i) कारणवाचक व्यधिकरण समुच्चयबोधक—

क्यूंकि : क्यूंकि···बंधन छूट जाते हैं[३]

क्योंकि : सदा उदास रहता था क्योंकि उसकी दुर्दशा के समान······ नहीं थी[४]

च्यूंकि : च्यूंकि जो हुकम् पेस्तर हमने लिषा है[५]

(ii) संकेतवाचक व्यधिकरण समुच्चयबोधक—

यद्यपि : यद्यपि कई एक भाषा ऐसी है[६]

जो~जौं : जो कीसु का माल जात रहे तो हमारी नालस······होइ[७]

: जौ हम हजूर के पास गये तौ[८]

'जो~जौं' : का व्यवहार 'यदि' के स्थान पर प्रचलित मिलता है,

जो मर जाइये तो संसार के दुख से छूटिये[९]

सारा संसार जौं हम पाए[१०]

'जो' का व्यवहार स्वरूपवाचक व्यधिकरण समुच्चयबोधक के लिए निम्नलिखित वाक्यों में द्रष्टव्य हैं,

इसका क्या सबब है जो मुझको इस ज़ियादती से···[११]

उअह कहा जो हम तुम्हारे घर न्ही जाहीगे[१२]

---

१. अभि०, ६ क।
२. लाल० परि०, पृष्ठ ५।
३. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५६।
४. मनो० इति०, पृष्ठ ४५।
५. अभि०, ४४ क।
६. भार०, पृष्ठ १६।
७. अभि०, ४ क।
८. अभि०, ४ क।
९. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
१०. गीतें०, पृष्ठ २।
११. हिं० रो०, पृष्ठ ८।
१२. अभि०, १७ क।

स्वरूपवाचक व्यधिकरण समुच्चय बोधक—

अर्थात् : वर्ण व्यवस्था अर्थात् जाति का भेद[1]

याने : सो तुमारे वास्ते ये हुकम है कि दोनुं तरह याने जोधपुर

: जेसलमेर कै लोक[2]

कि—कै : ghore pur geen band, hee hy ki nuheen[3]

: हमसै या कहा कै हमकौ येक बड़ा अरसा है[4]

'कि' के निम्नलिखित विशिष्ट प्रयोग भी प्रचलित मिलते हैं, जिनमें से अधिकांश आज समाप्त हो चुके हैं,

कारणवाचक—

ऐ रानी ! तू इसे खा कि अमरहोवेगी[5]

'अर्थात्' और 'कि' का साथ-साथ प्रयोग प्रारंभिक खड़ीबोली में बहुलता से मिलता है, यथा,

भविष्द्वक्ता के मुख से कही थी अर्थात् कि देखो, कोई······जन्मावेगी[6]

अर्थात् कि वह नासिरतीय कहावेगा[7]

उद्देश्यवाचक—

उन्होंके कपड़े पत्थर को बनावट में ऐसे निलाले हैं कि मानो सचमुच के पहरे हुए हैं[8]

'अर्थात्' के निम्नलिखित प्रकार के प्रयोग—आज व्याकरणिक संरचना में अनावश्यक हो गये हैं,

तो तुमने नियुक्ता को धन संबंध कहा सो अर्थात् से क्षेत्रजही को फलित भया[9]

नियात—क्रियाविशेषणों के अतिरिक्त भाषा में गौण प्रकृति के क्रिया-विशेषणात्मक शब्द मिलते हैं जो वाक्य में शब्द-विशेष के पश्चात् आकर निषेध, स्वीकृति, अन्तर या भिन्नता, सीमा और बल आदि अनेक अर्थों को निश्चित करते हैं। यह नियात है। क्रियाविशेषण कभी-कभी स्वतन्त्र प्रयुक्त होते हैं परन्तु, निषेधात्मक और स्वीकारात्मक नियातों से अतिरिक्त अन्य

१. भू०, पृष्ठ ४०।
२. अभि०, १० क।
३. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३४।
४. अभि०, ४ क।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
६. धर्म०, पृष्ठ २।
७. धर्म०, पृष्ठ ४।
८. पत्र०, पृष्ठ १३।
९. दाय०, पृष्ठ ४८।

निपात स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होने पर अर्थहीन हो जाते हैं। यह सदैव किसी संज्ञा या सर्वनाम के साथ प्रयुक्त होकर अर्थवान् होते हैं। ये अपनी निकटस्थ संज्ञा या सर्वनाम के साथ संयुक्त होकर उनका संबंध किसी अन्य संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया से जोड़ते हैं। इसलिए इन्हें संबंधवाचक शब्दों के साथ भी रखा जा सकता है। खड़ीबोली के निजी निपातों से अतिरिक्त अनेक जनपदीय रूप भी भाषा में प्रचलित मिलते हैं। वर्तमान साहित्यिक स्वरूप में इन रूपों का व्यवहार आंचलिकता दिखाने के लिए किया जाने लगा है।

निषेध सूचक निपात निम्नलिखित हैं,

'न—ना', 'नहीं—न्हीं—नहिं—नही—नाही'—

यह निषेध तथा निषेध के निश्चय के अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं।

: कुछ जवाब न बन आया[१]

: मैं न सह सकूँगी[२]

: मैं चल नहीं सकता[३]

: सलाह न्हीं है[४]

: ईस वषत नहिं ईहा मिलता है[५]

: जवाब हमारा षत का नहिं आवता है[६]

: हमसौ कछू मतलब नाहीं है[७]

काव्य में 'न' और 'नहीं' दोनों का व्यवहार साथ-साथ मिलता है, यथा,

फल की आस से निराश न होय कदाचन

× × ×

यह नहीं होने से सब होवेगा विफल[८]

'नहीं—नहि' का प्रयोग समुच्चयबोधक के समान भी मिलता है। इन स्थानों पर निषेध के भाव को बल प्रदान किया गया है,

: पत्नी सों भोग करना उचित……नहीं तो विस विन क्या कदही क्रिया सिद्ध होती है[९]

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३।
२. प्रेम०, पृष्ठ ३।
३. प्रेम०, पृष्ठ ३।
४. अभि०, ८ क।
५. अभि०, २८ क।
६. अभि०; २६ क।
७. अभि०, १ क।
८. मनो० इति०, पृष्ठ २७।
९. नासि०, पृष्ठ ६।

: अपना वंश उत्पन्न करो नहि तो यह तपस्या का परिश्रम···
व्यर्थ है[1]

'न' से अशक्यता का भाव भी प्रकट किया गया है,

: न किसू से कुछ लेता है न बात करता है[2]

: न मैं इन की बात समझता हूँ, न ये मेरी समझें[3]

'नहीं' प्रश्नसूचक भी है,

शिष्य ! धूमकेतु में लोग है कि नहीं[4]

जाव देष आवो जरा है कि नहीं[5]

'नहीं' का प्रयोग संज्ञा के समान भी मिलता है,

Nuheen, fahib, budlee hy, bulke buxfta hy[6]

दो समान शब्दों के मध्य प्रयुक्त होने पर 'न' से संयुक्त क्रियाविशेषण वाक्यांश बनाये गये हैं,

किसी न किसी[7]

'नहीं' का प्रयोग प्रश्न के उत्तर के लिए भी मिलता है

: शिष्य ! क्या एक ही वेर सव देशों में सूर्य उदय अस्त होता है गुरु ! नहीं[8]

निषेधात्मक आज्ञा के लिए 'मत—मत्' का प्रयोग किया गया है,

: **fooftee mut kuro**[9]

: अपने यहाँ लाने से मत डर[10]

: वात भी मत करो[11]

'मत' का व्यवहार निषेध सूचक 'नहीं' के लिए 'प्रेमसागर' में मिलता है,

खिला रही थी इसलिये कि मत किसी को दीढि लगे[12]

'हां' स्वीकारात्मक नियात है। इसका प्रयोग प्रश्न के उत्तर में है,

---

१. नासि०, पृष्ठ ६।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३।
३. लाल० परि०, पृष्ठ ३।
४. पदा०, पृष्ठ १८।
५. अभि०, ३ क।
६. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३६।
७. तर्क, पृष्ठ ४।
८. पदा०, पृष्ठ १०।
९. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३३।
१०. धर्म०, पृष्ठ २।
११. अभि०, १० क।
१२. प्रेम०, पृष्ठ ३९।

Hum fahib[१]

गुरु ! हां पंडितगण ऐसे जानते हैं[२]

'तो—तों—तौ' कथन पर बल देने वाले नियात हैं। इन्हें परम्परागत व्याकरण ग्रंथों में सीमांतक नियात कहा गया है, यह कथन पर जोर, भिन्नता तथा समुच्चय का बोधक है,

आज तो वडी भांत से शाला लीपी गई वह सुन सावधान तो हो[३]

भिन्नताबोधक——

कुछ मिल गया तो खाया नहीं बिस्तरा जमीं[४]

समुच्चयबोधक——

जो पिता विभाग किया चाहै तौ आपनी इच्छा से पुत्र वा पौत्र के अर्थ विभाग करै[५]

'ही—हीं' और 'भी' बलात्मक नियात है। यह कथन पर ज़ोर देने अथवा एकाकीभाव के निश्चय के अर्थ में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण और क्रियाओं के पश्चात् लगाये गये हैं।

ही—हीं : **Humare fat, hee fath humaree cheey luss b,hejwa, do**[६]

: कृष्ण ने वहां ही जन्म लिया[७]

संज्ञा और सर्वनामों पर बल देने के लिये शब्द और कारक-चिह्नों के मध्य 'ही' का व्यवहार आलोच्यकालीन खड़ीबोली की प्रमुख विशेषता है,

तब ही से उदासी हो[८]

इनहीने तक्रार वढ़ावने का उपाय किया[९]

इसी प्रकार क्रिया-प्रकृति और प्रत्ययों से पूर्व नियात 'ही' का व्यवहार मिलता है। पत्रों में तथा 'प्रेमसागर' में यह विशेष रूप से द्रष्टव्य है,

लोग तो दोष देहीगे[१०]

हम नहीं मारहीगे[११]

नदी तो हम तौ ले हींगा[१२]

---

१. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३४।
२. पदा०, पृष्ठ ६।
३. नासि०, पृष्ठ ३४।
४. आश०, पृष्ठ ४०।
५. दाय०, पृष्ठ ६।
६. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३३।
७. प्रेम०, पृष्ठ ९।
८. प्रेम०, पृष्ठ ६।
९. अभि०, २३ क।
१०. प्रेम०, पृष्ठ ६।
११. अभि०, १७ क।
१२. अभि०, ३८ क।

निश्चयवाचक सर्वनाम 'वह' के विशेषणवत् प्रयोगों में बलात्मक नियात 'ही' का व्यवहार करना आलोच्य खड़ीबोली की विशेषता है।

सो तुम जानो ही हो वाही येक बात हम कबुले है[१]

'प्रेमसागर' में यह पुरुषवाचक सर्वनामों में भी मिलता है,

पर ऐक तुम्हारेई दुख से हम दुखी हैं[२]

विशेषणों के साथ भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं,

मुझे आठवेंई गर्भ का डर है[३]

कथन पर बल देने के लिए अथवा अवधारण, अधिकता और आग्रह का भाव बताने के लिए 'भी—भि' का व्यवहार संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया-विशेषण के पश्चात् किया गया है,

राजा मनियाँ बापू भी उसी बरष आये थे[४]
सो भी है छेददार[५]
तौ भी आप मेरे लिये···आये हैं[६]

विवेच्य अवधि में विस्मयादि सूचक शब्द अधिक नहीं मिलते। क्योंकि इस समय का गद्य कथात्मक और वर्णनात्मक रूपों तथा दोहों में मिलता है, जिसमें मनोविकारों की तीव्रता को कोई उचित स्थान नहीं मिलता है, 'हे.' अै, अहो, हा, हाय शब्द विस्मयादिबोधक हैं,

हे मेरे प्यारे बेटे[७]
अै खुदावन्द[८]
अहो मित्र लोगों[९]

कुछ स्थानों पर संबोधन के लिये संज्ञाओं और क्रियाओं का व्यवहार मिलता है,

महाराज ! रसोई हुई है[१०]
देखों, प्रभु के किसी दूत ने······कहा[११]

---

१. अभि०, ३८ क।
२. प्रेम०, पृष्ठ २६।
३. प्रेम०, पृष्ठ २०।
४. लाल० परि०, पृष्ठ २।
५. अश०, पृष्ठ ३६।
६. स्त्री०, पृष्ठ १३।
७. उप०, पृष्ठ ३।
८. गीते०, पृष्ठ १५४।
९. हिंदुई०, पृष्ठ १२।
१०. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०६।
११. धर्म०, पृष्ठ २।

विस्मय बोधक नियात 'अरे,' 'हा', 'हाय' है ।

अरे यह इन्द्र की अप्सरा है[1]

अरे ! वह जंजाल गया[2]

हा कैसी उल्टी······है[3]

हाय पुत्र कहाँ गऐ[4]

---

१. नासि०, पृष्ठ ११ ।

२. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०६ ।

३. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५७ ।

४. नासि०, पृष्ठ ३२ ।

अनुभाजन—६

शब्द-समष्टि विश्लेषण

(i) शब्द-समष्टि

आरंभिक खड़ीबोली की शब्द-समष्टि दो वर्गों में विभाजित कर देखी जा सकती है। एक वाक्यीय-संगठन में प्रकार्य करने वाली अर्थात् व्याकरणिक शब्द-समष्टि और दूसरे वाक्यीय-गठन के आकार-प्रकार को निश्चित करने वाली अर्थात् कोश-विषयक शब्द-समष्टि। प्रथम प्रकार की शब्द-समष्टि सीमित है। यह मात्र व्याकरणिक संबंध स्पष्ट करती है अर्थात् इन शब्दों की सार्थकता व्याकरणिक प्रकार्य में है। ये शब्द के व्याकरण के सन्दर्भ में सार्थक होते हैं। इनमें पूर्ण नवीनता के लिए स्थान नहीं है। सर्वनाम कारक-चिह्न, अव्यय, नामिक-संयुक्त-क्रियाएँ तथा सामान्य क्रियाएँ इसी कोटि के अन्तर्गत आती हैं। विस्तृत अर्थ में व्याकरणिक परप्रत्यय भी इसी कोटि के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। दूसरी कोटि की शब्द-समष्टि विस्तृत है। यह निरंतर विकास की प्रक्रिया में है। सदैव घटते-बढ़ते रहने के कारण यह अपरिमित है। नवीन शब्द और नवीन इकाइयाँ भाषा के इस वर्ग में अपना स्थान बनाती जाती हैं। इस वर्ग की शब्दावली का सम्पूर्ण ज्ञान संचय कर सकना अथवा शब्दावली को पूर्णरूपेण जानना कठिन नहीं तो असंभव अवश्य है। एक सीमित क्षेत्र की चयित शब्दावली सीख सकना अवश्य संभव होता है। संज्ञाएँ, गुणवाचक और भाववाचक विशेषण इसी कोटि में आते हैं। ये शब्द कोश-विषयक अर्थ के संकेतक होते हैं अर्थात् इन शब्दों का प्रयोजन होता है और संकेतार्थ होता है। ये वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होते हैं।

दोनों वर्गों की शब्दावली सार्थक होती है तथा भाषा सीखने और उसे समृद्ध बनाने में दोनों का विशिष्ट स्थान है। परन्तु यहाँ हमारा तात्पर्य दूसरे प्रकार की शब्द-समष्टि अर्थात् कोश-विषयक शब्दों में केवल संज्ञाओं से है जिससे खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप को नयी खोजों, नये आविष्कारों, आवश्यकताओं, नवीन भावों और विचारों का व्यक्त करने तथा वहन करने

की क्षमता प्राप्त हुई। यह शब्दावली विकास की प्रक्रिया में समय का एक इतिहास छिपाये हुए है। यह संस्कृति और समाज के विकास के साथ-साथ विकसित हुए नवीन भावों की तुलना में संख्या की दृष्टि से सीमित है। परंतु भाषा के पूर्ववर्ती स्वरूप की तुलना में विस्तृत (Longer) वैविध्यपूर्ण (Various) सुनिश्चित (Precise) और सूक्ष्मता द्योतक है। इसका प्रयोग विभिन्न नवीन संदर्भों में मिलता है। लिखित रूप की अपेक्षा बोलचाल में कदाचित् और अधिक शब्द प्रचलित रहे हों। यह शब्दावली सरलतापूर्वक प्रत्यय आदि से सम्बद्ध की जाने की क्षमता रखती है तथा आवश्यकता पड़ने पर दूसरी भाषाओं से ग्रहण कर ली जाती है। १९वीं शती के आरंभिक दशकों तक खड़ीबोली ने प्रबल रूप से अपनी उत्पादन क्षमता (Productive capacity) और ग्रहण करने की शक्ति विकसित कर ली थी। स्वेच्छापूर्वक नये शब्दों की रचना क्षमता रखने, प्राचीन शब्द और प्रत्यय ग्रहण कर उनके द्वारा नवीन यौगिक और सामासिक शब्दों की रचना करने, जनपदीय बोलियों, क्षेत्रीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की क्षमता रखने के कारण आरंभिक खड़ीबोली आगे चलकर अपनी समकालीन भाषाओं में सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त कर सकी है। यही इसके स्थायित्व का मूलभूत कारण है।

यह शब्दावली तत्सम, तद्भव, विदेशी और देशज है। वर्ण्य-विषय के अनुसार शिक्षा, शिक्षण संस्था, राजनीति, प्रशासन, पर्व, धर्म-जाति, ज्योतिष, शकुन, सैन्य शिक्षा, भूगोल, गणित, इतिहास, समाजसुधार, पाकशास्त्र, चिकित्सा आदि लगभग दो दर्जन विषयों से जुड़ी है, जिनसे पता चलता है कि इस समय ज्ञान-विज्ञान का पर्याप्त विकास हो चुका था तथा हिन्दी में इन विषयों के संबंध में पर्याप्त शब्दावली व्यवहार में थी। उक्त विषयों की तुलना में मुद्रा और आर्थिक दशा में संबंधित शब्द अधिक नहीं मिलते। भाववाचक संज्ञाएँ भी पर्याप्त संख्या में विकसित हो चुकी थीं।

शब्द-समष्टि अन्त्य, आकृति या गठन (ध्वनि-संयोजना की दृष्टि से) व्युत्पत्ति, लिंग, वचन और अर्थ के आधार पर विश्लेषित की जा सकती है। शब्दों के अन्त्य की दृष्टि से भाषा के साहित्यिक और उप-साहित्यिक स्वरूप में संज्ञा शब्द अ, इ, उ तथा आ, ई, ऊ, ए और ओकारांत हैं। ऐकारांत संज्ञाएँ नगण्य हैं, जितनी हैं वे ध्वनि-भेद कर अकारांत बना ली गयी हैं। कुछ आकारांत संज्ञाएँ ऐकारांत बना ली गयी हैं। औकारांत संज्ञाएँ उपलब्ध नहीं

होतीं। यह संज्ञाएँ खड़ीबोली की प्रकृति में नहीं हैं। विशेषण शब्द ही औकारान्त मिलते हैं। अल्प संख्या में अर्ध-स्वर 'य' और 'व' से अंत होने वाली संज्ञाएँ तथा कुछ व्यंजनांत संज्ञाएँ भाषा में मिलती हैं। व्याकरण की दृष्टि से ये संज्ञाएँ स्त्रीलिंग और पुँल्लिग सूचक हैं तथा अर्थ की दृष्टि से व्यक्ति, जाति, भाव और स्थान आदि विविध अर्थ देती हैं। व्यंजनांत संज्ञाएँ संस्कृत स्रोत से आयी हैं।

साहित्यिक और उपसाहित्यिक स्वरूप में अकारांत संज्ञाओं का अनुपात सर्वाधिक है। यह गठन के अनुसार सरल और यौगिक हैं। ये स्त्रीलिंग और पुँलिग सूचक हैं तथा सभी स्रोतों से आयी हुई हैं। अकारांत देशज संज्ञाएँ तथा अर्ध तत्सम संज्ञाएँ भाषा में पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। ये व्यक्ति, जाति, भाव और स्थान आदि अर्थ व्यक्त करती हैं। इनके कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं—

तत्सम — कल्याण[१], दक्षिण[२], महाराजाधिराज[३]
अर्ध तत्सम — पुरान[४], वाम्हन[५]
तद्भव — मुँह[६], चमार[७], आग[८], वात
विदेशी — खुदाबन्द[९], मुलुक[१०], फरमायश[११], मिस्तर[१२], अजंठ[१३]

वाक्य-रचनाओं में छन्द के आग्रह से कुछ इकारांत संज्ञाएँ अकारांत बना ली गयी हैं। यथा, मुक्त[१४] (मुक्ति) इसी प्रकार का शब्द है।

आकारांत संज्ञाएँ अकारांत संज्ञाओं की तुलना में अत्यल्प हैं। यह सरल आकृति की हैं। कुछ संज्ञाएँ यौगिक हैं। स्त्रीलिंग की तुलना में पुँल्लिग संज्ञाएँ अधिक हैं अर्थात् स्त्रीलिंग आकारांत संज्ञाएँ अत्यल्प हैं। यह व्यक्तिवाचक, भाववाचक और वस्तु-वाचक हैं, यथा,

---

१. गीते०, पृष्ठ १।
२. भार०, पृष्ठ १३।
३. अभि०, २० क।
४. अश०, पृष्ठ ३७।
५. अभि०, ३ क।
६. रानी०, पृष्ठ ५।
७. हिं० रो०, पृष्ठ २१।
८. राज०, पृष्ठ एक का पृष्ठ भाग।
९. गीते०, पृष्ठ १५४।
१०. अभि०, ३ क।
११. अभि०, ४० क।
१२. अध्यात्म रामायण सदल० ग्रंथा०, पृष्ठ ३३।
१३. भू०, भूमिका।
१४. गीते०, पृष्ठ ५।

तत्सम — राजा[1], इच्छा[2]—इछा[3], मेवा[4]
तद्भव — सच्चा[5], रास्ता[6], भूखा[7], लड़का[8], माथा[9]
विदेशी — ईसा[10], खुदा[11], निकम्मा[12]
देशज — थक्का[13], बकरा[14], धुनिया[15]

विभिन्न एजेन्सियों के पत्रों में सरल और यौगिक शब्द और फ़ारसी के आगत तद्भव शब्द तथा पुँल्लिग आकारांत संज्ञाएँ मिलती हैं। ये भाव और स्थान की सूचक हैं। फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के अभिलेखों में सरल आकृति की संज्ञाएँ मिलती हैं। ये संस्कृत और फ़ारसी भाषा से आयी हुई हैं। ये संज्ञाएँ पुँल्लिग और स्त्रीलिंग हैं तथा भाववाचक हैं। उपसाहित्यिक स्वरूप में आकारांत संज्ञाएँ गठन के आधार पर सरल हैं तथा संस्कृत से आयी हुई हैं। कुछ संज्ञाएँ तद्भव हैं। यह स्त्रीलिंग और पुँल्लिग हैं तथा भाव, स्थान, वस्तु और जाति की बोधक हैं। यह निम्नलिखित हैं,

तत्सम —कथा[16], सारमृत्तिका[17], तारा[18], सेवा[19]
तद्भव — घंटा[20]
देशज — झगड़ा[21]

विवेच्य सामग्री में ह्रस्व इकारांत संज्ञाएँ अत्यल्प हैं। साहित्यिक भाषा में संस्कृत की इकारांत संज्ञाएँ मिलती हैं। यह वस्तु और भावों की सूचक हैं। विभिन्न एजेन्सियों की भाषा में एक या दो ह्रस्व इकारांत संज्ञाएँ प्रचलित मिलती हैं। ये संस्कृत से आयी हुई हैं। फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के पत्रों में इकारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग बोधक हैं। यह भाव और वस्तु की वाचक हैं और

१. हिं० रो०, पृष्ठ ३८।
२. गीते०, पृष्ठ ५।
३. राज०, पृष्ठ १६ का पृष्ठभाग।
४. अश०, पृष्ठ ३७
५. गीते०, पृष्ठ ४।
६. गीते०, पृष्ठ १।
७. गीते०, पृष्ठ ८।
८. हिं० रो०, पृष्ठ ३६।
९. रानी०, पृष्ठ ५।
१०. गीते०, पृष्ठ ८।
११. गीते०, पृष्ठ ३८।
१२. गीते०, पृष्ठ ५।
१३. रानी०, पृष्ठ ३३।
१४. म०क०, हिं०हिंदु०, पृष्ठ २००।
१५. हिं० जा०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ २८४।
१६. कथा, पृष्ठ ५।
१७. पदा०, पृष्ठ ६१।
१८. पदा०, पृष्ठ ६१।
१९. अभि०, २३ क।
२०. भू०, पृष्ठ ४१।
२१. अभि०, १० क।

संस्कृत से आयी हुई हैं। भाषा के उपसाहित्यिक स्वरूप में अर्थात् इतिहास, भूगोल और विज्ञान विषयों की रचनाओं में इकारांत संज्ञाएँ सरल आकृति की हैं तथा संस्कृत स्रोत की हैं। यह पुँल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों लिगों में हैं। यथा,

तत्सम — शान्ति[१], भूमि[२], अग्नि[३], पक्षि[४], वदि, [५], सुदि[६]

विदित है कि इस समय तक भाषा में वर्तनी उच्चारण पर आधारित थी। इसलिए कतिपय अकारांत और ईकारांत विदेशी संज्ञा शब्द इकारांत बना लिये गये हैं। यह प्रवृत्ति फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट में प्रचलित मिलती है यथा, जवानि,[७] मर्जि,[८] दोस्ति[९] आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

भाषा के साहित्यिक स्वरूप में दीर्घ ईकारांत संज्ञाएँ विभिन्न स्रोतों से आयी हुई हैं। यह भाव, व्यक्ति और जाति-वाचक हैं। काव्य-रचनाओं में ईकारांत संज्ञाएँ पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। एजेन्सियों में दो या अधिक अक्षरों से निर्मित ईकारांत संज्ञाएँ सरल आकृति की प्रचलित मिलती हैं। ये संस्कृत स्रोत की तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव और विदेशी भाषाओं से आयी हुई हैं। ये भी दोनों लिगों में हैं। फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के अभिलेखों में ईकारांत संज्ञाएँ सरल और यौगिक आकृति की हैं। अर्ध तत्सम, तद्भव और विदेशी संज्ञाएं भी ईकारांत हैं। ये स्त्रीलिंग और पुँल्लिग द्योतक हैं तथा भाव और जाति स्पष्ट करती हैं। उपसाहित्यिक रचनाओं में सरल और यौगिक प्रकृति की संज्ञाएँ मिलती हैं। संस्कृत स्रोत की संज्ञाएँ तत्सम और तद्भव तथा स्त्रीलिंग और पुँल्लिग सूचक हैं। अर्थ की दृष्टि से यह भाव, जाति और व्यक्ति की द्योतक हैं, यथा,

तत्सम — द्रोपदी[१०], अपराधी[११]

अर्धतत्सम — ब्योपारी[१२]

तद्भव — पंछी[१३], उँगली[१४], आंधी[१५]

---

१. गीते०, पृष्ठ ५।
२. गीते०, पृष्ठ १८२।
३. अश०, पृष्ठ ३९।
४. राज०, पृष्ठ १६।
५. अभि०, २० क।
६. अभि०, २३ क।
७. अभि०, २६ क।
८. अभि०, ३३ क।
९. अभि०, २३ क।
१०. अश०, पृष्ठ ३७।
११. गीते०, पृष्ठ १।
१२. अभि०, ८ क।
१३. अश०, पृष्ठ ३८।
१४. अश०, पृष्ठ ३८।
१५. अश०, पृष्ठ ३८।

विदेशी — गुलामी,[१] , डिगरी[२] , पटवारी[३], आदमी[४] कंपनी[५]

देशज — चक्की[६] , अताई[७]

उकारांत संज्ञाएँ अधिक नहीं मिलतीं। ये अधिकांश तत्सम हैं। ये गठन की दृष्टि से सरल आकृति की हैं और अर्थ की दृष्टि से भाव और जाति सूचक हैं। अभिलेखों में उकारांत संज्ञाओं के उदाहरण अधिक नहीं मिलते। परन्तु पुस्तकीय भाषा में निम्नलिखित कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, यथा,

शत्रु[८], सिंधु[९], धुमकेतु[१०], नाउ[११] (नाव)

इसी प्रकार दीर्घ उकारांत शब्दों के उदाहरण हैं। एजेन्सियों के पत्रों में इसके नमूने नहीं मिलते। परन्तु फॉरेन पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट के पत्रों में मात्र एक उदाहरण उकारांत संज्ञाओं का द्रष्टव्य हैं। सभी रूप सरल, संधियुक्त तथा तत्सम, तद्भव और देशज प्रकृति के हैं। अधिकांश शब्द पुँल्लिग बोधक हैं अल्प संख्या में स्त्रीलिंग शब्द भी मिलते हैं तथा भाववाचक और वस्तु-वाचक हैं, यथा,

तत्सम — रज्जु[१२]

तद्भव — निंबू[१३]

देशज — जड़ाऊँ[१४], जनेऊ[१५], आलू[१६], गोंहू[१७]

विदेशी — रफू[१८]

एकरांत शब्दों में केवल जातिसूचक संज्ञाएँ यथा, चौवे[१९] पांडे[२०] इत्यादि मिलती हैं। अभिलेखों में इनके उदाहरण नहीं मिलते। ऐकारांत संज्ञाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। इस समय तक वर्तनी का आधार उच्चारण होने के

---

१ गीते०, पृष्ठ ५।
२. म०, पृष्ठ २।
३. अभि०, ९ क।
४. अभि०, ३३ क।
५. अभि०, ३८ क।
६ हिं० रो०, पृष्ठ ३९।
७. म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ १९९।
८. राज०, पृष्ठ १।
९. भार०, पृष्ठ २।
१०. पदा०, पृष्ठ १८।
११. पदा०, पृष्ठ ३६।
१२. पदा०, पृष्ठ ३६।
१३. पदा०, पृष्ठ ९३।
१४. अश०, पृष्ठ ३९।
१५. भार०, पृष्ठ ५३।
१६. पदा०, पृष्ठ ९३।
१७ पदा०, पृष्ठ १०२।
१८. अश०, पृष्ठ ३९ का पृष्ठभाग।
१९. म० क०, हिं० हिंदु०, पृष्ठ १९९।
२०. पदा०, पृष्ठ ३२।

कारण तथा वर्तनी के किसी मानक के अभाव में कुछ ऊकारांत संज्ञाएँ ऐकारांत बना ली गयी हैं। संस्कृत स्रोत की तत्सम संज्ञाएँ इसी प्रकार की हैं। भाषा के उपसाहित्यिक स्वरूप से कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं, यथा,

समै[१] (समय), निश्चै[२] (निश्चय) आदि।

ओकारांत संज्ञाएँ व्यक्तिवाचक हैं। यह अधिक नहीं हैं। उपसाहित्यिक स्वरूप मैं 'गैलिलियो[३], सिपिओ[४] आदि कुछ उदाहरण मिलते हैं। उच्चारण-भेद से 'गुफ्तगों'[५] इसी वर्ग का शब्द है।

अल्पसंख्या में यकारांत और वकारांत संज्ञाएँ मिलती हैं। ये तत्सम और क्षेत्रीय बोलियों की हैं—यथा, 'एशिया'[६], 'घ्राणेन्द्रिय'[७], 'विरियाँ'[८], 'वैष्णव',[९] 'उपाय'[१०] आदि कतिपय तत्सम और विदेशी संज्ञाएँ व्यंजनांत हैं। ये पुँल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों लिंगों में प्रयुक्त हैं। यथा, 'अचरज्'[११] हुकुम्[१२] संवत्,[१३] सलाम्,[१४] वार्ताचेत्,[१५] दाषिल्,[१६] शुभम्,[१७] सन्[१८] आदि। व्यंजनांत शब्दों की यह परम्परा परवर्ती खड़ीबोली में भी बनी रही। परन्तु इससे केवल इतना अन्तर हुआ कि जहाँ आरम्भ में पुँल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों में शब्द व्यंजनांत होते थे वहाँ परवर्ती स्वरूप में केवल पुँल्लिग शब्द व्यंजनांत लिखे जाने लगे

कुछ संज्ञाएँ द्विविध स्वरों से अंत हुई हैं। एक स्थान पर इकारांत हैं तो दूसरे स्थान पर अकारांत बना ली गयी हैं। उकारांत और अकारांत संज्ञाएँ भी इसी प्रकार की हैं। ईकारांत संज्ञाएँ इकारांत बना ली गयी है। यथा, कुरीति[१९]—रीति,[२०] हिन्दू[२१]—हिन्दु[२२], कीर्ति[२३],—कीरत[२४], आदमी,[२५] आदमि[२६]।

१. कथा०, अनुक्रमणिका।
२ कथा०, पृष्ठ ५।
३. भू०, पृष्ठ १२०।
४. कथा०, पृष्ठ १२०।
५. अश०, पृष्ठ ४२।
६. भार०, पृष्ठ १।
७. पदा०, पृष्ठ ४३।
८. भू०, पृष्ठ ५।
९. अभि०, ४० क।
१०. अभि०, २३ क।
११. गीते०, पृष्ठ ७।
१२. अभि०, २३ क।
१३. अभि०, ३९ क।
१४. अभि०, २७ क।
१५. अभि०, २३ क।
१६. अभि०, २३ क।
१७. अभि०, ३७ क।
१८. अभि०, ३५ क।
१९. प्री० ओ० सं०, पृष्ठ ५२।
२०. भू०, पृष्ठ ३।
२१. भार०, पृष्ठ ११।
२२. भू०, पृष्ठ ८।
२३. तासि०, पृष्ठ १६।
२४. गीते०, पृष्ठ ५०।
२५. अभि०, २३ क।
२६. अभि०, ३३ क।

यह द्विविधता व्यंजनांत शब्दों में भी मिलती है। शब्द एक स्थान पर व्यंजनांत हैं तो दूसरे स्थान पर स्वरांत बना लिये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि खड़ीबोली का आरंभिक स्वरूप सभी स्तरों पर विकल्प प्रधान था, यथा,

संवत्[1] — संबत[2]

विषुवत्[3] — विषुवत[4]

इस प्रकार समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि इस समय भाषा में सभी स्रोतों के शब्द प्रविष्ट हो चुके थे। संस्कृत स्रोत के शब्द अ, आ, इ, ई, उ, ऊ और एकारांत—अर्धतत्सम शब्द अ, औ, ईकारांत, तद्भव शब्द अ, आ, ई और ऊकारांत, विदेशी शब्द अ, आ, ई और ऊकारांत तथा देशज शब्द आ, ई और ऊकारांत थे। तद्भव, विदेशी और देशज शब्द इकरांत नहीं मिलते। अंग्रेजी शब्दों का सर्वप्रथम प्रवेश उपाधि सूचक शब्दों के माध्यम से इसी शती में हुआ।

(ii) शब्द-रचना

आरंभिक खड़ीबोली के शब्द-निर्माण में सहायक तत्त्वों का विशेष योगदान रहा है। इस अवधि में प्रकृति और प्रत्ययों के परस्पर योग से विविध प्रकार के यौगिक और सामासिक शब्दों की रचना की गयी है। शब्द-रचना की ये विधियाँ खड़ीबोली में १८२० ईसवीं के पश्चात् से सक्रिय मिलती हैं। इनमें संस्कृत के प्रत्ययों से अतिरिक्त फ़ारसी और हिन्दी के तद्भव प्रत्यय बहुलता से प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत प्रत्ययों का व्यवहार कहीं तो परम्परागत अर्थ में तो कहीं उनका प्रयोग परम्परा से भिन्न अर्थ में मिलता है। साहित्यिक और उपसाहित्यिक स्वरूप की तुलना में अभिलेखों की भाषा में प्रत्ययों से निर्मित्त यौगिक शब्द अधिक नहीं मिलते। इससे स्पष्ट होता है कि नवीन विषयों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिये भाषा के साहित्यिक और उपसाहित्यिक स्वरूप में नवीन शब्द-रचना की आवश्यकता इस अवधि के लेखकों ने भली-भाँति समझ ली है। पत्रों की भाषा में इसकी आवश्यकता अधिक नहीं समझी गयी। इन विधियों से निर्मित शब्द कहीं तो परम्परागत अर्थों में प्रयुक्त किये गये हैं तो कहीं परम्परा से हटकर विविध प्रकरणों और संदर्भों में प्रयुक्त किये गये हैं। प्रत्ययों से अनेक नवीन शब्दों की रचना हुई है। अकारथ, अनचढ़, आघ्राण, कुचाली, सुदेस, सुमाता, सुजनता, सुसम्बत, उल्टाव, लंबाव, उंचाव, पंडियाई,

१. कथा०, पृष्ठ ६।
२. कथा०, शीर्षक पृष्ठ।
३. भू०, पृष्ठ ८।
४. भू०, पृष्ठ १०।

सचौटी, सचावट, स्वादित, भोजनीय, गोलयना, बालकपन आदि इसी प्रकार से निर्मित शब्द हैं। देश के निवासियों के लिए 'देशियों', खाने योग्य पदार्थ के लिये 'भोजनीय' आदि शब्द खड़ीबोली के परवर्ती स्वरूप में स्थान न पा सके। परन्तु इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि इस अवधि तक खड़ीबोली में वैज्ञानिक विषयों को व्यक्त करने तथा तर्क और चिन्तन करने की शक्ति विकसित हो चुकी थी। खड़ीबोली में इसी अवधि से अंग्रेजी भाषा के शब्द प्रविष्ट होने लगे थे। परन्तु शब्द-रचना में उनका व्यवहार आरम्भ नहीं हुआ था। अंग्रेजी शब्दों का प्रवेश होने पर भी इन शब्दों के उपयोग की आवश्यकता खड़ीबोली के लेखकों ने अनुभव नहीं की क्योंकि उन्हें पहिले से ही हिन्दी भाषा के निजी पारिभाषिक शब्द उपलब्ध थे। अंग्रेजी शब्दों का प्रवेश आरंभ हो जाने पर भी यौगिक और सामासिक शब्दों में उनका व्यवहार न करना, इस अवधि की खड़ीबोली की आंतरिक क्षमता का उदाहरण है। स्मरणीय है कि यौगिक और सामासिक शब्दों में अंग्रेजी भाषा के शब्दों का व्यवहार 'भारतेन्दु' की खड़ीबोली से आरंभ हुआ। उनकी भाषा में 'एडिटरजात', 'एडिटरपोशी', 'पुलिस-वाला', 'रेलवाला', आदि शब्द ऐसे कुछ उदाहरण हैं।[1]

विवेच्य खड़ीबोली में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के पूर्व प्रत्यय और पर प्रत्यय तथा उनसे निर्मित यौगिक शब्द निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

यौगिक शब्द—

(i) पूर्व प्रत्यय—

'अ—' यह संस्कृत का पूर्व प्रत्यय है और आरंभिक खड़ीबोली में अत्यंत सक्रिय है। इससे निषेध, अभाव, हीनता आदि अर्थ व्यक्त हुए हैं। यह एक संज्ञा से दूसरी संज्ञा और संज्ञा से नये विशेषण बनाने वाला प्रत्यय है। संस्कृत प्रत्यय होने के कारण इसका व्यवहार संस्कृत शब्दों के साथ मान्य होता है। अशास्त्रीय, अप्रतिबंध, अज्ञान, अश्रृंखल, अनीति आदि शब्द इसी प्रत्यय से निर्मित हैं। इनके साम्य पर हिन्दी के तद्भव शब्द यौगिक बना लिये गये हैं। इनमें भी प्रत्यय अभाव, हीनता और निषेध का अर्थ व्यक्त करता है। यथा,

अऊत (निःसंतान) : मैं अऊत क्यों न हुआ[2]

---

१. माथुर, ऊषा, भारतेन्दु की खड़ीबोली का भाषा विश्लेषण, पृष्ठ १३४, १३५, तथा १४७।

२. प्रेम०, पृष्ठ १३।

अकारना (अपूर्ण या : बिना ब्याह यह तपस्या अकारथ होती है[1]
जो किया न गया हो)

असमैं : समैं असमैं रऐयत की राजा सहाय करता है[2]

'अकारथ' की रचना 'अकारण' के आधार पर हुई प्रतीत होती है। इससे 'निराधार' अर्थ लिया गया है, यथा,

गुरु ! धूमकेतु के उदय होने से बहुत लोग अकारथ से डरते और समझते कि बड़ा उपद्रव होगा[3]

इसी प्रकार 'अऊत' का विकल्प 'अपूत्र' भी प्रयुक्त हुआ है। यथा,

कि अपुत्र स्त्री पतिव्रत धर्म्म का पालन करती होय और संयम नियम में स्थित होय[4]

'अन—' यह निषेध सूचक पूर्व प्रत्यय है। इसका प्रयोग क्रिया-प्रकृतियों के साथ करके संज्ञाएँ बनाई गयी हैं। परवर्ती खड़ीबोली के मानक स्वरूप में इसका प्रयोग संज्ञाओं के साथ स्वीकृत हो गया है।

अनचढ़ (नौसिखिया) : एक कायथ अनचढ़े घोड़े पर बैठा हाट में चल जाता था[5]

'आ—' यह संस्कृत के 'अ— —' पूर्व प्रत्यय के अर्थ साम्य पर बनाया गया है। संस्कृत में 'अ—' पूर्व प्रत्यय का प्रयोग 'अघ्राण' शब्द में है जिसका अर्थ निषेध होता है। तथा 'आ—' पूर्व प्रत्यय 'आजीविका' जैसे शब्दों में मिलता है। 'अघ्राण' के साम्य पर 'आघ्राण' निर्मित कर लिया गया है। यथा,

आघ्राण (जो सूँघने योग्य न हो) : शिष्य ! यह परम आश्चर्य है कि परन्तु आपने कुछ अघ्राण के विषय में नहीं कहा, अब सो जानने चाहता हूँ[6]

आजीविका : और नाव की आजीविका करने हारों को इनसे बड़ा उपकार है[7]

'औ—' संस्कृत में 'अब—' पूर्व प्रत्यय है। इसके आधार पर हिन्दी में

---

१. नासि०, पृष्ठ ५।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७३।
३. पदा०, पृष्ठ १६।
४. दाय०, पृष्ठ ४३।
५. मनो० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २०१।
६. पदा०, पृष्ठ ४३।
७. पदा०, पृष्ठ ६।

'—औ—' प्रत्यय बना लिया गया है। ब्रजभाषा आदि में भी 'औ—' पूर्व प्रत्यय मिलता है। इसका प्रयोग 'हीनता' को बताने के लिए किया गया है। यथा,

औगुन (अवगुण) : सब का गुन ले ले औगुन तज दे[1]

'कु—' यह संस्कृत का पूर्व प्रत्यय है और 'हीन' या 'निकृष्टता' का भाव व्यक्त करता है। इसका प्रयोग संस्कृत शब्दों के साथ स्वीकृत होता है। संस्कृत के 'कुमति', 'कुकर्म' आदि में यही पूर्व प्रत्यय है। इनके साम्य पर खड़ीबोली में तद्भव शब्द 'चाल' से 'कुचाली' शब्द निर्मित कर लिया गया है। 'चल' संज्ञा के साथ 'कु—' पूर्व प्रत्यय परवर्ती खड़ीबोली में भी स्वीकृत हो चुका है। परन्तु इसके साथ '—ई' परप्रत्यय से बना 'कुचाली' शब्द परवर्ती खड़ीबोली में अपना स्थान नहीं बना सका। इसका व्यवहार केवल विदेशी लेखकों की रचना में मिलता है। यथा,

कुचाली : तव से यिह भोंडी रीति चली है कै किसी कुचाली कठोर ने सैकड़ों वरस पीछै जनम की प्रीति की डोरियाँ मनों से काट दीं[2]

इसी प्रकार संस्कृत के 'युक्ति' शब्द से 'कु—' पूर्व प्रत्यय कर कुयुक्ति' शब्द बना लिया गया है। यथा,

और उन्के कुसङ्ग कुयुक्ति से वेश्यागमनादि कुकर्म्म करने में धन का व्यय करके पीछे ऋणी होके वन्दिशाला में बांधा गया[3]

'निर— —नि—' यह पूर्व प्रत्यय 'हीन', 'रहित' और निकृष्टता का भाव व्यक्त करते हैं। इनका व्यवहार संज्ञाओं के साथ करके विशेषण शब्द बना लिये गये हैं, यथा,

निरमोही (मोहरहित) : राज की माया तज निरमोही हो अपना जोग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा[4]

निर्बुद्धि : बलराम बड़ा निर्बुद्धि बालक है[5]

निकम्मा : नाम बो संयत यिह है क्या त्राण के काम को निकम्मा सारा संसार जौं हम पाए ख्रीष्ट न पाय तौ हम मर जाए[6]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ ६।
२. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५४।
३. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
४. प्रेम०, पृष्ठ ६।
५. वाक्या०, पृष्ठ ७।
६. गीते०, पृष्ठ २।

'नि—' पूर्व प्रत्यय का प्रयोग 'पुत्री' शब्द के साथ कर 'अभाव' अर्थ बताया गया है। यह इस अवधि की नवीन शब्द देन कही जा सकती है। यथा,

निपुत्री : जिसको कुल उपजाने वाला पुत्र होता है वोनिपुत्री को घर में क्या सुख कि जिस विना वह सदा अंधकार[1]

'महा—' यह आधिक्य बोधक संस्कृत का पूर्व प्रत्यय है। खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में यह इसी अर्थ में मिलता है।

महापाप : इस महापाप से मैं कैसे छूटूंगा[2]

महासुन्दरी : राजा इक्षवाकु के कुल की महासुन्दरी कन्या वो पतिव्रता सव गुण भरी सो तुम्हारी भयर्या होगी[3]

'ब' यह फ़ारसी का प्रत्यय है। इसका प्रयोग 'सहित' अर्थ में किया गया है। यथा,

बख़ूबी : और उसकी जागह बड़ा बेटा शंक नाम राजा हूआ और बख़ूबी राज करने लगा[4]

'बे—' यह 'बिना' या 'रहित' भाव का सूचक है तथा फ़ारसी से हिन्दी में आया है। इससे 'बेभरोसा' शब्द निर्मित किया गया है। एक संज्ञा से दूसरी संज्ञा बनाने वाला यह प्रत्यय एक ही स्थान पर मिलता है। 'गीतें हमारे प्रभु और त्राण करन हारे यिशु ख्रीष्ट की बन्दिगी में जाने के वास्ते' शीर्षक रचना से एक उदाहरण निम्नलिखित है,

बेभरोसा : मैं बेभरोसा पाप से हुं[5]

'बि—' इसका प्रयोग 'रहित' भाव बताने के लिये किया गया है। यथा,

बिकला : सूर्य चंद्र एक ही राशि, अंश कला और बिकला के हो जाते हैं[6]

'वि—' इसका प्रयोग 'बाहर' अर्थ बताने के लिये किया गया है। यथा,

विजातीय : जो बहुत पत्नी सजातीय विजातीय होय[7]

---

१. नासि०, पृष्ठ ६।

२. प्रेम०, पृष्ठ ४।

३. नासि०, पृष्ठ ६।

४. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।

५. गीतें०, पृष्ठ ५।

६. भू०, पृष्ठ ७४।

७. दाय०, पृष्ठ ४३।

'स—सम—' इनका व्यवहार 'उत्तम' तथा 'सहित' अर्थ में मिलता है। यथा,

संविभाग
तथा
सप्रतिबन्ध } संविभाग अर्थात् सप्रतिबंध दाय[1]

'सु—' यह संस्कृत परप्रत्यय है और आरंभिक खड़ीबोली के सक्रिय प्रत्ययों में से एक है। इससे अच्छा, उपयुक्त, सुन्दर और शुभ भाव व्यक्त किये गये हैं। इसका प्रयोग सामान्यतः संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ स्वीकार्य होता है। 'सुधर्म' आदि शब्द इसी पूर्व प्रत्यय से बने हैं। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग अर्धतत्सम शब्दों के साथ भी मिलता है। ऐसे सभी प्रयोग अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिये किये गये हैं। इनसे भाषाओं की सशक्तता का ज्ञान होता है। यथा,

सुदेसो : रीति व्याह की सुदेसों में इसलिये है कि दोनों ओर प्रीति हो और आपस में हित से सेवा करें[2]

सुबरन : सुगंध आय रही द्वार-द्वार पर केले के खंभ और सुबरन कलस सपल्लव भरे धरे हुएं[3]

इसका प्रयोग तद्भव शब्दों के साथ भी मिलता है। यथा,

सुमानसी : ईसा पंथियों के समान उनमें सुमानसी बहुत थोड़ी पाई जाती है[4]

सुमाता : इसलिये नारी को जोग है कि पति के मरे पीछे अपने लड़कों को सुमाता की चाल से पाले[5]

सुजनता : तुम्हारे गुन समूह सोंदर्य लावन्य सुजनता और पंडिताई सुनकर समुद्र पार हो तुम्हारी पुरी में आया हैं[6]

अभिलेखों में प्राप्त 'सुदिन' शब्द में भी 'शुभ' भाव प्रकट होता है। यथा,

सुदिन : तिन्हो की रुकसत करके ब्राह्मन से घरी पूछ कै हम तुम्हारे सात चलते हैं सो इन बाम्हन सै सुदिन पूछो सो इनके चलनै की घरी साइत चैत्र वदि २ की बैठी है[7]

---

१. दा०, पृष्ठ ३।
२. प्री० ओ० स०, पृ० ५२।
३. प्रेम०, पृष्ठ १२५।
४. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५४।
५. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५३।
६. स्त्री०, पृष्ठ १२।
७. अभि०, ४ क।

संस्कृत के 'समय', समाचार, 'सम्वत्' आदि शब्दों के साथ भी इसका प्रयोग मिलता है। प्रत्ययों से निर्मित ये शब्द कोश ग्रंथों में नहीं मिलते। इस आधार पर इन्हें इस अवधि की नई शब्द-रचना मान लेने में कोई संदेह नहीं रह जाता। ये सभी शब्द परवर्ती खड़ीबोली में अस्वीकृत हो चुके हैं। यथा,

सुसमय : संधि करने का सुसमय जान उसे सूचनका करवाई[1]

सुसमाचार : ईश्वर के राज्य का सुसमाचार प्रचारं कर्ते हुए[2]

सुसम्बत् : धूमकेतु के उदय होने के समय जैसे मारी भय लराई और अकाल इत्यादिक होते हैं वैसे भी मेल और सुसम्बत् और सुख भी होते हैं[3]

पूर्व रचित शब्दों के साम्य पर नवीन शब्दों की रचना अत्यन्त शीघ्रता से कर ली गयी है। शब्द-रचना की यह विधि इस काल तक सर्वसाधारण में प्रसार पा चुकी थी। अभिलेखों में 'सु—' पूर्व प्रत्यय का व्यवहार 'नजर' शब्द के साथ कर प्रयोक्ता ने शब्द-रचना कौशल का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रयोक्ता अपनी विशिष्ट अनुभूति को पत्र प्राप्तकर्ता के चित्त में पूरी तरह उतार देना चाहता है। उसकी यह कोशिश ही नये शब्द के निर्माण में सहायक हुई है। उदाहरण,

सुनजर : श्री स्वाईरावनिरयत सीघजूदेव् के वाचने आपर आपके सुभ-स्माचार-सदा भले चाहिजेता पीछै साहिव की सुनजर महिखान-गीते इहाँ के स्माचार भले है[4]

परप्रत्यय—ये प्रत्यय शब्दों के अंत में जुड़कर नवीन शब्दों की रचना करते हैं। परंपरागत व्याकरण ग्रंथों में इन्हें कृत और तद्धित दो वर्गों में विभाजित किया गया है। क्रियाओं से संज्ञाएँ बनाने वाले प्रत्यय कृत प्रत्यय हैं और एक संज्ञा से दूसरी संज्ञा या विशेषण बनाने वाले प्रत्यय तद्धित प्रत्यय हैं। कृत प्रत्ययों की तुलना में तद्धित प्रत्यय अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त होते हैं। साहित्यिक और उपसाहित्यिक भाषा की अपेक्षा पत्रों की भाषा में इनका अनुपात सीमित है। इससे पता चलता है कि साहित्यिक भाषा में नई चेतनाओं, नई प्रकाशन भंगिमाओं तथा विशिष्ट अर्थों के विकास के साथ नई शब्द-रचना की आवश्यकता समझी जा चुकी थी। वैज्ञानिक विषयों के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो गया था। इसके लिए कभी तो पुराने शब्दों और प्रत्ययों से नये

१. कथा०, पृष्ठ २२६।
२ धर्म०, पृष्ठ ८।
३. पदा०, पृष्ठ १८।
४. अभि०, १ क।

शब्द बना लिये गये हैं तो कभी नये प्रत्यय गढ़ लेने पड़े हैं। पुराने शब्दों में नवीन अर्थ आरोपित कर लेना तथा किसी शब्द को विभिन्न प्रकरणों और संदर्भों से जोड़ देना, इस समय के लेखकों के लिए सामान्य बात थी। स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य करने वालों से अतिरिक्त विदेशी लेखकों के सामने दो उद्देश्य थे। एक, अपने विशिष्ट भावों और वैज्ञानिक विषयों को जनसामान्य के हृदय में उतार देना और दूसरे, जनता की भाषा सीखकर उससे नैकट्य स्थापित करना और संपर्क साधकर उस पर शासनाधिकार जमा लेना। यह कार्य विदेशी लेखकों ने बड़ी चतुरता और सफलता के साथ सम्पन्न किया। इससे भाषा की अभिव्यंजना शक्ति समृद्ध हुई तथा भाषा के शब्द भण्डार की वृद्धि हुई। अभिलेखों की भाषा इस स्तर पर साहित्य की भाषा से मेल न खा सकी और दूर जा पड़ी।

शब्द-रचना के लिए प्रयुक्त प्रत्यय गुण, तुच्छता, तुलना, संबंध, सादृश्य-हीनता और परिणाम आदि विविध अर्थों को स्पष्ट करते हैं। पुँल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने वाले प्रत्यय भी कम नहीं हैं। दोनों प्रकार के परप्रत्यय निम्नलिखित हैं—

कृत प्रत्यय—

'···आव' यह भावबोधक प्रत्यय है। उदाहरण,

बतकहाव (बातचीत)	: राजा रानी की बात बतकहाव बहुत लोग जानते हैं[1]
उलटाव (बदलना परिवर्तित होना)	: पाँचवाँ संवत् ईसा मसीह के जन्म से रुप के महाराज्य के उलटाव तक इसी संवत् में अबके यूरपीय लोगों का अंकुर प्रकाश होने लगा[2]
घटाव (कम होना)	: जगत् की रचना से ले प्रलय तक का वर्णन जगत् और मनुष्य की रचना-मनुष्य का घटाव इडिन नाम उपवन से उनका निकाल देना···इन सब् बातों का वर्णन······[3]

इस प्रत्यय से स्थानवाचक संज्ञाएँ भी बना ली गयी हैं। इससे प्रमाणित होता है कि नये संदर्भ और नये भाव नई शब्द-रचना को जन्म देते हैं। 'टिकना'

---

१. स्त्री०, पृष्ठ ६।

२. कथा०, पृष्ठ ६।

३. कथा०, पृष्ठ १।

क्रिया से '—आव' प्रत्यय से निर्मित 'टिकाव' शब्द इसी का उदाहरण है यथा,

टिकाव : आर्क नामक नौका का टिकाव नूह···बैवेल मुरहला[१]

परवर्ती खड़ीबोली में 'आव—' के स्थान पर 'आन—' प्रत्यय चल पड़ा है और 'टिकना' क्रिया से 'टिकान' संज्ञा बनाई जाने लगी है। 'भारतेंदु' की खड़ीबोली से एक उदाहरण निम्नलिखित है—

पंचकोशी में कोई तीर्थ नहीं केवल लोगों के वहाँ टिकते २ टिकान हो गई है और देवता विठा दिये गए हैं[२]

क्रियाओं से अतिरिक्त विशेषणों से भाववाचक संज्ञाएँ बनाने के लिए '—आव' प्रत्यय का व्यवहार मिलता है। 'लंबाव' और 'उंचाव' इसी प्रत्यय से निर्मित शब्द हैं। इससे स्पष्ट होता है कि यह प्रत्यय तद्धित वर्ग में भी सक्रिय था। परवर्ती खड़ीबोली में इसका स्थान '—आई' प्रत्यय ने ले लिया है यथा,

लंबाव (लंबाई)
उँचाव (ऊँचाई)] विस्तार, फैलाव लंबाव उंचाव को कहते हैं[३]

'—आवट' यह क्रिया से भाववाचक संज्ञा निर्मित करता है। इस अर्थ में परवर्ती खड़ीबोली में '—आवट+ई' प्रत्ययों का प्रचलन मिलता है। यथा,

बनावट : निदान एथेंन निवासी, बैबीलन बासी, चीनी और ब्रह्मावालों को इस विषय में हिंदुओं की भांति बनावट की बातें जान पड़ती हैं[४]

'आहट' यह प्रत्यय भी भाववाचक है। यथा,

बिछराहट : अपने श्वामी की विछराहट से अति बेकल होकर संस्कृत में में यह कविता धरती पर लिखी थी[५]

'—नी' यह गुणवाचक विशेषण बनाने वाला प्रत्यय है। यथा,

डरावनी : यह पाप रूपी काले बरन डरावनी मूरत जो आपके सनमुख खड़ा है[६]

---

१. कथा०, पृष्ठ ७।

२. शिवपुर का द्रोपदी कुंड, हरिश्चन्द्र चंद्रिका, भाग १, नम्बर ११, अगस्त १९७४, पृष्ठ १।

३. पदा०, पृष्ठ ३।

४ भार०, पृष्ठ ४।

५. स्त्री०, पृष्ठ ६।

६. प्रेम०, पृष्ठ ३।

तद्धित प्रत्यय—

'आई' यह प्रत्यय भाव और गुणद्योतक संज्ञाएँ बनाने में सक्रिय है । इससे विशेषणों से संज्ञाएँ बनाई गयी हैं । 'बड़ा' विशेषण से 'बड़ाई' और 'अधिक' से 'अधिकाई' इसी से बनाये गये हैं । 'बड़ाई' शब्द 'विस्तार' और 'फैलाव' के संदर्भ में और 'अधिकाई' संज्ञा 'आधिक्य' भाव के लिए है । यथा,

बड़ाई : गुरु ! बड़ाई और निर्मलताई ये दो गुण आकाश के हैं[1]

अधिकाई : राग रंग और सुख भोग की अधिकाई हुई[2]

सामान्य रूप से '—त' परप्रत्यय से बनी भाववाचक संज्ञाओं में पुन: भाववाचक प्रत्यय लेने की आवश्यकता नहीं होती । परन्तु भाववाचक और गुणवाचक यौगिक संज्ञाओं से पुन: भाववाचक प्रत्यय कर भाववाचक और गुणवाचक संज्ञाएँ निर्मित कर लेना, इस समय तक प्रमुख नियम बन चुका था । वास्तव में, '—त' प्रत्यय भाव द्योतन में असमर्थ हो गया था और इससे निर्मित यौगिक शब्द मूल प्रकृतिवत् कार्य करने लगे थे । इसलिए इनमें पुन: पृथक् प्रत्यय लगाकर अभीष्ट अर्थ व्यक्त किया गया । शब्द-रचना की यह टकसाली विधि अवधी और ब्रजभाषा आदि में बहुत पहले से चलती चली आ रही थी । ब्रजभाषा में 'कासौं कहौं निज मूरखताई' और 'देखी अनूपम सुन्दरताई तथा अवधी में 'हम भरि जन्म सुनहु सब भाई, देखी नहीं असि सुन्दरताई'[3] में तुक और छंद की मात्रा की पूर्ति के लिए इसी विधि का प्रयोग किया गया है । ऐसे अनेक रूप १५वीं और १६वीं शती में सक्रिय रह चुके थे । आरम्भिक खड़ीबोली में यही रूप चलते रहे जिससे बहुत समय तक ब्रजभाषा और अवधी काव्य की गेयता का गुण खड़ीबोली में भी बना रहा । पद्य शैली की विशेषताएँ जहाँ एक ओर ब्रजभाषा गद्य को प्रभावित कर रही थीं वहीं दूसरी ओर आरम्भिक खडीबोली गद्य में भी सुरक्षित रहीं । इनमें लय, तुक और गेयता का गुण प्रधान था । वास्तव में एक भाषा में स्थायी रूप से चलने वाली शब्द-रचनात्मक विशेषताएँ भाषा-विशेष की प्रमुख विशेषताएँ बन जाती हैं और अनजाने ही समसामयिक अन्य भाषाओं में भी ले ली जाती हैं । इनसे भाषा का प्रवाह बाधित नहीं होता । खड़ीबोली के आरम्भिक स्वरूप में भी ऐसी अनेक क्षेत्रीय विशेषताओं की प्रचुरता है । इनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं । विदित है कि निम्नलिखित '—आई' प्रत्यय वाले शब्द भारतेंदु काल

१. पदा०, पृष्ठ ४ ।
२. कथा०, पृष्ठ १३८ ।
३. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, १६ ।

तक चल न सके। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने खड़ीबोली गद्य से ऐसे रूपों को सर्वथा निकाल दिया। परवर्ती खड़ीबोली में केवल '—त' परप्रत्यय से बने शब्द शेष रह गये हैं।

सुन्दरताई : वे मुख की सुन्दरताई से और वाणी की चतुरता से—सब प्राणियों से श्रेष्ठ हैं[1]

शीतलताई : जैसे कि सूर्य, और अग्नि में उष्णता है, चंद्र में शीतलताई, जल में बहना, पाषाण में कठिनता, और वायु में चंचलता, इसी प्रकार भगवान ने पृथ्वी को अच्छा रहने का गुण दिया है[2]

निर्मलताई : गुरु ! बड़ाई और निर्मलताई ये दो गुण आकाश के हैं[3]

पटुताई : अतिथि आदि की भक्ति और रसोई की पटुताई और लड़के वाले का प्रतिपालन औ गुनअभ्यास करेंगी[4]

विशेषणों से अतिरिक्त जातिवाचक संज्ञाओं के साथ '—आई' परप्रत्यय से भाववाचक संज्ञाएँ बनाई गयी हैं। 'लड़काई' के रचना-साम्य पर 'पंडियाई' शब्द भी निर्मित कर लिया गया है। 'लड़काई' शब्द 'लड़कपन' का भाव दिखाता है। उल्लेखनीय है कि 'पंडिताई' रूप भी मिलता है। वास्तव में, भाषा में जब कोई प्रवृत्ति सक्रिय हो जाती है तो वह भाषा के प्रवाह में अन्य सन्दर्भों में भी ग्रहण कर ली जाती है। फिर जब तक भाषा का मानक स्थिर नहीं हो जाता तब तक इस प्रकार के विकल्प भाषा की प्रकृति के अंग होकर रह जाते हैं। फिर इस समय विदेशी लेखकों ने उन्हीं शब्द-रचनात्मक तत्त्वों को ग्रहण किया जो उन्हें भाषा में सक्रिय दिखाई दिये। भले ही वह ब्रजभाषा, अवधी या किसी अन्य भाषा के क्यों न रहे हों। उनका उद्देश्य तो भारतीय भाषाओं से परिचय प्राप्त करना था। उसके किसी सर्वमान्य स्वरूप की स्थापना करना उनके सोच से दूर था। इसीलिए खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में कई भाषाओं के तत्त्व इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि उनकी अपनी पहचान खो-सी गयी है। दोनों प्रकार के उदाहरण निम्नवत् हैं—

पंडियाई—पंडिताई : तिनकी पंडियाई का थोड़ा सा ब्योरा लिखता हूँ[5]

: ज्ञानी लोगों ने पंडिताई की रीतें रचना कीं[6]

---

१. पदा०, पृष्ठ ४० ।
२. भू०, पृष्ठ ५० ।
३. पदा०, पृष्ठ ४ ।
४. स्त्री०, पृष्ठ २१ ।
५. स्त्री०, पृष्ठ ८ ।
६. कथा०, पृष्ठ १५ ।

वास्तव में, इस समय तक भाववाचक यौगिक संज्ञाएँ दो प्रकार से निर्मित हो रही थीं। एक, जिनमें दो प्रत्यय अभीष्ट अर्थ व्यक्त कर रहे थे और दूसरे, जिनमें एक प्रत्यय सक्रिय था। प्रथम रूप 'पटुताई' आदि बोलियों से आ गये प्रतीत होते हैं। दूसरे रूप संस्कृत परंम्परा से अपरिवर्तित ग्रहण कर लिये गये हैं। यही परवर्तित खड़ीबोली के मानक स्वरूप में स्थायित्व प्राप्त कर सके हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। यथा,

ऊष्णता : सूर्य से ऊष्णता और प्रकाश पाते है[1]

मित्रता : मित्रता तुल्य धन नही[2]

मनूष्यता : मनूष्यता के चलन से[3]

प्राचीनता : प्राचीनता के विषय में[4]

इस समय तक परप्रत्यय '—त' अत्यन्त सक्रिय हो गया था। इससे कुछ विशिष्ट शब्द भी बना लिये गये हैं। इनमें भी शब्द-रचना के एक नियम का प्रसार मिलता है। 'स्वामित्व' का भाव दिखाने के लिये 'स्वाम्यता' इसी प्रकार का शब्द है। इसके साम्य पर 'सिकुड़ने' की क्रिया का भाव दिखाने के लिये 'संकोचता' और उसके रचना-साम्य पर 'विस्तारता' शब्द बना लिये गये हैं। ''विस्तारता' शब्द 'फैलाव' विस्तार या प्रसार का भाव व्यक्त करता है। शब्द-रचना की विधि में ठीक और सही उतरने के कारण इस प्रकार की शब्द-रचनाएँ शीघ्र ही भाषिक समाज में स्वीकृत हो जाती हैं। इनके वाक्य-प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

स्वाम्यता : तहाँ प्रथम यह विचारते हैं कि स्वाम्यता क्या वस्तु है[5]

विस्तारता : शिष्य ! ऐसी विस्तारता उसकी क्यों हुई[6]

संकोचता : खुलाने को नाम अंतकरण की विस्तारता और बद्ध कर्ने का नाम संकोचता ये द्वि कर्म जब तक चलते तब तक हमारा जीवन धारण होता है[7]

---

१. पदा०, पृष्ठ ४।

२. बैं० हिं० हिंदु० पृष्ठ ७१।

३. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५४।

४. भार०, पृष्ठ ३।

५. दाय०, पृष्ठ ३।

६. पदा०, पृष्ठ ३३।

७. पदा०, पृष्ठ ४६।

'—आड़ी' यह गति, समय और काल सूचक प्रत्यय है। 'आगे' अव्यय से निर्मित 'अगाड़ी' शब्द पहले या पूर्ववर्ती व्यतीत हुए समय को बताता है। परवर्ती खड़ीबोली में यह शब्द स्थान बोधक हो गया है। प्रयोग निम्नलिखित है,

अगाड़ी : परंतु इस विषय में ब्रह्मवालों का कहना अत्यंत असंगत और उपहास करने जोग हैं क्योंकि उनके कथा संबंधी वृत्तांत के अगाड़ी हिंदुओं की कालवर्जन विद्या केवल आज कल की सी दिखायी देती है[1]

'—आयन' यह वैदिक संस्कृत में 'वंशज' अर्थ प्रयुक्त हुआ है। परंतु यहाँ दिशा बोधक है। उदाहरण,

उत्तरायन दक्षिणायन : सारांश यह है कि उत्तरायन देवों का दिन है, दक्षिणायन देवों की रात्रि, ऐसा ज्योतिष संहिता वाले कहते हैं[2]

'—आवट' यह कृत और तद्धित दोनों वर्गों का सक्रिय प्रत्यय है। कृत अर्थ में यह 'बनावट' शब्द में और तद्धित अर्थ में 'सचावट' शब्द में द्रष्टव्य है। इंशा अल्ला खाँ ने इसका व्यवहार '—आई' प्रत्यय के स्थान पर किया है तथा 'सच्चा' संज्ञा से 'सचावट' शब्द बनाया है। उदाहरण,

सचावट : वे केवल कवियों की कहानी है, इसलिए कथा में बस्तुता कुछ सचावट नहीं[3]

इसी अर्थ और भाव में इंशा अल्ला खाँ ने '—औटी' प्रत्यय का व्यवहार भी किया है यथा,

सचौटी : बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं[4]

'—इत' यह संस्कृत प्रत्यय है। इससे भाववाचक संज्ञाएँ निर्मित हुई हैं। इससे एक संज्ञा से दूसरी भाववाचक संज्ञाएँ निर्मित हुई हैं। इससे निर्मित 'आनंदित' और 'आल्हादित' परंपरागत हैं,

आनंदित : उसी समय तुम आनंदित औ आल्हादित होओ क्योंकि तुम स्वर्ग में बहुत फल पाओगे[5]

---

१. भार०, पृष्ठ ३।
२. भू०, पृष्ठ २४।
३. कथा०, पृष्ठ ४।
४. रानी०, पृष्ठ ५।
५. धर्म०, पृष्ठ ८।

इसी के साम्य पर 'स्वाद' से 'स्वादित' शब्द बना लिया गया है। यथा,

स्वादित : तुम भूमि के लोन हो, परंतु जो लोन का स्वाद जाता रहे तो वह किस रीति से स्वादित किया जाएगा[१]

'—इका' इसका प्रयोग भाववाचक संज्ञा के लिए मिलता है, यथा,

आजीविका : और नाव की आजीविका करने हारों को इनसे बड़ा उपकार है[२]

'—ई' यह बहु अर्थक और सक्रिय प्रत्यय है। इससे कई प्रकार के अर्थ व्यक्त किये गये हैं। पुँल्लिग से स्त्रीलिंग, दीर्घ आकार से लघु आकार तथा भाव बोधक संज्ञाएँ इसी प्रत्यय से बनाई गयी हैं। यह विशेषण बनाने में भी सक्रिय है, यथा,

बेटी : बेटे बेटी को मूआ देख[३]

कलसियों : कलस कलसियों की जोत बिजली सी चमक रही[४]

उदासी : जब से जन्म लिया है तब ही से उदासी हो बनबास करते हैं[५]

इससे लघुतावाचक संज्ञाएँ भी बनायी गयी हैं, यथा,

पत्रि : इस भाँत पत्रि अपने हाथ से लिखकर सुलोचना ने उसी मालिन के हाथ फिर माधव के पास भेजी[६]

'—ईत' यह भावबोधक प्रत्यय है। यथा,

निर्णीत : इसी रीति मनुष्य की इच्छानुसार गण निर्णीत होते हैं[७]

'—ईय' यह योग्यता बोधक प्रत्यय है। इसका प्रयोग सामान्य रूप से क्रियाओं के साथ मान्य है। परन्तु यहाँ संज्ञाओं के साथ इसका प्रयोग करके 'भोजनीय' शब्द निर्मित कर लिया गया है, यथा,

भोजनीय : मनुष्य उनके फलों को भोजनीय जानके भोजन कर्ते हैं[८]

'—ओड़ा' यह भाव बोधक प्रत्यय है। इससे व्यंग्य और उपहास की निष्पत्ति हुई है। प्रत्यय का योग होने पर मूल प्रकृति का दीर्घ स्वर '—आ' ह्रस्व स्वर '—अ' में बदल गया है, यथा,

भगोड़ा : और नाम धराया है जो फिर आय भगोड़ा[९]

---

१. धर्म०, पृष्ठ ८।

२. पदा०, पृष्ठ ६।

३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २१।

४. प्रेम०, पृष्ठ १२४।

५. प्रेम०, पृष्ठ ६।

६. स्त्री०, पृष्ठ १३।

७. पदा०, पृष्ठ ६१।

८. पदा०, पृष्ठ ६४।

९. अश०, पृष्ठ ३८।

'औटा' इससे क्रमवाचक विशेषण शब्द निर्मित हुए हैं, यथा,

पहिलौटा : परंतु जब तक मरियम अपने पहिलौटा पुत्र न जनी तब तक युसफ उसके निकट न गया[1]

'—क' यह संस्कृत का परप्रत्यय है। यह इस शती में अत्यंत सक्रिय रहा है। इससे संबंधी और सादृश्य अर्थों की निष्पत्ति हुई है। यथा,

सूर्यादिक : शिष्य ! गुरुजी भूगोल का वर्णन तो सुना, आगे सूर्यादिक नवग्रहों का और सातों ऊर्द्ध लोकों का वर्णन कहो[2]

धान्यादिक : मनुष्यों के जीवन के लिए धान्यादिक···सृष्टि की है[3]

वृक्षादिक : गुरु। हाँ, पहले सबके ऊपर काली मृत्तिका है मृत्तिका में शस्त्र और वृक्षादिक होते[4]

रत्नादिक : गुरु।·········वह मृत्तिका प्राय रत्नादिक आकरों के निकट है[5]

नक्षत्रादिक : उन्होंने ग्रह नक्षत्रादिकों की गति अपने मन से ठहराकर उसके अनुसार संबत् निश्चय कर लिए है[6]

खड़ीबोली में आने से पूर्व यह प्रत्यय अवधी में भी इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हो चुका था जिससे स्पष्ट है कि संस्कृत के कुछ शब्द बहुत पहले से भाषा में प्रविष्ट होने लगे थे जो बोलियों से खड़ीबोली में ले लिये गये। रामचरितमानस में 'ब्रह्मादिक', 'कामादिक' आदि शब्दों में यही प्रत्यय है। यथा,

ब्रह्मादिक सुरसिद्ध, मुनीसा, प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा।[7] तथा
अरथ धरम कामादिक चारी, कहत ज्ञान विज्ञान विचारी ।।[8]

सादृश्य, सबंध और सम्बद्ध अर्थों में यह भारतेन्दु-काल तक चलता रहा। 'प्रणयैक' शब्द में यही प्रत्यय है। परवर्ती खड़ीबोली में इन अर्थों में 'इत्यादि' शब्द बहुप्रयुक्त हो गया है तथा '—क' प्रत्यय केवल 'पौराणिक', 'ऐतिहासिक' आदि शब्दों में बच रहा है।

'—कार' यह 'करने वाला' अर्थ व्यक्त करता है। यथा,

---

१. धर्म०, पृष्ठ २।
२. भू०, पृष्ठ ६६।
३. पदा०, पृष्ठ १०२।
४. पदा०, पृष्ठ ११०।
५. पदा०, पृष्ठ १११।
६. भार०, पृष्ठ ३।
७. रामचरितमानस, बालकाण्ड २६२।
८. रामचरितमानस, बालकाण्ड, ३७।

टीकाकार : तिन में से जिसका ठिकाना टीकाकारों के ग्रंथ में पाया, तिसे पीछे रहने दिया [1]

'—ज' यह 'उत्पन्न' अथवा 'से उत्पन्न हुआ' का अर्थ देता है,

गोत्रजा : अब तिन सबों के अभाव में दायविभाग लिखते हैं पत्नी दुहिता दौहित्र माता पिता भ्राता भाई का पुत्र गोत्रजा बन्धु शिष्य सब ब्रह्मचारी इन्हों के पूर्व-पूर्व के अभाव में [2]

'...दार' यह कृतित्व सूचक प्रत्यय है। उदाहरण निम्नलिखित है,

चौकीदार : उससे चौकीदार यही कहते थे [3]

'मान ~ —मान्' यह 'भरापूरा' अर्थ बताता है, यथा,

शोभायमान : और एक कमरा पत्थर के गलीचे से शोभायमान हो रहा है [4]

विद्यामान् : गुरु। हाँ, एक विद्यामान् ने पहले एक ग्रह देखा [5]

'—मय' इससे निर्मित सभी शब्द संस्कृत स्रोत से आये हैं और 'सहित' अर्थ देते हैं, यथा,

अग्निमय : शिष्य। धूमकेतु क्या अग्निमय है [6]

गंधकमय : गुरु। लवण विशेष गंधकमय वास्प सूर्य के तपने से पृथिवी पर से उठती [7]

बालुकामय : शिष्य। बालुकामय पर्वत हैं उनसे कुछ कार्य्य नहीं होता [8]

लवणमय : शिष्य। अैसा समुद्र का जल लवणमय क्यों है [9]

'—त्व' यह भाववाचक प्रत्यय है। परन्तु यहाँ गुणबोधक है और 'अनात्मा' के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है, यथा,

कठिनत्व : गुरु। और भी कुछ भेद हैं सुनो उसका निर्णय करने के योग्य है, आकर्षण, खण्डनीत्व, कठिनत्व, आकार पराधीन गमन इत्यादि गुण अनात्मा वस्तु को मिलते हैं [10]

'—त्व' के समानान्तर भाववाचक '—ता' प्रत्यय भी प्रचलित मिलता है। 'कठिनत्व' और 'कठिनता' दोनों शब्द व्यवहार में थे, यथा,

---

१. लाल० परि०, पृष्ठ ५।
२. दाय०, पृष्ठ ४३।
३. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।
४. पत्र०, पृष्ठ ७।
५. पदा०, पृष्ठ १३।
६. पदा०, पृष्ठ १७।
७. पदा०, पृष्ठ २६।
८. पदा०, पृष्ठ ३२।
९. पदा०, पृष्ठ ३७।
१०. पदा०, पृष्ठ २।

कठिनता : खंडनीत्व अर्थात् तोड़ने के योग्य वह कहावता है जिससे वस्तु के बहुत टुकड़े हो जाते हैं, कठिनता वह है जिससे सुख से वा दुःख से वस्तु बेधी जाय[१]

'—धारी' यह 'धारण करने वाला' अर्थ व्यंजित करता है। यथा,

जटाधारी : और जो जटाधारी वस्त्रहीन निरायुध को हनते हैं[२]

देहधारी : उसके तेज से सब वृक्षों को बढ़ती होती है और सब देहधारियों का शरीर पुष्ट होता है।[३]

'—पन—पना' यह अवस्थासूचक प्रत्यय है। इनसे एक संज्ञा से दूसरी भावबोधक संज्ञाएँ बनी हैं। इनका व्यवहार व्यक्तित्व के गुणों के संदर्भों में मान्य है। तद्भव शब्दों के साथ ही इनका व्यवहार मिलता है। प्रत्यय होने पर आकारान्त संज्ञाओं में विकार आ गया है। जैसे,

लड़कपन : क्योंकि जब लड़कपन में पिता-माता के घर रहते हैं[४]

परन्तु अन्य स्वरों से अन्त होने वाली संज्ञाओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मूल प्रकृति यथावत् है। 'पुजारीपना', 'पुरोहितपना' आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। इस स्थान पर उल्लेखनीय है कि इन प्रत्ययों का व्यवहार अवस्थासूचक संज्ञाओं के साथ है और व्यक्ति के चरित्र व्यक्तित्व संबंधी गुणों के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है। 'लड़कपन', 'अल्हड़पन', और 'फूहड़पन' आदि शब्द इसी प्रकार के हैं।

अल्हड़पन : अपने घोड़े पर बढ़के अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता-भालता चला जाता था[५]

फूहड़पन : और राठी ब्राह्मन की कन्या हटी विद्यालंकार नाम फूहड़पन में··· पंडित भई थीं[६]

अर्जित विद्या और सीखे हुए कौशल के संदर्भों में भी इनका व्यवहार किया जा रहा था जो परवर्ती खड़ीबोली में समाप्त हो गया। शब्द-रचना के एक नियम का विस्तार मिलते-जुलते संदर्भों में किस प्रकार कर लिया जाता है, ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न हैं, यथा,

---

१. पदा०, पृष्ठ ३।
२. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
३. पदा०, पृष्ठ ८।
४. स्त्री०, पृष्ठ १।
५. रानी०, पृष्ठ ४।
६. स्त्री०, पृष्ठ १५।

बालकपन ~ बालपने : बालक पन में विद्या सीखने से युवा अवस्था में सुख होता है[1]

बालपने से विद्या सीखने में असमर्थ है[2]

पुजारीपना : और उनमें पुजारी पना बापोती अर्थात पीढ़ी नहीं होता था[3]

पुरोहितपना : औ तभी से उनके कुनबे में पुरोहितपना पीढ़ी-पीढ़ी से होता चला आया[4]

विशेषणों के साथ इन प्रत्ययों का प्रयोग भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए किया गया है। उदाहरण,

अच्छेपन : उसके अच्छेपन का एक चिह्न[5]

गोलपना : उस पर बहुत छोटी-छोटी रेणु पड़ें तो उसका गोलपना नहीं बिगड़ जाता[6]

उक्त शब्द तद्भव अथवा देशज हैं। इनके साम्य पर संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ इनका व्यवहार सर्वस्वीकृत हो चुका था। ऐसे शब्द अभिव्यक्ति को शक्तिशाली बनाते हैं और भाषा को समृद्ध करते हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि भाषा के एक संरचनात्मक नियम का प्रसार संबंधित संदर्भों में अत्यंत शीघ्रता से हो जाता है और भाषा-विशेष का सामान्य नियम बन जाता है। नवीन शब्द-रचना इसी आधारभूत सिद्धांत पर निर्भर रहती है। इसके सटीक और टकसाली रूप निम्नलिखित हैं,

भाखापन : हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो[7]

कृतघ्नीपने : तिस पीछे नीच औ कृतघ्नीपने के ऐसे कर्म बन्द हुए[8]

साध्वीपने : इससे उस रानी के साधवीपने में कुछ टोटा नहीं पड़ा[9]

मिसलबंदी : पर हमने किसी टीका की मिसलबंदी पर, लाल-चंद्रिका की मिसल नहीं रक्खी[10]

'—वेत्ता' यह जानकार अर्थ का व्यंजक है। इससे एक संज्ञा से दूसरी संज्ञाएँ बनाई गयी हैं,

---

१. हिंदुई०, पृष्ठ १० ।
२. स्त्री०, पृष्ठ ५३ ।
३. भार०, पृष्ठ ५३ ।
४. कथा०, पृष्ठ १५ ।
५. कथा०, पृष्ठ ३ ।
६. भू०, पृष्ठ १०७ ।
७. रानी०, पृष्ठ २ ।
८. कथा०, पृष्ठ १०४ ।
९. स्त्री०, पृष्ठ ६ ।
१०. लाल० परि०, पृष्ठ ५ ।

पुराणवेत्ता : हिंदू पुराणवेत्ता चार युग ठहराते है[1]
इतिहासवेत्ता : यूरपीय इतिहासवेत्ता ऐसा लिखते हैं[2]

'—वाँ' यह क्रमसूचक विशेषण निर्मित करने वाला सक्रिय प्रत्यय है, यथा,

आठवां : तिस का आठवां लड़का[3]
सातवां : तब सातवें गर्भ में[4]

'—वती— वंती' : यह 'गुण' तथा 'सहित' भाव व्यक्त करते हैं। इनका प्रयोग अधिक नहीं है,

पुण्यवती : ब्राह्मनी रानी भवानी थी···वह दानशीला और पुण्यवती थी[5]
लज्जावती : प्रिय वचन बोलने वाली औ कोमल सुभाव और लज्जावती पति भकत धर्मशीला औ परमेश्वर की नित्य सेवा करने वाली[6]
गर्भवंतो : मरियम युसफ से बचपदत्त हुई, दोनों के एकठे होने के पहिले मरियम पवित्र आत्मा से गर्भवंती पाई गई[7]

'—वंत' यह प्रत्यय भी 'सहित' भाव प्रकट करता है। यह अत्यन्त सीमित क्षेत्र में प्रयुक्त हुआ है। यथा,

कृपावंत : अै अै ईश्वर कृपावन्त आप हो आदि और आप हो अन्त[8]

'—वंद' इसका व्यवहार अभिलेखों में है। यह एक शब्द से अतिरिक्त अन्यत्र व्यवहृत नहीं मिलता है। उदाहरण,

षुदाइवंद : हमारी चसमन वाड़ी कर गये तुम हम कौ रोकते हौ सो षुदाइवंद दुनियापति ने हमकौ कहा की[9]

'—वान' यह प्रत्यय 'सहित' का भाव व्यक्त करता है। संस्कृत शब्दों के साथ-साथ तद्भव शब्दों के साथ इसका व्यवहार मिलता है,

ज्ञानवान—ज्ञानवान्—ज्ञानबान : विद्या निधान ज्ञानवान······है[10]
विनाश पूर्वक ज्ञानवान् पश्चिम देशियों में[11]
पुत्र ज्ञानबान होके[12]

---

१. भार०, पृष्ठ ४।
२. भार०, पृष्ठ ५०।
३. प्रेम०, पृष्ठ १५।
४. प्रेम०, पृष्ठ १८।
५. स्त्री०, पृष्ठ १४।
६. स्त्री०, पृष्ठ २१।
७. धर्म०, पृष्ठ २।
८. गीते०, पृष्ठ २।
९. अभि०, ३ क।
१०. नासि०, पृष्ठ २।
११. उप० समाचार।
१२. उप०, पृष्ठ ४।

गुनवांन : : निर्धन गुनवान होय्[1]
हिमवान : उस हिमवान के बहुत शिखर हैं[2]

इनके साम्य पर 'समर्थवान, 'फलवान', 'विद्यावान' और 'बुद्धिवान' शब्द भी निर्मित कर लिये गये हैं। हिन्दी के शब्दकोश की समृद्धि में ऐसे शब्दों का विशेष महत्त्व है। इन्हें इस अवधि का भाषा-योगदान कहा जा सकता है। उदाहरण,

समर्थवान : ज्योतषी ही याजक थे, और वे सब समर्थवान् और प्रजा लोग अज्ञान इसीलिये उस गणना को कोई पुलाव के नहीं पूछता था, और उसको मान लेना यही धर्म था[3]

फलवान : फलवान होते हैं[4]

'...वाला—वालै—वालु' यह जातिबोधक परप्रत्यय हैं और स्थान-विशेष से सम्बद्ध होने का अर्थ भी स्पष्ट करते हैं। संबंध बताने के लिए भी इनका व्यवहार मिलता है, उदाहरण,

संहितावालों : इस बात में भागवत और ज्योतिष संहितावालों का कहना माने तो[5]

पटनावाले : मोहन सीध के इलाके के लोग मौजे पटना वाले आइ कै रात कै इनहो के इलाके का गाव् मौजे कान्हपुर को जलाइ गये[6]

बोकानेरवालै मारवाड़ वालु : लेकिन सिरकार बीकानेर वालै कहतै है कि अब हमारी १७ गाय बाकी है सो घोड़ी ८ सिरकार बीकानेर वाला मारवाड़ वालु की बीड़ मै वा षेतां मैं चरती हुई ले गया[7]

'—हारा' यह जातिबोधक तथा स्थान में संबंध बनाता है। '—वाला' प्रत्यय की तुलना में यह बहुप्रयुक्त प्रत्यय है। दोनों प्रत्यय लगभग समान अर्थ व्यक्त करते हैं परन्तु दोनों में अंतर यह है कि '—वाला' संज्ञा शब्दों

---

१. स्वो०, पृष्ठ ४।
२. भू०, पृष्ठ १०७।
३. भार०, पृष्ठ ५।
४. पदा०, पृष्ठ १२।
५. भू०, पृष्ठ २५।
६. अभि०, ३ क।
७. अभि०, १३ क।

के साथ स्वीकृत होता है और '—हारा' क्रियाओं के साथ स्वीकृत होता है। '—हारा' तत्कालीन ब्रजभाषा का प्रमुख प्रत्यय रह चुका था। परवर्ती खड़ीबोली में इसका पूर्ण स्थान '—वाला' प्रत्यय ने ले लिया है।

रहनेहारों : यर्दन नदी की चहूँ ओर के रहनेहारों ने निकलके उसके समीप आके...डुबकी लिई[1]

आने हारों : तुमको आने हारे क्रोध से भागने को किसने चिताया है[2]

सिखावने हारा : क्या कोई अंगरेजी के सिखावने हारा है[3]

'—वइया' इसका प्रचलन भी अत्यल्प स्थानों पर मिलता है। यह भी संबंध बोधक परप्रत्यय है। उदाहरण,

करवैये : धन्य वे जो मेल करवैये है[4]

'—वार'

ब्योरेवार : वर्णन ब्योरवार और सत्य है[5]

(iii) सामासिक शब्द—

सामासिक शब्द दो या अधिक प्रकृतियों पर आधारित हैं। ये प्रकृतियाँ परस्पर निकटस्थ अवयव के रूप में रहती हैं और एक नवीन अर्थ की व्यंजना करती हैं। आरंभिक खड़ीबोली में गद्य की अपेक्षा पद्य में सामासिक शब्द कम हैं। अभिलेखों में सामासिक शब्दों का प्रयोग संबोधनों से अतिरिक्त नहीं मिलता। संबोधनों में परम्परा का निर्वाह करने के कारण संस्कृत की दीर्घ सामासिक पदावली का प्रयोग मिलता है। 'श्री सर्वोपमायोग्येत्यादि सकल गुण गरिष्ट हरिहर हरेम्बवछन्दनीय कुमारात्मज'[6] आदि परम्परा के अनुकरण पर बनाये गये हैं। समास स्वदेशी और विदेशी दोनों स्रोतों की प्रकृतियों से बनाये गये हैं। स्वदेशी और विदेशी शब्दों के योग से बने संकर सामासिक शब्द इस समय तक विकसित नहीं हो सके थे। शब्द-रचना की यह विधि भारतेंदु काल से प्रकाश में आयी।

सामासिक शब्दों में व्याकरणिक प्रत्ययों का व्यवहार शब्दों के पश्चात् किया गया है यथा, मझले लड़के,[7] यदुबंसियों,[8] लीपने पोतने,[9]

१. धर्म०, पृष्ठ ५।
२. धर्म०, पृष्ठ ५।
३. बाक्या०, पृष्ठ ३।
४. धर्म०, पृष्ठ ८।
५. भार०, पृष्ठ २।
६. अभि०, २३ क।
७. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।
८. प्रेम०, पृष्ठ ११।
९. स्त्री०, पृष्ठ १।

देहधारियों,[१] राजकुलों।[२] कर्मधारय समासों में परपद में प्रयुक्त होने वाला व्याकरणिक प्रत्यय पूर्वपद में भी संयुक्त किया गया है। उदाहरण, छोटे बड़े,[३] चौबारे मीने बंगले।[४]

सामासिक शब्दों में दो प्रकृतियों का योग होने पर स्वरसंधि की प्रवृत्ति '—आ' स्वर के रूप में मिलती है। यथा,

धर्मावतार[५]
स्थूलार्थ[६]
सिद्धान्तार्थ[७]
सभास्थ[८]

'गोलाध्याय'; 'नामानुकारि', 'मिताक्षरा', 'क्रयादिक', 'आध्यावाहनिक', 'समानांतर' आदि शब्द भी इसी विधि से निर्मित हुए हैं। इस विधि से बने संधियुक्त सामासिक शब्दों का प्रयोग अन्य रचनाओं की अपेक्षा 'भूगोलसार' शीर्षक रचना में अधिक मिलता है। सामासिक शब्दों में एक निश्चित पदक्रम मिलता है, परन्तु अपवाद रूप से 'दरबारि आम'[९] 'सितारे लारवां'[१०] जैसे अनिश्चित पदक्रम वाले सामासिक शब्द भी भाषा में दृष्टिगत होते हैं। ऐसे रूप तत्कालीन उर्दू से प्रभावित प्रतीत होते हैं। रोमन लेखन पद्धति के प्रभाव से सामासिक शब्दों में हाइफन '—' की योजना 'प्रेमसागर' और 'लालचन्द्रिका' नामक दो रचनाओं में प्राप्त होती है। दोनों रचनाएँ लल्लू जी लालकवि द्वारा लिखित और सम्पादित हैं। भाषा में यह प्रवृत्ति आरंभिक अवस्था में है।

उपलब्ध सामासिक रूपों को उनके निर्मायक तत्त्वों के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है,

(i) जिनके दोनों तत्त्व अर्थ की दृष्टि से प्रमुख हैं। यह द्वन्द्व समास हैं। इसके दो भेदों—इतरेतर और समाहार द्वन्द्व—में से केवल समाहार द्वन्द्व समास के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस समास के दोनों तत्त्व अपने निजी अर्थ के अतिरिक्त मिलते-जुलते भावों को प्रकट करते हैं। यह अग्रलिखित प्रकार के हैं,

---

१. यदा०, पृष्ठ ८।
२. भार०, पृष्ठ २।
३. प्रेम०, पृष्ठ १६।
४. अश०, पृष्ठ ४१ पृष्ठभाग।
५. प्रेम०, पृष्ठ ३।
६. उप०, समाचार।
७. दाय०, पृष्ठ ५।
८. मनो०, पृष्ठ १३।
९. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ५।
१०. गीते०, पृष्ठ ३६।

(i) जिनके दोनों तत्त्व एकार्थी हैं, यथा,

तत्सम + तत्सम	मायामोह[१]
तत्सम + तद्भव	सेवा टहल[२]
देशज + देशज	लीपने पोतने[३]
तद्भव + तत्सम	भाई बंधु[४]
तद्भव + तद्भव	काम काज[५]

(ii) जिनके दोनों तत्त्व मिलते-जुलते अर्थ रखते हैं। यथा,

तद्भव + तद्भव	नौकर चाकर[६]
	वेद पुराण[७]

(iii) जिनके दोनों तत्त्व विपरीत अर्थ रखते हैं, यथा,

तद्भव + तद्भव	ढाढी ढाढिन[८]
	घटती बढ़ती[९]
तत्सम + तत्सम	धर्म अधर्म[१०]
	ग्वाल बाल[११]
	पुन्न दान[१२]
तत्सम + तद्भव	पशुपंछी[१३]
	देवता पितर[१४]
तद्भव + तत्सम	चोआ चंदन[१५]
तत्सम + विदेशी	मा वाप[१६]

'खिलाय-पिलाय', 'दूध-दही', 'झाड़-बुहार' आदि समाहार द्वन्द्व समास के उदाहरण हैं।

निश्चयात्मक समास—इन सामासिक रूपों का प्रथम तत्त्व परवर्ती तत्त्व

---

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५५।
२. नासि०, पृष्ठ ११।
३. स्त्री०, पृष्ठ १।
४. अश०, पृष्ठ ४१।
५. स्त्री०, पृष्ठ ४।
६. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ५।
७. नासि०, पृष्ठ ३।
८. प्रेम०, पृष्ठ २८।
९. भू०, पृष्ठ २८।
१०. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
११. अश०, पृष्ठ ३८।
१२. अश०, पृष्ठ ४१।
१३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
१४. नासि०, पृष्ठ ३।
१५. प्रेम०, पृष्ठ २०३।
१६. नासि०, पृष्ठ २९।

की विशेषता बताता है। परवर्ती तत्त्व विशेष्य रूप में रहता है। यह निम्नलिखित है,

तत्पुरुष समास—इनका प्रथम तत्त्व दूसरे तत्त्व की विशेषता या प्रधानता व्यक्त करता है। यह समास दो प्रकार के हैं, यथा,

(i) व्यधिकरण तत्पुरुष समास—इनका विग्रह करने पर विभिन्न प्रकार के कारक-चिह्नों का योग आवश्यक हो जाता है। इन्हें संबंध तत्पुरुष समास कहा जा सकता है। यथा,

तत्सम + तद्भव	राज गद्दी[1]
विदेशी + विदेशी	ज़ीन पोश[2]
	पायन्दाज[3]
तत्सम + तत्सम	अग्निजाल[4]

संबंध तत्पुरुष समास अधिक अनुपात में मिलते हैं। 'धर्मशास्त्र' 'सेनापति' आदि कुछ अन्य उदाहरण हैं,

(ii) समानाधिकरण तत्पुरुष समास—इन सामासिक शब्दों में द्वितीय तत्त्व प्रधान होता है तथा प्रथम तत्त्व द्वितीय तत्त्व की प्रधानता स्पष्ट करता है। प्रथम तत्त्व विशेषता बताता है परंतु विशेषण वर्ग का शब्द नहीं होता। यह निम्नलिखित है,

(क) जिनका पूर्व तत्त्व सामान्य विशेषण है,

तद्भव + तद्भव	ठंढी ठंढी हवाएँ[5]
	भलमनसी[6]
	पक्की चुआन[7]
तद्भव + तत्सम	भली भाँति[8]
	पहिलौटा पुत्र[9]
तत्सम + तत्सम	अलप वेयस[10]
	गुरु पदार्थ[11]

---

१. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७१।
३. गीते०, पृष्ठ ७।
४. अश०, ३८ पृष्ठभाग।
५. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ८।
६. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५१।
७. प्रेम०, पृष्ठ १२।
८. लाल० परि०, पृष्ठ ३।
९. धर्म०, पृष्ठ २।
१०. नासि०, पृष्ठ ३६।
११. भू०, पृष्ठ ५१।

तत्सम + तद्भव — भयानक चाल[१]
अनूठी बात[२]

(ख) जिनका पूर्वपद संख्यावाचक विशेषण है, यथा,

तद्भव + तत्सम — सवा मन[३]
नौ खंड पृथ्वी[४]

तद्भव + तद्भव — बारह बरस[५]
दो मुट्ठी[६]

तत्सम + तत्सम — दश सहस्त्र राजों[७]

विदेशी + विदेशी — दौलत मंद[८]
गुनहगार[९]
बंदर बोटें[१०]

तत्सम, तद्भव + विदेशी —
जली जबान[११]
निमक हराम[१२]
सहस्त्रों तोगें[१३]

विदेशी + तत्सम, तद्भव — अंगरेजी भाषा[१४]
गिरजाघर[१५]

अव्ययीभाव समास—यह निश्चयात्मक समासों का तीसरा प्रकार है। इनका पूर्वपद प्रधान होता है। यह 'प्रति —', 'नि —' आदि पूर्व प्रत्ययों से बनाये गये हैं तथा संस्कृत परंपरा से आये हुए हैं, यथा,

(i) प्रतिपालन[१६]
प्रतिग्रह[१७]
प्रतिदिन[१८]

---

१. प्री० ओ० स०, पृष्ठ ५२।
२. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६।
३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ७२।
४. प्रेम०, पृष्ठ ६।
५. नासि०, पृष्ठ ३।
६. अश०, पृष्ठ ४०।
७. नासि०, पृष्ठ ११।
८. हिं० रो०, पृष्ठ १५।
९. गीते०, पृष्ठ ३६।
१०. पत्र०, पृष्ठ १२।
११. अश०, पृष्ठ ३७।
१२. गीते०, पृष्ठ ८।
१३. पत्र०, पृष्ठ १४।
१४. वाक्या०, पृष्ठ ३।
१५. पत्र०, पृष्ठ ८।
१६. स्त्री०, पृष्ठ २१।
१७. दाय०, पृष्ठ ३।
१८. पदा०, पृष्ठ ३५।

(iii) दूसरे प्रकार के अव्ययीभाव समास पुनरुक्त शब्द हैं। इनका विवेचन यथास्थान किया गया है।

बहुव्रीहि समास—इन सामासिक शब्दों के दोनों तत्त्वों में से कोई भी तत्त्व अर्थ की दृष्टि से प्रधान नहीं है। दोनों तत्त्व परस्पर मिलकर एक भिन्न अर्थ व्यक्त करते हैं। ऐसे शब्द अधिक नहीं मिलते। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं,

अन्तरयामी[1]
पतिव्रता[2]
मूर्तिमंत[3]

पुनरुक्त शब्द—रचना-प्रक्रिया तथा अर्थ-व्यंजकता की दृष्टि से पुनरुक्त शब्द सामासिक शब्दों से अधिक भिन्न नही हैं। इनमें और सामासिक शब्दों में अंतर केवल इतना है कि सामासिक शब्दों में दो भिन्न प्रकृतियाँ निकटस्थ अवयव के रूप में कार्य करती हैं और पुनरुक्त शब्दों में दो समान प्रकृतियों की पुनरुक्ति अथवा दो असमान प्रकृतियों (ध्वनि-परिवर्तन से प्रभावित या युक्त) का योग किया जाता है। संयुक्त होने पर ये असम्मति आदि अर्थ भी व्यक्त करती हैं। पुनरुक्त शब्द तत्सम, तद्भव और देशज हैं तथा संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रियाएँ हैं। आलोच्य अवधि में संज्ञाओं और क्रियाओं की पुनरुक्ति प्रमुख रही है। 'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' में अपेक्षाकृत अधिक पुनरुक्त शब्दों का व्यवहार किया गया है। काव्य में इनका प्रयोग नगण्य है। पुनरुक्त शब्दों में भी 'हाइफन' की योजना नहीं मिलती। व्याकरणिक प्रत्ययों का प्रयोग अपवाद रूप से शब्दों के बीच में भी कर लिया गया है यथा, 'बीचों बीच'। सभी उदाहरण निम्नलिखित हैं,

संज्ञा + संज्ञा—

तत्सम + तत्सम	जन्म जन्म[4]
	तीर तीर[5]
तद्भव + तद्भव	गांव गांव गली गली घर घर[6]
	दही दही[7]
विदेशी + विदेशी	मुल्क मुल्क[8]

१. नासि०, पृष्ठ २७।
२. नासि०, पृष्ठ ६।
३. भू०, पृष्ठ ५०।
४. प्रेम०, पृष्ठ ११।
५. नासि०, पृष्ठ ३३।
६. प्रेम०, पृष्ठ १६।
७. प्रेम०, पृष्ठ २८।
८. बै० हि० हिंदु०; पृष्ठ २।

सर्वनाम + सर्वनाम	
तद्‌भव + तद्‌भव	अपने अपने[1]
	किसी २[2]
	जो जो[3]
विशेषण + विशेषण	
तद्‌भव + तद्‌भव	कड़ोड़ कड़ोड़[4]
	ठंढी ठंढी[5]
देशज + देशज	टटकी टटकी[6]
अव्यय + अव्यय	
तद्‌भव + तद्‌भव	भांति भांति[7]
	धीरे धीरे[8]
	पल पल[9]
देशज + देशज	होले होले[10]
	जुदी जुदी[11]
क्रिया + क्रिया	
तद्‌भव + तद्‌भव	गिड़गिड़ाकर[12]
	गिर गिर[13]
	बैठे बैठे[14]

समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि खड़ीबोली की आरंभिक प्रकृति में ह्रस्व और दीर्घ स्वरांत संज्ञाएँ अधिक प्रयुक्त हो रही थीं। अ, इ, उ, तथा आ, ई और ऊ स्वरों से अतिरिक्त ए और ओ स्वरों से अंत होने

१. प्रेम०, पृष्ठ २२।
२. पत्र०, पृष्ठ २।
३. पदा०, पृष्ठ २।
४. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ६।
५. प्रेम०, पृष्ठ १०।
६. प्रेम०, पृष्ठ ३९।
७. प्रेम०, पृष्ठ १०।
८. स्त्री०, पृष्ठ १७।
९. गीते०, पृष्ठ ३९।
१०. पत्र०, पृष्ठ ११।
११. भार०, पृष्ठ ५१।
१२. ओ० फेब्यु०, पृष्ठ ६।
१३. हिं० रो०, पृष्ठ २०।
१४. लाल० परि०, पृष्ठ २।

वाली संज्ञाएँ भी मिलती हैं। परन्तु संयुक्त स्वर ऐ और औ से अंत होने वाली संज्ञाएँ नगण्य हैं।

इसमें संस्कृत और फ़ारसी के साथ अंग्रेजी भाषा के शब्द भी प्रविष्ट होने लगे। अंग्रेजी भाषा के शब्द पद और उपाधियों के माध्यम से प्रविष्ट हो रहे थे। इसका प्रथम उदाहरण 'मिस्तर' शब्द है। यह पंडित सदल मिश्र कृत 'अध्यात्म रामायण' में डॉ० गिलक्राइस्ट के संदर्भ में मिलता है। ब्रजभाषा, राजस्थानी, अवधी और बँगला भाषाओं का मिश्रण भी कम नहीं था। ये सब उदाहरण खड़ीबोली के आरंभिक मिश्रित स्वरूप और उसकी व्यापकता स्पष्ट करते हैं।

आरंभिक खड़ीबोली की कोश-विषयक शब्द-समष्टि अपरिमित, विस्तृत, वैविध्यपूर्ण तथा सुनिश्चित थी जो नई आवश्यकताओं, भावों, विचारों को वहन करने में सक्षम थी। इसमें लगभग दो दर्जन से अधिक विषयों को अभिव्यक्त करने की क्षमता निहित थी। राजनीति, अर्थ और मुद्रा संबंधी शब्द अधिक नहीं मिलते।

इसमें ग्रहण करने की शक्ति के साथ साथ उत्पादन क्षमता पूर्णतः विकसित हो चुकी थी। प्रत्यय स्तर पर इसका स्वरूप मिश्रित था। इसमें एक ओर पूर्ववर्ती भाषाओं यथा, संस्कृत, फ़ारसी और ब्रजभाषा और अवधी आदि के रचनात्मक तत्त्वों का प्रवेश हो चुका था तो दूसरी ओर खड़ीबोली की निजी रचनात्मक क्षमता विकसित हो चुकी थी। प्रकृति और प्रत्ययों से निर्मित रूप १८२० ईसवी और उसके पश्चात् से सक्रिय मिलते हैं। 'विषयक', 'सुन्दरताई', 'पटुताई', 'रहने हारे', 'करवैये' जैसे शब्दों से विदित होता है कि खड़ीबोली का यह स्वरूप प्रान्तीय विशेषताओं से मुक्त नहीं हो सका था। यह द्विविधता और विकल्प प्रधान भाषा बनी हुई थी। अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रवेश आरंभ हो जाने पर भी अंग्रेजी भाषा के प्रत्ययों का प्रवेश आरंभ नहीं हो सका था। कुछ प्रत्यय परंपरा से भिन्न विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। '—अन' प्रत्यय संज्ञा से अतिरिक्त क्रियाओं के साथ भी प्रयुक्त हो रहा था। 'अनचढ़' इसी प्रत्यय से बना शब्द है। परवर्ती खड़ीबोली में यह संज्ञाओं के साथ ही स्वीकृत मिलता है। 'कु—' उपसर्ग से बने 'कुचाली', 'कुयुक्ति'; 'सु—' से निर्मित 'सुदेस', 'सुबरन', 'सुसमय', 'सुदिन', 'सुनज़र',

'सुमानसी' शब्द नवीन शब्द रचना के उदाहरण हैं जो परवर्ती खड़ीबोली में अपरिचित हो गये हैं।

परप्रत्ययों से निर्मित रूप साहित्यिक स्वरूप में बहुलता से मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बोलचाल में ऐसे यौगिक शब्दों का प्रचलन नहीं था। साहित्यिक और व्यावहारिक दोनों स्वरूप परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित रहने पर भी इसी स्तर पर परस्पर भिन्न थे। इसी प्रकार सामासिक शब्दावली का प्रचलन साहित्य में स्थान-स्थान पर था। परन्तु अभिलेखों में सम्मान बोधक स्थलों से अतिरिक्त सामासिक शब्द नहीं मिलते।

———

अनुभाजन ७

शब्द प्रयोग और शब्दार्थ वैशिष्ट्य

देश और काल से भाषा का अविच्छिन्न संबंध होता है। कोई भी भाषा एक देश और एक काल को दृढ़ सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक परिस्थितियों और परिवेशों के मध्य प्रयुक्त होती है। इन परिवेशों के विविध आयामों में होने वाले परिवर्तनों के प्रत्येक पक्ष और पहलू की व्यंजना तथा परिवर्तन के दायित्व का निर्वाह करने में प्रत्येक भाषा सक्षम होती है।

सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक मूल्यों तथा वैज्ञानिक अवधारणाओं में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव को भाषा के सभी आयामों एवं उपव्यवस्थाओं (Subsystems) के प्रत्येक स्तर पर देखा जा सकता है। ध्वनि-संयोजन (Phonology) शब्द-रचना (Word formation) शब्दरूप-रचना, वाक्य-संरचना (Syntax) तथा शब्द संपदा (Lexicon) और अर्थपरक अभिलक्षण (Meaning) तथा शब्द प्रयोग सभी स्तरों पर वह प्रभाव को कम या अधिक ग्रहण करती है।

प्रस्तुत स्थल पर यह देखना अभीष्ट है कि सामयिक सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा वैज्ञानिक परिवेश खड़ीबोली के आरंभिक परिवेश को कितना और किस प्रकार प्रभावित कर सके हैं जिससे एक निश्चित अवधि में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ और शब्दों का प्रयोग प्रभावित हुआ है तथा शब्दों ने अपनी परिवर्तनात्मकता (Dynamism) में भाषा को गतिशीलता और जीवंतता प्रदान की है जिससे वह अभी तक क्रियाशील है। क्योंकि किसी भी भाषा में शब्दों की एकता और उनके संगठन का अन्तःप्रवाह किसी अन्य की अपेक्षा समाज की विचारधारा तथा उसके विकास की दिशा से निकट रूप से संबंधित है। एक भाषा का प्रयोक्ता, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक प्रगति से उद्भूत नवीन भावों, विचारों और नवीन वस्तुओं का बिम्ब ग्रहण विविध रूपों में करता है। वह किसी शब्द को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा

बोधन क्षमता के अनुरूप ग्रहण करता है जिससे भाषा में शब्दार्थ और प्रयोग प्रभावित होते हैं। इससे कभी तो शब्दार्थ संबंध में परिवर्तन आ जाता है तो कभी भिन्न संदर्भों में प्रयोग कर लिये जाने के कारण शब्द परम्परागत अर्थ और प्रयोग से भिन्न हो जाते हैं। अर्थात् शब्द अपने निश्चित क्षेत्र और प्रयुक्ति को छोड़कर इतर क्षेत्रों और प्रयुक्तियों में प्रयुक्त होने से अर्थ और प्रयोग-भेद से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार कहीं मूर्त से अमूर्त तो कहीं आलंकारिक अर्थ भी देने लगते हैं। कभी मूल अर्थ रखते हुए भिन्न सन्दर्भ में प्रयुक्त होते हैं और लक्षणा से प्रभावित होते हैं। यह अर्थ-भेद मूल शब्द से सामासिक और यौगिक प्रक्रिया के माध्यम से भी व्यक्त किया जाता है। क्योंकि पूर्व प्रत्यय और परप्रत्यय अर्थ-भेद में सहायक होते हैं। ऐसी स्थिति में निश्चित व्याकरणिक संवर्ग का शब्द भिन्न व्याकरणिक कोटि के बना लिये जाते हैं। विशेषण से संज्ञा, संज्ञा से विशेषण तथा संज्ञा से नाम धातुएँ इसी अर्थ-भेद के लिए बना ली जाती हैं। प्राय: ऐसा संदर्भ के अनुरूप एक शब्द से अनेक अर्थच्छायाएँ देने के उद्देश्य से भी कर लिया जाता है। शब्दों की व्याकरणिक व्यवस्था, व्यवस्था में अत्यंत दृढ़ और निश्चित होने पर भी उसमें पूर्ण नवीनता के लिए अधिक स्थान नहीं होता। परंतु इसके विपरीत शाब्दिक संगठन निरंतर विकास की प्रक्रिया में रहता है जिससे कभी तो नवीन शब्द या इकाइयाँ भाषा में स्थान बनाती जाती हैं तो कभी कुछ शब्द लुप्त हो अन्य शब्दों को स्थान देते जाते हैं। कभी एक शब्द संदर्भ के अनुसार भिन्न-भिन्न नवीन अर्थों की अभिव्यंजना करता है और एक अर्थ छोड़ दूसरे अर्थ का व्यंजक हो जाता है।

खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में उपलब्ध अनेक रूढ़, यौगिक और सामासिक शब्दों में से अनेक शब्द भाषा-विकास की परंपरा में परवर्ती खड़ीबोली से लुप्त हो चुके हैं तो अनेक शब्दों ने अपनी अर्थ-दिशा परिवर्तित कर ली हैं। अचंभे, अर्थी, गणितांक, बजंत्री, रण्डी, लिषी इसी प्रकार के कुछ शब्द हैं। "लिषी" का संज्ञा अर्थ समाप्त हो केवल क्रिया भाव बच रहा है। संज्ञा अर्थ में पत्र, ख़त, चिट्ठी शब्द बहुप्रचलित हो गये हैं।

शब्दों की एक लंबी सूची अस्वीकार्य प्रयोगों की मिलती है जिसमें शब्दों का मानक संदर्भों से भिन्न संदर्भों में व्यवहार किया गया है। एक प्रयुक्ति के शब्द इतर प्रयुक्त में सहज ही ले लिये गये हैं जिससे शब्द के प्रचलित और व्यवहृत अर्थ परस्पर दूर हो गये हैं। संदर्भ के अनुरूप प्रयोग नहीं रह गया है। कहीं कथ्य अर्थात् वाच्य या अर्थ और अभिव्यक्ति अर्थात् वाचक

का संबंध नहीं मिलता। सम्प्रेष्य के अनुसार शब्दों का चुनाव नहीं किया गया है। सामाजिक-सांस्कृतिक और वैज्ञानिक परिवेश के अन्तर्गत भाषा का व्यवहार है। उस परिवेश के अनुरूप शब्दों का चयन नहीं किया गया है अर्थात् इस समय का सामाजिक-सांस्कृतिक और वैज्ञानिक परिवेश भाषा-व्यवहार को नियंत्रित नहीं कर सका है। कहीं-कहीं प्रयोग और संदर्भ समान होने पर अर्थ-भेद आ गया है।

वास्तव में, नई परिस्थितियों में नये संकल्पों, आदर्शों, भावों तथा सामाजिक-सांस्कृतिक और वैज्ञानिक आवश्यकताओं से स्वयं परिचित होने और खड़ीबोली के माध्यम से उन्हें लोकचित्त में उतारने, पैठाने अर्थात् सम्प्रेषित करने के लिए प्रयोक्ताओं को भाषा के परम्परागत स्वरूप में कुछ परिवर्तन करना पड़ गया है जिससे बहुत-से शब्द नये भावों और अर्थों के लिए प्रयुक्त कर लिये गये हैं तो कुछ किंचित् परिवर्तन के साथ ग्रहण किये गये हैं। नई अभिव्यंजनाओं के लिये शब्दों के प्रयोग में अंतर आ गया है। ऐसी अवस्था में कहीं शब्द का भ्रामक स्वरूप और विपरीत अर्थ ग्रहण कर लिया गया है जिससे अर्थान्तर उपस्थित हो गया है तो कहीं अपूर्ण अर्थ ग्रहण करने के कारण शब्दों में सूक्ष्म अर्थ-भेद हो गया है। पर्यायवाची शब्दों में सूक्ष्म अंतर न समझ सकने के कारण भी अर्थ और प्रयोगगत शिथिलताएँ प्रवेश कर गयी हैं जो सहज ही ध्यान आकृष्ट कर लेती हैं। इस प्रकार सीखे हुए शब्दों का अनुचित संदर्भों में प्रयोग भाषा में भरा पड़ा है जो खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप को भारतेंदु कालीन परवर्ती स्वरूप से पृथक् कर देता है।

उल्लेखनीय है कि खड़ीबोली से पूर्व संस्कृत, ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, बँगला, मैथिली आदि में पर्याप्त साहित्य निबद्ध हो चुका था। फ़ारसी का समृद्ध भण्डार था और उर्दू भी सामानांतर रूप से पनप रही थी। भारतीयों से अतिरिक्त अंग्रेज अधिकारी भी इस साहित्य से परिचित हो चुके थे। खड़ीबोली का प्रारंभिक साहित्य विभिन्न बोलियों से सम्बद्ध भारतीय तथा अंग्रेजी और उर्दू फ़ारसी मातृभाषी विदेशी विद्वानों के द्वारा लिखा गया है। फलस्वरूप भाषा-अधिगम प्रक्रिया के मध्य खड़ीबोली की पर्याप्त जानकारी के अभाव में अनियमितताएँ आ गयी हैं। इन्होंने शब्दों के जन-प्रचलित अर्थ ग्रहण कर विभिन्न संदर्भों और प्रसंगों में उनका प्रयोग किया या फिर अपनी भाषा के प्रचलित संदर्भों से जोड़ दिया। एक भाषायी परिवेश का शब्द इतर परिवेशों में भिन्न अर्थों में ग्रहण किया गया। यादृच्छिक प्रयोगों के कारण

भाषा में वैविध्य उपस्थित हो गया। इस प्रकार •प्रयोग-सापेक्ष-विकल्पन प्रयोक्ता-सापेक्ष-विकल्पनों से प्रभावित हुआ है जिससे भाषा के संगठन का निश्चित पैटर्न प्रभावित हुआ। भाषा के व्यवहार-क्षेत्र में विकल्पन अनिवार्य रूप से आ गये हैं।

अर्थ और प्रयोग के स्तरों पर भेदों का एक अन्य कारण शब्दों का अनूदित रूप है। यह कथ्य से साम्य न रखने के कारण अटपटा-सा हो गया है। इस प्रकार भाषा के व्यवहार-क्षेत्र में वैविध्य भाषा की व्यवस्था में अनिवार्य रूप से आ गया है। विदित है कि इस समय के ईसाई धर्मावलंबियों का उद्‌देश्य ईसाई धर्म का प्रचार और प्रसार करना था तथा अंग्रेज शासनाधिकारियों का उद्‌देश्य सत्ता-विस्तार करना था। इसके लिए जनता से सीधा और प्रगाढ़ सम्पर्क स्थापित करना अत्यंत आवश्यक समझा गया। जनता के हृदय में प्रवेश करने और उसे निकट से समझने के लिए उन्होंने जनसामान्य में प्रचलित भाषाओं में पाठ्य पुस्तकें तैयार करने और धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद और रूपांतर करवाने का कार्यक्रम आरंभ किया। खड़ीबोली में अनेक मौलिक ग्रंथ तैयार हुए तथा संस्कृत और ब्रजभाषा ग्रंथों की टीकाएँ लिखी गयीं और रूपान्तर हुए। वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद भी कम नहीं हुए। बाइबिल के भी अनुवाद हुए। इस प्रकार राजनैतिक और धार्मिक दोनों स्वार्थ प्रमुख बने रहने के कारण खड़ीबोली का पर्याप्त अनूदित साहित्य सहज ही तैयार हो गया। यह भाषा की भीतरी शक्ति प्रबल करने तथा अभिव्यक्ति कौशल समृद्ध करने में सहयोगी हुआ। परन्तु दूसरी ओर भाषा-प्रयोग का आयाम उपेक्षित रह गया। प्रयुक्ति, संदर्भ और कथ्य के अनुरूप कौन-सा अनूदित रूप स्वीकृत या अस्वीकृत है अथवा विसंगत इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इधर शासकीय और अदालती कार्यवाहियों में तथा पारिवारिक पत्रों में प्रादेशिक भाषाओं के साथ-साथ खड़ीबोली का प्रवेश हो जाने से पत्र-शैली ने अपनी एक अलग पहचान बना ली थी। परंतु यहाँ भी कथ्य और अभिव्यक्ति में असामंजस्य बना ही रहा। फ़ारसी और प्रादेशिक भाषाओं के प्रभाव से शब्दों का सटीक चयन अनेक स्थलों पर नहीं हो सका। वास्तव में प्रत्येक भाषा की व्यवस्था नियमबद्ध होती है। इसके दो नियम होते हैं—एक, संरचना संबंधी नियम और दूसरे, प्रयोग संबंधी नियम। यहाँ प्रयोग-संबंधी नियमों की अवहेलना अस्वीकार्य प्रयोगों का कारण बन गयी है। भाषा के व्यवस्थापरक नियमों की ओर ध्यान न देने के कारण अर्थ विसंगतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। अस्वीकार्य और विसंगत प्रयोग भावाभिव्यक्ति और तात्पर्य बोध में किसी

प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं करते। इनसे भाषा की सम्प्रेषणीयता का गुण कम नहीं हुआ है, परन्तु भाषा का सहज प्रवाह अवश्य बाधित हो गया है। परवर्ती खड़ीबोली की मानक-भाषायी-व्यवस्था की तुलना में शिथिल और अपरिपक्व होने पर भी खड़ीबोली का यह स्वरूप भाव प्रकाशन के योग्य और वैज्ञानिक विषयों के विवेचन में सक्षम था, इसमें संदेह नहीं। प्रस्तुत स्थल पर शब्दों के अस्वीकार्य और विसंगत रूपों और उनके अर्थों का विवेचन है जो भाषा के व्यवस्थापरक नियमों से सर्वथा भिन्न हो गये हैं।

अंकुर—यह संस्कृत भाषा का शब्द है। इसका अर्थ निर्जीव या जड़ पदार्थों और वस्तुओं का आरंभिक विकास या प्रादुर्भाव है। इसका प्रयोग नवोद्भिद वस्तु और प्रकृति के संदर्भ में मान्य है। परन्तु खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में "प्राणिजाति के विकास और उसका प्रभाव आरंभ होने की अवस्था" के लिए प्रयुक्त किया गया है। मानक संदर्भों से भिन्न संदर्भों में प्रयुक्त होने के कारण इससे भाषा में विसंगति उत्पन्न हो गयी है। यह भाषा के विसंगत और अस्वीकार्य प्रयोगों का उदाहरण है। (कथ्य और अभिव्यक्ति से साम्य न रखने वाले ऐसे अनेक उदाहरण खड़ीबोली के आरंभिक रूप में भरे पड़े हैं।) यह भी कहा जा सकता है कि यह भाषा-व्यवहार में भले ही वस्तु के संदर्भ में प्रचलित रहा होगा परन्तु अनुवाद करते समय उपयुक्त शब्द स्मरण न आने पर जो शब्द तुरन्त याद आ गया उसका प्रयोग कर अभीष्ट विचार अभिव्यक्त कर दिया गया है।

> पाँचवाँ संवत ईसा मसीह के जन्म से लेकर रूम के
> महाराज्य के उलटाव तक इसी संवत में अब के
> यूरपीय लोगों का अंकुर प्रकाश होने लगा[1]

अकारण—यह 'कारण' शब्द में निषेध सूचक पूर्वप्रत्यय 'अ—' से निर्मित विशेषण है। इसका कोशगत अर्थ 'बिना करण के' अथवा 'जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण न हो' या 'स्वयंभू' होता है। सामान्यतः इसका व्यवहार किसी पदार्थ आदि के संदर्भ में स्वीकृत है। परन्तु यहाँ 'निरर्थक' या 'जिसमें कोई लाभ न हो' के लिए किया गया है और 'बिना कारण के भय या डर की संभावना करना' अर्थ प्रकट किया गया है। विदित है कि इस समय तक 'व्यर्थ' और 'निरर्थक' शब्द भी इसी अर्थ में प्रचलित थे। परन्तु इनका प्रयोग लेखक ने अपनी भाषा में नहीं किया है। उदाहरण—

---

१. कथा०, पृष्ठ ६।

गुरु ! धूमकेतु के उदय होने से बहुत लोग अकारण से डरते
और समझते कि बड़ा उपद्रव होगा[1]

अऊत—यह 'अपूत' शब्द में 'प' व्यंजन ध्वनि के लोप से बना है। इसका प्रयोग 'निपूत' के लिये लल्लूजी लालकवि कृत 'प्रेमसागर' में मिलता है। यह परवर्ती मानक खड़ीबोली में विकसित न हो सका। परन्तु ग्रामीण बोलियों में अपने प्राचीन अर्थ सहित सुरक्षित मिलता है, यथा,

यह बात सुन उग्रसेन ने विसे बुलाकर बहुत सा
समझाया पर इस का कहना विस के जी में कुछ
न आया तब दुख पाय पछताय के कहने लगा कि
ऐसे पूत होने से मैं अऊत क्यौं न हुआ[2]

अक्षरौटी—यह 'अक्षर' शब्द में '—औटी' परप्रत्यय से बना शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ अक्षरों को उलटना-पलटना होता है। इसका व्यवहार 'वर्तनी' के लिए किया गया है। यह अंग्रेजी के 'Spell' शब्द का अनुवाद है। यह परवर्ती मानक खड़ीबोली में अप्रचलित हो गया है। यथा,

वह अपने नाम की अक्षरौटी कन नहीं सकता[3]
इसका अंग्रेज़ी मूल निम्नलिखित है,
He cannot spell his own name[4]

अगोनी—इसका शुद्ध रूप 'अगवानी' है। इसका अर्थ 'किसी के आगमन' या 'पधारने' पर आदरपूर्वक आगे बढ़कर किया जाने वाला स्वागत है। ग्रामीण क्षेत्रों में उच्चारण-भेद से आज भी इसी रूप में सुरक्षित मिलता है परन्तु परवर्ती खड़ीबोली में इस रूप में विकसित नहीं हो सका है। उदाहरण,

बरात नगर के निकट आई सुन उग्रसेन देवक और
कंस अपना दल साथ ले आगे बढ़ नगर में ले गये—
अति आदर मान से अगोनी कर जनवासा दिया[5]

अज्ञान—यह भाववाचक संज्ञा है। इसका व्यवहार 'अविद्या' या 'आध्यात्मिक अज्ञान' अर्थात् 'ज्ञान से अनजान रहने' के सन्दर्भ में किया जाता है।

---

१. पद्मा०, पृष्ठ १८।
२. प्रेम०, पृष्ठ १३।
३. वाक्या०, पृष्ठ १३।
४. वाक्या०, पृष्ठ १०।
५. प्रेम०, पृष्ठ १५।

परन्तु यहाँ 'भ्रमित करने', 'भटकाने' या 'विचलित करने' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। परवर्ती भाषिक-प्रयोगों में यह इस भाव से अस्वीकृत हो चुका है तथा इस अर्थ में इसके स्थान पर 'भ्रम' शब्द बहुप्रयुक्त हो रहा है। यहाँ दो भिन्न संदर्भों में भेद न करके दोनों संदर्भों में एक शब्द का प्रयोग है। यह आरंभिक खड़ीबोली की विशेषता प्रकट करता है। उदाहरण,

सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था विसने
अपना औसर पा राजा को अज्ञान किया[1]

उल्लेखनीय है कि परवर्ती खड़ीबोली में यह क्रिया-प्रकृति √ होना के भूतकालिक रूप 'था' के साथ अन्वित हो गया है और क्रिया-प्रकृति√कर के भूतकालिक रूप 'किया' के साथ अनन्वित हो चुका है। निम्नलिखित वाक्य में भी यह 'कर' क्रिया के साथ रखा गया है,

स्त्रीजन को विद्या सीखने में कुछ दोष नहीं
इसकी विशेष खोज न लेकर रंड़िया का प्राय
पशु की भांति अज्ञान करके जनम भर दुखिया
कर देते हैं[2]

अचंभे—यह 'अचंभा' संज्ञा का बहुवचन है। इसका प्रयोग 'अचरज' या 'विस्मय' का भाव दिखाने के लिए है। यथा

श्रीकृष्ण ने जन्म लिया और वसुदेव देवकी
को दरसन दिया। देखते ही अचंभे हो विन
दोनों ने ज्ञान से बिचारा तो आदि पुरुष
को जाना तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा[3]

यहाँ वसुदेव और देवकी दोनों को आश्चर्य हुआ इसलिए 'अचंभे' शब्द बहुवचन में रखा गया है। परवर्ती भाषिक समाज में इसके स्थान पर 'अचरज', 'अचंभा' और 'आश्चर्य' आदि संज्ञाओं के एकवचन के रूप स्वीकृत हो गये हैं। उल्लेखनीय है कि इस वर्ग की संयुक्त क्रियाओं में जहाँ परवर्ती क्रिया पूर्वकालिक-क्रिया के रूप में हो वहाँ 'विस्मित' या 'चकित' विशेषण शब्द बहुप्रचलित है। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि अधिकरण कारक में प्रत्यय होने पर आकारांत संज्ञाएँ एकारांत हो जाती हैं। यहाँ 'अचंभे में होना'

---

१. प्रेम०, पृष्ठ ४।
२. स्त्री०, पृष्ठ २।
३. प्रेम०, पृष्ठ २३।

अर्थ करने पर 'अचंभे' रूप भाषिक-संरचना-व्यवस्था के अनुरूप हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह तर्क भी दिया जा सकता है कि इस समय अचंभा होने का भाव बहुत्व ज्ञापक माना जाता होगा। अतः इसका बहुवचन विकारी कारकों में 'अचंभे' बना लिया गया है।

अजाइब—अरबी के 'अजब' शब्द का बहुवचन 'अजायब' होता है। उच्चारण करते समय इसकी 'य' ध्वनि 'इ' स्वर के रूप में सुनाई देती है। 'य' और 'इ' दोनों समस्थानीय ध्वनियाँ हैं और सवर्ण भी हैं। इनमें परस्पर व्यत्यय होना भाषा की प्रकृति के अनुरूप है। 'अजायब' शब्द बोलते समय 'अजाइब' सुनाई देता है। इसका प्रयोग 'अनोखे' या 'अजीब' अर्थ में किया गया है। निम्नलिखित वाक्य में 'अनोखी' या भिन्नतापूर्ण सृष्टि-रचना के संदर्भ में इसका व्यवहार किया गया है,

> इन सभों से खुदा का नाम
> और उसके सारे अजाइब काम
> पल पल में जाहिर होवे हैं
> नसीहत सबको देवे हैं[१]

अटकाव—इसका प्रयोग सामान्य और साधारण कार्य के मध्य उपस्थित होने वाली रोक, रुकावट, विघ्न, प्रतिबन्ध या अवरोध के संदर्भ में स्वीकृत है। परन्तु विवेच्य भाषिक क्षेत्र में इसका व्यवहार शिक्षा के संदर्भ में आने वाली बाधाओं के लिए मिलता है। दो भिन्न संदर्भों में भेद न कर सकना और उनके लिए एक शब्द का व्यवहार करना आरंभिक खड़ीबोली की विशेषता रही है। प्रयोक्ता की विचारधारा के अनुरूप होने से अर्थ-विस्तार भी हो गया है, यथा,

> इसी प्रकार की शासना रहने से मूर्ख या आलसी
> बालक से किसी को विद्या के उपार्जन में अटकाव
> नहीं होने सके[२]

अदृश्य—यह 'दृश्य' शब्द से निषेध वाचक पूर्व प्रत्यय 'अ—' से निर्मित है। यह सामान्यतः 'दृष्टिगोचर न होने वाली' या 'जो देखे जाने योग्य न हों' ऐसी वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है। परंतु यहाँ 'क्षणभंगुर' अथवा 'शीघ्र नष्ट होने वाले या दिखाई न दे सकने वाले भौतिक शरीर की भीतरी तंत्रिका'

---

१. गीते०, पृष्ठ १।   २. पाठ०, पृष्ठ ४।

के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण है। मानक संदर्भों से भिन्न संदर्भों में प्रयुक्त होने के कारण इसे भाषा के अस्वीकार्य प्रयोगों में रखा जा सकता है। अर्थ से निकटता होने पर एक ज्ञान क्षेत्र का शब्द कितनी शीघ्रता से दूसरे ज्ञान क्षेत्र में अपना लिया जाता है। यह शब्द इसका सुन्दर उदाहरण है, यथा,

> शिष्य। महाशय यदि अनुग्रह कर अंतर्गत
> अदृश्य शरीर विषय रूप से मुझसे कहो
> तो बड़ा आनन्द होगा[1]

अब के—'अब' समयवाचक या कालवाचक अव्यय है। इसका व्यवहार 'इस क्षण' के संदर्भ में स्वीकृत होता है। परन्तु, यहाँ 'आजकल' या 'वर्तमान दिनों' के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है। इसमें बीते हुए और आने वाले तथा वर्तमान दिन तीनों का भाव समाविष्ट हो गया है। उर्दू भाषियों के मध्य ऐसे प्रयोग आज भी प्रचलित मिलते हैं।

'अब' संस्कृत के 'एवमेव' से निःसृत है और 'आजकल' हिन्दी का क्रिया विशेषण है। 'आज' संस्कृत 'अद्य' से और 'कल' संस्कृत 'कल्प' से संबद्ध है। उदाहरण,

> पांचवां संवत् ईसा मसीह के जन्म से ले रूम
> के महाराज्य के उलटाव तक इसी संवत् में
> अबके यूरपीय लोगों का अंकुर प्रकाश होने लगा[2]

अर्थी—यह संस्कृत 'अर्थिन' से बना विशेषण है। इसका अर्थ 'स्वार्थवश कार्य करने वाला स्वार्थी', 'इच्छुक' या 'प्रयोजन वाला' होता है। संस्कृत में इसका व्यवहार एकाकी और सामासिक दोनों रूपों में मिलता है। आरंभिक खड़ीबोली में यह इसी अर्थ में एकाकी रूप से बहुप्रयुक्त होता रहा है। एकाकी रूप में यह भारतेन्दु कालीन खड़ीबोली में भी 'इच्छुक' अर्थ में प्रचलित रहा। परंतु परवर्ती खड़ीबोली में यह 'विद्यार्थी' शब्द के साथ मिलता है। हिन्दी में इस अर्थ में एकाकी प्रयोग अप्रचलित हो चुका है। निम्नलिखित वाक्य में इसका प्रयोग द्रष्टव्य है,

> तब ऐसे अज्ञान मनुष्य से और उस ज्ञानी
> प्रतिनिधि से जिसकों सैकड़ों अर्थी घेरे रहते
> या उस राजमंत्री से जिसके उपायों से संसार

---

१. पदा०, पृष्ठ ४६। २. कथा०, पृष्ठ ६।

की आजीविका और रक्षा पूरी होती है
कितना अंतर है[१]

अर्पण—यह कोशगत अर्थ में 'भेंट' अथवा 'समर्पण' का भाव व्यक्त करता है। आरंभिक खड़ीबोली में इसका व्यवहार ईश्वर और सामान्य व्यक्ति दोनों के लिये मिलता है। ईश्वर के संदर्भ में समर्पण भाव और सामान्य सन्दर्भ में 'वापस लौटाने' का अर्थ प्रमुख है। यथा,

तिसने बलिदान ईश्वर के निमित्त अर्पण
किये[२]

निम्नलिखित वाक्य में 'अर्पण' शब्द अनावश्यक है। यहाँ 'अर्पित करना' अर्थ में प्रयुक्त है। यह अंग्रेजी के deliver शब्द का अनुवाद है। इसी वाक्य में अंग्रेजी के Justice का हिन्दी अनुवाद 'विचारकर्ता' तथा publish का अनुवाद 'प्रकाश' किया गया है,

तिस समय में उसकी अनजान में जेब से कागज
में मढ़ी सोलह स्वर्णमुद्रा मार्ग में गिर पड़ीं।
एक दरिद्री ने उनको पड़ी पाय कर विचारकर्ता
के पास अर्पण कर दिया उसने समाचार के द्वारा यह
बात नगर में प्रकाश किई[३]

इसका अंग्रेजी पाठ निम्नलिखित है,

A roll of paper, containing 16 gold
mohurs, fell unperceived from his
pocket into the road. The poor man who
found it, delivered it to the justice,
and he published it through the town[४]

इस प्रकार मिलते-जुलते दो भिन्न संदर्भों में भेद न करना और दोनों के लिए एक शब्द का व्यवहार करना इस अवधि के लेखकों की विशेषता बन चुका था। इससे एक शब्द में अर्थ-विस्तार भी हो गया है। उक्त दोनों रचनाएँ 'कथासार' और 'मनोरंजन इतिहास' - अंग्रेजी से अनूदित हैं। एक के रचनाकार एम० टी० एडम और दूसरे के लेखक पंडित रतनलाल हैं। परवर्ती खड़ीबोली में 'अर्पण' ईश्वर के सन्दर्भ में सीमित हो गया है। सामान्य

१. इं० द्वी०, पृष्ठ २।
२. कथा०, पृष्ठ १४।
३. मनो० इति०, पृष्ठ ४।
४. मनो० इति०, पृष्ठ ४।

सन्दर्भों में व्यंग्यात्मक स्थलों पर तथा कहीं-कहीं शैली-विशेष के आग्रह से प्रयुक्त मिलता है। द्वितीय भाषा की उचित और व्यवस्थित शिक्षा के अभाव में ऐसे प्रयोग प्रायः भाषाओं में घर कर लेते हैं। एक संदर्भ में शब्द के अर्थ से परिचित होने पर उससे मिलते-जुलते संदर्भों में उसी एक शब्द का व्यवहार कर लिया जाता है जिससे कोई शब्द विशेष क्षेत्र से हट कर सामान्य क्षेत्र का शब्द बन जाता है और शब्द का अर्थ अनुभवों के आधार पर विस्तृत होता जाता है।

आधान—इसका शुद्ध रूप 'अवधान' है। इसके बार-बार उच्चारण करने से 'व' श्रुति ध्वनि का लोप हो गया है तथा ह्रस्व अ की संधि से दीर्घ आ स्वर आ गया है। इसका शाब्दिक अर्थ 'अदहन' या 'उबलता हुआ पानी' होता है, जो प्रायः रसोइयों के द्वारा दाल और चावल के उबाल के लिए प्रयोग किया जाता है। इसका दूसरा अर्थ 'गर्भ धारण करने की क्रिया' होता है परंतु यहाँ 'गर्भवती' अर्थ में व्यवहृत है। इसका प्रयोग ब्रजमिश्रित खड़ी-बोली की रचना 'प्रेमसागर' से अतिरिक्त नहीं मिलता। इससे पूर्व कवि जायसी की अवधी में प्रयुक्त हो चुका था। उदाहरण,

> जब श्री कृष्ण देवकी के गर्भ में आए तभी
> माया ने जा नंद की नारि जसोदा के पेट
> में बास लिया, दोनों आधान से थीं कि एक
> पर्व में देवकी यमुना न्हाने गई, वहां संयोग से
> जसोदा भी आन मिली[1]

आयुर्दा—मूल शब्द 'आयुर्दाय' (संस्कृत आयुसदाय षष्ठी तत्पुरुष समास) है जिसका अर्थ 'जन्म कुण्डली के आधार पर होने वाला निर्णय या विचार' है। विवेच्य क्षेत्र में जीवनकाल के संदर्भ में इसका प्रयोग मिलता है। इसके लिए मात्र—'आयु' शब्द पर्याप्त है। यहाँ अर्थ नैकट्य होने पर भी संदर्भ और अर्थ में सामंजस्य स्पष्ट नहीं होता। एक ज्ञान क्षेत्र का शब्द इतर क्षेत्रों में ले लिया गया है जिससे भाव सम्प्रेषणीयता अवश्य घट गयी है परन्तु शब्द में एक नया अर्थ आरोपित हो गया है, यथा,

लोगों की वृद्धि करने के लिए ईश्वर ने पूर्व्वकाल में उनकी सहस्र वर्ष की आर्युदा करी थी[2]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ २१।

२. कथा०; पृष्ठ २।

आरोपण—यह पुंल्लिग संज्ञा है। इसका व्यवहार सामान्य रूप से किसी वस्तु के गुणों को दूसरी वस्तु में मानने या रोपने अर्थात् आरोपित करने के संदर्भ में किया जाता है। परन्तु यहाँ ईश्वरीय शक्ति का प्रभाव स्वीकार करने तथा ईश्वरीय शक्ति के समान होने के लिए प्रयुक्त हुआ है। मानक संदर्भों से भिन्न संदर्भों में प्रयुक्त होने के कारण इसे भी भाषा के अस्वीकार्य प्रयोगों में रखा जा सकता है। शब्द-चयन-क्षमता की पूर्णता के अभाव में इस प्रकार के प्रयोग प्रायः सभी भाषाओं की प्रारंभिक अवस्था में द्रष्टव्य होते हैं। उदाहरण,

> उन्होंने ग्रह नक्षत्रादिकों की चाल की गणना कर संभव जान, उनमें ईश्वर संबंधी सामर्थ आरोपण कर उनकी ईश्वर तुल्य प्रतिष्टा करी[1]

आलाप—इसका शाब्दिक अर्थ 'कथोपकथन' तथा 'संगीत के स्वरों की साधना' होता है। संस्कृत में कथोपकथन के संदर्भ में प्रचलित मिलता है। बंगला में भी यही अर्थ स्वीकृत है तथा खड़ीबोली की आरंभिक रचनाओं में यही अर्थ मिलता है। यह सभी कलकत्ता से प्रकाशित है। इससे स्पष्ट होता है कि यात्रा, भ्रमण आदि अनेक कारणों से अन्य भाषाभाषियों से सहज संपर्क स्थापित होने से एक भाषा की विशेषताएँ इतर भाषाओं में सहज ही प्रवेश कर जाती हैं। परवर्ती खड़ीबोली में राग अलापना आदि शब्दों में इसका प्रयोग प्रचलित मिलता है। कथोपकथन और वार्तालाप के प्रारंभिक अर्थों में यह निम्नलिखित वाक्य में द्रष्टव्य है—

> पीछे धीरे धीरे इस भांति सब रंडियों को व्यवहारिक विद्या होय·········और मन-मानती चीठी पांती अपने पिया के पास भेज कर अपना विषय उनको जना सके औ स्त्री पुरुष दोनों विद्या जानने से परसपर आलाप में कहां तक सुख मिलता है सो लिखना अधिक है[2]

आलेय—यह नवीन गढ़ा गया शब्द है। इसका प्रयोग 'प्रदीप्त या चमकने वाली वस्तु' के लिए किया गया है। यहाँ तारों की चमक के संदर्भ में प्रयुक्त है। उदाहरण,

> शिष्य। रात्ति में कभी आलेय देखते हैं अर्थात् प्रदीप के समान वस्तु सो क्या है ?[3]

१. कथा०, पृष्ठ १५।
२. स्त्री०, पृष्ठ १७।
३. पदा०, पृष्ठ १६।

उखड़ना—इसका सामान्य अर्थ किसी जमी हुई या गढ़ी हुई स्थिर वस्तु का अपने मूल से अलग हो जाना, होता है। यह जड़ वस्तुओं तथा वृक्ष आदि के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। परंतु यहाँ 'पत्थर पर टाइप' अक्षर डालते समय उनके ऊपर की ओर उठ आने के संदर्भ में इसका व्यवहार किया गया है। इसके लिए परवर्ती खड़ीबोली में 'उभरना' या 'उमड़ना' शब्दों ने अपना स्थान बना लिया है। मानक संदर्भों से भिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त होने के कारण इसे परवर्ती खड़ीबोली के अस्वीकृत प्रयोग मान लिया गया है। इसे शब्द का अर्थ-विस्तार या अर्थ परिवर्तन भी कह सकते हैं। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि इस समय 'उखड़ना' शब्द दोनों अर्थ व्यक्त कर रहा था। 'उखड़ना' का एक अर्थ प्रयोक्ता के मस्तिष्क में पहले से जमा हुआ था जैसे-जैसे वह अन्य क्षेत्रों से जुड़ता गया, शब्द का विशिष्ट अर्थ सामान्य अर्थ बनता गया। उसने एक अर्थ-विशेष से साम्य रखने वाले तत्त्वों को एक शब्द से संकेतित करना आरंभ कर दिया, यथा,

उलटे अक्षर पर उखड़ते हैं[१]

उदासी—यह संस्कृत 'उदास+हिन्दी के 'ई' परप्रत्यय से बना शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ उदास होना है। परन्तु, यहाँ संन्यासी—विरक्त या त्यागी या तटस्थ के लिए प्रयुक्त हुआ है। कदाचित् इसमें उदासीनता का भाव प्रमुख रहता है। यथा,

> इसलिए सब ने शुक का आदरमान किया, किसी ने इस आस पर कि ये तारन तरन हैं क्योंकि जब से जन्म लिया है तब ही से उदासी हो बन बास करते हैं[२]

उल्लेखनीय है कि खड़ीबोली में प्रयुक्त होने से पूर्व यह जायसी और तुलसीदास की अवधी में प्रयुक्त हो चुका था और वहीं से खड़ीबोली में ले लिया गया। यथा,

> होय गृही पुनि होय उदासी, अंतकाल दोनों विश्वासी।
>
> (जायसी)

यथा,

> प्रमुदित तीरथराज निवासी बैषानस बटु गृही उदासी।
>
> (रामचरित मानस)

---

१. पत्र०, पृष्ठ १४। २. प्रेम०, पृष्ठ ६।

उपास—इसका शुद्ध रूप 'उपवास' है। इसकी 'व' व्यंजन ध्वनि का लोप हो अ+आ स्वर की संधि से दीर्घ स्वर 'आ' होकर 'उदास' शब्द बन गया है। यह जनपदीय उच्चारण से प्रभावित रूप है। यह खड़ीबोली के परवर्ती मानक स्वरूप में अप्रचलित हो चुका है। इसका प्रयोग 'भूखे रहकर सो रहा' के संदर्भ में है,

> ऐसे कह वसुदेव देवकी को बेड़ी औ हथकड़ी पहिराय—ऐक कोठे में मूंदकर ताले पर ताले दे—निज मंदिर में जा मारे डर के उपास कर सो रहा···फिर भोर होते ही वहीं गया जहां वसुदेव देवकी थे[1]

उत्पत्ति—यह संस्कृत का संज्ञा शब्द है। इसका अर्थ जन्मा हुआ या उत्पन्न होता है। यह प्राणी के लिए स्वीकृत होता है। कदाचित् पेड़ों में जीवन की कल्पना करने के कारण इसका व्यवहार 'उपज, पैदावार या फसल' के अर्थ में किया गया है। इससे स्पष्ट है कि इस समय एक शब्द अनेक प्रयुक्तियों में प्रयुक्त होकर मिलते-जुलते संदर्भ स्पष्ट करने के लिए प्रयोग कर लिए जा रहे थे। इसका वाक्य-प्रयोग निम्न है,

> इसलिए हिन्दुस्थान की अनेक उत्पत्ति अर्थात् रुई, नील, रेशम, गरम मसालह, सीरा, हाथीदांत, मोती ईयादि वस्तु, नाविक लोग लायके फरंगिस्थान को ले जाते हैं[2]

उलटाव—यह 'उलटना' क्रिया से '—आव' परप्रत्यय करने पर बनी संज्ञा है। इसका शाब्दिक अर्थ 'उलटे जाने का भाव या घुमाव' होता है। इसका व्यवहार नदी आदि के संदर्भ में होता है। 'पलटाव', 'बदलाव' शब्द भी इसी संरचना विधि से बने शब्द हैं। यहाँ इसका प्रयोग 'राज्य बदलने' के संदर्भ में किया गया है। एक विषय क्षेत्र का शब्द नये भावों और नवीन आवश्यकताओं के अनुभव किये जाने पर अर्थ साम्य होने पर इतर क्षेत्रों में किस प्रकार ग्रहण कर लिया जाता है यह इसका सुन्दर उदाहरण है,

> पांचवां संवत् ईसा मसीह के जन्म से ले रूम के उलटाव तक इसी संवत् में अबके यूरपीय लोगों का अंकुर प्रकाश होने लगा[3]

---

१. प्रेम०, पृष्ठ २१।
२. ज्यो०, पृष्ठ २।
३. कथा०, पृष्ठ ६।

उलंघन करना—इसका सामान्य अर्थ—'सीमा या नियम तोड़ना' लिया जाता है। विवेच्य खड़ीबोली में समुद्र के लाँघने या पार करने के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। मिलते-जुलते संदर्भों में कोई शब्द किस कौशल से प्रयोग कर लिया जाता है यह इस उदाहरण से द्रष्टव्य है,

> 'यद्यपि बालू ऐसी हलकी है कि हम उसको फूंक से उड़ाने सके हैं परंतु उसके एकट्ठे होने से असे कठोर पर्वत बनि गये हैं कि समुद्र के तरंग के बेग से उनकी कुछ हानि नहीं होती, समुद्र उठता भी परंतु उनको उलंघन नहीं कर सकता है[1]

ऊँचे करके पुकारना—'ऊँचा' शब्द का अर्थ 'उठा हुआ' या 'दूर तक ऊपर की ओर गया हुआ' होता है। 'ऊँचे' रूप 'ऊँचा' का बहुवचन है। इसका प्रयोग स्वर के संदर्भ में मिलता है जिससे बुलंद आवाज़, जोरदार आवाज़ या गरजदार आवाज़ अर्थ लिये आ सकते हैं। स्वर में बहुत्व या घनत्व का भाव मान लेने पर उसका विशेषण भी बहुवचन में रखा गया है। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि 'ऊँचे' के साथ बहुप्रकार्यात्मक पूर्वकालिक क्रिया 'करके' लगाकर क्रिया बनाने की जो विधि बँगला आदि में पहले से चली आ रही थी, खड़ीबोली में भी कम या अधिक अनुपात में ले ली गयी। उदाहरण,

> राजा इस् पत्र को पढ़के घर में फेर गया, और कै एक मोहर पत्रे में लपेट के उसी को बालक की जेब में फेर रख दिया। पीछे ऐसे ऊँचे करके पुकारा कि बालक की नींद खुल गई[2]

करका—यह 'ओले' के लिए प्रयुक्त किया गया है। यथा,

> जो बूंदे जम के बर्षतीं उनको करका कहते हैं[3]

काकणी—यह अंकगणित और बीजगणित के लिए प्रयुक्त हुआ है। कोशों में इसका अर्थ 'पण का चौथा भाग' जो २० कौड़ियों का होता है, दिया गया है। इसका प्रयोग 'गणितांक' शीर्षक रचना से अतिरिक्त नहीं मिलता। यथा,

> गिनती काकणी की[4]

कोपना—यह संस्कृत की 'कोप' संज्ञा से बनी अकर्मक क्रिया है। यह 'क्रोध करना' अर्थ में प्रयुक्त है। खड़ीबोली से पूर्व यह ब्रजभाषा में और अवधी

---

१. पदा०, पृष्ठ ३३।
२. पदा०, पृष्ठ २५।
३. उप०, पृष्ठ ३।
४. गणि०, सूचीपत्र।

रचना 'रामचरित मानस' में तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त हो चुका था। वहीं से खड़ीबोली में ले लिया गया। स्पष्ट है कि खड़ीबोली का प्रारंभिक स्वरूप इन बोलियों के सहारे पनप रहा था। परवर्ती खड़ीबोली में इस संदर्भ में 'क्रोध' शब्द बहुप्रयुक्त होने लगा है।

> वे तो जन्म के भिखारी हैं, जद आप कोपियेगा तधी वे भाग जायंगे[1]

खचना—यह संस्कृत 'खच' से बनी अकर्मक क्रिया है। इसका शाब्दिक अर्थ 'जड़ा जाना', 'अटकना' या 'फँसना' आदि होता है। इससे बनी 'खाँचा' आदि संज्ञाएँ ग्रामीण अंचलों में प्रचलित मिलती हैं। विवेच्य क्षेत्र में इसका प्रयोग 'आकर्षण' या 'खिचाव' के लिए किया गया है जिससे वस्तुएं आपस में मिलती और जुड़ती हैं। यह भाषा-प्रयोक्ता के अपूर्ण अर्थ ग्रहण का उदाहरण माना जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि एक प्रयोक्ता के मन में पहले से एक वैज्ञानिक अर्थ रहा होगा। परन्तु दूसरे प्रयोक्ता के मस्तिष्क में कोई दूसरा अर्थ अपनी जड़ें जमा चुका था जिससे शब्द अपनी सीमा से दूर दूसरी सीमा में प्रवेश कर गया और स्वीकार कर लिया गया। ऐसे प्रयोग परवर्ती खड़ीबोली में अप्रचलित हो गये हैं। पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में आज भी 'खिचना' शब्द 'खचना' रूप में सुनाई दे जाता है। यथा,

> गुरु ! आकर्षण शक्ति अर्थात खचना जिससे अनेक वस्तु आपुस में मिलते हैं इसी रीति से बड़ी वस्तु छोटी वस्तु का आकर्षण करें तब वह छोटी वस्तु उससे गिरती नहीं[2]

खांडा—यह चौड़े फन वाली या दुधारी तलवार के लिए प्रयुक्त किया गया है। जनपदीय बोलियों में यह आज तक इसी संदर्भ में प्रचलित मिलता है। परंतु खड़ीबोली में प्रचलित परवर्ती मानक स्वरूप में इसका संस्कृत रूप 'खड्ग' प्रचलित हो गया है। इसका वाक्य प्रयोग निम्नलिखित है,

> इतना कह ऐक खांडा ऐसा मारा कि लड़के का सिर ज़मीन पर गिर पड़ा[3]

खुनसा—यह 'खुनस' संज्ञा से निर्मित विशेषण है। इसका संस्कृत रूप 'खिन्नमनः' है। 'खुनस' रूप में यह तुलसीदास तथा रहीम के काव्य में प्रयुक्त

१. प्रेम०, पृष्ठ २७।
२. पदा०, पृष्ठ ३।
३. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ २१।

हो चुका था। वहीं से खड़ीबोली में ले लिया गया। इसका प्रयोग 'क्रोधित' के लिए किया गया है। यह आज भी 'सुनस' रूप में प्रयुक्त हो रहा है।

> तिसने कहा मेरे तो करता दुखहरता वेई हैं जो तिनको ही न भजूंगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा, यह सुन कंस ने खुनसा बाप को पकड़कर सारा राज ले लिया और नगर में यों डोंडी फेर दी[1]

गणितांक—यह 'गणित' और 'अंक' दो शब्दों से मिलकर बना सामासिक शब्द है। इसका व्यवहार 'गणनाशास्त्र' के लिए है जिसमें अंकगणित और लेखा विषय आते हैं। परवर्ती खड़ीबोली में सामासिक रूप में इसका प्रयोग नहीं मिलता। इसका अन्य रूप 'अंकगणित' परवर्ती खड़ीबोली में स्थायी हो गया है।

> गणितांक का पुस्तक[2]

गलने जाना—यह मुहावरा है। 'गलना' का शाब्दिक अर्थ 'शरीर का दुर्बल होना' होता है। यहाँ 'शरीर त्याग करने' अथवा 'तिरोहित होने' या 'नष्ट करने' के लिए प्रयुक्त हुआ है, यथा,

> महाभारथ के अंत में जब श्री कृष्ण अंतरध्यान हुए तब पांडव तो महादुखी हो हस्तिनापुर का राज परीक्षित को दे हिमालय गलने गये और राजा परीक्षित सब देस जीत धर्म राज करने लगे[3]

घिनित—यह संस्कृत 'घृणित' से निर्मित अर्धतत्सम शब्द है। इसका अर्थ घृणा से युक्त अर्थात् अप्रिय, घृणा करने योग्य, तिरस्कृत, निन्दित होता है। परन्तु यहाँ 'घृणा करने योग्य' भाव में प्रयुक्त किया गया है। परवर्ती ग्रामीण बोलियों में यह रूप आज भी मिल जाता है परन्तु मानक खड़ीबोली में शुद्ध संस्कृत रूप प्रचलित है। उदाहरण,

> दुष्टजन ईश्वर के आगे घिनित है[4]

चटक—विशेषण रूप में इसका शब्दार्थ 'चमकीला' और 'सुन्दर' होता है। इस अर्थ में यह संस्कृत के 'चटुल' शब्द से सम्बन्धित है। इसका प्रयोग किसी भौतिक जड़ वस्तु या प्राकृतिक पदार्थों की चमक के लिए किया जाता

१. प्रेम०, पृष्ठ १३।
२. गणि०, शीर्षक पृष्ठ।
३. प्रेम०, पृष्ठ २।
४. गुण०, पृष्ठ २।

है। 'सुन्दर' अर्थ में यह बिहारी और घनानन्द के काव्य में भी मिलता है परन्तु यहाँ पर इसका प्रयोग व्यक्तित्व के चतुर और फुर्तीले गुणों के संदर्भों में किया गया है। इसमें भाव और अर्थ साम्य प्रधान होने के कारण निर्जीव से हटकर सजीव के संदर्भ में सवा गया है। इस संदर्भ में इसका विलोम 'धीर' है। उदाहरण,

एक एक मनुष्य को चाहिये कि सुन लेने में चटक होवे,
परन्तु बोलने और रिसियाने में धीर[1]

चट्टे—प्राकृत में 'चट' शब्द है। यह गुजराती और ब्रजभाषा में भी मिलता है और वहीं से खड़ीबोली में ले लिया गया है। गुजराती में 'चट्टा' बालक को कहते हैं। 'चटसाल' शब्द इसी से बना है। इसका कोशगत अर्थ 'व्यवस्थित रूप से सजाकर अथवा चुन-चुन कर किसी वस्तु को रखना, करीने से रखना' आदि है। 'ईंटों का चट्टा' में यही अर्थ प्रमुख है। विशिष्ट समुदाय के लोगों में गणेशचतुर्थी पर्व पर 'चट्टे' की पूजा होती है। यह लकड़ी के सुन्दर-सुन्दर छोटे, गोल और चिकने परन्तु कुछ लम्बे आकार के डंडे होते हैं जिन पर तरह-तरह की चित्रकारी की गई होती है। इनकी पूजा करके छोटे-छोटे लड़के आपस में मिलकर उसी प्रकार बजाते हैं जिस प्रकार गुजरात के गरवा नृत्य या डंडिया रास में बजाया जाता है। आरम्भिक खड़ीबोली में इसका प्रयोग छात्र या विद्यार्थी के लिए किया गया है। यह अंग्रेजी के Scholar का अनुवाद है। यथा,

पाठशाला में कितने चट्टे हैं[2]

इसका अंग्रेजी पाठ निम्नलिखित है—

How many Scholars are there in the school[3]

चटसाल—यह शब्द 'चट्टा' पर आधारित है तथा चट (विद्यार्थी) + साल (शाला) से मिलकर बना है। यह सामासिक शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ 'बच्चों की शाला' है। ग्रामीण अंचलों में आज भी छोटी पाठशाला को 'चटसाल' कहा जाता है। खड़ीबोली में आने से पूर्व १५वीं-१६वीं शती में प्रयुक्त हो चुका था। सूरदास तथा नरोत्तमदास की ब्रजभाषा में इसका व्यवहार मिलता है। उदाहरण,

---

१. गुण०, पृष्ठ ३।
२. वाक्या०, पृष्ठ ११
३. वाक्या०, पृष्ठ १०।

बिप्र के भगत हरि विदित जगतबंधु
लेत सबही की सुधि ऐसे महादानि हैं
पढ़े एक चटसार कही तुम कैयो बार
लोचन अपार वै तुम्हें न पहिचानिहैं[१]

इसके पश्चात् खड़ीबोली में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा परन्तु यहाँ ब्रजभाषा का 'र' खड़ीबोली में 'ल' हो गया है।

लड़कियों के पढ़ाने के लिये जो जो चटसाल हूए हैं[२]

उल्लेखनीय है कि इसी शती से 'चटसाल' के साथ 'पाठशाला' और 'कॉलेज' शब्द भी खड़ीबोली में प्रचलित हो गये।

चुआन—इसका अर्थ 'कुएँ की सतह या स्तर तक पानी का फैल जाना' होता है। यह संस्कृत धातु√च्यु से निर्मित है। इसका प्रयोग 'गहरी खाई जिसकी तलहटी से पानी निकलता हो' के लिए किया गया है। यथा,

वह पुरी कैसी है कि जिस के चहुँ ओर तांबे का कोट औ
पक्की चुआन चौड़ी खाई स्फटक के चार फाटक[३]

चुपचुपाना—यह हिन्दी का निजी शब्द है। यह 'मौन भाव से वापस लौट जाने' या 'चले जाने' के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। जनपदीय बोलियों में तथा बोलचाल की हिन्दी में शैली-विशेष के आग्रह से आज तक सुनाई देता है। परन्तु खड़ीबोली के साहित्यिक और मानक स्वरूप में इसके स्थान पर 'चुपचाप' शब्द व्यवहृत होने लगा है। इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचुपाते चले गये औ वसुदेव को जा
सब समाचार कहे[४]

चहुँकना—हिन्दी का देशज शब्द 'चिहुंक' है। 'चहुँकना' इसी का क्षेत्रीय उच्चारण है जो आज भी इसी रूप में सुनाई देता है। परवर्ती मानक खड़ीबोली में इसका स्थान 'चौंकना' ने ले लिया है। उदाहरण,

सुनते ही राजा चहुँक उठे[५]

चूँटना—यह सकर्मक क्रिया है। इसका प्रयोग 'फूल चुनने' के संदर्भ में किया गया है। कोश ग्रंथों में 'चुटकी से पकड़ना' तथा 'फसल की फुनगियाँ

१. नरोत्तमदास, सुदामाचरित, पृष्ठ ३२।
२. स्त्री०, पृष्ठ १६।
३. प्रेम०, पृष्ठ १२४।
४. प्रेम०, पृष्ठ ३६।
५. नासि०, पृष्ठ २१।

तोड़ना' या 'चुनना' अर्थ भी दिया गया है। कदाचित् चुटकी से चुनने के कारण इस क्रिया को 'चूँटना' कहा गया है। वाक्य-प्रयोग निम्नलिखित है.

उसे फूल तोड़ते हुऐ देख राजा अति काम के बस हुआ, जब वह फूल चूंट अपने स्थान को चली तब राजा बोला कि, यह तुम्हारा कैसा आचार है[1]

जना—यह संस्कृत के 'जन' शब्द से संबंधित है। इसका प्रयोग 'लोग' या व्यक्ति के लिए किया गया है। परवर्ती खड़ीबोली के मानक साहित्यिक स्वरूप में इसके लिये 'जन' शब्द व्यवहृत हो रहा है। जन प्रवाह. जनसमूह, जनसेवा, बहुजन आदि शब्द इसी से बने हैं। बँगला भाषा में 'जन' शब्द इसी अर्थ और रूप में बोला जा रहा है। कबीरदास जी ने भी इसका यथावत् प्रयोग किया है यथा—एक ही जनी एक जना संसारा, कौन ज्ञान से भयऊ संसारा (कबीर बीजक)। परवर्ती बोलचाल की हिन्दी में भी 'जना' शब्द एकाकी रूप में प्रचलित मिलता है। प्रयोग निम्न है—

एक-एक जना मनितर होके—सिखावे[2]

जलधारा—इसका शाब्दिक अर्थ पानी की धारा, पानी का प्रवाह होता है। कोश ग्रंथों में 'एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्वी पर कोई व्यक्ति धार बाँधकर पानी डालता रहता है' दिया गया है। इसका व्यवहार 'बिना रुके वर्षा होना' भी होता है। परन्तु यहाँ केवल 'वर्षा' के लिए प्रयुक्त किया गया है। यथा,

एक दिन बड़ी झड़ी लगकर निरंतर जल धारा बरसने लगा[3]

उल्लेखनीय है कि लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक लुप्त रहने के पश्चात् आज पुन: इसी अर्थ में प्रचलन में आ गया है।

जवाब चलना—इसका प्रयोग 'पत्र का समाधानपूर्ण उत्तर आने' के लिए किया गया है। 'जवाब' शब्द संज्ञा है जो 'प्रत्युत्तर' अर्थ स्पष्ट करती है। इसका प्रयोग होना, पाना, देना, माँगना, मिलना, लिखना आदि क्रियाओं के साथ होता है। परन्तु यहाँ पर 'चलना' क्रिया के साथ रखा गया है। 'चलना' क्रिया गति बोधक है। निर्जीव वस्तु या किसी प्रकार के भाव में गतिशीलता नहीं होती है। इस आधार पर 'जवाब' शब्द के साथ 'चलना' क्रिया का व्यवहार प्रयोगसम्मत नहीं है। यहाँ काव्य के अनुरूप शब्द-चयन नहीं किया गया है। इसे शैली वैशिष्ट्य भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि जब तक भाषा

१. बै० हि० हिंदु०, पृष्ठ ७०।
२. पाठ०, पृष्ठ ३।
३. स्त्री०, पृष्ठ ६।

का पूर्ण स्वरूप निखर न जाय और उसका मानक स्थायी न हो जाय तब तक शैली निर्माण का प्रश्न नहीं उठता। इसे प्रयोक्ता के भाषा ज्ञान की अपूर्णता अवश्य कहा जा सकता है। इसका प्रयोग निम्नलिखित वाक्य में द्रष्टव्य है—

अब जवाब उसका चला आवता है[1]

जुहार—यह एक प्रकार की अभिवादन शैली है। इसमें एक घुटना जमीन पर टेककर और दूसरा थोड़ा-सा उठा हुआ रखकर प्रणाम किया जाता है। यह क्षत्रियों और राजपूतों में प्रचलित थी। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने इसका प्रयोग किया है। लल्लूजी लाल ने 'प्रेमसागर' ने इसका व्यवहार निम्नलिखित वाक्य में किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह 'रामजुहार' जैसे शब्दों में आज तक प्रचलित मिलता है।

कंस से भेटकर भेट दी कौड़ो कौड़ी चुकाय
विदा हो जुहार कर अपनी बाट ली[2]

ढाढि ढाढिन इसका शुद्ध रूप 'ढाढ़ी ढाढ़िन' है। यह देशज शब्द है जो उन मुसलमान गवैयों के लिए व्यवहृत हुआ है जो जन्मोत्सव आदि मांगलिक अवसरों पर घर-घर जाकर बधावे आदि गाते हैं। इन बधाई गीतों में कल्याण और मंगल भावना छिपी होती है। वास्तव में यह एक प्रकार से यश बखान करने की शैली है। यह शैली आज भी प्रचलित मिलती है परंतु यह शब्द अप्रचलित हो चुका है। उदाहरण—

तब नगर के सब मंगलामुखियों को बुलाया
वो आय आय अपना अपना गुन प्रकाश करने
लगे—बधंत्री बजाने नृत्यक नाचने-गायक गाने-
ढाढी ढाढिन जस बखानने और जितने गोकुल
के गोप ग्वाल थे···नंद को बधाई देन आए[3]

उल्लेखनीय है कि हिन्दी में दो महाप्राण ध्वनियाँ एक साथ नहीं आतीं यदि आती हैं तो उच्चारण में एक अल्पप्राण हो जाती है। यहाँ 'ढ' महाप्राण ध्वनि है। इससे स्पष्ट है कि इस समय दो महाप्राण ध्वनियों का एक साथ उच्चारण सरलता से किया जा रहा था। लल्लू जी लालकवि से पूर्व नंददास और सूरदास के ब्रजभाषा पदों में 'ढाढ़िन' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त मिलता है। इससे स्पष्ट है कि यह ब्रज क्षेत्र का प्रमुख शब्द था। उदाहरण,

---

१. अभि०, ३५ क।
२. प्रेम०, पृष्ठ २६।
३. प्रेम०, पृष्ठ २८।

कृष्ण जन्म सुनि अपने पति सो
हंसि ढाढ़िन यों बोली जू (नंददास)

तथा,

ढाढ़ी और ढाढ़िन गावैं हरि के ठाड़े बजावैं
हरषि असीस देत मस्तक नवाई के (सूरदास)

डाक के घर—'डाक' देशज शब्द है। यह वाक्यांश 'डाकखाना' या 'डाकघर' के लिए प्रयुक्त है। इसका अंग्रेजी अनुवाद Post office है। परवर्ती खड़ीबोली में इस वाक्यांश का स्थान सामासिक शब्द ने ले लिया है, यथा,

Hum Ko dak ke Ghur men puhonchao[1]
इसका अंग्रेजी पाठ निम्नलिखित है,
Take me to the post office[2]

डाकवाला—यह 'डाक' और '—वाला' प्रत्यय से बना सामासिक शब्द है। इसका प्रयोग 'डाक पहुँचाने वाले सरकारी कर्मचारी' के लिए किया गया है। इसका अंग्रेजी अनुवाद postman है। परवर्ती भाषिक समाज में 'डाकिया' शब्द इसके स्थानापन्न रूप में स्वीकार कर लिया गया है। उदाहरण,

Jub dak wala eehan awe tou poochho
ke humare waste ko, ee khut hy ki
nuheen[3]

इसका अंग्रेजी पाठ निम्नलिखित है,

When the post man comes, enquire if he
has any letters for me or not[4]

उल्लेखनीय है कि 'डाक' शब्द इससे पूर्व ब्रजभाषा गद्य की रचना 'दो सौ बावन वैष्णवन की वारता' में भी इसी अर्थ में व्यवहृत हो चुका था। 'डाक' का संबंध 'डाकना' या बुलाना', 'उलांघना', 'फांदना' से जोड़ा जा सकता है। इसका अर्थ सवारी का ऐसा प्रबंध है जिसमें एक-एक टिकान पर बराबर जानवर आदि बदले जाते हैं। घोड़े गाड़ी आदि का जगह-जगह इंतजाम होना 'डाक' है।

---

१. डाय० ओ० लि०, पृष्ठ १३५।
२. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३५।
३. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३५।
४. डॉय० ओ० लि०, पृष्ठ १३५।

तपन—इसका प्रयोग ताप, जलन, गर्मी के लिए होता है। यहाँ 'गरम होने', 'धूप' और 'गर्मी' के संदर्भ में प्रयुक्त किया गया है। यथा,

इस पृथ्वी और सारे ग्रहों को सूर्य उजाला और
तपन देता है[1]

तथा,

एक साधारण दृष्टांत से तुम जानों किस भाँति आकाश में जल उठता और एक बूँद पानी तपने से दश गुण होने शक्ता है तुमने यह देखा है[2]

तत्तेदेश—यह 'तत्ते' और 'देश' दो शब्दों से बना सामासिक शब्द है। इसका संबंध संस्कृत 'तप्त' हिन्दी 'गरम' या 'तपा हुआ' से है। यह 'तत्त' रूप में अपभ्रंश रचना 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त मिलता है। यथा,

चुरंगी सु तत्तं, वरं सिघ उत्तं।
मिल्यै बनाम आनं दुअमल्ल जान॥
(पृथ्वीराज रासो)

इससे स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश भाषा के कुछ शब्द इस समय तक ज्यों-के-त्यों व्यवहृत हो रहे थे। परन्तु परवर्ती खड़ीबोली से इस प्रकार के अनेक शब्द या लुप्त हो चुके हैं अथवा ग्रामीण अंचलों मे बच रहे हैं। बच्चों की भाषा में भी ऐसे अनेक शब्द आज भी सुरक्षित मिलते हैं। 'तत्ते' शब्द इसी प्रकार का है। इसमें भी इसका व्यवहार किसी वस्तु या पदार्थ के 'गरम' होने के संदर्भ में किया जाता है। परन्तु यहाँ भी इसका प्रयोग 'गर्म' देशों या उष्ण कटिबंधीय देशों के संबंध में प्रयुक्त किया गया है। इसमें कथ्य और अभिव्यक्ति का संतुलन नहीं मिलता। परन्तु कथ्य से साम्य दिखाने तथा अभिव्यक्ति को पुष्ट और समृद्ध बनाने के लिए कभी-कभी इतर क्षेत्रों, समूहों और वर्गों के शब्द प्रयोग कर लिये गये हैं। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि शब्दों के उचित और शुद्ध रूपों से अनभिज्ञ रहने के कारण ऐसे प्रयोग सहज ही भाषा के लिखित रूप में प्रवेश पा गये हैं जो सामान्य बोलचाल में अनजाने ही पलते रहे हैं, यही फिर भाषा के मानक स्वरूप के अन्तर्गत स्वीकृत कर लिये गये हैं। 'तत्ते' तत्कालीन भाषा-भाषी समाज में दैनिक व्यवहार का शब्द रहा होगा और समयांतर पर एक वय वर्ग की भाषा में सीमित हो गया।

१. ज्यो०, पृष्ठ ३। २. पदा०, पृष्ठ ३८।

इस समय तक कौन-सा शब्द किस वय वर्ग के लिए निर्धारित है या किस समूह का शब्द है, यह निश्चित नहीं हो सका था। सभी शब्द स्वतन्त्र रूप से सभी क्षेत्रों या वर्गों में प्रचलित थे। अपनी रचनाओं में कथन पर बल देने तथा भाषा-परिचय प्रधान होने के कारण लेखकों के लिए प्रयोग-शुद्धता का प्रश्न गौण बनकर रह गया है। 'तत्ते' आज भी बच्चों की भाषा में अपने प्रारंभिक अर्थ में सुरक्षित मिलता है। उदाहरण निम्नलिखित है,

जीवों को तत्ते देश से ठंडे देश को ले जाते हैं[1]

ताड़ना—यह सकर्मक क्रिया है। इसका व्यवहार 'डाँटकर और फटकार कर अनुशासित करने' के संदर्भ में मिलता है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में 'ताड़न' शब्द का व्यवहार 'दंडित करने' के अर्थ में किया है। यथा,

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी,
ए सब ताड़न के अधिकारी ।।

(रामचरितमानस)

बोलचाल की बँगला में भी यही अर्थ मिलता है। परवर्ती साहित्यिक खड़ीबोली में इसका व्यवहार और सीमित हो गया है। यह खड़ीबोली के प्रारंभिक स्वरूप को प्रादेशिक बोलियों और भाषाओं से घिरे होने के प्रमाण हैं, यथा,

जो अपने बेटे को ताड़ना नहीं करता[2]

तथा

जो अभिलाषा विधाता ने ठीक कर दियी
है तैसीही विद्या के अभ्यास में तिनको भी
स्फूर्ति होय, और ताडना के विना भी
बालक सब पाठशाला में शासित रहें[3]

निस्तारणा—यह सकर्मक क्रिया है। इसका शाब्दिक अर्थ 'छुटकारा देना' होता है। ईसाइयों के धार्मिक गीतों में 'मुक्ति दिलाने या भौतिक संसार से छुटकारा दिलाने' के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है,

ख्रीष्ट के आपने आश्रित को
कहा है निस्तारणे को

---

१. ई० वि०, पृष्ठ ८।
२. पदा०, पृष्ठ १३।
३. पाठ०, पृष्ठ २।

कौल तो आपका सच्चा है
दीजिये ख्रीष्ट तो हम बच जाए[१]

पट्टा—इसका अर्थ 'लकड़ी का समतल या सपाट पटरा' होता है। इससे झूले पर डालकर बैठने का तथा लिखने के लिए तख्ती का कार्य भी ले लिया जाता है। इसके आकार और रूप से साम्य रखते हुए 'बालू का पटरीनुमा ढेर जिस पर छोटे बालक या छात्र हाथ की उँगलियों से अक्षर बनाने का अभ्यास करते हैं' का अर्थ लिया गया है। उदाहरण,

देस्क के सम्मुख बालू का पट्टा रखना[२]

बालू के ढेर पर अक्षर बनाना सिखाने की विधि के समाप्त हो जाने के साथ 'पट्टा' शब्द का प्रयोग अप्रचलित हो चुका है। इस प्रकार वस्तु के लुप्त हो जाने पर उसके द्योतक शब्द भी समाप्त हो जाते हैं या कभी-कभी वह एक प्रयोग-क्षेत्र छोड़ कर केवल दूसरे क्षेत्र में सीमित हो जाते हैं। आवश्यक स्थलों पर एक क्षेत्र के शब्द अपने रूप और आकार से साम्य रखने वाली वस्तुओं के लिए किस सहजता से स्वीकार कर लिये जाते हैं 'पट्टा' शब्द इसी का एक उदाहरण है। इससे अभिव्यक्ति सटीक बनाने का प्रयास किया गया है।

पण—एक विशेष प्रकार का माप बताने के लिए प्रयुक्त किया गया है। यह माप एक मुट्ठी भर अनाज के बराबर होता है। उदाहरण;

गिनती पण की[३]

प्यादा—इसका प्रयोग 'सेना में पैदल चलने वाले सिपाही' के लिए मिलता है, यथा—

ए प्यादा जब तू अप्ता हस्ताक्षर लिख चुके
तो उसे रोकड़ियों को दे[४]

पश्चिमाभिमुख~'पश्चिममुख—यह 'पश्चिम' और 'मुख' इन दो शब्दों से मिलकर बना सामासिक शब्द है। इसका प्रयोग 'पश्चिम दिशा' के लिए मिलता है। उदाहरण—

गुरु। इंग्लैंड से नौका पर बैठते हैं, सो शुद्ध
पूर्बमुख चले जाते हैं, पूर्ब दिशा से पीछे
इंग्लैंड में आ जाते हैं; कितने लोग पश्चिम

१. गीते०, पृष्ठ २।
२. पाठ०, पृष्ठ ३।
३. गणि०, सूचीपत्र।
४. वाक्या०, पृष्ठ १८३।

में आ जाते हैं, कितने लोग पश्चिम मुख होकर
निकलते हैं सो वे पश्चिमाभिमुख पीछे इंग्लैंड
में आ जाते हैं[१]

परवर्ती खड़ीबोली में 'गमन' के संदर्भ में अप्रचलित हो चुका है तथा मकान और घर आदि के लिए प्रयोग किया जाने लगा है।

पहरुए—यह संस्कृत 'प्रहरी' से निर्मित है। इसका प्रयोग संतरी, पहरेदार या चौकीदार के लिए किया गया है। यह ग्रामीण अंचलों में प्रचलित मिलता है परन्तु खड़ीबोली के साहित्यिक स्वरूप में अप्रचलित हो गया है। इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

जो इतनी बात कही तो सब बेड़ी हथकड़ी
खुल पड़ीं—चारों ओर के किवाड़ उघड़
गये पहरुए अचेत नींद बस भये[२]

पांजर—इसका व्यवहार 'पार्श्व और कमर के मध्य भाग जिसमें पसलियाँ होती हैं' के लिए किया गया है। इसके लिए 'पार्श्व' शब्द भी प्रचलित है। यथा,

बाहें और हाथ उसके वीना तनावों के पाँजर
में पाढ़े रहे और न फुले[३]

परवर्ती खड़ीबोली में यह 'पांजर ढीला कर देना' जैसे मुहावरों में सुरक्षित मिलता है।

पैदल—इसका प्रयोग 'पैदल सिपाही या पैदल चलने वाले सेनानियों' के लिए किया गया है। परवर्ती खड़ीबोली साहित्य में 'पदाति सेना' और 'पैदल सिपाही' शब्दों ने इसका स्थान ले लिया है। वाक्य प्रयोग में एकाकी रूप में न आकर सामाजिक रूप से रखा जाने लगा है,

हींदी और अंगरेजी के भाषा में पैंदल के लीऐ
संगृह की आ[४]

पैठारना—यह संस्कृत शब्द 'प्रविष्टि' से बनी प्रेरणार्थक क्रिया (पैठ+आर+ना) है। इसका अर्थ 'प्रवेश करना' होता है। यह प्राणी के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है। परन्तु यहाँ पर श्वास के शरीर के भीतर तक

१. भू०, पृष्ठ ४१।
२. प्रेम,० पृष्ठ २४।
३. सेना०, पृष्ठ ५।
४. सेना०, मंगल समाचार।

पहुँचने के लिए व्यवहृत हुआ है। अर्थ नैकट्य होने पर भी सन्दर्भ भिन्न-भिन्न है। यहाँ यद्यपि भाव सम्प्रेषणीयता तो किसी-न-किसी प्रकार हो गयी है परन्तु कथ्य के अनुरूप शब्द का चयन न होने से भाषा अपरिपक्व लगती है। उदाहरण,

जिससे हम स्वास पैठारते और निकालते[1]

यह खड़ीबोली से पूर्व १६वीं शती में अवधी में प्रयुक्त हो चुका था। इस समय प्राणी के सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। यथा,

अति लघुरूप धरेउ हनुमाना ।।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना ।।
[रामचरितमानस]

तथा,

असगुन होहिं नगर पैठारा।
रटहिं कुभांति कुखेत करारा।
[रामचरितमानस]

बखर—इसका प्रयोग इतिहास सम्बन्धी विवरण/वर्णन के लिए मिलता है। यथा,

धार के राजों की बखर[2]

बखान—इसका सम्बन्ध संस्कृत व्याख्यान >प्राकृत बक्खान से है। कोशग्रंथों में इसका अर्थ 'वर्णन' दिया गया है। सामान्य रूप से इसका प्रयोग विशेषताओं और गुणों के सन्दर्भ में मान्य होता है। परन्तु यहाँ सामान्य वर्णन, लेखा-जोखा आदि के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा—

पाठशाला बैठावने का बखान[3]

तथा,

मनितर रखने का बखान[4]

उल्लेखनीय है कि इसका प्रयोग कबीरदास की रचनाओं में हो चुका था और वहीं से खड़ीबोली में ले लिया गया, यथा,

कबिरा संस्कृत संसार में पंडित करैं बखान।
भाषा भगति दृढ़ावही न्यारा पदनिर्वान ।।
[कबीर]

---

१. पदा०, पृष्ठ ४५।
२. धार०, पृष्ठ १।
३. पाठ०, सूचीपत्र।
४. पाठ०, सूचीपत्र।

बचाव के स्थान—इसका प्रयोग 'सुरक्षा या बचने के स्थान' के लिए मिलता है। परवर्ती मानक खड़ीबोली में इस वाक्यांश के स्थान पर 'सुरक्षित स्थान' सामासिक रूप में बहुप्रयुक्त हो चला है, यथा,

> तब एक ने पिता को और एक ने माता को
> कन्धे करके, इस अग्नि समूह से दूर जायके,
> और किसी बचाव के स्थान में ले जायके, इस
> प्रकार से उन्ह की रक्षा किई[1]

बजंत्री—यह संस्कृत 'वाद्य यंत्र+ई' से निर्मित है। इसका अर्थ वाद्य यंत्र या बाजा बजाने वाला होता है। यह जन्मोत्सव आदि मांगलिक अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के संगीत वाद्य-यंत्र बजाने वालों के लिए प्रयुक्त हुआ है। समयान्तर पर इस रीति-रिवाज के समाप्त या अप्रचलित हो जाने के कारण यह शब्द भी लुप्त हो गया है। इसका प्रयोग 'प्रेम सागर' से अतिरिक्त नहीं मिलता। कदाचित् १८०३ ईसवी के पश्चात् साहित्य से हटकर बोलचाल में कहीं शेष रह गया हो। इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

> तब नगर के सब मंगलामुखियों को बुलाया, वे आय
> आय अपना अपना गुन प्रकाश करने लगे—बजंत्री
> बजाने-नृत्यक नाचने-गायक गाने ढाढी ढाढिन
> जस बखानने[2]

बरसौड़ी—यह संस्कृत वर्ष>हिन्दी बरस+औडी [औड़ी] प्रत्यय से बना यौगिक शब्द है। यह 'वार्षिक किराया' या 'कर' के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा,

> भाइयों, हमने सुना है कि कंस बालक पकड़ मँगवाता
> है इससे उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें औ
> बरसौडी दे आवें[3]

बहुताई—इसका प्रयोग 'आधिक्य' का भाव प्रकट करने के लिए है। यह शब्द साहित्य से लुप्त हो गया है तथा इसके स्थान पर 'बहुतायत' शब्द आ गया है। परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में 'बहुताई' कहीं-कहीं मिलता है। इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

> दूसरा बालक धन की बहुताई के द्वारा उत्तरोत्तर

---

१. उप०, पृष्ठ ५।
२. प्रेम०, पृष्ठ २८।
३. प्रेम०, पृष्ठ २९।

————अनादर कर्ने लगा[1]

बारी—इसका प्रयोग 'खिड़की' के लिए किया गया है। बोलियों में यह आज तक इसी अर्थ में मिलता है परन्तु परवर्ती मानक खड़ीबोली साहित्य में अप्रचलित हो गया है। इसका घर के मध्य में बारी कर देना[2]

बालकपन—यह 'बालक' और पर प्रत्यय '—पन' से बनी संज्ञा है। इसका अर्थ 'बचपन' या 'बाल्य अवस्था' होता है। यहाँ '—पन' अवस्था-बोधक प्रत्यय है। और 'बालक' शब्द स्वयं अवस्था बोध के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अतः बालक के साथ '—पन' प्रत्यय अनावश्यक है। प्रत्यय होने पर संज्ञा न होकर विशेष 'बाल' होना चाहिए जो भाषा-व्यवस्था के अनुरूप होता है। यही बात 'बालक काल' शब्द के साथ भी है। 'काल' के पूर्व संज्ञा के स्थान पर विशेषण 'बाल' शब्द नियमसम्मत है। इस प्रकार के शब्द-रचना सम्बन्धी आरंभिक दोष परवर्ती खड़ीबोली में पनप न सके। इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

बालकपन में विद्या शीखने से युवा अवस्था
में सुख होता है[3]

तथा,

बालक काल में कन्यागन पिता माता क वश
में रह कर उन्हों की आज्ञा पर चलेंगी[4]

विद्याधर—इसका शब्दार्थ 'स्वर्गिक नृत्य करने वाले' होता है। ये इन्द्र के स्वर्ग में देवताओं के सामने नृत्य करते हैं। इन्हें यक्ष और गन्धर्व भी कह सकते हैं। इसका प्रयोग पुत्र-जन्म पर भिन्न-भिन्न प्रकार से मंगलाचार करने वाले के लिए किया गया है, उदाहरण,

देवता अपने अपने विमानों में बैठे आकाश से
फूल बरसावने विद्याधर गंधर्व-चारन ढोल-दमामे-
भेर—बजाय बजाय गुन गाने[5]

बूंदें—यह संस्कृत 'बिन्दु' से निर्मित है और 'बूंद' का बहुवचन रूप है। इसका प्रयोग वर्षा की बूंदों या कणिकाओं के लिए किया गया है। इसका यह अर्थ आज भी मिलता है। उदाहरण,

---

१. मनो० इति०, पृष्ठ १४।
२. पाठ०, पृष्ठ १।
३. हिन्दुई०, पृष्ठ १०।
४. स्त्री०, पृष्ठ २०।
५. प्रेम०, पृष्ठ २२।

मेघ मोटी धारा से नहीं वर्षते बूंदे होके वर्षते,
यही परमेश्वर की दया का चिह्न है।[1]

बेभरोसा—'भरोसा' शब्द में 'बे—' उपसर्ग से इसकी रचना हुई है। सामान्य रूप से इससे 'विश्वास' या 'भरोसा' रहित अर्थात् 'अविश्वसनीयता' का भाव अभिव्यक्त होता है। परन्तु यहाँ 'आशाहीन' अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। उर्दू रचनाओं में इस प्रकार के उदाहरण आज भी मिल जाते हैं परन्तु परवर्ती मानक खड़ीबोली में इसे भाव और अभिव्यक्ति का दोष कहा जायेगा,

अफ़सोस करता आया हूँ
दयाल ईश्वर आपके पास
में बेभरोसा पाप से हुँ
फकत ख्रीष्ट से पांव् आश
क्षमा करो मेरे पाप
मन में शांति देव
मैं अब करता हुँ विलाप
प्रभु यिशु शान्ति देव[2]

बोल-बोल जुदा करना—'बोल' का कोशगत अर्थ 'मनुष्य के मुख से उच्चारण किया हुआ शब्द या वाक्य, वचन अथवा वाणी' है। परन्तु यहाँ शब्दों का उच्चारण पृथक् करने और स्पष्ट रूप से पढ़ने के लिए इसका प्रयोग है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'Speak' है।
यथा,

Ruh rukke our bol bol jooda kur bolo
tou humtifunj henge toomharee bat[3]

इसका अंग्रेजी पाठ निम्नलिखित है :

Speak slowly and distinctly, I shall then
understand you[4]

भावना—यह मीमांसा दर्शन का शब्द है जिसका अर्थ मानसिक व्यापार होता है। परंतु यहाँ सामान्य सन्दर्भ में सोचने-विचारने के लिए प्रयुक्त किया गया है। लिखते समय भाव और कथ्य के अनुरूप उपयुक्त शब्द स्मरण न

१. पदा०, पृष्ठ २५।
२. गीते०, पृष्ठ ५७।
३. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३६।
४. डॉय० ओ० लिं०, पृष्ठ १३६।

आने पर इस प्रकार अर्थ साम्य रखने वाले अनेक प्रयोग खड़ीबोली के आरंभिक स्वरूप में मिलते हैं। यथा,

> बहुत भावना करके इन् मोहरन् समेत राजा के
> चरण पर गिरके बहुत रोने लगा[1]

भैचक—इसका प्रयोग भय से पूर्ण आश्चर्य तथा चकित होने या डरकर देखने के लिए किया गया है। खड़ीबोली के परवर्ती साहित्यिक स्वरूप में यह नहीं मिलता है। इसके लिए संस्कृत के 'चकित' और 'आश्चर्य' शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं। परन्तु क्षेत्रीय बोलियों में तथा अपढ़ों की भाषा में यह शब्द अभी भी सुनाई दे रहा है। इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

> तब तो राजा ने वह फल रानी को दिखाया,
> वह देखते ही भैचक सी रह गई, कुछ जवाब न बन
> आया[2]

मंगलामुखी—यह संस्कृत के मंगल और मुखी दो शब्दों के मेल से बना सामासिक शब्द है। इसका अर्थ संगीतज्ञ होता है। पुत्र-जन्मोत्सव तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर प्रशस्ति करने वाले तथा गाने-बजाने वालों के संदर्भ में प्रयुक्त है। इससे पता चलता है कि इस समय तक पुत्र-जन्मोत्सव पर मंगलाचार की प्रथा घर पर प्रचलित थी। ये शब्द चारण-भाट परम्परा की ओर संकेत करते हैं। इस परम्परा और रीति से जुड़े अनेक शब्द लल्लूजी लालकवि ने १८०३ ईसवी में अपनी रचना 'प्रेमसागर' में प्रयोग किये हैं। परवर्ती समाज में यह रीति तो प्रचलित रही परन्तु इन शब्दों का प्रचलन समाप्तप्राय हो गया। उदाहरण,

> तब नगर के सब मंगलामुखियों को बुलाया,
> वे आय आय अपना अपना गुन प्रकाश करने
> लगे[3]

मुखाग्र—इसका शब्दार्थ मुख के आगे का भाग होता है। परन्तु इसका प्रयोग 'कंठस्थ करने' के लिए किया गया है। यह अंग्रेजी के 'By heart' का हिन्दी अनुवाद है। यहाँ अनुवादक शब्द और उसके अर्थ से परिचित प्रतीत होता है। परन्तु वह शब्द के उपयुक्त प्रयोग से परिचित नहीं है। इसीलिए भाव-साम्य रखने वाले शब्द का प्रयोग कर लिया है। इसे अन्य भाषा का अपूर्ण ज्ञान कहा जा सकता है। उदाहरण,

---

१. उप०, पृष्ठ ३।
२. बै० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ३।
३. प्रेम०, पृष्ठ २८।

तुम उसको मुखाग्र से कहने सक्ते हो[१]

इसका अंग्रेजी पाठ निम्नलिखित है,

Can you say it by heart[२]

मोट—यह हिन्दी का देशज शब्द है। इसका कोशगत अर्थ 'मोटरी' या 'गठरी' है। ग्रामीण अंचलों में मोट, मोटरी और गठरी तीनों शब्द आज भी प्रचलित मिलते हैं। परन्तु साहित्यिक खड़ीबोली में 'गठरी' शब्द प्रचलित मिलता है। विवेच्य खड़ीबोली में यह बोझ के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इसका अंग्रेजी रूप 'load' है। उदाहरण,

वह अपने माथे पर यह मोट ढोता है[३]

इसका अंग्रेजी पाठ निम्नलिखित है,

He bears this load on his head[४]

यौतुक—यह संस्कृत भाषा का शब्द है। इसका प्रयोग 'दान दहेज' के लिए किया गया है। लल्लूजी लालकवि कृत 'प्रेमसागर' से अतिरिक्त इसका प्रयोग नहीं मिलता। उदाहरण,

वेद की विध से कंस ने वसुदेव को कन्या दान
दिया, तिसके यौतुक में पंद्रह सहस्र घोडे-चार सहस्र
हाथी, अठारह सै रथ दास दासी अनेक दे———
सब मिल पहूँचावन चले[५]

रंडी—कोशग्रन्थों में इसका शब्दार्थ वेश्या मिलता है। परन्तु आरम्भिक खड़ीबोली में यह इस अर्थ में नहीं मिलता। इसके कई अर्थ हैं। इंशा अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' में रानी केतकी और सखियों के लिए इसी शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरण,

इतने में कुछ एक अमरइयाँ देख पड़ीं, तो उधर चल
निकला, तो देखता है जो चालीस पचास रंडियाँ
एक से एक जोवन में अगनी झूला डाले पड़ी झूल रही हैं
और सावन गातियाँ है[६]

तथा,

वही झूलने वाली लाल जोड़ा पहने हुए जिसको सब

---

१. वाक्या०, पृष्ठ ५।
२. वाक्या०, पृष्ठ ६।
३. वाक्या०, पृष्ठ १२७।
४. वाक्या०, पृष्ठ १२६।
५. प्रेम०, पृष्ठ १६।
६. रानी०, पृष्ठ ४।

> रानी केतकी कहती थीं, उसके भी जी में उसकी चाह ने घर किया । पर कहने सुनने को बहुत सी नाँह-नूह की और कहा—"इस लग चलने को भला क्या कहते हैं । हक न धक, जो तुम झट से तहक पड़े । यह न जाना, यहाँ रंडियाँ अपने झूल रही हैं । अजी तुम जो इस रूप के साथ इस बेधड़क चले आये हो, ठंडे-ठंडे चले जाओ [1]

सन् १७६८ और १८०३ ईसवी के मध्य लिखी इस रचना के पश्चात् इसका प्रयोग १८२३ ईसवी में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी के लिए लिखी—'स्त्री शिक्षा विधायक' शीर्षक रचना में मिलता है । इसमें शिष्ट और भद्र महिला, ज्ञान-विज्ञान में प्रवीण और साध्वी स्त्रियों के संदर्भ में मिलता है । मैत्रेयी, शकुन्तला, अनुसूया, द्रौपदी आदि पौराणिक पात्रों के लिए 'रंडी' शब्द का प्रयोग है । उदाहरण,

> — — —नाना देशों की रंडियाँ अपने देश की विद्या सीखने में अनादर करते हैं [2]

तथा,

> स्त्रीजन के विद्या सीखने में जो शास्त्र औ व्यवहार को मत में कुछ दोष होता तो आगे की साध्वी स्त्रियाँ कभी न सीखतीं । मैत्रेयी सकुंतला, अनुसूया, वाभट की कन्या द्रौपदी, भगवती, रुक्मिनी, चित्रलेखा, लीलावती, मालती, करनाद राजा की स्त्री, लक्ष्मन सेन की स्त्री, रवना आदि प्राचीन रंडियों ने नाना शास्त्र पढ़कर नाम निकाला था [3]

उल्लेखनीय है कि इसी रचना में नारी, स्त्री आदि शब्द भी इसी संदर्भ में प्रयुक्त किये गये हैं । इसके लगभग पचास वर्ष पश्चात् भारतेन्दु-काल आते-आते 'रंडी' शब्द घरों में निम्न स्तर के घरेलू काम करने वाली स्त्रियों के संदर्भ में प्रयोग किया जाने लगा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'लखनऊ' शीर्षक रचना में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त किया गया है,

---

१. रानी०, पृष्ठ ४ ।
२. स्त्री०, पृष्ठ १ ।
३. स्त्री०, पृष्ठ २ ।

मुझसे जो मिला उसने मेरी आमदनी गाँव
रुपया पहिले पूछा और नाम पीछे वरन् बहुत
से आदमी संग में न लाने की निन्दा सबने
किया पर जो लोग शिक्षित हैं वे सभ्य हैं
परन्तु रंडियाँ प्रायः सबके पास नौकर हैं,
और मुसलमान सब वाह्य सभ्य हैं[1]

इस प्रकार निपुण और प्रवीण महिला के अर्थ से होता हुआ यह शब्द १६ वीं शती के अंत में ही निम्नस्तर के कार्य करने वाली स्त्री के संदर्भ में सीमित हो गया। ज्ञान-विज्ञान की प्रवीणता का क्षेत्र घरेलू सुगढ़ता में परिवर्तित हो गया और फिर क्रमशः २०वीं शती आते-आते हीन संदर्भों में प्रयुक्त किया जाने लगा। एक संदर्भ से दूसरे संदर्भ में प्रयुक्त होने पर शब्द अपने मूल अर्थ को किस प्रकार छोड़ देते हैं, यह शब्द इसी का एक उदाहरण है। उल्लेखनीय है कि इस समय हीन सन्दर्भों में 'वेश्या' शब्द भी प्रयुक्त हो रहा था।

रवन्ना—यह फ़ारसी के 'रवाना' शब्द पर आधारित है। रवाना वह कागज़ होता है जिस पर भेजे गये या रवाना किये गये माल का ब्यौरा दिया जाता है। इसी अर्थ में इसका प्रयोग यहाँ मिलता है। इसका अंग्रेजी मूल 'Pass' है। अंग्रेजी पाठ और उसका हिन्दी अनुवाद दोनों निम्नलिखित हैं,

जो जो सामग्री उपस्थित है जाओ और उनके
लिए रवन्ना ले आओ[2]
Go and procure a pass for the
things that are ready[3]

विस्तारना—यह 'विस्तार करना' संयुक्त-क्रिया से बनी नामिक संयुक्त क्रिया है। इसका प्रयोग समुद्र के विस्तार या फैलाव के लिए किया गया है। उदाहरण,

गुरु ! समुद्र के विशेष गुण तो ये हैं विस्तारता
गंभीरता लवणाई और बढ़ना घटना और
खाई[4]

१. लखनऊ, कविवचन सुधा अंक २ नवम्बर २२, १८७१, पृष्ठ १७४।
२. वाक्या०, पृष्ठ १७७।
३. वाक्या०, पृष्ठ १७६।
४. पदा०, पृष्ठ ३३।

वेष्टन—वस्त्र या कोई अन्य वस्तु जिस पर लपेटी जाये उसे 'वेष्टन' कहते हैं। कार्य-विधि से साम्य रखने के कारण पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने को 'वेष्टन करना' कहा गया है। इसे भाषिक-व्यवस्था में विसंगत और अस्वीकृत प्रयोग कहा जा सकता है। ऐसे प्रयोग खड़ीबोली की लचीची प्रवृत्ति के उदाहरण हैं, यथा,

शिष्य। चन्द्रमा पृथ्वी को वेष्टन कर्ता है
कि नहीं ?
गुरु। हाँ, चन्द्रमा साढ़े उनतीस दिन में
पृथिवी को वेष्टन कर्ता, और पृथिवी के साथ
सूर्य को वेष्टन कर्ता है [1]

वृद्धकाल—यह 'वृद्ध' और 'काल' दो शब्दों से बना सामासिक शब्द है। यह वृद्धावस्था के लिए प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण,

औ वृद्धकाल में अपने संतान द्वारा प्रतिपालित
होकर विशेष रूप में सत्कर्मों का अनुष्ठान
किया करेंगी [2]

शादियाने—यह फ़ारसी भाषा का शब्द है। इसका प्रयोग मांगलिक संगीत के लिए 'प्रेमसागर' में किया गया है। यथा,

जितने छोटे-बड़े नौकर चाकर थे सब ने आके
हज़ूर में नज़रें दीं, और शादियाने बजने लगे,
सारे शहर को अजब ऐक तरह की खुशी
और खुर्रमी हासिल हुई [3]

सुसम्बत—इसकी रचना 'सम्बत' में 'सु-' पूर्व प्रत्यय से हुई है। इसका प्रयोग कल्याणकारी वर्ष के लिए किया गया है, यथा,

धूमकेतु के उदय होने के समय जैसे भारी भय
लराई और अकाल इत्यादि होते हैं वैसे भी
मेल और सुसम्बत और सुख भी होते हैं [4]

सुरत—कोश ग्रंथों में इसका अर्थ रतिक्रीड़ा दिया गया है। परंतु आरंभिक खड़ीबोली में इसका व्यवहार दो अर्थों में किया गया है। एक, याद और स्मरण के अर्थ में, दूसरे, समाचार, परिस्थिति और हालचाल के अर्थ में। प्रथम

---

१ पदा०, पृष्ठ १५।
२. स्त्री०, पृष्ठ २१।
३. बैं० हिं० हिंदु०, पृष्ठ ५।
४. पदा०, पृष्ठ १८।

अर्थ में 'रानी केतकी की कहानी' में प्रयुक्त हुआ है जबकि दूसरा अर्थ अभिलेखों में मिलता है, यथा,

> इस सिर झुकाने के साथ ही दिन रात जपता
> हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को जिसके
> लिये यों कहा है—जो तू न होता तो मैं कुछ
> न बनाता, और उसका चचेरा भाई जिसका ब्याह
> उसके घर हुआ, उसकी सुरत मुझे लगी रहती
> है[१]

तथा,

> आपका आशीर्वाद से आहां कुशल है आपका
> कुशल मंगल सर्वदा चाहिये, आगे आहां का सूरत
> अच्छा है।[२]

सुकृति—यह संस्कृत के 'कृति' शब्द में 'सु-' पूर्व प्रत्यय से बनी यौगिक संज्ञा है। इसका अर्थ 'अच्छी रचना' और 'सुधर्म' होता है । सुधर्म के अर्थ में इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

> राजा ने उसको अभयदान देके कहा कि हे सुशील
> बालक तुम्हारी सुकृति के फल देने के कारण
> परमेश्वर ने तुमको ये मोहरैं दिई है[३]

हौंस—इसका शब्दार्थ चाह, इच्छा, लालसा आदि है। ग्रामीण अंचलों में यह इसी रूप में सुरक्षित है परन्तु मानक साहित्यिक खड़ीबोली में 'प्रतियोगिता' शब्द इसका स्थानापन्न हो गया है। इसका प्रयोग निम्नलिखित है,

> सब पढ़नेहारे सर्व्वदा विद्या के अभ्यास में परस्पर
> हौंस करके एक एक बालक जैसी योग्यता प्रकट
> करेगा[४]

समष्टि रूप से कहा जा सकता है कि इस समय के सामाजिक-सांस्कृतिक

---

१. रानी०, पृष्ठ २।
२. अभि०, ३१ क।
३. उप०, पृष्ठ ४।
४. पाठ०, पृष्ठ ३।

और राजनैतिक मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव शब्दार्थ और शब्द प्रयोग पर सर्वत्र बना रहा है। लेखकों ने भाषा में प्रचलित सभी स्रोतों और ज्ञान क्षेत्रों से जुड़े शब्दों को स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया जिससे कहीं तो अपूर्ण बिम्ब ग्रहण हो गया है तो कहीं एक ज्ञान क्षेत्र का शब्द इतर संदर्भों में प्रयोग कर लिया गया है। उपयुक्त शब्द स्मरण न आने पर कथ्य और अभिव्यक्ति की दूरियाँ बढ़ गयी हैं। प्रयोग संबंधी नियमों की अवहेलना अस्वीकार्य प्रयोगों का कारण बन गयी हैं। इससे तात्पर्य बोध में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ है न ही सम्प्रेषणीयता का गुण कम होने पाया है। परन्तु भाषा का सहज प्रवाह अवश्य बाधित हो गया है।

———

अनुभाजन—१

परिशिष्ट—१

वर्ष क्रमानुसार उपलब्ध रचनाएँ

१. १७६८ ईसवी—	१. Dialogues
२. १७६८ ईसवी—१८०३ ईसवी	२. उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी
३. १८०२ ईसवी—	१. बैताल पच्चीसी
	२. शकुंतला नाटक
	३. श्री भागवत
४. १८०३ ईसवी —	१. नागलीला
	२. सती होने की रीति हिन्दुओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है
	३. दसवीं कहानी पहाड़ की जिस्को जनने की पीर उठी (Oriental Fabulist)
	४. प्रेमसागर
	५. नासिकेतोपाख्यान
५. १८०४ ईसवी —	१. नक्लियात (Hindee Roman ortho-epigraphical ultimatum)
६. १८०५ ईसवी—	१. रामचरित्र
७. १८११ ईसवी—	१. The New Cyclopaedia Hindoostanica of wit
	२. अशआर मियाँ नज़ीर के
	३. शाह फकीर के शब्द
८. १८१२ ईसवी—	१. Holy Bible
	२. रिसाला तीरंदाज़ी

९. १८१३ ईसवी—	१. वैद्यक योग संग्रह
	२. पुरुष परीछा संग्रह
१०. १८१५ ईसवी—	१. धर्म गीता
	२. वेदान्त सार तथा वेदान्त संग्रह
	३. किमियासार
	४. सकुनावली
	५. अपरोक्षानुभव
११. १८१६ ईसवी—	१. मेवाड़ वंशावली
१२. १८१७ ईसवी—	१. कोक स्वरोदय वैद्यकी
१३. १८१८ ईसवी—	१. लाल चंद्रिका
	२. भगवतगीता सुपनिषद
१४. १८१९ ईसवी—	१. पारसभाग अथवा महमूद गज़ाली री बात
	२. मंतखबाते हिन्दी
	३. शाहनामा
१५. १८२० ईसवी—	१. मूलसूत्र अथवा हिंदी स्पेलिंग बुक
१६. १८२२ ईसवी—	१. ज्योतिष विद्या और गोलाध्याय
	२. नीतिकथा
१७. १८२३ ईसवी—	१. हिन्दी भाषा का नौसिख के लिए
	२. फ़ारसी रमल शास्त्रसार
	३. फतेसिंह प्रताप प्रभाकर
	४. स्त्रीशिक्षा विधायक
१८. १८२४ ईसवी—	१. गोराबादल री वारता
	२. ब्रह्मवाद
	३. पाठशाला के बैठावने की और बालकन के सिखावने की रीति का बखान
१९. १८२५ ईसवी—	१. पीयर्स साहब के किया हुए भूगोल वृत्तांत का संग्रह से भूगोल और खगोल का स्थूल ब्यौरा

	२. प्रश्नावली (अनुमानित समय)
	३. पासाकेवली (अनुमानित समय)
	४. उपदेशकथा और इंलेण्ड की उपाख्यान का पुस्तक
२०. १८२६ ईसवी—	१. सेनानी पोथी
	२. जगत तारक प्रभु ईसा मसीह का नया नियम जिसको मंगल समाचार कहते हैं
२१. १८२७ ईसवी—	१. हिन्दू की परवों का वृतांत
	२. हिन्दुओं की जाति माला
	३. मनोहर कहानियाँ सुगम बोली में
	४. गणितांक का पुस्तक
	५. हिन्दी भाषा का व्याकरण
२२. १८२८ ईसवी—	१. रामायण
	२. गीतें हमारे प्रभु और त्राण करन हारे यिशु ख्रीष्ट की वन्दिगी में गाने के वास्ते
२३. १८२९ ईसवी—	१. Hindi selections and Hindi stories
	२. अखरावली
२४. १८३० ईसवी—	१. गौड़ वंशावली (अनुमानित समय)
२५. १८३१ ईसवी—	१. भाव प्रकाशिका
२६. १८३२ ईसवी—	१. राजनीति उपदेश
	२. हिन्दवी में कथाएँ
	३. दायभागः
२७. १८३३ ईसवी—	१. वैद्यक विनोद
	२. कोकसार
२८. १८३४ ईसवी—	१. स्त्रीशिक्षा
	२. जयपुर के शासकों की वंशावली

२६. १८३५ ईसवी— १. कृष्णचरितोपाख्यान
२. मनोरंजन इतिहास अर्थात् बालकों को ज्ञानदायक और नीति सिखाने का उपाख्यान

३०. १८३६ ईसवी— १. दाउद के गीत

३१. १८३७ ईसवी— १. शिष्य बोधक

३२. १८३८ ईसवी— १. भूगोल दर्पण
२. हातिमताई

३३. १८३६ ईसवी— १. विद्याभ्यास का फल
२. कथासार

३४. १८४० ईसवी— १. विद्यार्थी या आजमगढ़ रीडर
२. ज्ञान प्रकाश
३. रसिक-उर-हार
४. हनुमान नाटक

३५. १८४१ ईसवी— १. भूगोलसार अर्थात् ज्योतिषचंद्रिका (अनुमानित समय १८३६ ईसवी)
२. ज्योतिष विद्या का संक्षेप वर्णन
३. इंगलैण्ड द्वीप दीपिका
४. व्यंजन प्रकार का संक्षेप पाठशालाओं के लिए
५. पत्रमालिका
६. गुणकारी उपदेश का संक्षेप पाठशालाओं के लिए

३६. १८४२ ईसवी— १. हैदर का कासिदनामा

३७. १८४३ ईसवी— १. प्रहलाद चरित
२. पदार्थ विद्यासार

३८. १८४५ ईसवी— १. Hindui Primer
२. पटवारियों के हिसाब रखने की पुस्तक
३. क्षेत्र चंद्रिका

३६. १८४६ ईसवी— १. भारतवर्षीय इतिहास अर्थात् हिन्दुस्तान.की कथा
२. इतिहास चंद्रिका या इंगलैण्ड का इतिहास
३. ईश्वरोक्त शास्त्रधारा
४. A course of Divine Revelation
५. क्षेत्र कौमुदी अर्थात् क्षेत्र व्यवहार
६. सुखसागर (अनुमानित समय)
७. षटपंचासिका
८. लीलावती

४०. १८४७ ईसवी— १. रसायन प्रकाश
२. स्त्रीशिक्षा

४१. १८४८ ईसवी— १. धर्म पुस्तक का अंतभाग
२. गोपीचंद लीला

४२. १८४७ ईसवी–१८४८ ईसवी १. गावों के पाठशालों और चटसालों का सन्देस पत्र (अनुमानित समय)

४३. १८५० ईसवी — १. गोस्तन शीतला
२. राजनीतिशास्त्र
३. मामूल अतित्वा सर्व
४. धार के राजों की बखर
५. बहारों की पुस्तक
६. महाजनी सार
७. तर्क संग्रह
८. तोता मैना की कहानी
९. भोज प्रबंध

४४. १८५१ ईसवी— १. हितोपदेश
२. गणित प्रकाश
३. रमसेना

परिशिष्ट-२

प्रमुख लेखक, सम्पादक तथा उनकी लिखित और सम्पादित रचनाएँ (वर्णमाला के क्रम से)

लेखक, संपादक	
१. आधार मिश्र	वैद्यक योग संग्रह
२. आनन्द कवि	कोकसार
३. इंशा अल्ला खाँ	उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी
४. उदय	हनुमान नाटक
५. ओंकार भट्ट (सिहोर)	भूगोल सार अर्थात् ज्योतिष चंद्रिका
६. एडम मेथ्यू	गणित का पुस्तक
७. एम० टी० एडम	गणितांक का पुस्तक
	पाठशाला के बैठावने की और बालकन के सिखावने की रीति का बखान
	मनोरंजन इतिहास
	हिन्दी भाषा का व्याकरण
८. कृपा राम	पारसभाग अथवा महमूद गज़ाली री वात
९. काज़िम अली जवाँ	शकुन्तला नाटक
१०. ख़्वाजा मुहम्मद फ़ज़्ल	रिसाला तीरंदाज़ी
११. गंगाधर (सुल्तानपुर)	नागलीला
	अखरावली
१२. गोपाल (फतेपुर)	भड़ई विलास
१३. गोपाल लाल	क्षेत्र कौमुदी अर्थात् क्षेत्र व्यवहार
१४. सान संतसिंह बेदी	भाव प्रकाशिका
१५. जगन्नाथ दास	धर्मगीता
१६. जटमल	गोराबादल री वात
१७. जयशंकर	व्यंजन प्रकार

१८. जवाहर लाल	इतिहास चंद्रिका या इंगलैंड का इतिहास
१९. जॉन विल्सन	वाक्यावली
२०. जॉन शेक्सपीयर	मंतख़बाते हिन्दी
२१. डॉ जॉन बार्थविक गिल क्राइस्ट	Dialogues
	नक्लियात (Hindee Roman Orthoepigraphical ultimatum)
	Oriental Fabulist
	Oriental Linguist
२२. जॉन म्योर	ईश्वरोक्त शास्त्रधारा
२३. जेम्स मिकल	Hindi Selections and Hindi Stories
२४. जे० टी० थामसन	ज्योतिष विद्या और गोलाध्याय
	दाउद के गीत
२५. जे० जे० मूर	भारतवर्षीय इतिहास अर्थात् हिन्दुस्तान की कथा
	लीलावती
२६. डब्ल्यू० चैपलीन	सती होने की रीति, हिन्दुओं में अपने पति के साथ मया और चलन से बाहर है
२७. डब्ल्यू० टी० एडम	उपदेश कथा और इंगलैण्ड की उपाख्यान का चुंबक
२८. तारिणी चरण मित्र	पुरुष परीक्षण संग्रह
	नीतिकथा
२९. दरियाव सिंह (कानपुर)	वैद्यक विनोद
३०. दयाशंकर	दायभाग
३१. नेवाज़ कवि	शकुन्तला (ब्रजभाषा)
३२. पीयर्स	भूगोल वृतांत
३३. पूर्णवल्लभ मिश्र	मामूल अतिब्बा सर्व
३४. प्रेमरंग	रामायण

३५. बद्रीलाल	षटपंचासिका
	रसायन प्रकाश
	हितोपदेश
३६. मक्खन लाल	सुखसागर
३७. मजहर अली खाँ 'विला'	बैताल पच्चीसी
३८. मनसाराम	भगवत गीता उपनिषद
३९. मिसेज् रो	मूलसूत्र अथवा हिन्दी
	स्पेलिंग बुक
४०. मुन्शी कालीराय	कुरुक्षेत्र दर्पण
	फतहगढ़नामा
	खेतकर्म
	खेतनामा
४१. यज्ञदत्त (रायबरेली)	ब्रह्मवाद
४२. रंगीलाल (आगरा)	तोता मैना की कहानी
४३. रतनलाल	कथासार
४४. रतनलाल शर्मा	भूगोल दर्पण
४५. रतन शंकर	पत्रमालिका
४६. राजा राममोहन राय	वेदांत सार तथा वेदांत संग्रह
४७. राजेन्द्र शरण (बिहार)	रसिक-उर-हार
४८. रामकिशन (पंडित)	स्त्रीशिक्षा
४९. लछिमन	प्रहलाद चरित
	गोपीचन्द लीला
५०. लल्लू जी लालकवि	प्रेमसागर
	नक्लियात (The New Cyclopaedia Hindoostanica of wit)
	लालचंद्रिका
	शकुन्तला नाटक
५१. वली मुहम्मद अकबराबादी	अशआर मियाँ नज़ीर के
५२. वंशीधर (रायबरेली)	भोजप्रबंध

५३. विलियम प्राइस	Hindee and Hindoostanee Selections
	हिन्दू की परवों का वृतांत
	हिन्दुओं की जातिमाला
	मनोहर कहानियाँ सुगम बोली में
५४. शंकर	अपरोक्षानुभव
५५ शिवप्रसाद	नीतिविनोद
५६. शाह फकीर	शब्द
५७. सदल मिश्र (पंडित)	नासिकेतोपाख्यान
	रामचरित्र
	श्रीभागवत
५८. स्लीमैन	रमसेना
५९. हेनरी टुकर	विद्यार्थी या आज़मगढ़ रीडर
६०. श्री लाल	क्षेत्रचंद्रिका
	गणित प्रकाश

———

अज्ञात लेखकों और संपादकों की रचनाएँ
(वर्णक्रम से)

१. इंग्लैण्ड द्वीप दीपिका, २. किमियासार (हस्तलेख), ३. कोक स्वरोदय वैद्यकी, ४. गावों के पाठशालों और चटसालों का सन्देस पत्र, ५. गुणकारी उपदेश का संक्षेप पाठशालों के लिए, ६. गोराबादल री वात, ७. गोस्तन शीतला (हस्तलेख), ८. गौड़ वंशावली, ९. ज्ञान प्रकाश, १०. जगत तारक प्रभु ईसा मसीह का नया नियम जिसे मंगलसमाचार कहते हैं, ११. जयपुर के शासकों की वंशावली, १२. तर्क संग्रह, १३. धर्म पुस्तक का अंतभाग, १४. धार के राजों की बखर, १५. पदार्थ विद्यासार, १६. पटवारियों के हिसाब, १७. प्रश्नावली, १८. पासाकेवली, १९. फतेसिंह प्रताप प्रभाकर, २०. फ़ारसी रमल शास्त्रसार, २१. बहारों की पुस्तक, २२. भड़ई विलास, २३. भूगोल बृतांत, २४. महाजनी सार, २५. मेवाड़ वंशावली, २६. विद्याभ्यास का फल, २७. राजनीति उपदेश, २८. स्त्री शिक्षा विधायक, २९. सेनानी पोथी या सोलजर्स मैनुअल, ३०. शाहनामा, ३१. शिष्य बोधक, ३२. सकुनावली, ३३. हिन्दी भाषा का नौसिख के लिए, ३४. हिन्दवी में कथाएँ, ३५. हिन्दुई प्राइमर, ३६. A Course of Divine Revelation, ३७. Holy Bible.

हस्तलेख

१. किमियासार, २. गोस्तन शीतला, ३. धर्म गीता,: ४. मामूल अतित्वा सर्व, ५. राजनीति शास्त्र, ६. रिसाला तीरंदाजी, ७. हैदर का कासिदनामा, ८. अभिलेख, ९. बहियाँ।

परिशिष्ट–३

विषय क्रमानुसार प्रथम रचना

१. ईसप की कहानियाँ :	शिष्य बोधक (अनूदित गद्य, १८३७ ईसवी)
२. उपदेशात्मक लघु कथाएँ :	दसवीं कहानी पहाड़ की जिस्को जनने की पीर उठी (मौलिक गद्य, १८०४ ईसवी)
३. उपदेशात्मक लघुकथा संग्रह :	नक्लियात (Hindee Roman ortho-epigraphical ultimatum) (मौलिक गद्य, १८०४ ईसवी)
४. कहानी :	उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी (मौलिक गद्य, १७९८ ईसवी---१८०३ ईसवी के मध्य)
५. काव्य (धार्मिक) :	अशआर मियाँ नज़ीर के (मौलिक काव्य, १८१० ईसवी)
६. किस्से :	बैताल पच्चीसी (रूपांतरित गद्य, १८०२ ईसवी)
७. पौराणिक उपाख्यान :	प्रेमसागर (रूपांतरित गद्य, १८०३ ईसवी)
८. निबंध :	सती होने की रीति हिन्दुओं में अपने पति के साथ मया और चलन से बाहर है (मौलिक गद्य, १८०३ ईसवी)
९. नाटक :	शकुंतला (अनूदित गद्य, १८०२ ईसवी)
१०. इतिहास :	उपदेश कथा (अनूदित गद्य, १८२५ ईसवी)
११. गणित :	गणितांक का पुस्तक (मौलिक गद्य, १८२७ ईसवी)

१२. ज्योतिष :	ज्योतिष विद्या का संक्षेप वर्णन (मौलिक गद्य, १८४१ ईसवी)
१३. जाति व्यवस्था :	हिन्दुओं की जातिमाला (मौलिक गद्य, १८२७ ईसवी)
१४. टीका :	लालचंद्रिका (अनूदित गद्य, १८१७ ईसवी)
१५. ठग विद्या :	रमसेना
१६. धनुर्वेद :	रिसाला तीरंदाज़ी (मौलिक गद्य, १८१२ ईसवी)
१७. धार्मिक उपदेश :	गुणकारी उपदेश का संक्षेप वर्णन (अनूदित गद्य, १८४१ ईसवी)
१८. नैतिक शिक्षा :	मनोरंजन इतिहास (अनूदित गद्य, १८३५ ईसवी)
१९. पर्व त्योहार :	हिन्दू की परवों का वृतांत (मौलिक गद्य, १८२७ ईसवी)
२०. प्राकृतिक विज्ञान :	पदार्थ विद्यासार
२१. बहीखाता :	बहारों की पुस्तक (मौलिक गद्य, १८५० ईसवी)
२२. भूगोल :	भूगोल वृतांत (अनूदित गद्य, १८२५ ई०)
२३. यात्रा संस्मरण तथा पत्र :	पत्रमालिका (मौलिक गद्य, १८४१ ईसवी)
२४. व्याकरण :	हिन्दी भाषा का व्याकरण (मौलिक गद्य, १८२९ ईसवी) वाक्यावली (मौलिक गद्य, १८४६ ईसवी)
२५. वार्तालाप :	Dialogues (मौलिक गद्य, १७९८ ई०)
२६. शिक्षण-संस्था की व्यवस्था :	पाठशाला के बैठावने की और बालकन के सिखावने की रीति का बखान (रूपांतरित गद्य, १८२४ ईसवी)
२७. स्त्रीशिक्षा :	स्त्रीशिक्षा विधायक (अनूदित गद्य, १८२४ ईसवी)
२८. हिन्दू विधान :	दामभाग: (अनूदित गद्य, १८३२ ईसवी)

अनुभाजन–1

परिशिष्ट-४

प्रमुख मुद्रणालय

1. Agra School Book Society Press.
2. Asiatic Lithographic Press, Calcutta, Kanpur.
3. Babu Ram Saraswats Press, Mirjapur.
4. Baptist Mission Press, Calcutta.
5. Bible Society of India, Bengalore.
6. Calcutta School Book Society Press, Calcutta.
7. Catholic Orphan Press, Calcutta.
8. Chromicle Press, Calcutta.
9. Education Press, Calcutta.
10. Ferris and greenway, London.
11. Harkaru Press, Calcutta.
12. Hert Ford Press, Calcutta.
13. Hindoostani Press, Calcutta.
14. India gazetter Press, Calcutta,
15. Lithographic Press, Calcutta.
16. Light Press, Benaras.
17. Medical Hall Press, Benaras.
18. Military Orphan Press, Calcutta.
19. Mirror Press, Calcutta.
20. Mission Press, Calcutta.
21. Orphan School Press, Mirjapur.
22. Sanskrit Press; Calcutta.
23. Serampur Mission Press.
24. W. H. Allen and company, London.

परिशिष्ट–५

संदर्भ-ग्रंथ

1. अशआर मियाँ नज़ीर के Vali Muhammada's Assar Miyan Najir ke लल्लू लाल का छापाखाना, कलकत्ता—1810
2. इंगलैंड द्वीप दीपिका अर्थात् इंगलैंडवासियों की चाल और वहाँ की राजनीति आदि का सम्पूर्ण वर्णन England delineated with special reference to the morals and state of society of the inhabitants. Agra School Book Society. 1841
3. उपदेश कथा और इंगलैंड की उपाख्यान का चुम्बक ष्टुयार्ट साहेब ने किया हुआ Stewarts Historical Anecdotes with a sketch of the History of England and Her connection with India. Translated by Rev. W. T. Adam. Hinduwee
   Calcutta printed at the Calcutta School Book Society's Press, 11, Circular Road, 1825
4. Dufween kuhanee puhar kee jisko janne kee peer cothee, Oriental Fabulist of Polyglot Translations of Esop's and other Ancient Fables From the English Language into Hindoostanee, Persian, Arabic, Brij Bhasha, Bangla and Sanskrit in the Roman character by various hands under the direction and superintendence of John Gilchrist for the use of the College of Fort William Calcutta printed at the Hurkaru office 1803.
5. Hindoostani Dialogues, Oriental linguist; Dr. John Barthawick Gilchrist, Ferris and Greenway, London, Ist Edition 1798.
6. कथासार, पंडित रतनलाल ने आगरा स्कूल बुक सोसायटी के लिए मार्शमन साहब के प्राचीन इतिहास का हिन्दी भाषा में उलथा कर कथासार नाम धरा औ पादरी मोर साहब ने उस पुस्तक की पुनः परीक्षा की,

दिसम्बर सन् ईसवी 1839 मार्ग शिर संवत 1896, यह पुस्तक आगरे में आगरा स्कूल बुक सोसायटी के छापे में छपी

Kathasaru, Marsh Man's Brief Survey of Ancient History Translated into Hindi for the Agra School Book Society by Pandit Ruttan Lal. Edited by Reverend J. J. Moore Agra, Printed by W. Greenway printer to the Agra School Book Society. M DCCCXXXIV 1839

7. गणितांक का पुस्तक, Arithmetic for the use of schools, Rev. M. T. Adam, Calcutta School Book Society Press 1827
8. गाँवों के पाठशालों और चटसालों का सन्देस पत्र (हस्तलेख)
9. गीतें हमारे प्रभु और त्राण करनहारे यिशु ख्रीष्ट की वन्दगी में गाने के वास्ते ।।

   देखो पृथ्वी के अन्न से हमारे प्रभु यिशु के नाम के गान सुनने में आये हैं ।। तामसेन कृत ।।

   श्रीरामपुर में छापा हुआ ।। सन् 1828 मसीही में
10. गुणकारी उपदेश, Select Moral Maxims, Agra School Book Society यतीमखाना, आगरा 1841
11. ज्ञान प्रकाश, Agra School Book Society's Hindi Spelling Book, Agra School Book Society 1840
12. जगततारक प्रभु ईसा मसीह् का नया नियम जिसको मङ्गल समाचार कहते हैं, Church Mission Press, Calcutta 1826
13. ज्योतिष विद्या का संक्षेप वर्णन, A brief Account of the Solar System in Hindi, Agra School Book Society 1840 MDCCXI
14. तर्क-संग्रह,

    presbyteriam Mission Press, Allahabad, 1850
15. दायभाग :

    आगरा पाठशाले को हिन्दी शिक्षक श्री दया शंकर ने संस्कृत मिताक्षरा से लेकर हिन्दी भाषा में तर्जुमा किया साधारण विद्या पढ़ाने के लिए समाजाधिपति की आज्ञा से कलकत्ता राजधानी में इडुकेशन यन्त्र में छापा गया 1832

The Law of Inheritance, Translated from the Sanskrit of the Mitakshara into Hindi by Daya Shankara, Hindi Teacher in the Agra College,

Published under the authority of the General Committee of public instruction, Calcutta ?

Printed at the Education press Circular Road 1832.

16. धर्म पुस्तक का अन्तभाग अर्थात् प्रभु यिशु खीष्ट के चार सुसमाचार और प्रेरितों की क्रियाओं का विवरण और उपदेशादिक औ भविष्यद्वाक्य का पत्र यूनानी भाषा से हिन्दी भाषा में किया गया और ईगलंडदेशीय धर्म्म समाज के उपकार से छापा हुआ कलकत्ता, हिन्दुस्थानी सन् 1905 यीशवी सन् 1848

17. धार के राजों की बावर, इन्दौर 1850.

18. The New Cyclopaedia Hindoostanica of wit Containing a choice collection of humorous stories in the Persian and Nagree characters interspersed with Appropriate proverbs Antibilious Jests Brilliant Bon Mots and Rallying Repartees in the Rekhta and Briz Bhasha dialects to which is added. A vocabulary of the Principal words in Hindoostanee and English By Shree Lullulal Kube Bhasha Mooshee in the College of Fort William Calcutta Printed at the India gazetter press 1810.

19. नासिकेतोपाख्यान (हस्तलेख) पंडित सदल मिश्र

20. पत्रमालिका : सिहोर निवासी पंडित रत्नेश्वर ने सीहोर से ले बम्बई तक यात्रा करने में जो जो बड़े नगर और अच्छे अच्छे पदार्थ देखे उनका पत्र द्वारा वर्णन कर उसका नाम पत्रमालिका धरा

A Journey from Sehore to Bombay in a series of letters to his friend by Pundit Rutanashur published under the Authority of the Agra School Book Society Agra press Ist Edition 1841

Printed by order of the Committee J. J. Moore Secy.
Ist Edition 5,000 copies.

21. पदार्थ विद्यासार : बालकों के ज्ञान के लिए प्रश्नोत्तर से हिन्दी भाषा में किया हुआ।

Elements of Natural philosophy and Natural History in a series of Familiar School Dialogues. Calcutta. Printed at the Calcutta School Book Society's Press and sold at their depository, Circular Road. 1843

22. पाठशाला के बैठवाने और बालकन के सिखवाने की रीति का बखान : Substances of Dr. Bells Instructions for Modelling and conducting schools.

M. T. Adam, Calcutta School Book Society 1824.

23. प्रेमसागर : Translator Shree Lallulal kube Sanskrit press. Calcutta 1810.

24. बहारों की पुस्तक 1850

25. बैताल पच्चीसी : Hindee and Hindoostanee Selections to which are prefixed. The Rudiments of Hindoostanee and Briz Bhasha grammar compiled for the use of the interpreters to the native corps of the Bengal Army.

In two volumes vol. I Calcutta printed at the Hindoostani Press Fancy Lane 1827.

26. भारतवर्षीय इतिहास अर्थात् हिन्दुस्तान की कथा आगरा स्कूल बुक सोसाइटी की आज्ञा से और पादरी जॉन जेम्स मोर साहिब की सहायता से यह उलथा हिन्दी भाषा में हुआ मई ईसवी संवत 1846.

Marshman's History of India from Remote Antiquity to the accession of the Mogul Dynasty. Done into Hindi for the Agra School-Book Society By J. J. Moore Secretary.

Calcutta · Printed at the Baptist Mission press Circular Road for the Agra School Book Society 1846.

27. भूगोलसार अर्थात् ज्योतिष चंद्रिका : जिसमें पुराण और सिद्धान्त की कोपरनिकस साहिब की ज्योतिष विद्या से परीक्षा की, यह ग्रंथ मालवे देश में आष्टाग्राम निवासी ओंकार भट्ट ज्योतिषी ने बनाया। यह पुस्तक आगरा स्कूल बुक सोसायटी के लिए आगरे के छापेखाने में छपी दिसम्बर सन् 1840 ईसवी।

A comparison of Puranic and Sidhantic system of Astronomy: with that of copernicus. By onkar Bhut of Sehore Published under the authority of the Agra School Book Society Agra Press 1841 printed by under at the committee J. J. Moore Secy. Ist Edition 1,000 copies.

28. पीयर्स साहब के किया हुए भूगोल वृत्तान्त का संग्रह से भूगोल और खगोल का स्थूल ब्योरा : Outlines of Geography and Astronomy and of the History of Hindoostani extracted from Pears Calcutta School Book Society 1825.

29. भूगोल दर्पण : पंडित रतनलाल शर्मा, कलकत्ता 1838

30. मनोरंजक इतिहास अर्थात् बालकों को ज्ञानदायक और नीति-सिखाने का उपाख्यान : Pleasing tales or stories Designed to improve the understanding and Direct the conduct of young persons. Translated into Hindui By Rev M. T Adam Calcutta : Printed at the Calcutta School Book Society's Press and sold at the society's Depository. Circular Road, 1835

31. मनोहर कहानियाँ सुगम बोली में : Humorous stories in easy style Hindee and Hindoostanee selections pt. 1

32. मंतरवबाते हिन्दी : John Shakespear

33. Ramseeana, Sleeman, Military Orphan Press 1836

34. उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी, इंशा अल्ला खाँ : संपादक—श्यामसुंदरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
35. रामचरित्र अथवा अध्यात्म रामायण (हस्तलेख) : पंडित सदल मिश्र
36. रोगांतसार अथवा मेटीरिया मेडिका इंरेजी वैदक का तरजुमा बनारस मत के मुफ़ादहिन्द में मुनसि हरवंसलाल वो भैरो प्रसाद के मोहतिमाम से सन 1851 इसवी महिने मार्च में छपा ।
37. रिसाला तीरंदाजी (हस्तलेख) : ख्वाजा महमद फ़ाजिल का सावन सुदी 2 संवत् 1896 को खेमकन के पुत्र चामॉजी लिखित (1838 ईसवी)
38. लतायफ़े हिन्दी : William Carnichal smyth, London 1821.
39. लालचंद्रिका : The stasaiya of Behari लल्लूजी लाल कवि, संस्कृत प्रेस, कलकत्ता, 1819
40. वाक्यावली : The students Assistant or idiomatic excercises in English and Hindui. Calcutta : Printed at the Baptist Mission Press, Circular Road, Calcutta 1838
41. विद्याभ्यास का फल : Treatise on the benefit of knowledge, 1839.
42. शिष्यबोधक : Calcutta School Book Society, 1837-38.
43. सती होने की रीति हिन्दुओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है : By, W. Chaplain Primitia Orientals vol. II, containing Thesis in the oriental languages pronounced at the public desputations by the students of the college with translations, Calcutta 1803.
44. स्त्री शिक्षा विधायक : An apology for female education in the Khuree Bolee dialect. कलकत्ते के मिशन छापेखाने में छापी गई, 1823
45. सेनानी पाथी : Soldiers Manual, Calcutta 1826
46. हितोपदेश अनुवादक पंडित बद्रीलाल : Hindi version of Hitopdesh Book I, Retaining as many as possible of the original Sanskrit Expressions printed for the use of Sanskrit classes in the School and Colleges of India by order of Govt. N. W. P. Mirzapur : Orphan School Press R. C. Mather suprintened, 1851.

47. हिन्दू की जातिमाला : List of Hindoos Castes, Hindee an d Hindoostanee selections part I
48. हिन्दू की परवों का वृतांत : A descriptive list of the popular and Religious Festivals of the Hindoos
Hindee and Hindoostanee selections part I
49. हिन्दी भाषा का व्याकरण : A Hindi grammar or the instructions of the young in easy questions and answers by the Rev. M T. Adam. Printed at the Calcutta School Book Society Press and sold at their depository, Circular Road 1845
50. Hindui Primer : बालकों के लिए प्रथम शिक्षा पुस्तक कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी के लिए छापा गया
Printed at the Calcutta School Book society's press and sold at their depository Circular Road 5th Edition 1842
51. नक्लिपात : Hindi Roman orthoepigraphical ultimatum John Barth-wick Gilchrist printed for Blochkingsbury Probury and Allen Book Sellers to the Hon. East India Company Leaden Hall street, London, 2nd Edition 1820.

संदर्भ अभिलेख

(1) **Bundelkhand Agency Records List III (1829-1947)**.

1. File No. 4, 1808-Subject-grant of Lugasi Jagir to Diwan Dhiraj Singh and Villages Bhadesar.

क. श्री ॥ १ ॥ श्री साहिववाला मुनाकिव श्री साहेव आलीसान······

2. File No. 3, 1809—Subject—Making over of Lugasi Jagir to Diwan Dhiraj Singh jagirdar to his son Sardar Singh on account of old age and quarrels

amongst his other sons K. Padam Singh, K. Jawahar Singh and K. Ram Singh.

क. १. श्री साहिववाला मुनाकिव आलीसान श्री येकतदाउद्दौलमुंतजेमलमुलकु मिस्तर जान रचारडसेनसाहित्र वाहादुर व सालातजंग जू येते·········

(2) **Baghelkhand Agency Records vernacular list 1805-1916**

3. File No. 1, 1812 Baraundha and Kothi. subject—Dispute between Bundelkhand and Kothi for the possessions of the Kanapur.

क. गरीपरवर सलामत सरकार कौ परवाना हुकुम लै कै हम कोठी श्री लाल दुनियापति के पास कोठी आये परवाना दिया——असाढ़ सुदि ८ संवत १८७६ मु० कोठी

4. File No 2/3, 1813, Paldeo

Subject—Dispute between Chaube Dariod Singh etc. and the brother of Chaube Chhatrasal for a diamond of sixty four ruttis.

क. श्रीसाहिववाला मुनाकिव श्रीसाहिव आलीसान श्री मिस्तर मोदी साहिव बहादुर जू अेतेदीन महमंदषां——फागन सुदि 12 संवत 1880

5 File No. 3, 1816 Indore

Subject—Hindi letter from Lal Dinapat (in reply to this office Parwana regarding the restoration of two villages of Gajraj Singh Nephew of Lal Dinapat Rais Kothi) saying that unless Lal Gajraj Singh will obey him and render service to the state the villages will not be restored to him and petition from Gajraj Singh stating that though he obeys and renders service to the Rais of Kothi the villages are not restored to him (Kothi)

क. श्री साहिववाला मनाकिव श्री साहेव आलीसान श्री मिस्तर जानवाकिव साहेव बहादुर जू येते श्री महाराज कुमार श्रीलाल

गजराज सिह जू देव के वांचने साहब के स्माचार भले चाहिजैं इहां भले हैं———मुलक के मालिक है जिसमें हम आपन दषल दिलाइ पावें औ वगैर चपरासी हजूर के हम दषल नाही पाइ सकते है ज्यादा विनती काह लिषन मिती माघ सुदि 4 संवत 1873 मु० कोठी

ख. गरीपरवर सलामत वमौजिव हुकुमनामा के मौजे परेवा में आया और हाल सरहद कोठी वा सोहावल का दरियाफत किया सो कोठी वाले————माह जै 16 जौलाई सन 1881 ईस्वी

(3) **Rajputana Agency List No. II 1803-1916**

6. File No. 2, 1824-38 Vol. II Ajmer—Mewar
Subject – Boundary dispute between Ramgarh Patta Masuda (Ajmer) and Sanpola (Mewar)

क. श्री रांम जी

परवानो कुजलाल पंच तफ ठाकुर मसूद कै अर हटीसंघ पंच तफ उदपुर के नांम————अर जगा का निसाण दिषावो—

ख. ।। श्री रांम जी ।।

।। नकल षरीता बड़ा साहब की तरफ सै————तारीष 25 जोलाई सन 1839 × × ऐसा काम न करे ।

7. File No 3, 1830 Vol. I Ajmer—Mewar
Subject – Boundary dispute between Ramgarh and data patta Masuda (Ajmer) sampola lambia (Mewar) 1838.

क. श्रीरांम जी नकल षरीते करनेल ज्यांन सदर लेण साहब बहादर को तफ सैं ——तारीष 26 जोलाई सन् 1839 ईसवी

8. File No. 30, 1835, Vol. III Ajmer-Mewar
Subject—Accounts, Receipts and expenditure under various heads commencing from 1835.

क. साह साहब महरवान सलमत अप्रंच मालुम हूया······व्योपारी कुं खाने कर दीजो——तारख फरवरी 1835

ख. राहदारान कामदरान सादर दारान मोम्पान जागीरदारान वगेर

राजजेपुर के ईलाषे रस्ते टोंक के जोग्य——नुकसान उस जंघा को इलाषादार से दीलाया जायगा

ग. ।। श्रीरांम जी ।।

।। नकल कैंफियत मेजर ज्यान लङ लु साहिव वहादुर ईजंटराज जैंपुर की तरफ सै बनांम पंच सरदारा तारीष 7 नवंबर सन 1844 ईस्वी

घ. ।। श्रीरांम जी ।।

नकल कैंफियत पंच सरदारों राज जैंपुर की तरफ से बनांम साहिव इजंट वहादुर राज मोसुफ लीषी हुई तारीष 30 मारच स्न 1844······मीती चेत सुद 11 समत 1900 का

9. File No. I, 1837 Ajmer–Mewar

Subject—Boundary dispute between Antali Kanwar (Mewar) and Jalia Masuda (Ajmer) 1837.

क. ।। श्री वास्ते फेसले कांकड जालीया अरभेंदु षेडा इलाके मसुदा के तथा गिरवर अंटालीया इलाके मेवाड के पंचायत हुई——मारच सन 1837 ईसवी——कोठारी बाहादरमल चतरभुज का

10. File No. 1, 1835-42 Marwar-Jaisalmer

Subject—Boundary dispute between Phalodi (Marwar) and Bhap (Jaisalmer)

क. ।। श्रीरांमजी रुप छै

नकल हुकम कपतांन जांन लइलु साहब बहादुर की तफ सै बनीं मैं चोपदार भरथ चपरासी सदासुष तारीष 15 जुंन सन 1842 ईस्वी——किस्की तरफ का कसुर है

(नकल प्रमाण असल)

11. File No. 9, 1845 Jaipur-Karauli

Subject – Boundary dispute Titwara of Jaipur and Naroli of Karauli also Barod and Katre Jaipur and Berunda and of Karauli.

क. ।।श्रीरांमजी ।। मेजर ज्यान लडलू साहव वाहादुर इंजट राजजैंपुर के नाम कैंफियत पंच सरदारानन राज मोसूफ की तरफ से लिषी हुई तारीष 29 मई सन् 1845 ईसवी की——कराय देवोगे जेठ वद 10 सम्त 1901

12. File No. 7, 1846, Ajmer-Mewar

Subject—Boundary dispute between Reachhmal, Amarpura Akrol and Sameeta Tonk Patta Masuda of Ajmer and Rampura and of Mewar.

क. ।। श्रीरामजी गाम रामपुरासु राठोड़ बागसीघ जी वा लाला स्यामलालजी साहेब सरवरे के संग होर ज्मीन रामपुरा की ये ठाकुर मसुदा का झुटा झगरा करे——आगेष्वांवंद हुकम लीषावे सो करे सं० 1904 आसोज सुदी 2

4. Rajputana Agency Office Albu List IV Central Records

13. File No. 10, 1845 Marwar

Subject Boundary dispute between Khanpura (Marwar) and Sujangarh. Thara and Doolia (Bikaner) and attack of Didwana (Marwar) officer on Bikaner villages.

क. ।। श्रीहरि: ।।

। श्री गरीब परवर सलामत षुदावंदा स्थातबिदारका अरज मालुम होय । अप्रचं षुदावंदा सिरकार मारवाड़ वाले सिरकार बीकनेर वालु की मवेसी—कातिक वदि 14 संवत 1902 1 अरजी फीदवीं चोपदार रामंवकसकी मालुम हुवै——

5 Central India Agency List 15 Miscellaneous

14. File No. 27, $\frac{74}{1844}$ Subject—Exrochment by the Thakur of Gwalior.

Rajputana Agency List II 1803-1916

15. File No. 200, 1852 Marwar

Subject—Jodhpur Treaties Military correspondence regarding Hundis etc. sent by Marwar Darbar to discharge the treaty obligatic to furnish a contingent of 1500 horses for the service of the British Govt. subsequently commuted to annual payment of Rs. 1, 15,000/-

क. ।। श्रीरांमजी १ ।। वयास कीसन करन जी के नांम करनेल सींकंदर सिपीर साहेब बहादुर की वफ से अपस्व कागद तुमारा कातीक बदी 8 का लीषा आया——16 अकटुबर सन 1838 ईसवी

6. Foreign Political Department, Persion Branch, Vernacular

16. Foreign Department, Political Persion Branch No. 415 date 24 Dec. 1795.

क. श्री श्री वडा साहेव सरीव प्रवर सलामति

——————

17. Original Foreign Deptt. Persion Branch, Hindi controlling agency, letter received No. 42 dated 19th Jan 1798.

क. शवाल—शाहेव मजशट तुम्हारा इजहार कौन हरफ सो लीखा जाऐ—

18. Foreign Department, Political, Persion Branch No. 226 date June 1803.

क. इजहार जुवान वदी भुखन सीध—

19. Foreign Department Persion Branch, letter No. 333 received Aug. 1811.

क. कोमार श्री देवान वादुर गोपाल सिंघ के वांचनै ऊपर उहा के स्माचार भले चाहीजै—

20. Original Foreign Department, Persion Branch, No 301-9 letter received May 1812.

क. नकल श्री मुसिफक मेहरवान मिस्तर रजीसेन साहेब बहादुर सलामति सिधि श्री महाराजाधिराज श्री राजा बहादुर जैसिह देव जुदेव के सलाम— - मिति प्र: वैसाष वदि 18 सुक्रे का संवतु 1868 मु: गढा

21. Original Foreign Deptt. Persion Branch No. 930. letter received 22 Dec. 1814

क. उप्रान्त कार्तीक सुदी 14 सुक्रवार का दीन व उहर गामा सुर्ज उदऐ देरी—

22. Original Foreign Department, Persion Branch, No. 948 letter received Dec. 1814.

क. हुकुम इशतहार आये आगे राजेनैपाल के लोगों ने शरकार कंपनी अंगरेज बहादुर के नोकरो के शाथ काम व—

23. Original, Foreign Department Hindi letter received No. 4, 11th Jan, 1815.

क. श्री दुर्गा सहाय

स्वस्ति श्री सर्वोपमायोग्ये त्यादि सकल गुण गरिष्ट हरिहरेम्बब छन्द नीय चरण श्री श्री श्री श्री श्री श्री बाबा बाबाजी चंद्रशेखर उपाध्यायजी के——रविज्ञ बु किमधिकमिति अगहन सुदि १ रोज सोम० मुकाम कान्ति पुरम् शुभम्- -

24. Original Foreign Department, date of writing 11th March, 1815, No. 11.

क. श्रीदेवान वेयालजि तकि सलाम पहुचे अपना मत पहूच है हवाल हवाल सभ मालूम हुआ था———हम पाई आहै बूहषूसि हूआ

25. Foreign Department, Date of writing 28th March, 1815 No. 17.

क. श्री वैकुन्ठ नाथजि स्वस्ति श्री अंगरेज वाहादुर समसेर जंग वड़ा साहेवजि के के ईत श्री देवननाम गे प्रान छवैका बहुत बहुत के सलामु पहुचे———फागन्सुदि 4 रोज 3 मुकांम सुषिभ सुभम्

————

26. Foreign Department, Hindi Date of writing 2nd April 1815, No. 24.

क. श्री दुर्गासहाय :

श्री जगन्नाथ

श्री महाराजाधिराज

स्वस्ति श्री जगन्नाथ चरण

परिचर्या परामणान्तः करण—– चैत्र वदि 8 रोज 1 मोकाम कान्तिपुरं शुभम् ———

27. Foreign Department, Hindi Letter received dt. 4th June, 1815, No. 45.

क. अर्जि————आगे० अगाडिदोस्तिहमेंमैदानु सकरि की रहीं तव तलक कि———चौतरिया वम्मसाइजी रुडवीर साह का सलाम———

28. Foreign Department, Date of writing 10th Aug. 1815 No. 64

क. श्री दुर्गासहाय श्री 5 महाराज स्वस्ति श्रीमदभवानीचरणसमाराध-

नादित पुरुषार्थ चतुष्टय श्री 6 गुरुगजराज मिश्र चरणेषु— ——
समझाई पशनुभयेछ

29. Foreign Department, Hindi, Letter received 21st Oct. 1815, No. 73

क. स्वस्ति श्री गिरिराजेत्यादि श्री मन्महाराजाधिराज कुमारामात्मज श्री 5 म चौतरिया वडावम्साहवेषु स्वस्ति———

30. Foreign Deptt. Date of writing 21st Oct. 1815 letter received———nil No 74

क. स्वस्ति श्री ससफक साहेव मेहरवान दोस्तान कर फरमाय मुषलेसान हनरवलईउवारडगारडनर क———सम्वत——————
1872 आश्विन सुदि 11 रोज 6 मुकाम थैतडि शुभं————

31. Foreign Department letter received 29th Oct., 1815, Date of writing · Nil. No. 75.

क. श्रीदुर्गासहाय: स्वस्तिश्रीभवानिचरणसमाराधना सादित पुरुषार्थ चतुष्टय श्री गुरुराज राज मिश्र चरणेषु———विजय दसमि को लिषा जायगा सुभम्

32 Foreign Department, Date 24 March 1816 No. 78.

क. श्री अंन्तरषतरी सकलमंगल के ईतश्रीमेजेरलाटर साहेब के जे यो ऊ चीन आगे ईहा हकीकत आच्छा है———7 तारीख मारेच सन 1816 ईसवी

33. Foreign Department, Letter received 3rd April 1816, No. 80.

क. श्री दुर्गासहाये श्री 5 महाराज स्वस्ति श्री सकल मंगलालय श्री श्री मेजर वारिलाटर साहेब को ईत श्री सुवाजयेतंषत्री श्री सुवेदार छत्रसिंह कार्कि श्री सुवेदार चम्पसिंगुरु का सलाम————
समंवत 1872 सालमिति चैत्रवदि 13 राजे 3 मोकाम कि—
————नागरि शुभं————

34. Foreign Department, Letter received Ist September, 1816, No. 87.

क. स्वस्ति श्री सकलमंगलालये सर्वगुन गरीस्ट पाया जग ये. ते या दीगंगरीपरजापाल————तारीष 21 माह अगस्त सन 1816 ईसवी

35. Foreign Department, Ist Sept. 1816, No. 88.

क. सकलमंगललालै सर्वपामाजव्रय् तियादी सकलगुनगरीस्ट गंगगिरी सेनापति श्री श्री श्री काजी मंयुसाहिब कोईता श्री 3 मेजर वारी लाटर साहेब का कोटी कोटी सलाम पौंहचे————21 माह आगस्त सन् 1816 ईसवी

36. Foreign Department, June 11, 1817 No. 95.

क. स्वस्ति श्री मन्सीजै तोल आवदीन कौ लि० स्वस्ति श्री गिरिराजे-त्यादि श्री रुद्रवीर साह देवानां सलाम————ज्यादा मिति ज्येष्ठ वदि 12 रोज————मुकाम सल्याना शुभ

37. Foreign Department, Jan. 13, 1817, No. 100.

क. स्वस्ति श्री गिरिराजेज्यादि श्री श्री श्री चौतरिया वमशाह जी को लिषी मुन सी जयनुल आवदीनषाहरुखां का सलाम कुसल आपका कुसुल चाहिये————मिती पौष सुदी 15 रोज 6 संवत 1873 साल मुकाम गुनजी गांव शुभम्

38. Original Foreign Department, 10 March, 1819, No. 130.

क. ।। श्रीरामजी ।। राजेश्री कपतान फुलीदीन साहबजी गली बी माहराजाधिराज हंदुपत थोकल सींघ जी केन———मीती फागुन बदी द 6 सोमवार————

39. Foreign Department, 17th March, 1819, No. 158.

क. ।। तर्ज मांसनद परगणे तखतपुर का हीदुस्तानी जबान मो ।। श्रीसे भरे हुअे अैसे जो जगनांय स्वामी————गलीज मों पडा रहता है ।।

40. Foreign Department, Letter received 25th January 1820 No. 35.

क. ।। श्री ।। श्रीगंगाजलनीर्मलजमुनाजल पवीत्र भागीरथी——— मीती फागुन वदी 11 सवत् 1873

41. Original Foreign Department persion Letter received 26th Dec. 1825, No. 623.

क. ।। श्रीरामजी सही ।। सिधि श्री मटकलफ साहब बहादुर जू अफका ———राम राम वाचो आगे बलदेवसंब———— मिती आसोज सुदी 2 सबत् ।

42. Original Foreign Department Letter received 15th May 1828, No. 274.

क. श्री श्रीराम स्वस्ति श्री सकल मंगलालये सर्वयाम जोगे सकलगुन गरिष्ठ——श्री श्री श्री मेस्तर— —1884 सालेमति—- सुदि 11 मुकाम दरवार सो

———

43. Original Foreign Department, Letter received 29th March 1831, No 82.

क. स्वस्ति श्रो सकल मंगलालये सर्वयाम जोगे सकलगुन गरिस्टर्रभर्रा का सामर्थ धर्म सरिई धर्म आवातार्इ श्री श्री श्री श्री श्री कलकाता वडा——ईति सम्व 1887 साल

44. Original Foreign Department Political Persian, Letter received 24 March 1833. File No. 44.

क. श्री परवाना बनाम गोविंद विष्ट वसयाणे व जीमीदार मुलक—- तारीख 23 माह मारिज सन् 1833 ईस्वी—

45. Original Foreign, Political Persian letter received-nil 1835. No. 65.

क. अरजदास्त फिदुवीश्रातश्रीयेकता——संवत 1891 साल तारीक 15 महाकातिक मकाम नागरीगढ़ सुभ—

46. Original Foreign Political Persian Letter received 11 February 1835, File No. 75.

क. ।। श्रीनाथ जी ।। श्री श्री श्री श्री श्री हजुर मैंध्वीघांणी को मुजरो ग्ररज मालुमें होसी——समत 1891 का कातीसुदी— —सन

47. Original Foreign Political Persian Letter received 17 Jan. 1844, No. 22.

क. श्री षतराजे लदाक वाले के वेटे के तरफ ते —मन्नमत सुमम —

48. Foreign Political Department, Persian Letter received Jan. 1844. No. 58.

क. श्री लक्ष्मीनाथ जी लाटसाहब रोषरीते फारसी आषरे जिसको तरजमां हींदी में : योह सुद 5——अकीन है के अमिंद हमारी भींवर आवै फकत

49 Foreign Political Department Persian Letter received 23 March 1848. No. 85.

क. ।। श्रीरामजी ।। नकल षरीते साहब अजठ वहादर——सुदी 9 समत 1894 का ।

50. Original Political Department Persian Letter received 23 March 1848 No. 85.

क. ।। श्रीराम जी ।। नकल कागद साहब अजंट वहादुर मेवाड़ की तरफ से नाम मेहतासेर सीधजी परधानराज उदेपुर तारीष 12 अकतुबर सन 1847 ईसवी——

51. Foreign Political Department Persian Letter received-nil 1849. No. 514.

52. Foreign Deptt. letter received 3rd April 1819 No. 39.

क. नकल हिंदवीषत को ।। सिध श्री सरष ओपमां महाराज श्रीं षिरध सिंह जी जांगराज श्री श्री श्री सुवैदार राव सिध जी के न ।

———

परिशिष्ट 6

संक्षिप्त रूप

अभि०	अभिलेख
अश०	अशआर मियाँ नज़ीर के
इं० द्वि०	इंगलैंड द्वीप दीपिका
उप०	उपदेश कथा
ओ० फेब्यु०	Oriental Fabulist
ओ० लिं०	Oriental Linguist
कथा०	कथासार
गणि०	गणितांक का पुस्तक
गीतें०	गीतें हमारे प्रभु और त्राण करनहारे यिशु ख्रीष्ट की वन्दगी में गाने के वास्ते।
युग०	गुणकारी उपदेश
ज्यो०	ज्योतिष विद्या का संक्षेप
डा०	डाक्टर
डॉय०	Dialouges
तर्क०	तर्क संग्रह
दाय०	दायभाग:
धर्म०	धर्म पुस्तक का अंतभाग
धार०	धार के राजों की बखर
न्यू०	The New Cyclopaedia Hindoostanica of wit
नासि०	नासिकेतोपाख्यान
पत्र०	पत्रमालिका
पदा०	पदार्थ विद्यासार
परि०	परिचय

पाठ०	पाठशाला बैठावने और बालकन के सिखावने की रीति का बखान
प्री० ओ०	Primitia Orientals
पुं०	पुंल्लिग
प्रेम०	प्रेमसागर
बै०	बैताल पच्चीसी
भार०	भारतवर्षीय इतिहास अर्थात् हिन्दुस्तान की कथा
भू०	भूगोलसार अर्थात् ज्योतिष चंद्रिका
भू० वृ०	भूगोल वृतांत
मनो० इति०	मनोरंजन इतिहास अर्थात् बालकों को ज्ञानदायक और नीति शिखाने का उपाख्यान
म० क०	मनोहर कहानियाँ सुगम बोली में
राज०	राजनीतिशास्त्र
रानी०	रानी केतकी की कहानी
राम०	रामचरित्र अथवा अध्यात्म रामायण
रो०	रोगांतक सार
रि०	रिसाला तीरंदाजी
लता०	लतायफे हिन्दी
लाल०	लाल चंद्रिका
वाक्य०	वाक्यावली
विद्या०	विद्याभ्यास का फल
सती०	सती होने की रीति हिन्दुओं में अपने पति के साथ मया और चलन से बाहर है
सदल०	सदल मिश्र ग्रंथावली
स्त्री०	स्त्रीलिंग
स्त्री०	स्त्री शिक्षा विधायक
सेना०	सेनानी पोथी
हितो०	हितोपदेश

हिं० हिंदु०	Hindi and Hindoostani Selection
हिन्दुई	Hindui Primer
हिं० रो०	Hindi Roman Orthoepigraphical ultimatum.
हिं० जा०	हिंदू की जातिमाला
हिं० प०	हिंदुओं की परवों का वृतांत

संकेत

	क्रिया-प्रकृति या धातु
	विकल्प सूचक, मुक्त-परिवर्तन
	रूपग्राम और वर्णग्राम भेदक चिह्न के लिए
>	परवर्ती रूप व्युत्पन्न है
ϕ	शून्य संरूप ।

परिशिष्ट 7

स्रोत अनुक्रम

1. राष्ट्रीय और राजकीय अभिलेखागार
2. राष्ट्रीय और राजकीय संग्रहालय
3. अन्तरराष्ट्रीय पुस्तकालय
4. राष्ट्रीय पुस्तकालय
5. सार्वजनिक पुस्तकालय
6. वैयक्तिक संग्रह
7. मंदिर
8. शोध-संस्थान
9. शिक्षण केन्द्र
10. सभा, सोसाइटी आदि

आगरा

1. केन्दीय हिन्दी संस्थान, संस्थान मार्ग, आगरा
2. कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

इलाहाबाद

1. केन्द्रीय पुस्तकालय, विश्वविद्यालय इलाहाबाद

इंगलैंड

1. India office Library, London
2. British Museum, London.

कलकत्ता

1. Indian Museum, Jawahar Lal Nehru Road. Calcutta.
2. Asiatic Society, 1, Park Street, Calcutta.
3. कुमार सभा बड़ा बाजार पुस्तकालय, हरिसन रोड (महात्मा गांधी रोड) कलकत्ता।
4. नेशनल लाइब्रेरी वेलवेडयर, कलकत्ता
5. बड़ा बाजार लाइब्रेरी, बड़ा बाजार, कलकत्ता
6. बंगीय साहित्य परिषद्, 243/1 अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता
7. Birla Academy of Art and Culture. 109, Avenew, Calcutta—19

8. संस्कृत पुस्तकालय, कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता।
9. डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी का निजी संग्रह, 16, हिन्दुस्थान पार्क, कलकत्ता।
10. सेठ सूरज मल जालान पुस्तकालय, 186, चितरंजन एवेन्यू, कलकत्ता।
11. श्री हनुमान पुस्तकालय, सलकिया, 3 अरविन्द घोष मार्ग, हावड़ा (कलकत्ता)

कुरुक्षेत्र

1. सूरजकुण्ड का मन्दिर।

कोचीन

1. विश्वविद्यालय पुस्तकालय, कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन (केरल)

जयपुर

1. सेण्ट्रल म्युजियम, अलबर्ट हाल, जयपुर

दिल्ली

1. National Archives, Janpath, New Delhi.
2. National Museum, Janpath, New Delhi.
3. India International Centre, 40, Lodi Estate, New Delhi.
4. Orienal Secretariate Library शास्त्री भवन, नई दिल्ली।
5. Library, Indian Council of Social Science Research, 35 Ferojshah Road, New Delhi.
6. Library Indian Council of cultural Relations, Ajad Bhawan, New Delhi.
7. Library University Grants Commission, Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi.
8. Central Library, Delhi University.
9. Harding Library, Delhi.
10. पुस्तकालय, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, श्री अरविन्द आश्रम, नई दिल्ली।

11. मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय, चाँदनी चौक, दिल्ली।
12. जैन सरस्वती भंडार, धर्मपुरा, दिल्ली–6।
13. दिगम्बर जैन नया मन्दिर, जामा मस्जिद, दिल्ली
14. महावीर जैन पुस्तकालय, चाँदनी चौक, दिल्ली।
15. वीर सेवा मन्दिर, 21/2 दरियागंज, दिल्ली।

मथुरा

1. राज्य संग्रहालय, मथुरा।

मारिशस

1. महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मारिशस

लखनऊ

1. राज्य संग्रहालय, लखनऊ
2. अमीरुद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी, लखनऊ
3. टैगोर पुस्तकालय, विश्वविद्यालय, लखनऊ
4. पुस्तकालय लिटरेसी हाउस, आलमबाग, लखनऊ
5. आचार्य नरेन्द्रदेव पुस्तकालय, लखनऊ

वृन्दावन

1. Vrindavan Research Institute, Vrindavan.

वाराणसी

1. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
3. कारमाइकेल स्मिथ, लाइब्रेरी, वाराणसी
4. बाबू ब्रजरत्नदास जी का निजी संग्रह, सुड़िया, बुलानाला, वाराणसी
5. सेण्ट्रल लाइब्रेरी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

पुस्तक–सूची

अमीर खुसरो	खालिकबारी
अग्रवाल, रामेश्वर प्रसाद	बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन
अग्रवाल, वासुदेव शरण	पाणिनिकालीन भारत
ओझा, गौरीशंकर हीराचंद	प्राचीन लिपिमाला
ओझा, व्यंकट लाल	हिन्दी समाचार-पत्र
कत्रे, एस० एम०	प्राकृत भाषाएँ और उनका भारतीय संस्कृति में योगदान
काणे, वी० पी०	धर्मशास्त्र का इतिहास
कृष्णाचार्य	हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ
कुमार, सुरेश	शैली विज्ञान
केलकर, काशीनाथ	18 वीं शती के हिन्दी पत्र
केलॉग, सेमुअल हेनरी	हिन्दी व्याकरण
कौसल्यायन, भदन्त आनन्द	पालि-हिन्दी कोश
खनाल, मोहन प्रसाद	अभिलेख-संकलन
गुप्त, गणपति चन्द्र	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
गुप्त, माता प्रसाद	कुतुबशतक और उसकी हिन्दुई
ग्रियर्सन अब्राहम	भारत का भाषा सर्वेक्षण
गुरु कामता प्रसाद	हिन्दी व्याकरण
गुरु गोविन्द नाथ	गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य
गुलेरी चन्द्रधर शर्मा	पुरानी हिन्दी
गैरोला, वाचस्पति	भारतीय संस्कृति और कला
गोपीनाथन जी०	केरलीयों की हिन्दी को देन
गोयनका रामकुमार	ऐतिहासिक लेख
गोयल, जयभगवान	गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य
गौतम, प्रेम प्रकाश	हिन्दी गद्य का विकास
चटर्जी, सुनीति कुमार	भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी
	ऋतंभरा
जरवमोला, अचलानंद	हिन्दी कोश साहित्य

जायसवाल, माताबदल	मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण
जैन, रमेशचन्द्र	हिन्दी समास रचना का अध्ययन
जोशी, हेमचन्द्र	भाषा वैज्ञानिक निबन्ध
ठाकुर, रवीन्द्र नाथ	प्राचीन साहित्य
अनुवादक रामदहिन मिश्र तुलसीदास	रामचरितमानस
तासी गार्सा द (अनुवादक लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय)	हिन्दुई साहित्य का इतिहास
त्रिपाठी, रामनरेश	कविता कौमुदी
तिवारी भोलानाथ	भाषा विज्ञान कोश
दिनकर, रामधारी सिंह	संस्कृति के चार अध्याय
द्विवेदी, हजारीप्रसाद	हिन्दी साहित्य का आदिकाल
द्विवेदी, मुकुन्द	हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 1–11
दीमशित्स	हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा
नगेन्द्र	हिन्दी साहित्य का इतिहास
नरोत्तम दास	सुदामा चरित
पाण्डे, चन्द्रबली	उर्दू का रहस्य
	मुगल बादशाहों की हिन्दी
पाणिनि	अष्टाध्यायी
बड़थ्वाल, पीतांबरदत्त	मकरंद
ब्रजरत्नदास	खुसरो की हिन्दी कविता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
	भारतेन्दु ग्रंथावली भाग 1, 2, 3
	प्रेमसागर
बाहरी, हरदेव	हिन्दी उद्‌भव, विकास और रूप
भाटिया, कैलाशचन्द्र	हिन्दी भाषा में अक्षर और शब्द की सीमा
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	कर्पूर मंजरी
मलिक मोहम्मद	हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशों की देन

माथुर, उषा	भारतेन्दु की खड़ीबोली का भाषा-विश्लेषण
	प्राचीन कथाएँ नई प्रेरणाएँ
	नीलामी बोली : एक समाजभाषा वैज्ञानिक अध्ययन (प्रतिवेदन)
	प्रौढ़ों का शब्द संसार (प्रतिवेदन, लखनऊ, हापुड़, गाजियाबाद क्षेत्रों के आधार पर)
माथुर, विजयेन्द्र कुमार	ऐतिहासिक स्थानावली
मुखर्जी राधा कुमुद	हिन्दू सभ्यता
मुखोपाध्याय चन्द्रशेखर	उद्भ्रांत प्रेम
मिश्र बंधु	मिश्र बन्धु विनोद
मिश्र, बाल गोविन्द	....
मिश्र, भगीरथ	काव्यशास्त्र
रेड्डी, जी० सुन्दर	दक्षिण की भाषाएँ तथा साहित्य
वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर	फोर्ट विलियम कालेज
	आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका
वर्मा, धीरेन्द्र	ब्रजभाषा : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, हिन्दी भाषा का इतिहास, प्राचीन हिन्दी पत्र संग्रह, हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2
शर्मा, आचार्य देवेन्द्र नाथ	काव्य के तत्त्व
शर्मा, जनकलाल	जोसमनी संत परम्परा साहित्य
शर्मा, नलिन विलोचन तथा सहाय, शिवपूजन	सदल मिश्र ग्रंथावली
शर्मा, विनय मोहन	हिन्दी को मराठी संतों की देन
शर्मा, राम विलास	भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा
शर्मा, श्रीराम	दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास

श्यामसुंदरदास	राधाकृष्ण ग्रंथावली, इंडियन प्रेस लिमिटेड; प्रयाग, प्रथम संस्करण, १६३० मूल्य ३ /-
शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र	बुद्ध चरित, हिन्दी साहित्य का इतिहास, जायसी ग्रंथावली
सक्सेना, बाबूराम	अवधी का विकास, सामान्य भाषा विज्ञान
सन्तराम, बी० ए०	अलबेरूनी का भारत
सांकृत्यायन, राहुल	दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा
सेंगर, ठाकुर शिवसिंह	शिवसिंह सरोज
श्रीवास्तव, तिवारी, गोस्वामी	अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान
श्रीवास्तव, दयानन्द	खड़ीबोली का वाक्य-विन्यास
श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ	भाषा शिक्षण
श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ तथा सहाय, रमानाथ	हिन्दी का सामाजिक संदर्भ
Allen, H. B.	Teaching English as a second Language.
Ballantyne, J. R.	Elements of Hindi and Braj Bhasha grammar A grammar of Hindustani Language with a brief notes on the Braj and Dakhani.
Barler Charles	Linguistic Change in Present day English.
Bloomfield, L.	Language.
Breton Peter Henry	A vocabulary of the names of the various parts of the Human body.
Buckman C.	The College of Fort William in Bengal.

Chatterjee, S. K. — Indian Languages and Linguistic Problems.
Origin and development of Bengali Language.

Coldwell Robert — A comparative grammar of Dravidian Language.

Curme, C. O. — Parts of speech and Accidence.

Crow, M. — Suggestions for the preparation of a glossary of Indian technical terms.

De Saussure — A Course in general Linguistics.

Dinneen F. — General Linguistics

Divelta N. B. — Gujrati Language and Literature.

Dil Anwar S. — Language in Social Groups.

Dancan Forbes — A grammar of Hindustani Language in the oriental and Roman Characters.

Fifth, J. R. — Papers in Linguistics. Studies in Linguiste Analysis

Forbes D. — A grammar of Hindustani Language.

Gilchrist, J. B. — Grammar of Hindoostanee Language, The strangers Infallible East India guide or Hindoostanee Multum in poorva.

Greenberg, J. B. and Kittredge, G. L. — Words and their ways in English Speech
Early publications of Serampur Missionaries.

Greenberg, J. H.	Language culture and communication.
Gleason, H. A.	Work book in Descriptive Linguistics.
Grierson, C. P.	Modern Vernacular Literature of Northern Hindoostan, Linguistic survey of India
Harley, A.	Colloquial Hindustani.
Hutchinson, Hagee	Words.
Joseph and Hary Wright Elizabeth	Old English grammar.
Kellog	A grammar of Hindi Language
Khan Mirza	A grammar of Braj Bhasha.
Krishna Murti Bhadrirajee	Studies in India Linguistics.
Mehrotra, R. R.	Sociology of Secret Language.
Mirza, Wohid Mohammad	The life and works of Amir Khusru.
Misra, Bal Govind	Spoken and written Hindi
Misra, K. S.	Terms of Address and Second person Pronouns in Hindi.
Misra, Jai Kant	A History of Mathili Literature.
Pike, K. L.	Language.
Prasad Ishwari	History of Muslim rule in India
Rao, Subha. G.	Indian words in English
Read	English Prose Style
Roebuek	Annals of the College of Fort William
Sardar Zafri	Why two literary forms.

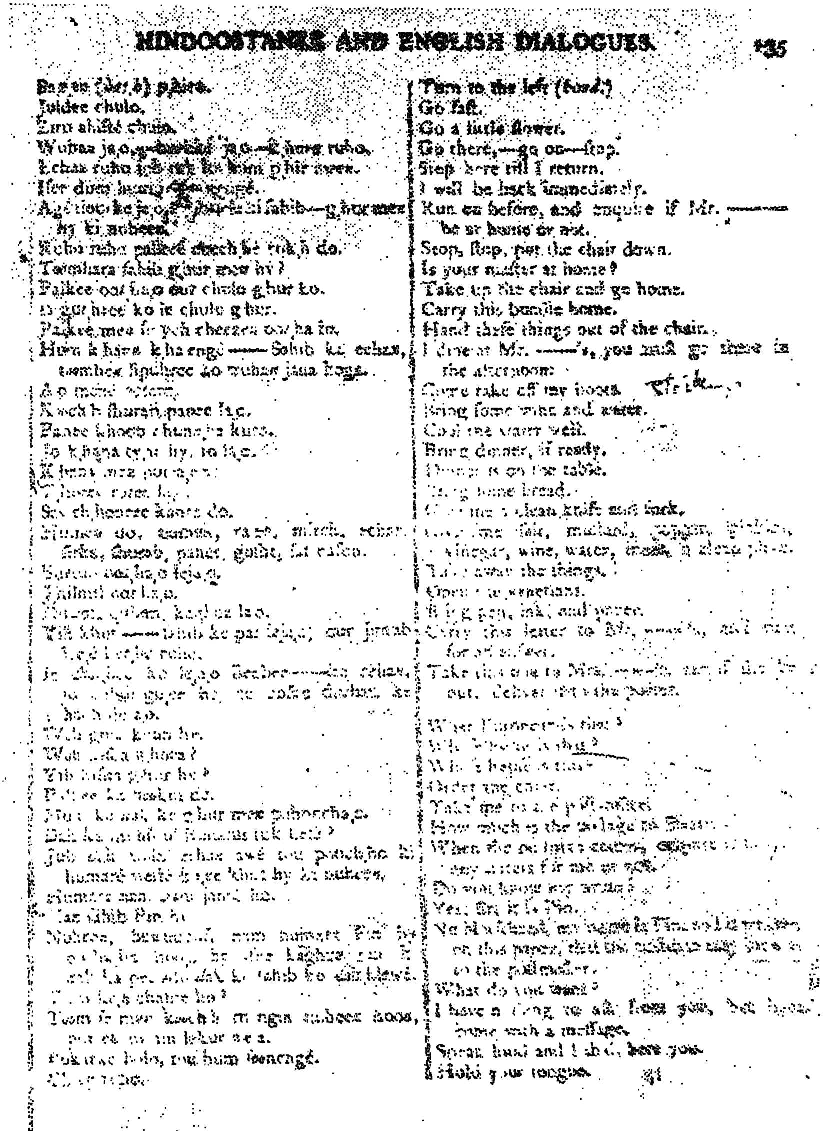
Saran, P	Non-Persian Sources or Medieval India.
Sharma, Aryendra	A Basic grammar of Modern Hindi.
Srivastava, Dayanand	Historical symtax of Early Hindi Prose.
Tesetory D.	Notes on the grammar of old Western Rajasthani.
Trudgill Peter	Sociolinguistics
Vedalankar Sharda	Development of Hindi. Prose Literature in the early 19th century.
Vigeletty, F. H.	Words we misspelle
Yates W.	Indroduction to Hindoostani Language in three parts.

———

कोश ग्रन्थ, खोज रिपोर्ट तथा केटलॉग, पत्रिकाएँ

1. Dictionary English and Sanskrit-Nonier Williams
2. Sanskrit English Dictionary-V. S. Apte
3. Clossary of Indian Terms for the use of the various Departments of the Government of the East India Company.
4. अंग्रेजी हिन्दी कोश — फादर कामिल बुल्के
5. मानविकी शब्दावली — केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
6. विश्वकोश — वसु
7. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर — नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
8. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज
9. खोज में उपलब्ध हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
10. Catalouge of the India office Library, London.
11. British Museum Catalouge.
12. Imperial Library author catalouge.
13. Proceedings of the college of Fort William.
14. Bulletin of the Deccan College.
15. Ancient Nepal.
16. Indian Journal of Applied Linguistics.
17. Indian Linguistics.
18. Language.
19. Linguistics.
20. Journal of Asiatic Society of Bengal.
21. Word.

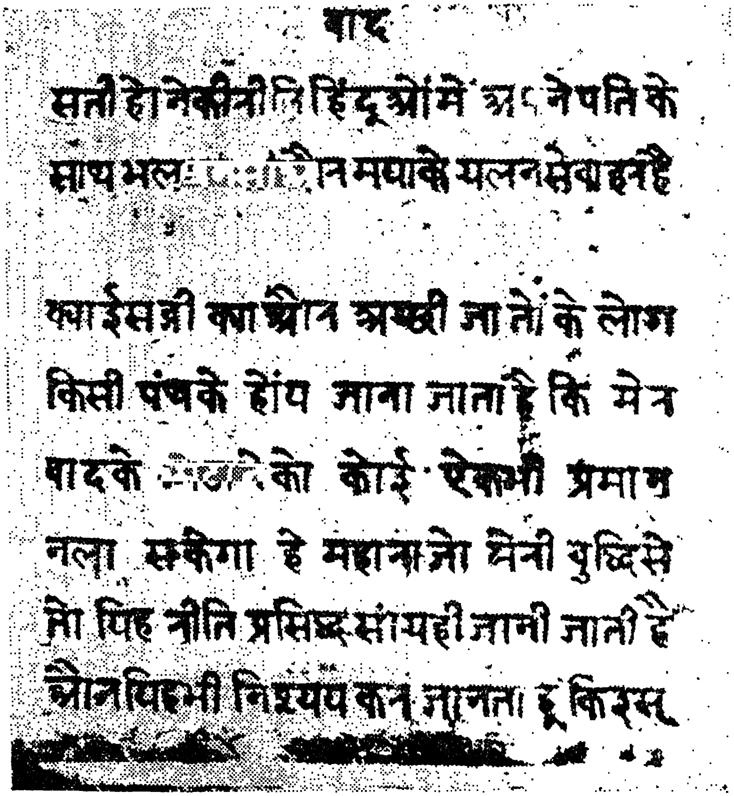
22. कविवचन सुधा
23. नवनीत
24. नागरी प्रचारिणी पत्रिका
25. परिषद् पत्रिका
26. भारतीय साहित्य
27. विश्वभारती पत्रिका
28. विशाल भारत
29. संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका
30. सम्मेलन-पत्रिका
31. हिन्दी अनुशीलन
32. हिन्दुस्तानी



HINDOOSTANEE AND ENGLISH DIALOGUES. 135

Baeen (ber,h) phiro.	Turn to the left (hand.)
Juldee chulo.	Go fast.
Zura ahiste chulo.	Go a little slower.
Wuhan jao,—[illegible] jao,—[illegible] ruho.	Go there,—go on—stop.
Ehan ruho jub tuk ki hum phir aven.	Stop here till I return.
Her dum [illegible]	I will be back immediately.
Age too ke jao [illegible] sahib—ghur mea hy ki nuheen.	Run on before, and enquire if Mr. —— be at home or not.
Ruho ruho palkee [illegible] rukh do.	Stop, stop, put the chair down.
Toomhara sahib ghur mea hy?	Is your master at home?
Palkee oot,ha,o aur chulo ghur ko.	Take up the chair and go home.
[illegible] ko le chulo ghur.	Carry this bundle home.
Palkee mea se yeh cheezen [illegible]	Hand these things out of the chair.
Hum khana kha,enge —— Sahib ke ehan, toomhen [illegible] ko wuhan jana hoga.	I dine at Mr. ——'s, you must go there in the afternoon.
[illegible]	Come take off my boots.
[illegible] pane la,o.	Bring some wine and water.
Panee khoob [illegible]	Cool the water well.
Jo khana tyar hy, to la,o.	Bring dinner, if ready.
Khana mez par [illegible]	Dinner is on the table.
[illegible]	Bring some bread.
[illegible]	Give me a clean knife and fork.
[illegible]	[illegible] vinegar, wine, water, [illegible]
[illegible]	Take away the things.
[illegible]	Open the venetians.
[illegible]	Bring pen, ink, and paper.
[illegible]	Carry this letter to Mr. ——, and wait for an answer.
[illegible]	Take this note to Mr. ——, and if he be out, deliver it to the porter.
[illegible]	Whose [illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	Order the cart.
[illegible]	Take me to the post-office.
[illegible]	How much is the postage [illegible]
[illegible]	When the [illegible] letters for me [illegible]
[illegible]	Do you know my name?
[illegible]	Yes, Sir, it is [illegible]
[illegible]	[illegible] on this paper, that the [illegible] to the postmaster.
[illegible]	What do you want?
[illegible]	I have a thing to ask from you, but [illegible] home with a message.
Pukarne lo,o, tub hum [illegible]	Speak loud and I shall hear you.
[illegible]	Hold your tongue.

चित्र संख्या १ : डॉक्टर बार्थविक गिलक्राइस्ट कृत Hindoostanee and English Dialogues, १७९८ का पृष्ठ १३५ (नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सौजन्य से)



बा८

सती होनेकी रीति हिंदूओंमें अपनेपति के
साथ भल[illegible]र मयाके चलनसे बाहर है

क्या इसकी क्या और अच्छी जातों के लोग
किसी पंथके होंप माना जाता है कि मेन
पादके [illegible] को कोई ऐसभी प्रमाण
नला सकेगा हे महाराजो मेनी बुद्धिसे
जो पिह रीति प्रसिद्ध सांपही जानी जाती है
और पिरभी निश्चय कर जानता हूं किस्स

चित्र संख्या २ : विलियम चैपलीन कृत सती होने की रीति हिन्दुओं में अपनी पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है । १८०३ ईसवी का पृष्ठ ५१ (प्रथम पृष्ठ) (नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सौजन्य से)

PREM SAGUR;

OR,

THE HISTORY OF THE HINDOO DEITY

SREE KRISHN,

CONTAINING IN THE 10TH CHAPTER OF SREE BHUGUVUT,

OF

VYASUDEVU.

TRANSLATED INTO HINDUVEE

FROM THE

BRIJ B,HASHA,

OF

CHUTOORB,HOOJ MISR.

BY SHREE LULLOO LAL KUE,

B,HASHA MOONSHEE IN THE COLLEGE OF FORT WILLIAM.

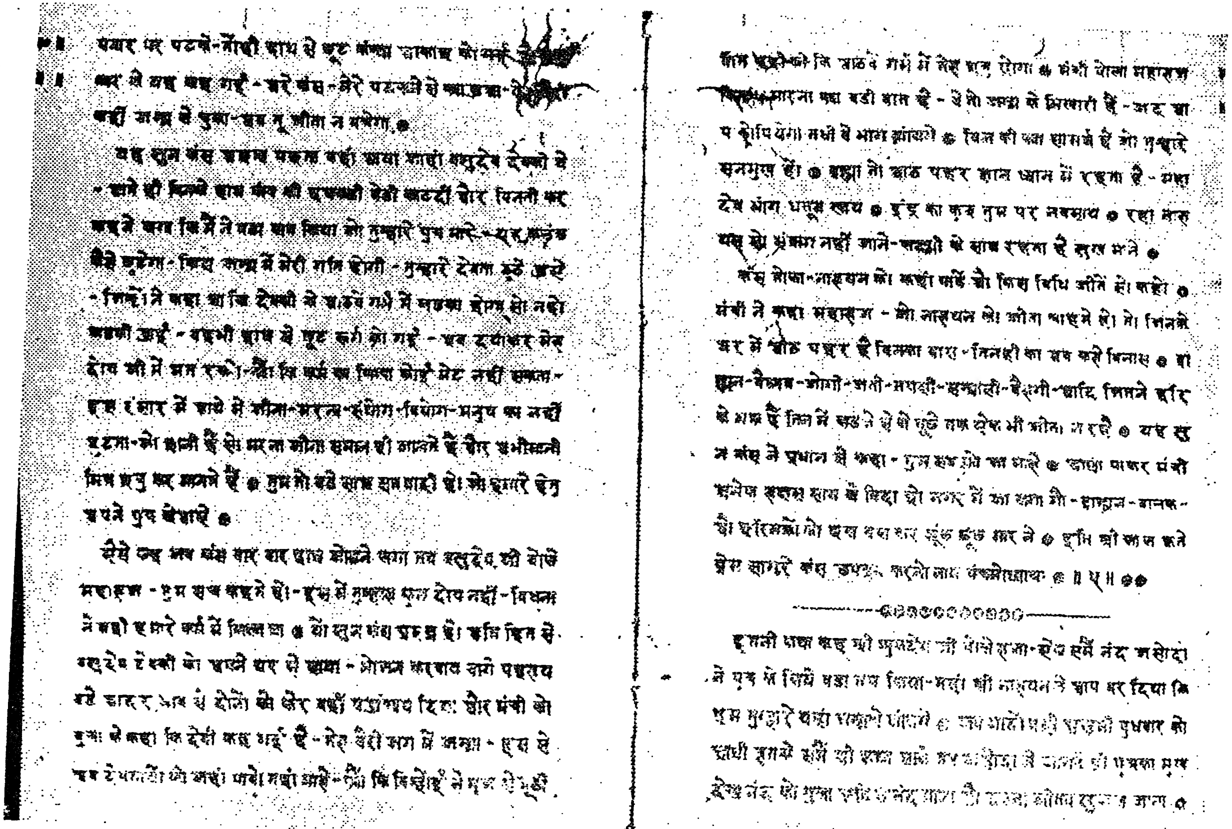
Calcutta.

PRINTED AT THE SUNSCRIT PRESS.

1810.

चित्र संख्या ३ : लल्लू लाल कव कृत प्रेमसागर का शीर्षक पृष्ठ, १८१० ईसवी

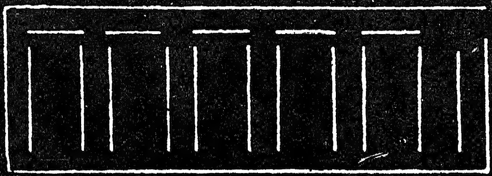
(नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सौजन्य से)



चित्र/संख्या ४ : प्रेमसागर का पृष्ठ २६, २७ (नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सौजन्य से)

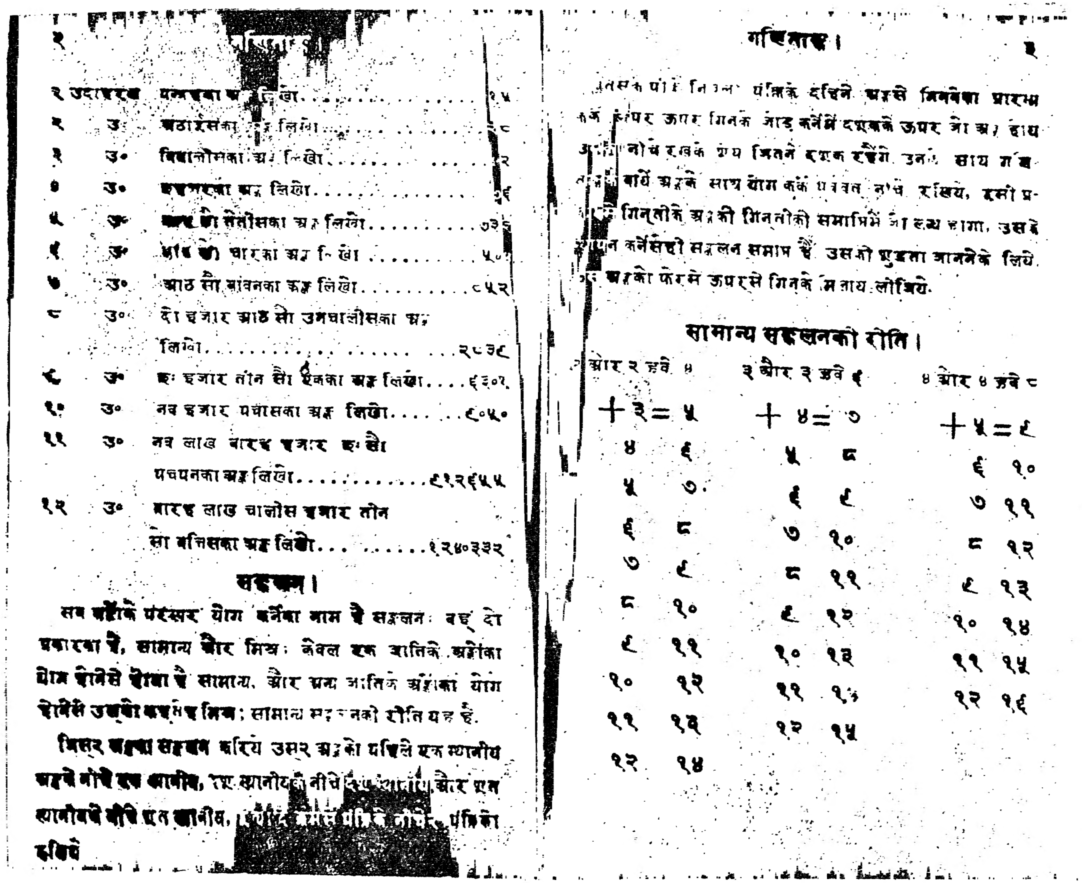
पाठशालाका बखान.

छप्परका अथवा खपरैलका घर ऐसा कर्ना.



उसी घरको चारों दिशामें मजबूत टट्टीका घेर देना, घरके मध्य में प्रकाश होनेके लिये तीन दिशाके मध्यमें (बारी कर देना, अर्थात खिडकी) जालीदार खिडकी रखना, और उनकी ओटके कारणके क्यों उसी जालीदार खिडकीमें पडदा लगाय देना. घरका द्वार जिस दिशामें रखना, उस दिशामें वह खिडकी नहीं देना; और उसी दिशामें बडा डेस्क रखना; अथवा भीत का घर कर्ना और घरके मध्यमें बालकन्के बैठनेके कारण डेढ हाथ चौडा टाट वा और कोई बिछौना बिछावना. डेस्कके सन्मुख बालका पट्टा रखना. और बालकनके लिखनेके लिये आध हाथ चौडो ऐसो काठकी पटी धर देना, घर इसी प्रकारसे मजबूत कर्ना. और बालकनकी संख्या समुझके तिनके योग्य चौडा और लम्बा कर्ना सो सब बालकनके [illegible] पाठशालामें [illegible].

चित्र संख्या ५ Substance of Dr. Bells—Instructions for modelling and conducting schools का एम० टी० एडम कृत रूपांतर पाठशाला के बैठावने की और बालकन के सिखावने की रीति का बखान, १८२४ (इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन के सौजन्य से)



२ [illegible]

२ उदाहरण [illegible] लिखो..........१५
२ उ० अठारसका [illegible] लिखो..........१८
३ उ० बियालीसका अङ्क लिखो..........४२
४ उ० [illegible] अङ्क लिखो..........५६
५ उ० [illegible] सैंतीसका अङ्क लिखो..........७३५
६ उ० [illegible] चारका अङ्क लिखो..........५०४
७ उ० आठ सौ बावनका अङ्क लिखो..........८५२
८ उ० दो हजार आठ सौ उनचालीसका अङ्क लिखो..........२८३९
९ उ० छः हजार तीन सौ एकका अङ्क लिखो..........६३०१
१० उ० नव हजार पचासका अङ्क लिखो..........९०५०
११ उ० नव लाख बारह हजार छः सौ पचपनका अङ्क लिखो..........९१२६५५
१२ उ० बारह लाख चालीस हजार तीन सौ बत्तिसका अङ्क लिखो..........१२४०३३२

सङ्कलन।

सब अङ्कोंके परस्पर योग करनेका नाम है सङ्कलन; यह दो प्रकारका है, सामान्य और मिश्र; केवल एक जातिके अङ्कोंका योग होनेसे होता है सामान्य, और अन्य जातिके अङ्कोंका योग होनेसे उसको कहते हैं मिश्र; सामान्य सङ्कलनकी रीति यह है.

जितने अङ्कका सङ्कलन करिये उसमें अङ्कोंको पहिले एक स्थानीय अङ्कके नीचे एक स्थानीय, दश स्थानीयके नीचे दश स्थानीय, और शत स्थानीयके नीचे शत स्थानीय, [illegible] पंक्तिके नीचे [illegible] पंक्तिको खींचिये

गणितांक। ३

[illegible] पंक्तिके दहिने अङ्कसे गिननेका प्रारम्भ करके [illegible] ऊपर गिनके जोड़ करनेमें दशकके ऊपर जो अङ्क हाथ [illegible] नीचे दशक [illegible] जितने दशक रहेंगे उतने हाथ गिनके बायें अङ्कके साथ योग करके [illegible] नीचे रखिये, इसी प्रकार गिनतीके अङ्की गिनतीकी समाप्तिमें जो हस्य होगा, उसके [illegible] करनेसेही सङ्कलन समाप्त है. उसको शुद्धता जाननेके लिये [illegible] अङ्कको फेरसे ऊपरसे गिनके मिलाय लीजिये.

सामान्य सङ्कलनकी रीति।

२ और २ हवे ४		३ और ३ हवे ६		४ और ४ हवे ८	
+ ३ =	५	+ ४ =	७	+ ५ =	९
४	६	५	८	६	१०
५	७	६	९	७	११
६	८	७	१०	८	१२
७	९	८	११	९	१३
८	१०	९	१२	१०	१४
९	११	१०	१३	११	१५
१०	१२	११	१४	१२	१६
११	१३	१२	१५		
१२	१४				

चित्र संख्या ६ : एम० टी० एडम कृत गणितांक का पुस्तक, १८२७ ईसवी, पृष्ठ ३
(इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन के सौजन्य से)

खड़ीबोली
विकास के आरंभिक चरण

उषा माथुर

रिसर्च साइंटिस्ट 'ए'
(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

हिन्दुस्तानी एकेडमी
इलाहाबाद